श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक

के

रचयिता



श्रीमद्भागवताभ्यासाध्यापनार्जितसद्यशाः ।
सात्मजः प्रवयाः काश्यां राममूर्तिर्विराजते ॥

2·5

सप्ताह-विमर्श

श्रीमद्भागवत संस्कृत वाङ्मयका एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके श्रवण-मनन चिन्तन तथा पाठसे चित्तमें जो अलौकिक सुख-शान्ति प्राप्त होती है, वह अन्य किसी ग्रन्थके अध्ययनसे नहीं यह इसकी विशेषता है। इसकी भाषा इसकी शैली और इसका गाम्भीर्य इतना विलक्षण है, कि इसे परम्परागत विद्वान् ही ठीक-ठीक समझ सकते हैं साधारण जनता नहीं। इसी विचारसे मैंने मातृभाषामें इसका सरलतम अनुवाद कर साप्ताहिक-कथाके रूपमें आप लोगोंके समक्ष उपस्थित किया, जिससे साधारण पठित जनता भी इससे लाभ उठा सके और इसकी रसानुभूति कर जीवन परिवर्तनके साथ ही साथ भगवान् की ओर उसका झुकाव हो सके।

कथावाचक-प्रवचनकर्ता तथा अनुसन्धानकर्ताओंके लिये तो यह आकर ग्रन्थके रूपमें अमूल्य निधि है। अल्पपठित कथावाचक भी इसका आश्रय ले विद्वत्समाजमें भी निर्भीकता पूर्वक कथा बाँच सकते हैं। उन्हें कुछ सोचना-विचारना नहीं पड़ेगा। मूलके सभी अपेक्षित विषयोंका इसमें सुन्दर ढंगसे समावेश किया गया है। कथा सम्बन्धी कोई भी अंश छूटा नहीं है। इस कथा का यह परिवर्द्धित संस्करण दो भागोंमें विभक्त है। पूर्वकी अपेक्षा इसमें बहुत से नवीन विषयोंका सङ्कलन है। विविध शङ्काओंका भी शास्त्रीय पद्धतिसे सन्तोषजनक समाधान इसमें सन्निहित है। इसके अनुष्ठान तथा सप्ताहका इतना विलक्षण महत्त्व है कि जीवात्मा किसी भी प्रेतयोनिमें क्यों न हो यदि विधि पूर्वक नियमानुसार उसे सप्ताहका श्रवण कराया जाय तो वह सात दिनमें निश्चित मुक्त हो सकता है इसमें सन्देह नहीं। महाप्रेत धुन्धुकारीके उपाख्यानसे इस तथ्यका निर्णय कर सकते है, किन्तु यह ध्यान रहे कि वक्ता और श्रोता दोनोंने इसकी विधि और नियमोंका समुचित ढंगसे पालन नहीं किया तो 'संविधानात् फलं पूर्णं तद्धीने तु तदल्पता'। इस वचनके अनुसार क्रिया में वैगुण्य हो जानेसे अभीष्ट सिद्धि न हो सकेगी। अतः 'मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः', 'शुभयोगे तिथौ लग्ने कथारम्भः प्रशस्यते' इस वचनसे मुहूर्तके अनुसार मास-तिथि तथा दिनका विचार कर सप्ताह आरम्भ कराना चाहिये।

आजकलके कुछ अर्थलोलुप वक्ता इन बातोंका विचार न कर मनमानी ढंगसे जब इच्छा हुई यजमानको उल्टा-सीधा समझाकर सप्ताह आरम्भ करा देते हैं, यह सर्वथा अनुचित तथा शास्त्रविरुद्ध है। ऐसे कतिपय वक्ता शास्त्रके मर्मको न समझ तर्क उपस्थित कर माहात्म्यके वाक्योंका उद्धरण देते हैं। 'सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा' 'नात्र मासादिनियमः

सर्वदा श्रवणं मतम्' 'दिनानां नियमो नास्ति' इत्यादि। यहाँ इन वाक्योंका तात्पर्य है दैनिक कथासे है सप्ताहकी कथासे नहीं। वहीं इसके पूर्वार्द्धमें स्पष्ट लिखा है 'प्रत्यहं शृणुयाद् यो वै तस्य मुक्तिश्च निश्चयात्', नात्र मासादिनियमः। अन्यथा

नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभः।
एते मासाः कथारम्भे श्रोतॄणां मोक्षसूचकाः॥आ०मा० ६।२

इस श्लोकमें मासोंका परिगणन क्यों किया। इस पूर्वापरविरोधका परिहार क्या होगा ? इसपर विचार करें। इस श्लोकमें आषाढ़ से लेकर मार्गशीर्ष पर्यन्त छः मासोंका ग्रहण किया है। चकारसे यहाँ पर माघ फाल्गुन वैशाख और ज्येष्ठ मासका ग्रहण है। साथ ही टीकामें 'सर्वे मासाः शुभाः प्रोक्ताः पौषचैत्रविवर्जिताः' इस विशेष वाक्यका संकेत कर सप्ताहमें प्रतिपदोक्त इन दो मासोंका निषेध किया गया है। सप्ताह एव एतयोनिषेधो नान्यत्र 'सर्वथा वाचयेद् गाथां पारायणमृते विधिम्' इति वचनात्, टीका। अतः पौष और चैत्रमें कथमपि सप्ताह न करना चाहिये और न कराना चाहिये। अन्यथा 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते' इस भगवद्वाक्यके विपरीत करनेसे वक्ता और श्रोता दोनों दोषके भागी होते हैं।

उपर्युक्त मासोंमें जिन महानुभावोंने पूर्वमें सप्ताहश्रवण किया है उन्हीं मासोंका इस श्लोकमें विशेषरूपसे परिगणन किया गया है। जैसे शुचि (आषाढ़) में गोकर्णने धुन्धुकारीके निमित्त सप्ताह किया। 'आषाढ़े धेनुजः पूर्वमुवाच धुन्धुकारिणे। नभः (श्रावण)में पुनः गोकर्णने समस्तश्रोताओंके मुक्तचर्थ सप्ताह किया 'श्रावणे सर्वमुक्त्यर्थम्'। नभस्य (भाद्रमास) में शुकदेवने परीक्षितको श्रवण कराया। 'नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत्' इसी मासमें भगवान्‌ने ब्रह्माको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश किया। 'मोहयुक्तं तु ब्रह्माणं मासे नभस्यसंज्ञिते'। आश्विनमें मैत्रेयने उद्धवको इसका श्रवण कराया। 'आश्विने तूद्धवाय च। मैत्रेय आह सौम्ये च'। कार्तिकमें नारदजी ने व्यासजीको इसका श्रवण कराया। 'कार्तिके नारदो व्यासं कथामेतां जगाद ह'। मार्गशीर्षमें व्यासजीने शुकदेवजीको इसे पढ़ाया।

श्रीशुकं पाठयामास मासे स मार्गशीर्षके।
अतः सप्ताहश्रवणं मार्गशीर्षे शुभं मतम्॥मा० टी०॥

अन्य माघ आदि मासोंमें भक्तोंने श्रवणकर हृदयमें इसे धारण किया। 'माघे भक्तजना दधुः। ततः प्रभृति सर्वेषु मासेषु श्रवणं मतम्'। इस प्रकार पौष और चैत्रको छोड़कर सभी मासोंमें सप्ताह करनेका विधान मिलता है।

मलमास, शुक्रास्त तथा गुरु, और चन्द्रके अस्तमें भी सप्ताह करनेका विधान नहीं है। केवल आतुरदशामें यह निषेध लागू नहीं होता। माहात्म्यके अनुसार वक्ता और श्रोता दोनोंको ही नियमोंका पालन करना आवश्यक है। 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' इसके अनुसार आचार पर विशेष ध्यान रखना चाहियें। शीशेके गिलास या चीनी मिट्टीके प्लेटोंमें चाय आदि पीना या पिलाना आचारविरुद्ध हैं, और इससे संक्रामक रोग होने की संभावना है। क्योंकि वे उच्छिष्ट रहते हैं। धोनेसे उनकी शुद्धि नहीं होती। उच्छिष्ट न किसीका खाना चाहिये और न किसीको खिलाना ही चाहिये अन्यथा वे दोनों ही श्वान की योनिमें जाते हैं। 'नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यात्' 'उच्छिष्टभोजिनः श्वानः। यहाँ तक कि माता-पिता भाई बन्धु तथा गुरु तकका उच्छिष्ट खानेका निषेध है। केवल अनुपनीत दशामें यदा-कदा खाया जा सकता है।

सप्ताहके मध्यमें क्षौर कराना या स्वयं हाथसे बनाना निषिद्ध है। कपड़े पहन कुर्सी मेज पर बैठकर भोजन करना, समाजमें एक साथ बैठकर खाना, दक्षिणदिशा की ओर मुख करके खाना, जूता पहनकर खाना ये सब राक्षसी भोजन कहा जाता है।

यो वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते दक्षिणामुखः।
सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते॥

खड़े होकर लघुशंका करना यह पश्वाचार है, मानवधर्म नहीं। इस अनाचारसे मनुष्य पशुयोनिमें चला जाता है। गार्दभीं योनिमाप्नुयात्। मुखमें सरस्वतीका वास है 'कपोले वसते वाणी, अतः मुखमें कोई भी घृणित गन्दी वस्तु या घृणित पेय जैसे मद्य मांस अण्डे लहसन प्याज प्रस्राव आदि कभी न जाने दे। अन्यथा सरस्वती कुपित होती है जिससे वह मलमूत्र खाने वाली शूकरयोनिमें चला जाता है। 'शौकरीं योनिमाप्नुयात्' इन घृणित वस्तुओंके त्यागका संकल्प कर सप्ताहका श्रवण करे और बादमें भी इनका कभी भी सेवन न करे, ऐसा करनेसे श्रोताओंकी भगवान्के परिकरोंमें गणना हो जाती है। एक समय पत्तल पर हविष्यान्न भोजन करे, पृथ्वी पर शयन करे, तेल-साबुन आदि सात दिन तक न लगावे, किसीको कटुवचन न बोले, और किसी रूपमें आये हुए अतिथिका तिरस्कार भी न करे, उसे सत्कार-पूर्वक भोजन आदिसे सन्तुष्ट करे, इत्यादि-इत्यादि नियमोंका वक्ता और श्रोता दोनों ही पालन करें तभी सप्ताहका पूर्णफल प्राप्त हो सकता है। यदि वक्तामें उपर्युक्त दोष पाये जायँ तो पण्डित होने पर भी उनका त्याग

करे उनसे कथा न सुने। 'सदोषाः पण्डितास्त्याज्याः श्रीभागवतवाचने" 'श्रूयते शुकशास्त्रवाक्' इसके अनुसार वक्ता स्वयं अथवा दूसरे विद्वान्के द्वारा यजमानको मूलपारायण सुनाकर ही कथाका सारांश हिन्दीमें सुनावे ऐसा विधान है 'पाठस्तु प्रथमं कार्यों व्याख्यानं तदनन्तरम्' (विधानमञ्जरी) मूल पारायण सुनाना अत्यावश्यक है, अन्यथा सप्ताहका फल प्राप्त नहीं होता।

भागवतपर अथवा भागवतके निमित्त चढ़ा हुआ द्रव्य भगवद्द्रव्य कहा जाता है। वक्ता इससे बड़ा सावधान रहे। सर्वांशमें उस द्रव्यसे अपने कुटुम्बका पोषण न करे और न जमा ही करे। कम-से-कम सप्ताहका आधा द्रव्य अथवा उसका चतुर्थांश धर्मार्थमें अवश्य लगा दे, अन्यथा अन्तमें वक्ता की दुर्गति होती है और वह इस पापसे प्रेतयोनिमें चला जाता है। हमारे परमाराध्य गुरुदेव (भागवतीजी) महाराज कथावाचकोंके समक्ष प्रायः इस श्लोकको कहा करते थे।

भक्तैः समर्पितं द्रव्यं श्रीमद्भागवतोपरि।
तद्द्रव्यं भगवद्द्रव्यं सर्वभुग् दुर्गतिं व्रजेत् ॥

इस सम्बन्धमें वृन्दावनकी एक सच्ची घटनाका उल्लेख किया जाता है, पाठक उसपर ध्यान दें। निम्बार्क सम्प्रदायके सुप्रसिद्ध सन्त श्रीगोपालदासजी महाराज प्रतिदिन तीन बजे उठकर वृन्दावन की परिक्रमा किया करते थे। एक दिन समयका ठीक ज्ञान न होनेपर वह आधीरातको ही उठकर चल दिये। मार्गमें एक स्थानपर प्रकाश दिखायी पड़ा। वहाँ विकराल आकृतिवाले मनुष्योंकी भीड़ जमा थी और कुछ उत्सव सा हो रहा था। उसे देखते ही सन्तजी कुछ सहम से गये। उन सबोंने बड़े प्रेमसे सन्तजीको बुलाकर पर्याप्तमात्रामें प्रसाद दिया जिससे उनका झोला भर गया। परिक्रमासे लौटकर सन्तजीने प्रसन्न हो वह प्रसादका झोला अपनी कुटियामें रखकर बन्द कर दिया। अनन्तर प्रसाद वितरणके लिये उन्होंने भक्तमण्डलीको बुलवाया। वे सब भक्त आकर बैठ गये। जब सन्तजी प्रसाद लेने कुटियामें गये तो वहाँ बड़ी दुर्गन्ध मालूम पड़ी। कुटिया खोलने पर देखा तो उसमें मल-ही मल भरा था। वे चकित हो कहने लगे अरे, यह क्या हुआ? अनन्तर उन्होंने कुटिया सफा करायी और तुरन्त बाजारसे पेड़ा आदि मिष्टान्न मँगाकर सबको प्रसाद बँटवाया। दूसरे दिन वह इसकी वास्तविकताकी जाँच करने पुनः उसी समय उस स्थान पर गये, देखा तो वैसी ही भीड़ जमा है। सन्तजीने साहस कर उनसे पूछा आप लोग कौन हैं? वे सब अस्पष्ट शब्दोंमें बोले—हम सब अपने कुकर्मोंसे प्रेत हो गये हैं, बड़े कष्टमें हैं। उसीमें सन्तजीके चिर परिचित एक पण्डितजी दिखायी पड़े जिनका देहान्त हो चुका

था। सन्तजीने चकित हो उनसे पूछा आप यहाँ कैसे ? पण्डितजीने कहा—मैं अच्छा प्रसिद्ध कथावाचक था। अधिकतर सप्ताहकी ही कथा किया करता था। मैंने सप्ताहमें प्राप्त द्रव्यका बड़ा दुरुपयोग किया। केवल उससे अपने कुटुम्बका ही पोषण किया। धर्मार्थ किसीको कभी एक पैसा भी उठाकर दान नहीं किया। लाखों रुपये जमा करके छोड़ आया। किसी सत्कर्ममें उन्हें नहीं लगाया। सुन्दर-सुन्दर कीमती धोतियाँ साड़ियाँ बक्सोंमें पड़ी-पड़ी सड़ गयीं किसीको एक गमछा भी नहीं दिया। स्त्री-पुरुषोंको अपना जूठा खिलाया, कहाँ तक अपने दुष्कर्मोंको कहूँ। मेरा जीवन पापमय हो गया था। उसी पापका यह दुष्परिणाम है कि मैं महाप्रेत हो गया हूँ। मुझे बड़ा कष्ट है। आप दयालु सन्त हैं मेरा उद्धार करें मेरा उद्धार करें।

ये और भी जितने प्रेत हैं उनके भी ऐसे ही कुकर्म हैं इनका भी उद्धार करें। मेरा पचास हजार रुपयोंका सोना एक स्थानपर गड़ा है। मैं पता बताता हूँ। आप उसे निकालकर हम सब प्रेतोंके निमित्त सङ्कल्पकर किसी अच्छे आचार सम्पन्न विद्वान्के द्वारा विधिपूर्वक मूलपारायण व्याख्यान सहित सुनाकर सप्ताह करा दें और एक सौ एक ब्राह्मणोंको वस्त्र दक्षिणा सहित यथेच्छ भोजन भी करा दें, उससे हम सब प्रेतोंका उद्धार हो जायगा। सन्तजीने तदनुसार उनके निमित्त सप्ताह कराया जिससे उन सबका उद्धार हो गया। अतः वक्ताको चाहिये कि भागवत-कथासे प्राप्त धनका सर्वांशमें उपभोग न करें, कम-से-कम आधा या उसका चतुर्थांश अवश्य धर्मार्थ में लगा दे अन्यथा वह निश्चित प्रेतयोनिमें चला जाता है। काशीके पं० दुग्धनाथ त्रिपाठी वेदान्तविभागाध्यक्ष,ने वृन्दावनके सुप्रसिद्ध सन्त श्रीत्यागीजी महाराजसे यह कथा सुनी थी। कथावाचकोंके कल्याणार्थ उनके अनुरोधसे यहाँ संक्षेपमें उसका सारांश दिया गया। आशा है सभी कथावाचक इस तथ्यका अनुसरणकर अपने जीवनको आदर्शमय बनानेका प्रयास करेंगे, इस ग्रन्थके शुद्धमुद्रणके हेतु अत्यन्त सावधानी रखनेपर भी दृष्टिभ्रमसे प्रूफसम्बन्धी कुछ अशुद्धियाँ रह गयी हैं अतः पाठकोंके सुविधार्थ अन्तमें शुद्धिपत्र दे दिया है। पाठकवृन्द उससे मूलका संशोधन कर इस ग्रन्थका रसास्वादन करें। अन्तमें इस अवसरपर हम सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय मुद्रणालयके वरिष्ठ ईक्षयशोधक पं० श्रीहरिवंश त्रिपाठी एवं मेरे चिरञ्जीव आत्मज पं० राजेशकुमार शास्त्रीने इस ग्रन्थमें प्रूफ आदिका संशोधनकर इसके शुद्धमुद्रण में हमें सहयोग प्रदान किया है, उन दोनों की हम हार्दिक शुभकामना करते हुए अपना वक्तव्य समाप्त करते हैं।

रामभूर्ति शास्त्री (पौराणिक)
रथयात्रा सं० २०३६

श्रीः

दशमस्कन्ध-पूर्वार्द्धकी

विषयानुक्रमणिका

रास-पञ्चाध्यायी प्रारम्भ ।

रासलीला-रहस्य

दशम स्कन्धका उत्तरार्द्ध

एकादशस्कन्ध

द्वादश स्कन्ध

द्वितीयभागकी विषयानुक्रमणिका समाप्त।

* श्रीमङ्गलमूर्तये नमः *

दशम स्कन्ध प्रारम्भ

श्रीराधाकृष्णपादाब्जं ध्यायं ध्यायमनारतम् ।
कथायै सुगमां शैलीमबोधार्थं[1] समारभे ॥
साप्ताहिकी कथा रम्या सर्वेषामुपकारिणी ।
श्रद्धयाऽभ्यस्यतां नित्यं स्यादियं गुरुरूपिणी ॥
यां समाश्रित्य येऽल्पज्ञाः समाजे विदुषामपि ।
सप्ताहसत्कथां प्रौढ्या निर्भयं वाचयन्तु ते ॥
प्रतिजज्ञे सतां गोष्ठ्यामिदं डिण्डिमघोषतः ।
योग्यतायोग्यते तेषां वेत्ति कोऽपि न कोविदः ॥
अस्याः कीरवदभ्यासमानुपूर्व्या यथातथम् ।
कुर्यादल्पज्ञता तस्य तदानल्पज्ञतामियात् ॥
श्रीमद्भागवताध्यायसारांशो भावगर्भितः ।
कथावाचकतोषार्थं लिख्यते मातृभाषया ॥

---

१. अबोधा अज्ञानिनः अश्लीलोपन्यासादिपठनशीलास्तदर्थम् । यद्वा अत्राल्पार्थे नञ्-न अल्पो बोधो येषां ते अबोधा अल्पज्ञा इत्यर्थः तदर्थम् 'तदन्यत्वं तदल्पता इति कारिकोक्तेः । अं वासुदेवं बुध्यन्ते ज्ञातुं चेष्टन्ते इत्यबोधा भगवद्भक्तास्तदर्थमिति वा किं बहुना सर्वेषां कृत इत्यर्थः ।

पहला अध्याय

दशमे कृष्णसत्कीर्तिवितानायानुवर्ण्यते ।
धर्मग्लानिनिमित्तस्तु निरोधो दुष्टभूभुजाम् ॥

[इस स्कन्धमें ९० अध्याय हैं एवं पुराणका आठवाँ लक्षण निरोध (दुष्ट राजाओंका संहार) वर्णित है]

वसुदेवका विवाह और कंसद्वारा देवकीके छः पुत्रोंका वध

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—हे मुनिवर !

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः[1] ।
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ भा. १ ॥

आपने नवमस्कन्धमें विस्तारपूर्वक सोम और सूर्यवंशका वर्णन किया, उसमें उत्पन्न हुए सुद्युम्न आदि राजाओंके विलक्षण चरित्र और धर्मात्मा राजा यदुका वंश एवं चरित्र भी बताया । अब आप कृपाकर यदुवंशमें अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र विस्तारपूर्वक सुनायें । भगवान्‌का मंगलमय चरित्र मुक्त, मुमुक्षु एवं विषयी सभीका प्रिय एवं भवरोगकी महान् औषध है । श्रोत्र एवं मनको भी प्रसन्न करनेवाला है । आत्मघाती पशुको छोड़कर ऐसा कौन होगा जो इसे सुननेकी इच्छा न करे । हमारे पितामह महाराज युधिष्ठिर तथा भीम आदि जिन भगवान्‌की चरणरूपी नौकाका आश्रय लेकर कौरवसेनारूपी दुस्तर-समुद्रको पार कर सके, अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रकी ज्वालासे मुझे भी जिन्होंने प्राणदान दिया, प्राणिमात्रके बन्धन एवं मोक्षके जो कारण हैं और जो कृपावश ही इस समय नर लीला करने आये हैं आप उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णका मंगलमय चरित्र वर्णन करें । आपने बलरामजीको रोहिणी और देवकी दोनोंका पुत्र बताया इसकी संगति कैसे ? भगवान् मथुरासे व्रजमें क्यों गये ? दोनों स्थानोंमें रहते हुए उन्होंने कौन-कौनसे चरित्र किये ? बधानहँ

---

१. सूर्य ब्रह्माके प्रपौत्र तथा सोम ब्रह्माके पौत्र हैं अतः ज्येष्ठता के कारण अभ्यर्हित होनेसे सोमशब्दका पूर्वनिपात किया गया ।

* ब्रह्माके मरीचि, मरीचिके कश्यप और कश्यपके रवि, प्रपौत्र । ब्रह्माके अत्रि अत्रिके सोम इस क्रमसे सोम पौत्र हुए ।

* सूर्य रसशोषक है और सोम रसवर्द्धक है । इस कारणसे भी पूर्वनिपात हुआ ।

* सोमवंशमें भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव हुआ है अतः सबकी अपेक्षा सोमके अभ्यर्हित होनेसे उसका पूर्वनिपात किया गया ।

मामा कंसको क्यों मारा ? यदुवंशियोंके साथ भगवान् व्रजमें कितने वर्ष रहे ? उनकी पत्नियाँ कितनी थीं ? इन सब प्रश्नोंका समाधान करनेकी कृपा करें। आप यह न सोचें कि भूख-प्याससे व्याकुल यह कैसे इतनी कथाएँ सुन सकेगा। मैं आपके मुखचन्द्रसे निःसृत अमृतरूपी कथाका पान कर रहा हूँ, इससे मुझे भूख-प्यास सता नहीं रही है।

सूतजी बोले—हे शौनक !

एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम्।
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ।।१४।।

राजा परीक्षित्‌के ऐसे सुन्दर प्रश्न सुनकर परम भागवत श्रीशुकदेवजी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने राजाकी प्रशंसाकर भगवान्‌का मंगलमय चरित्र जो कलिके दोषोंको शमन करने वाला है, कहना आरम्भ किया।

शुकदेवजीने कहा--हे राजन् ! भगवान्‌की कथामें तुम्हारा बड़ा प्रेम है। इसलिये निश्चय ही तुम्हारी बुद्धि प्रशंसनीय है। वासुदेव-कथा-सम्बन्धी प्रश्न गंगाकी धाराके समान वक्ता, श्रोता और प्रश्नकर्ता इन तीनोंको ही पवित्र करता है। मैं पहले तुम्हें भगवान् श्रीकृष्णके अवतारका कारण बताता हूँ। एक समय असुरभावापन्न दुष्ट राजाओंके भारसे पीडित पृथ्वी गौका रूप धारणकर रोती हुई मेरुपर्वतपर ब्रह्माजीके समीप पहुँची। वहाँ उसने उनसे अपना सारा दुःख निवेदन किया। इसपर ब्रह्माजी पृथ्वी और देवताओंको साथ लेकर क्षीरसमुद्रके तटपर गये। वहाँ वे पुरुषसूक्तसे भगवान् विष्णुकी स्तुति कर ध्यान करने लगे। उसी समय उनके हृदयाकाशमें एक दिव्यवाणी सुनायी पड़ी। तदनुसार उन्होंने देवताओंसे कहा—हे देवगण आप सुनें ! भगवान्‌की आज्ञा है कि आप सब यहाँसे जाकर अपने-अपने अंशसे यदुकुलमें जन्म ग्रहण करें। पृथ्वीका भार उतारनेके लिये कंसके कारागारमें पहले शेषजी तदनन्तर भगवान् स्वयं अवतार ग्रहण करेंगे। उनकी शक्ति योगमाया भी यशोदाके गर्भसे कन्यारूपमें प्रकट होगी। ब्रह्माजी इस प्रकार देवताओंको आदेश और पृथ्वीको सान्त्वना देकर अपने धाम चले गये। उस समय यदुवंशी राजा शूरसेन मथुरा आदि देशोंका पालन करते थे। इसलिये, मथुरा ही समस्त यदुवंशी राजाओंकी प्रधान राजधानी थी। कुछ समय बाद, उग्रसेनके भाई देवकको कन्या देवकीका विवाह वसुदेवके साथ सम्पन्न हुआ। वे वधू ले जानेके लिये रथपर सवार हुए। अपनी बहनके प्रेमवश कंस स्वयं घोड़ोंकी लगाम पकड़कर रथ हाँकने लगा। देवकने

दहेजमें चार सौ हाथी, पन्द्रह हजार घोड़े, और नौ सौ अथवा अठारह सौ रथ दिये।

'[1]रथानां च त्रिषट्शतम्'

एवं सेवार्थं दो सौ दासियां भी दीं। वर-वधूकी विदाईके समय शंख, भेरी, मृदंग आदि बाजोंके साथ मांगलिक गान हो रहे थे। उसी समय घोड़ोंकी लगाम पकड़े कंसको मार्गमें सम्बोधितकर आकाशवाणी हुई, अरे मूर्ख ! तू जिसका रथ हाँक रहा है इसी देवकीका आठवाँ बालक तेरा वध करेगा।

अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध। ३४।

यह सुनते ही कंसने हाथमें तलवार उठा ली और बहनको मारनेके लिये उसकी चोटी पकड़ ली। यह देखकर वसुदेवने साम[2] और भेदके वचनों द्वारा उसे बहुत समझाया किन्तु जब वह किसी तरह न माना तब अन्तमें वसुदेवने कहा—राजन् ! इसमें घबरानेकी बात क्या है ? जिनसे तुम्हें भय है उन पुत्रोंको मैं तुम्हें दे दूँगा। इसपर प्रसन्न होकर कंसने देवकीको छोड़ दिया और स्वयं घर लौट आया। देवकी सहित वसुदेव भी अपने घर चले गये। समय आनेपर देवकीकी कुक्षिसे कीर्तिमान् नामक एक सुन्दर प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे वसुदेवने तुरंत ले जाकर कंसको दे दिया। कंस उनकी सत्यतापर विमुग्ध हो गया। उसने वह बालक लौटा दिया और कहा—मुझे अष्टम पुत्रसे भय है इससे नहीं। इसी समय देवर्षि नारदने आकर कंससे कहा—अरे मूर्ख ! वसुदेव और नन्दकुलमें देवताओंने जन्म ले रखा है, तू अपने शत्रुको छोड़ क्यों रहा है ? नारदने आठ रेखायें पृथ्वीमें खींचकर उसे समझाया और कहा—तू कहीं से गिन कर देख ले। प्रत्येक रेखा आठवीं हो जाती है। ऐसा करने पर कंसको विश्वास हो गया और उसने तुरंत वसुदेवके हाथसे बालकको लेकर उसे मार डाला। इस प्रकार, कंसने देवकीके छः पुत्र मार डाले एवं वसुदेव और देवकीके पैरों में बेड़ी डलवाकर उन्हें कारागारमें बन्द कर दिया। अपने पिता उग्रसेनकी भी उसने ऐसी ही दशा की और स्वयं बिना किसीके अभिषेक किये ही राजा बनकर शूरसेन आदि देशोंका पालन करने लगा।

---

१. त्रयश्च षट् त्रिषट् नव तानि शतानि यस्मिन् पारिबर्हे तम्। यद्वा त्रिगुणितानि षट् त्रिषट् अष्टादशशतानि तानि यस्मिन्।

२. साम सान्त्वनाप्रद वचन। 'मृत्युर्जन्मवतां वीर' इत्यादि। भेद भयोत्पादक-वचन। 'द्रोग्धुर्वै परतो भयम्' इत्यादि।

मैं पूर्वजन्ममें कालनेमि था। और विष्णुने मुझे मारा था। नारद द्वारा ऐसा ज्ञात होनेपर वह यदुवंशियोंसे घोर विरोध करने लगा।

यदुभिः स व्यरुध्यत। ६८।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका पहला अध्याय समाप्त।

दूसरा अध्याय

देवकीके गर्भमें स्थित भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः।
मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः॥ १॥
अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः।
यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः॥ २॥

बलवान् कंसने जरासन्धका आश्रय लेकर प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, (मल्ल) वृषभासुर, द्विविद (वानर) पूतना, केशि, गर्दभासुर और बाणासुर आदि राजाओं सहित यदुवंशियोंका दमन करना आरम्भ कर दिया। बेचारे यदुवंशी पीडित होकर कुरु, पञ्चाल आदि देशोंमें इधर-उधर जा छिपे। कुछ उसीकी हाँमें हाँ मिलाते उसकी सेवा और शुश्रूषा करने लगे। कंसने देवकीके जब छः पुत्र मार डाले तब सातवें गर्भ द्वारा शेषजी अवतीर्ण हुए। भगवान्ने अपनी योगमायाको आज्ञा दी कि तुम इस गर्भको यहाँसे निकालकर रोहिणीके उदरमें स्थापित करो और स्वयं नन्दपत्नी यशोदाके गर्भमें जाकर कन्यारूपसे प्रकट हो जाओ। अनन्तर मैं अपने पूर्णरूपसे देवकीका पुत्र हो जाऊँगा। संसारमें मनुष्य तुम्हारा दुर्गा, भद्रकाली आदि अनेक नामोंसे स्मरण करेंगे एवं तुम्हारे ही निमित्त उनके द्वारा अनेक स्थानोंका निर्माण भी होगा। तुम्हारी पूजा-स्तुति करनेवाले प्राणियोंको कोई भी वस्तु दुर्लभ न रहेगी। योगमायाने भी भगवान्की आज्ञा मान वह गर्भ खींचकर रोहिणीकी कोंखमें रख दिया। उस समय लोगोंको ऐसा भान हुआ कि दुष्ट कंसने ही यह गर्भ गिरवा दिया है। बादमें अष्टम पुत्रके रूपमें स्वयं भगवान् देवकीके गर्भमें आ गये। उनके आनेपर सम्पूर्ण कारागार अलौकिक तेजसे प्रकाशित हो उठा। जिससे

कंस भी समझ गया कि मेरा नाश करनेवाले हरि निश्चय ही इस गर्भमें आ गये हैं। उसे इच्छा तो हुई कि देवकीको मार डालूँ किन्तु गर्भिणीको मारनेपर लोग क्या कहेंगे ? सभी कोसेंगे, लोकमें बड़ा अपवाद होगा, आयु क्षीण हो जायगी और सारी कीर्ति धूलमें मिल जायगी, ऐसी ही अनेक चिन्ताएँ उसे इस कार्यसे विरत कर देती थीं। अन्तमें उसने यही निश्चय किया कि अष्टम गर्भके जन्मकी प्रतीक्षा करना ही उचित है, मारना ठीक नहीं। ऐसे ही नाना प्रकारके विचारोंसे वह चलते-फिरते, खाते-पीते, बैठते-सोते हर समय भयसे सर्वत्र भगवान्‌को ही देखता था। इधर ब्रह्मा आदि देवता गुप्तरूपसे कारागारमें आकर गर्भस्थ भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे। यह गर्भस्तुति नामसे कही जाती है। इसमें १६ श्लोक हैं जिनमें पहला श्लोक यह है—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्त्यस्य योनिं निहितं च सत्त्ये।[1]
सत्त्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥

हे भगवन्! आप सत्यसंकल्प हैं। आपकी प्राप्तिका साधन भी सत्य हैं। आप तीनों कालमें सत्य हैं। आप पञ्चभूतोंके कारण एवं उनसे रचित पाञ्चभौतिक शरीरोंमें भी निवास करते हैं। जगत्‌का प्रलय होनेपर भी आप शेष रहते हैं। आप धर्म एवं सत्यके प्रवर्तक हैं। हम सब सत्य-स्वरूप आपकी शरणमें हैं। आप हमारी रक्षा करें। हे भगवन्! इस प्रपञ्चरूप वृक्षकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण केवल एक आप ही हैं। आप ही नानारूप धारण कर भक्तोंका पालन करते हैं। जिसने श्रद्धा-भक्तिसे आपमें मन लगा दिया उसके लिए संसार गोपदके समान हो जाता है। ज्ञानके अहंकारमें जो भक्तिका अनादर करते हैं उनका जैसा अधःपतन होता है वैसा भक्तोंका नहीं होता। नैयायिक आदि कुछ विद्वान् 'बुद्ध्यादयः प्रकाशकसापेक्षा-जडत्वात् घटादिवत्' इत्यादि अनुमानों द्वारा आपकी सिद्धि करना चाहते हैं, पर उन्हें अनुभूति नहीं होती। वे केवल वाग्जालमें ही फँसे रह जाते हैं। इसलिये तर्क-वितर्क छोड़कर शुद्धचित्तसे आपके चरित्रोंका श्रवण-मनन और कीर्तन करना ही आपकी प्राप्तिका सुगम मार्ग है। हे भगवन्! आपने मत्स्य,

---

१. अस्मिन् पद्ये सत्त्यत्रयं तकारद्वयघटितम्। तस्योपपत्तिस्तु इत्थम्। सच्छब्देन पृथिव्यतेजांसि त्यच्छब्देन वाय्वाकाशौ सच्च त्यच्च अनयोः समाहारः सत्त्यं भूतपञ्चकं तस्य योनिं कारणम्। सत्त्ये पाञ्चभौतिके देहे निहितम् अन्तर्यामितया स्थितम्। सत्त्यस्य भूतपञ्चकस्य नाशेऽपि सत्यमवशिष्यमाणरूपम्।

हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, राम, परशुराम, वामन आदि रूपोंमें अवतार धारण कर जैसे पहले त्रिलोकीकी रक्षा की थी वैसे ही अब भी पृथ्वीका भार उतारकर हमारी रक्षा करें, आपको बारम्बार हमारा प्रणाम है। हे माता देवकी! तुम्हारे गर्भमें साक्षात् भगवान् विराजमान हैं। अब तुम्हें कंससे क्या भय है? ये तुम्हारे पुत्र होकर सब यदुवंशियोंकी रक्षा करेंगे और तुम्हें परम सुख प्रदान करेंगे। तुम चिन्ता न करो। हे राजन्! इस प्रकार गर्भस्थ भगवान्की स्तुति कर सब देवता ब्रह्मा और शिवको आगे कर अपने-अपने धामको चले गये।

ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम्। ४२।

इन दोनों को आगे करने का तात्पर्य यह है कि ये दोनों हम सब देवताओं में बड़े हैं और श्रेष्ठ हैं। दूसरी बात इनके यहाँ रहने पर यह संभव है कि भगवान् का कुछ और भी गुप्त रहस्य प्रकट हो जिसे हम न देख सकें और उससे वंचित रह जाँय।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका दूसरा अध्याय समाप्त।



तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव, उनका गोकुल गमन और वहाँसे कन्याका आनयन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान्के जन्मके समय परम शोभन काल स्वयं मूर्तिमान् होकर उनका स्वागत करने आ गया। उसने भगवान्के जन्म-कालके सभी गुण प्रकट कर दिये। सर्वत्र बड़े ही सुन्दर दृश्य दिखायी पड़ने लगे। रोहिणी नक्षत्रने आकर सभी वस्तुओंमें अलौकिकता उत्पन्न कर दी। ग्रह, नक्षत्र तारा सभी शान्तभावसे लग्नेशको देखने लगे। दिशाओंने वर्षामें शरद्गुण प्रकट कर दिये। आकाश मेघोंसे आच्छन्न हो गया। जिसमें रह-रहकर तारागण भगवान्की झाँकीके लिये मचलते थे। भगवान्की झाँकीका दिव्य-सौन्दर्य पान करनेमें मेघ और तारागणमें मानो होड़-सी लग गयी थी। मेघ तारागणको ढकता जाता और वे निकलते जाते। पृथ्वीकी प्रसन्नताका तो कहना ही क्या था? नगर और ग्रामोंमें नाना प्रकारकी सजावटें होने लगीं और

नाना प्रकारके मंगल गीत गाये जाने लगे। व्रजमें गौओंके थनोंसे दूध अपने आप टपकने लगा। जान पड़ता था कि पृथ्वी ही गौ बनकर दुग्धधारासे भगवान्का अभिषेक कर रही है। खानोंसे हीरा, पन्ना, मोती एवं जवाहरात स्वयं निकल पड़े। उनका यथेच्छ दान होने लगा। किसीको उनके लेनेमें रुकावट न थी। नदियाँ विमल जलसे और सरोवर सुन्दर कमलोंसे सुशोभित हो उठे। सोये हुए पक्षी एवं भ्रमरोंके कुल रात्रिमें जाग-जाग कर कलरव तथा गुञ्जारद्वारा भगवान्का स्वागत-गान करने लगे। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु वहने लगी। ब्राह्मणोंके यज्ञकुण्डोंकी शान्त अग्नि दक्षिणावर्त होकर स्वयं प्रज्वलित हो उठी। मालूम होता था कि द्वापरमें त्रेतायुग आ गया है। कंसको छोड़कर कोई ऐसा प्राणी न था जिसका मन प्रसन्न न हो गया हो। स्वर्गमें दुन्दुभियाँ वजने लगीं। सिद्ध, किन्नर, गन्धर्व एवं विद्याधर आदि गान करने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं। आकाशसे देवता पुष्पवृष्टि करने लगे। मेघ भी मन्द-मन्द गर्जना कर जलबिन्दुरूपी पुष्प बरसाने लगे।

निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः॥
आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः। ८।

ऐसी ही मांगलिक वेलामें अन्धकाराच्छन्न अर्द्धरात्रिके समय भाद्रकृष्ण-पक्षकी बुधयुक्त अष्टमी तिथिको चन्द्रोदय होनेपर भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य-मूर्ति धारणकर उसी प्रकार देवकीके गर्भसे प्रकट हो गये जैसे पूर्वदिशामें पूर्ण चन्द्रमाका उदय होता है। उनके तेजसे सारा सूतिकागृह प्रकाशित हो गया। यह वालक विलक्षण बालक था, जिसके चार भुजाएँ थीं, और उनमें शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पा रहे थे। वक्षःस्थल एवं ग्रीवामें श्रीवत्स[1] और कौस्तुभमणि सुशोभित थी। वे पीताम्बर धारण किये थे और मुकुट, कुण्डल आदि आभूषणोंकी दिव्य छटा उनके चारों ओर फैल रही थी। यह वालक वही था जिसके वालक ब्रह्माजी हुए थे। वालः को ब्रह्मा-अस्येति-'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्।' अथवा जिसके रोम-विवरोंमें कोटि-कोटि

---

१. दक्षिणावर्तरोमालिः श्रीवत्सं दक्षभागगम्।
वक्षसि भृगुपादांकं केश्चिच्छ्रीवत्समुच्यते॥
वत्सं प्रोक्तमुरो नाम श्री रमा प्रोच्यते मुने।
श्रिया युक्तं तु यदुरस्तच्छ्रीवत्समुदाहृतम्॥
(आदिपुराणीय वृन्दावनमाहात्म्ये)

ब्रह्माण्ड निवास करते हैं। 'बालेषु रोमविवरेषु कानि ब्रह्माण्डानि यस्य।' अथवा जिससे गोप-बालकोंको निरतिशय सुख होनेवाला है। 'बालानां गोप-बालकानां कं सुखं यस्मात्।' अथवा जो सबका चालन करता है। 'बालयति चालयति सर्वान् वातादीनिति बालः स एव बालकः' 'मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात्।' अथवा जिसके बड़े सुन्दर घुंघुराले केश हैं। 'वा वक्रा अलकाः केशा यस्य। ऐसा 'क' जलमें वटपत्रपर शयन करनेवाला यह अद्भुत बालक था।

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ।।९।।

इनकी सुन्दरता देखकर वसुदेवके नेत्र आनन्दाश्रुओंसे भर आये। शरीर-पर रोमाञ्च छा गये। उन्होंने कृष्णावतारके आनन्दोत्सवमें प्रसन्न हो मनसे दस हजार गौओंके दानका संकल्प किया और हाथ जोड़कर दस श्लोकों द्वारा स्तुति की। हे भगवन्! आप प्रकृति से परे हैं। आपका स्वरूप केवल आनन्दमय है जिसका अनुभव योगीजन समाधि में किया करते हैं। आप अपनी माया से जगत् की रचना कर उसमें प्रविष्ट होकर भी अप्रविष्ट के समान प्रतीत होते हैं क्योंकि आप कारण रूप हैं, किसी से परिच्छिन्न नहीं हो सकते। आप सृष्टि, पालन और संहार के हेतु-गुणानुसार ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र जैसे रूप धारण करते हैं। तदनुसार आप जगत् की रक्षा के लिये मेरे घर में अवतीर्ण हुए हैं। अब आपके द्वारा निश्चित ही पृथ्वी के भारभूत इस असुर सेना का संहार होगा। हे नाथ! इस क्रूर कंस ने आपके पूर्वज छः भाइयों को मार डाला है। उसके दूत चारों ओर लगे हैं। उनके द्वारा आपका जन्म सुनते ही वह तुरन्त शस्त्र लेकर मारने आ जायगा तब मैं क्या करूंगा? आप कृपया इसका उचित उपाय बतायें, मैं आपकी शरण में हूँ। इतना कहकर वसुदेव चुप हो गए और देवकी तुरन्त कंस से भयभीत हो हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगी। देवकी ने आठ श्लोकों से भगवान् की स्तुति की है--

वह कहती है-हे भगवन्! वेद जिस अनिर्वचनीय निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं, वह साक्षात् आप ही हैं। प्रलय में कालद्वारा जगत् का नाश होने पर भी जो शेष रहता है वह आप ही हैं। क्योंकि काल भी कोई अन्य वस्तु नहीं, वह आप की चेष्टा ही है। हे नाथ! इसी मृत्युरूपी कालसर्प के भय से मनुष्य इधर-उधर लोकों में भ्रमण करता हुआ निर्भय नहीं हो पाता, किन्तु यदि

कदाचित् यह आपके चरणों की शरण ले ले तो वह सदा सुख की नींद सोता है, उसे किसी प्रकार का भय नहीं रहता। यहाँ तक कि फिर उस प्राणी को देख कर मृत्यु ही भागने लगती है ऐसी आपकी अद्भुत महिमा है।

स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति।

हे भगवन्! आप भक्तभयहारी हैं। हम लोग इस क्रूर कंस से अत्यन्त भयभीत हैं आप हम सब की रक्षा करें। यह आपका चतुर्भुज रूप हृदय में धारण करने योग्य है। चर्मचक्षुओं के देखने लायक नहीं है अतः आप इस अलौकिक रूप को अन्तर्हित कर बालरूप धारण कर लें ऐसी मेरी प्रार्थना है। मैं आपके सुकोमल चरणों में बारम्बार प्रणाम करती हूँ। इतना कह कर देवकी भगवान् की अनुपम छवि निहारती हुई आनन्द-विभोर हो गयी।

भगवान्ने कहा—माता! पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरमें जब तुम पृश्नि एवं तुम्हारे पति सुतपा नामके थे, तब तुम लोगोंने बड़ा कष्ट सहकर दिव्य बारह हजार वर्षों तक मेरी तपस्या की थी और प्रसन्न होनेपर मुझसे पुत्र होनेका वर मांगा था। उस समय मैं पृश्निगर्भ नामसे तुम्हारा पुत्र हुआ और दूसरे जन्ममें, तुम दोनों अदिति एवं कश्यप हुए थे और मैं वामन हुआ था। इस तीसरे जन्ममें मैं फिर तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ। साधारण रूपसे तुम्हें मेरा ज्ञान होना कठिन था, इसलिये मैंने तुम्हें यह रूप दिखलाया है। यदि तुमको कंससे भय है, तो मुझे गोकुल ले चलो एवं वहाँ यशोदाके गर्भसे उत्पन्न कन्याको यहाँ ले आओ। यह कहकर भगवान् दोनोंके देखते-देखते साधारण बालक बन देवकीकी गोदमें आ गये और मन्द-मन्द मुसकाते हुए दूध पीने लगे।

पित्रोः संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः[1] शिशुः। ४६।

जिस समय वसुदेवने बालकको लेकर गोकुल जानेकी इच्छा की, उसी समय गोकुलमें नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे कन्यारूपमें योगमाया प्रकट हो गयी। उसके प्रभावसे कारागारके सब द्वारपाल सो गये। जब श्रीकृष्णको लेकर वसुदेव द्वारपर आये तब बड़े-बड़े कपाट तथा लोहे की शृङ्खलाओं से बन्द

---

१. प्रकर्षेण अकृतः प्राकृतः स्वभावसिद्धः। यद्वा प्रकृतेरयं प्राकृतः प्रकृति-प्रवर्तकः प्राकृतिकोऽपि शिशुवद्बभूवेति लुप्तोपमा ज्ञेयाऽत्र।

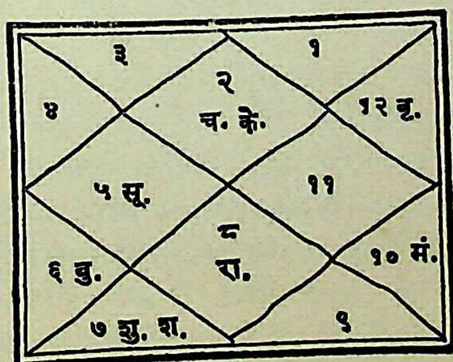
दरवाजे स्वयं खुल गये। उस समय मेघ मन्द-मन्द गर्जना कर बरस रहे थे। शेषजी अपने फणोंसे वर्षाका जल निवारण करते हुए अज्ञात रूपसे वसुदेव के पीछे-पीछे जा रहे थे।

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवेः।
ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन् फणैः ॥४६॥

यमुनाजी भगवान्को देखते ही प्रेमवश उमड़ पड़ीं। ये भगवान्के चरण-स्पर्श करना चाहती थीं। यह जान भगवान्ने अपने पैर धीरे से नीचे लटका दिये। जिन्हें छूकर वे तुरन्त घट गयीं और वसुदेवको गोकुल जानेका मार्ग दे दिया। वसुदेव निर्विघ्न गोकुल पहुँच गये। वहाँ सब गोप सो रहे थे। उन्होंने चुपचाप यशोदाकी शय्यापर कृष्णजीको सुला दिया और यशोदाकी शय्यापर सोई हुई कन्याको लेकर पुनः मथुरा लौट आये। जब वसुदेव ने देवकी की शय्या पर कन्या को सुला दिया और स्वयं अपने पैरोंमें बेड़ी पहनकर बैठ गये तब सभी दरवाजे पुनः पूर्ववत् बन्द हो गये।

प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥५२॥
उच्चस्थाः शशिभौमचान्द्रिशनयो लग्नं वृषो लाभगो
जीवः सिंहतुलालिषु क्रमवशात् पूषा शनी राहुकः।
नैशीथः समयोऽष्टमी बुधदिनं ब्रह्मर्क्षमत्र क्षणे
श्रीकृष्णाभिधमम्बुजेक्षणमभूदाविः परं ब्रह्म तत् ॥

भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मकुण्डली



इसका फल

इस लग्नका उत्पन्न बालक ब्रह्मका अवतार हो।
कर पूर्ण सबकी कामनाएँ लोकका सरदार हो॥
इसका करे जो ध्यान उसके कल्मषोंका नास हो।
यमराजको भी जीतकर गोलोक उसका वास हो॥
वर्णन सके कर कौन महिमा शब्दमें इस बाल की।
श्रुति नेति-नेति पुकारती पाती न गति व्रजलाल की॥
सब ऋद्धि-सिद्धि सुरेश तक इनके बँधे यश में रहें।
ये भक्तवत्सल सर्वदा निज भक्तके वश में रहें॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका तीसरा अध्याय समाप्त।

सप्ताहके चतुर्थ दिनकी कथा समाप्त। (अ० सं० ५१)



सप्ताहके पञ्चम दिनकी कथा

रुक्मिण्युद्वाहपर्यन्तं पञ्चमेऽह्नि वदेत् सुधीः

(दशम स्कन्धके चौथे अध्यायसे ५४ वें अध्याय तक)

चौथा अध्याय

कंसके नाशकी भूमिका एवं गौ और ब्राह्मणोंपर उसका अत्याचार

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ।
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥

सभी दरवाजोंके बन्द होजानेपर कन्याने आते ही रोना आरम्भकर दिया । उसके रोनेका शब्द सुनते ही द्वारपाल जग उठे और उन्होंने जल्दीसे जाकर कंसको आठवें पुत्रके जन्मकी सूचना दे दी। कंस तुरन्त शय्यासे उठकर नंगे पैर ठोकरें खाता हुआ सूतिका घरमें जा पहुँचा। देवकीने बड़ी दीनतासे कहा— भैया ! यह तुम्हारी भान्जी पुत्रवधूके समान पोष्य है; इससे तुम्हारा क्या अनिष्ट हो सकेगा, इसे मत मारो । तुमने मेरे बहुतसे सुन्दर पुत्र मार डाले हैं । इस कन्याको तो मुझे दे दो । यह कहकर वह कन्याको गोदमें चिपटा कर रोने लगी । किन्तु दुरात्मा क्रूर कंसने उसे घुड़की देकर कन्याको बल पूर्वक छीन लिया और दोनों पैर पकड़कर उसे पत्थरपर दे पटका । किन्तु पटकते ही वह कन्या उसके हाथसे छूटकर आकाशमें उछलकर चली गयी और दिव्यरूप धारणकर अष्टभुजी देवी के रूपमें प्रकट हो गयी । उस समय सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर आदि उसकी स्तुति करने लगे। उसने कंसको सम्बोधित करके कहा--अरे दुष्ट कंस ! मुझे मारनेसे तुझे क्या लाभ ? तेरा नाश करनेवाला शत्रु तो जहाँ कहीं पैदा हो चुका है। अब तू व्यर्थं निर्दोष बालकोंको मारनेकी चेष्टा न कर। यह कहकर योगमाया अदृश्य हो विन्ध्याचल आदि नाना स्थानोंमें नाना नामरूप धारण कर विराजमान हो गयीं। कंस उस कन्याके ये वचन सुनकर आश्चर्यसे चकित रह गया और उसने बहन और बहनोईके पैरोंकी बेड़ियाँ खोल दीं तथा उन दोनोंके चरण पकड़कर विनीत भावसे क्षमायाचना करता हुआ बोला—बहन ! मैं बड़ा ही पापी हूँ । मैंने राक्षसोंकी तरह तुम्हारे बहुतसे पुत्र मार डाले । इस महापापसे न जाने मैं किस लोकमें

जाऊँगा और मेरी क्या गति होगी ? क्या कहूँ देवता भी झूठ बोलते हैं, जिनके विश्वासमें पड़कर मैंने ऐसे कुकर्म किये। अच्छा, अब जो होना था; वह तो हो चुका। आप इसके लिये शोक न करें। कारण, सभी प्राणी अपने-अपने किये कर्मोंका ही फल भोगते हैं। हो सकता है इनके भाग्यमें ऐसा ही लिखा था।

मानुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥२१॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन् ! यह सुनकर देवकीका क्रोध शान्त हो गया। कंस उनकी आज्ञा लेकर अपने राजभवनमें लौट आया और वे दोनों अपने घर चले गये। रात्रि व्यतीत होते ही कंसने प्रातःकाल मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे कन्याका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। मन्त्रियोंने कहा—राजेन्द्र ! आप चिन्ता न करें। हम दस दिनोंके अन्दर तकके और बादके उत्पन्न सभी बालकोंको मारे देते हैं। उन्हींमें आपका शत्रु भी मारा जायगा। बालकोंका वध देख इन्द्र आदि देवता भी आपका कुछ नहीं कर सकते। वे तो आपके धनुषकी टंकार सुनते ही रण छोड़कर भाग जाते हैं। कुछ तो देवता भयभीत हो कांच (कच्छ) और चोटी खोल हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। जीवन दानकी प्रार्थना करते हैं किन्तु आप उन्हें नहीं मारते फिर भी शत्रुओंकी उपेक्षा करना उचित नहीं। समस्त देवताओंके मूलभूत भगवान् विष्णु हैं और उनके भी मूल वेद, ब्राह्मण और गौ हैं। आपकी आज्ञा हो तो हम अब इन्हींका विनाश करना आरम्भ कर दें। इसीसे विष्णुका वध स्वयं ही हो जायगा। फिर, आप निष्कण्टक राज्य करें। हे राजन् ! कंस दुर्मन्त्रियोंका यह प्रस्ताव सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसनें उन्हें उनके नाश करनेकी आज्ञा दे दी। हे राजन् ! जिसके सिरपर काल आ जाता है, वही गौ वेद ब्राह्मण और धर्म के नाश की योजना बनाता है। ठीक ही कहा है कि—

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥४६॥

जो मनुष्य पूज्य जनोंका अपराध या अपमान करता है वह किया हुआ अपमान उस पुरुषकी आयु, सम्पत्ति; कीर्ति, पुण्य, स्वर्ग आदि लोक तथा पुत्र-पौत्रादिकी अभिलाषाएँ तथा और भी जो सुख के साधन हैं उन सभीका नाश कर डालता है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका चौथा अध्याय समाप्त।



पांचवां अध्याय

भगवान्‌का जातकर्म संस्कार एवं मथुरामें नन्द और वसुदेवका परस्पर मिलन

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! बलरामजी तो पहले ही योगमाया द्वारा रोहिणीके उदरमें आकर उनके पुत्र हो चुके थे। अब भगवान् श्रीकृष्ण भी यहाँ बालक रूपमें उत्पन्न हो गये। नन्दजी पुत्रजन्मका समाचार सुनते ही आनन्दमग्न हो गये। उन्होंने तुरत कर्मकाण्डी वैदिक ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचनपूर्वक बालकका जातकर्म संस्कार कराया। नन्दजीका चित्त बड़ा ही उदार था। उन्होंने दो लाख ब्राह्मणोंको आमन्त्रित कर उन्हें एक-एक गौ और सात-सात तिलोंके पर्वत बनाकर दान दिये। वे पर्वत नाना प्रकारके रत्न एवं सुनहरे दुपट्टोंसे ढके थे। जैसे आत्मा जीवात्माकी शुद्धि आत्मविद्या अध्यात्मविचारसे होती है वैसे ही द्रव्योंकी शुद्धि दान करनेसे होती है। इसी प्रसंगमें अन्य द्रव्योंकी भी शुद्धि समझ लेनी चाहिये।

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया।
शुद्ध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया॥ ४॥

जैसे कालसे अशुद्ध भूमि आदि की, स्नानसे देहादिकी; शौच प्रक्षालनसे वस्त्रादिकी, संस्कार पुंसवन आदि से गर्भादिकी, तपसे इन्द्रियादिकी, इज्या = यागादिसे ब्राह्मणादिकी, दानसे धनधान्यादिकी, सन्तोषसे मनकी और आत्माकी शुद्धि आत्मविद्यासे होती है उसी प्रकार द्रव्यकी शुद्धि दानसे होती है जिस द्रव्यका दान नहीं किया जाता वह द्रव्य विष्ठाके समान बताया गया है।

यतो दानं न जायेत तद् द्रव्यं मलवत् स्मृतम्॥ स्मृति॥

जो दान नहीं करता वह पापी पुरुष नरकयातनाएं भोगकर जन्म-जन्मान्तरमें दरिद्र होता है। व्यासजीने कृपण और दाताओंको दो श्रेणियोंमें विभक्त किया है। उनकी स्पष्ट घोषणा है—

अदत्तदानादभवद्दरिद्रो दरिद्रभावात् प्रकरोति पापम्।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥

दान न करनेवाला मनुष्य दरिद्र होता है। दरिद्र होनेसे वह पाप करता है। पापके कारण नरकमें जाता है। इस प्रकार वह बार-बार दरिद्र व पापी होता रहता है।

सत्पात्रदानाच्च भवेद्धनाढ्यो धनाढ्यभावाच्च करोति पुण्यम् ।
पुण्यप्रभावात् त्रिदिवं प्रयाति पुनर्धनाढ्यः पुनरेव दाता ।।

सत्पात्रमें दान करने वाला मनुष्य इस लोकमें धनाढ्य होता है । धनाढ्य होनेपर वह पुण्य करता है, पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें जाता है । वहाँ नाना-प्रकारके दिव्यभोगोंका उपभोगकर फिर धनाढ्यके घरमें जन्म लेता है । इस प्रकार वह बरावर धनाढ्य व पुण्यात्मा होता रहता है । अतः प्रत्येक प्राणीको कुछ न कुछ थोड़ा बहुत यथाशक्ति दान अवश्य करना चाहिए और कलिमें तो विशेषकर दानकी ही प्रधानता दी गयी है ।

'दानमेकं कलौ युगे' ।

कुछ श्रीमदान्ध लोगोंका स्वभाव है कि वे याचकको देखते ही जल-भुन जाते हैं । वे यह विचार नहीं कर पाते कि ये याचक बने कैसे ? जो मनुष्य कभी दान नहीं करता वही याचक बन घर-घर मारा-मारा फिरता है ? याद रखें याचक माँगने नहीं आते, वे तो आपको शिक्षा देनें आते हैं कि सबको प्रतिदिन यथाशक्ति दान करना चाहिये जो दान नहीं करते उनकी गति ऐसी ही होती है । वे हमारी तरह इधर-उधर एक-एक दाने के लिये हाथ फैलाते फिरते हैं ।

याचका नैव याचन्ते बोधयन्ति गृहे गृहे ।
दीयतां दीयतां नित्यमदातुर्गतिरीदृशी ।।

नन्दजीने दिल खोलकर खूब श्रद्धासे दान किया । सर्वत्र गोकुलमें महोत्सव हो रहे थे । वन्दीगणोंने स्तुति-पाठ किया । ब्राह्मणोंने बालकको नाना प्रकारसे आशीर्वाद दिये । गोकुलके चारों ओर गान-वाद्यकी ध्वनियाँ गूँज रहीं थीं । स्वच्छ घरों, दरवाजों और सड़कोंपर इत्र और केवड़ेका जल छिड़काया गया और सभी स्थान ध्वजा, पताका, झण्डी वन्दनवार आदिसे अलंकृत किये गये । गौ, साँड़, बछड़े एवं बछड़ियाँ हरिद्रामिश्रित तैलसे रंगी गयीं । हे राजन् ! गोपगण भी रंग-विरंगे वस्त्र, आभूषण एवं पगड़ी-जामा पहनकर बहुत-सी भेंट हाथोंमें लिये नन्दजीके राजभवनमें आने लगे । यशोदाके घर पुत्रका जन्म सुन गोपियाँ भी सुन्दर श्रृंगारकर थालोंमें नाना प्रकारकी वस्तुएँ भर कर चल दीं । कुछ स्थूलकाय गोपियाँ, जो पैरोंसे जल्दी नहीं चल सकती थीं, वे मनसे ही दौड़ लगा रही थीं । नन्दजीके भवनमें पहुँचनेपर सबने बालकको 'चिरंजीवी' कह कहकर आशीर्वाद दिये और नाना प्रकारके बाजे बजाकर मंगल गान किये । गोप लोग आनन्दके आवेशमें आकर परस्पर एक-

दूसरेके मुखमें मक्खनका लेप करते घी-दूधकी पिचकारियाँ छोड़ते दही उछालने लगे। नन्दजीके नौ भाइयोंपर दूध-दहीकी बौछारें पड़ने लगीं।

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥ १४ ॥

चारों ओर आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा। कोई भी याचक वहाँसे विमुख हीं नजा पाता था। रोहिणीजी सुन्दर शृंगार कर घूम-घूमकर स्वयं सबकी देख-रेख कर रही थीं। जबसे भगवान् गोकुलमें पधारे तभीसे लक्ष्मीजीने भी ऋद्धि-सिद्धि सहित वहीं डेरा डाल दिया। गोकुल ही उनका क्रीडाभवन वन गया था।

हे राजन्! एक दिन नन्दजी कंसका वार्षिक कर देने मथुरा गये। यह समाचार सुनकर वसुदेवजी नन्दजीसे मिलने उनके डेरेपर गये। वसुदेवको देखते ही नन्दजीने उठकर बड़े प्रेमसे उनसे भेंट की। वसुदेवने कहा—भैया! आज वहुत दिनोंमें आपका दर्शन हुआ। इस ढलती अवस्थामें आपके पुत्र होनेसे बड़ा ही आनन्द हुआ है। अच्छा अब यह तो वतलायें कि जिस वनमें आप सपरिवार निवास करते हैं उस वनमें कोई रोग तो नहीं लगा है। पशुओंको हितकारक सामग्री घास-भूसा जल आदि पूरी मात्रामें मिल रही है या नहीं? नन्दजीने कहा—भैया वसुदेव! लालाकी कृपासे सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छाया है। कोई कष्ट नहीं। दुःख तो केवल आपका है जो देखा नहीं जाता। क्या कहें, दुष्ट कंसने आपके बहुतसे पुत्र मार डाले। अन्तमें एक कन्या बची थी उसे भी उसने नहीं छोड़ा। अच्छा, कोई चिन्ता न करें। यह सब भाग्यका खेल है। विधिका विधान कोई टाल नहीं सकता।

वसुदेवजीने कहा—मित्र! तुमने जो कुछ कहा वह सब ठीक ही है। इसमें सन्देह नहीं किन्तु एक मेरी प्रार्थना है। अब तुमको शीघ्र ही यहाँसे चले जाना चाहिए। यहाँ अधिक दिनों तक रहना उचित न होगा क्योंकि गोकुलमें उत्पात हो रहे हैं और आगे भी होनेकी आशंका है।

नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥३१॥

हे राजन्! वसुदेवजीके वचन सुनकर नन्दजीने कहा—अच्छा भैया, मैं जाता हूँ। इतना कह वे तुरन्त गाड़ी जोतकर गोकुल चल दिये और वसुदेवजी भी अपने स्थानपर लौट आये।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका पाँचवाँ अध्याय समाप्त।

२

छठा अध्याय

भगवान्‌की बाललीलामें सर्वप्रथम पूतनाका मोक्ष

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन्।
हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥१॥

नन्दजी वसुदेवके वचनपर विश्वास कर उत्पातोंकी आशंकासे भगवान्‌का ध्यान करते गोकुल चल दिये। कंसने बालघातिनी पूतना नामकी एक विकराल राक्षसीको गोकुल भेज दिया। वह बालकोंको मारती इधर-उधर घूमती एक दिन अपनी मायासे अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण कर गोकुलमें प्रविष्ट हुई। वस्त्र, आभूषण और चमेलीके पुष्पोंसे उसने ऐसा अद्‌भुत शृंगार किया था मानो वह साक्षात् लक्ष्मी हो। एक हाथमें वह कमल भी लिये थी। उसने अपनी मन्द-मुस्कान एवं कटाक्षपातोंसे सबको मोहित कर लिया। उसे देख सब गोपियोंको ऐसा जान पड़ा मानो अपने पतिदेवका दर्शन करने साक्षात् महालक्ष्मीजी ही पधारी हों। किसीने उसे रोका तक नहीं और वह सीधे नन्दजीके अन्तःपुरमें चली गयी। वहाँ उसने दिव्य शय्यापर लेटे हुए एक विलक्षण बालकको देखा। भगवान्‌ने भी उसे देखा और बालघाती ग्रह जानकर अपने नेत्रकमल बन्द कर लिये।

चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः ॥८॥

पूतनाने धीरेसे भगवान्‌को उठाकर गोदमें बैठा लिया। भगवान्‌के नेत्र बन्द करनेके भाव मनीषियोंने इस प्रकार बतलाये हैं—पहला भाव—भगवान्‌ने सोचा, नेत्र मिलनेसे प्रीति हो जाती है। 'प्रीतिर्नयनयोगतः'। फिर प्रेमीका अनिष्ट करना अनुचित मित्रद्रोह होगा। इसलिये भगवान्‌ने नेत्र बन्द कर लिये। दूसरा भाव—विषपान करने पर शिवको जैसे विषका प्रभाव नहीं व्यापा, वैसे मुझे भी न व्यापे, यह सोच नेत्र बन्दकर अपने परम मित्र भगवान् शिवका ध्यान करने लगे। तीसरा भाव—भगवान्‌ने विचार किया कि दर्शन तो अच्छी वस्तुका किया जाता है। यह बालघातिनी दुष्ट राक्षसी दर्शन योग्य नहीं। चौथा भाव—अपने बाल्यकालकी सार्थकता करनेमें भीरुत्व-ज्ञापनके लिये भगवान्‌ने नेत्र बन्द कर लिये। पांचवां भाव—मेरी दृष्टि स्वभावतः राक्षसोंको भय उत्पन्न करनेवाली है, कहीं मेरी दृष्टि पड़ते ही यह भाग न जाय, इसलिये भी नेत्र बन्द कर लिये। छठा भाव—यह माताका भाव

प्रदर्शन कर दूध पिलाने आयी है और माताको मारनेमें लज्जा उत्पन्न हो सकती है वह न हो, इसलिये भी भगवान्‌ने नेत्र बन्द कर लिये।

'मातृभावदर्शिकायास्तस्याः स्वकर्तृकवधे लज्जानुत्पत्त्यै, इति विश्वनाथः।'

यहाँ श्रोताओंके मनोरञ्जनार्थं संक्षेपमें कुछ भावोंका प्रदर्शन किया गया है।

रोहिणी और यशोदा उस सुन्दरीको केवल खड़ी-खड़ी देखती ही रहीं, उसे रोकनेका साहस न कर सकीं। पूतना म्यानमें बन्द तलवारके समान तीक्ष्ण चित्तवाली थी। उसने भयंकर विष लगा हुआ अपना स्तन नन्दलालाके मुखमें दे दिया। लालाको इसपर कुछ रोष-सा हो आया और वे बोले कहाँ मैं दूध-दही-मक्खन आदि अच्छे-अच्छे मीठे पदार्थ खाता हूँ और कहाँ यह दुष्टा राक्षसी मुझे विष पिलाने आयी है। ऐसा मन ही मन विचार कर उन्होंने दोनों हाथोंसे कस कर उसका स्तन पकड़ ऐसा दूध पिया कि उसके प्राण ही खिंचने लगे और वह बड़े जोरोंसे चिल्ला उठी—

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥११॥

अरे पूत ना, पूत-ना, छोड़-छोड़, बस-बस! इस प्रकार बिलखती मर्मपीडित पूतना हाथ-पैर पृथ्वीपर पटकती चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी। इसी कारण वह पूतना इस काल्पनिक नामसे कही जाने लगी। उसके भीषण शब्दसे पर्वतोंसहित पृथ्वी और नक्षत्रोंसहित आकाश-मण्डलतक कम्पित हो उठा। पाताल एवं दिशाएँ भी गूँज उठीं। गोप और गोपियाँ मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं। वेदनासे पूतनाके नेत्र बाहर निकल पड़े और छटपटाकर उसके प्राणपखेरू उड़ गये। इस दशामें वह भयंकर राक्षसीका रूप धारणकर धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसकी छः कोस लम्बी विशाल काया छटपटाती हुई ग्रामके बाहर जाकर छः कोसके लम्बे कंसके बगीचेमें गिरी जिससे वहाँके सब वृक्ष धराशायी हो चूर्ण-चूर्ण हो गये। गोपियोंने दौड़कर उसके वक्षःस्थलपर खेलते हुए नन्दलालाको उठा लिया और स्वयं अंगन्यास करन्यास कर भगवान्‌के द्वादश नामोंके द्वारा नन्दलालाके सब अंगोंकी रक्षा की। पुनः—

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥२४॥

इत्यादि मन्त्रोंसे झारकर भूत-प्रेत पिशाच तथा बालग्रहोंसे भी लालाकी रक्षा की। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार रक्षाविधि पूर्णकर यशोदाने

दूध पिलाकर लालाको धीरेसे शय्यापर सुला दिया। जब नन्द आदि गोप मथुरासे लौटकर गोकुल आये तब वहाँ पूतनाका विशाल शरीर देखकर चकित रह गये और बोले—अरे यह क्या ? वसुदेवजीने जो कहा था वह सत्य ही हो गया। अनन्तर गोपोंने फरसेसे पूतनाके अंग-अंग काटकर अलग-अलग चिता बना उन्हें जला दिया। चिताके धुएँकी दिव्य सुगन्धिसे सारा गोकुल सुवासित हो उठा। हे राजन् ! इस बालघातिनी राक्षसी पूतनाने मारनेकी इच्छासे भगवान्‌को विष पिलाकर भी माताकी गति (मुक्ति) प्राप्त कर ली, फिर जो श्रद्धा और भक्तिपूर्वक भगवान्‌को प्रिय वस्तुएँ भेंट करते हैं, उनकी सद्‌गति हो इसमें तो कहना ही क्या है ? अनन्तर नन्दजीने लालाको गोदमें उठाकर उसका मस्तक सूँघा उससे उन्हें बड़ा आनन्द मिला। हे राजन् ! इस प्रकार हमने संक्षेपसे पूतनाकी सद्‌गतिका वर्णन किया। जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे भगवान्‌के इस अद्‌भुत बालचरित्र (पूतनामोक्ष) का श्रवण करता है उसका श्रीकृष्णमें अवश्य ही अनुराग हो जाता है। गोविन्दे लभते रतिम् ॥४४॥

पूतनाका पूर्वजन्म

यह पूतना पूर्वजन्ममें राजा बलिकी रत्नमाला नामकी कन्या थी जिसने वामनके सौन्दर्यपर मुग्ध हो पुत्र-स्नेह प्रकट किया था और वह उन्हें वक्षःस्थलपर बैठाकर दूध पिलाना चाहती थी। भगवान्‌ने उसका सत्संकल्प जानकर उसका मनोरथ पूर्ण करनेका मनसे वरदान दिया और उसे इस प्रकार पूर्ण किया। धन्य है भगवान्‌की दयालुता।

बलेः परमभक्तस्य सुतायै वामनो हरिः।
मनोरथस्तु ते भूयान्मनस्यपि वरं ददौ ॥*(गर्ग०गोलो० १३।३२।)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका छठा अध्याय समाप्त।



---

* आनन्द रामायणके अनुसार सीताजीका निन्दक रजक तथा कैकेयीकी दासी मन्थरा यह दोनों ही कृष्णावतारमें वह रजक-रजक हुआ और मन्थरा पूतना हुई। पूर्वजन्मके वैरके कारण ये दोनों ही कृष्णके द्वारा मारे गये।

* आदिपुराणके अनुसार यह पूतना पूर्व जन्ममें कालभीरुनामक ऋषिकी कन्या चारुमती थी और महर्षि कक्षीवान्‌की पत्नी थीं। पतिके परदेश जानेपर उसका एक शूद्रसे अनुचित सम्बन्ध हो गया था। इसपर क्रुद्ध हो महर्षिने उसे राक्षसी होनेका शाप दिया और कहा—द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्ण तेरा उद्धार करेंगे।

सातवाँ अध्याय

शकटासुर और तृणावर्तको मुक्तिप्रदान एवं माताको विश्वरूपका दर्शन

राजा परीक्षित्ने कहा—हे ब्रह्मन् ! भगवान्ने विविध अवतार धारणकर मनुष्योंके कर्णप्रिय जो नाना प्रकारके चरित्र किये हैं जिनके श्रवणसे तृष्णाकी निवृत्ति, अन्तःकरणकी शुद्धि तथा भगवान्में भक्ति होती है, वही हरिका मंगलमय चरित्र आप सुनानेकी कृपा करें। शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! एक दिन नन्दजीके राजभवनमें भगवान्के अंगपरिवर्तन एवं जन्मनक्षत्रके उपलक्ष्यमें महोत्सव हो रहा था। उसमें गोकुलकी बहुत-सी स्त्रियाँ एकत्र हो गाना-बजाना कर रही थीं। यशोदाने उन सबके बीच अपने लालाका अभिषेक कराया। ब्राह्मणोंने स्वस्तिवाचन किया। नन्दजीने उन्हें विपुल दक्षिणा सहित नाना प्रकारकी वस्तुएँ भेंट कीं। इसी समय लालाके नेत्रोंमें कुछ झपकी-सी आने लगी। यह देख यशोदाने शकटके नीचे ही झूलेपर लालाको धीरेसे सुला दिया।

संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥५॥

उसी समय कंस द्वारा प्रेषित एक असुर पात्रोंसे लदी उस गाड़ीमें आ घुसा। वह भगवान्को मारनेकी इच्छासे बोझ द्वारा गाड़ीके पहियोंको पृथ्वीमें धँसाने लगा। इसी बीच लाला दूध पीनेकी इच्छासे रोने लगे। किन्तु यशोदा आगन्तुकोंके स्वागत सत्कारमें इतनी व्यस्त थी कि उसने लालाका रोना नहीं सुना। नन्दलाला ऊपरको अपने हाथ-पैर फेंकते हुए रोते रहे। शकटमें प्रविष्ट असुरने बड़े वेगसे ज्योंही गाड़ीको नीचे दबाया कि भगवान्ने अपना छोटा सा पैर शकटमें ऐसा मारा कि वह विशाल शकट भयंकर शब्द करता उछलकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और उसके धुरी, पहिये आदि सभी अवयव चकनाचूर हो गये। वह असुर भी उसी गाड़ीके नीचे दबकर तत्काल मर गया। नन्द आदि गोप एवं गोपियाँ यह घटना देखकर चकित रह गयीं। सभी गोप घबराकर आपसमें कहने लगे आखिर यह विशाल शकट उलट कैसे गया ? खेलते हुए बालकोंने कहा—अरे नन्द बाबा ! अरी मैया यशोदा ! तेरे लालाने ही तो रोते-रोते पैरसे यह शकट उलट दिया है। हमने देखा है तुम्हें इसका पता नहीं।

रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ६ ॥

किन्तु, गोपोंने बालकोंके वचनोंपर विश्वास नहीं किया, कारण वे लालाके असीम बलको तो जानते न थे। ग्रहोंसे आशंकित यशोदाने जल्दीसे दौड़कर रोते हुए लालाको गोदमें उठा लिया और ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर उसे दूध पिलाने लगी। अनन्तर यशोदाने ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके पकवान खिलाकर तृप्त किया। प्रसन्न हो ब्राह्मणोंने लालाको भूरि-भूरि आशीर्वाद दिये वे कभी निष्फल नहीं हुए। एकदिन यशोदा लालाको गोदमें बैठाकर प्यार कर रही थी। उसी समय लालामें न जाने कहाँसे इतना भारीपन आ गया कि वह उन्हें गोदमें बैठा न सकी। घबराकर तुरंत लालाको पृथ्वीपर बैठाकर वह घरके अन्य काम-काजोंमें लग गयी। इसी समय दैवयोगसे भयंकर आँधी आयी। कंस द्वारा भेजे गये तृणावर्त नामक दैत्यने वायुके रूपमें धूलिसे सम्पूर्ण गोकुलको आच्छादित कर दिया। कोई भी किसीको देख नहीं पाता था। मौका पाकर वह राक्षस लालाको उठाकर आकाशमें ले गया और वहींसे उसने उन्हें नीचे गिरा देना चाहा। पर लाला उसका गला पकड़कर ऐसे लटक गये और इतने भारी हो गये कि दैत्य न तो एक पग आगे बढ़ सका और न अपनेको छुड़ा ही सका। गला कसकर दबानेसे उसके प्राण ही निकल गये और वह विकराल शब्द करता हुआ धड़ामसे पत्थरकी एक चट्टानपर गिर पड़ा। उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो गये। लाला उसके वक्षःस्थलपर पड़े-पड़े खेलते रहे। यह देखकर गोप और गोपियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। गोपियोंने वहाँसे लालाको तुरन्त उठाकर यशोदाको दे दिया और वे प्रसन्न मनसे लालाको दूध पिलाने लगीं। दूध पी लेनेपर लालाको जँभाई आ गयी। यशोदाने लालाके खुले हुए मुखमें आकाश, द्यावाभूमि, नक्षत्रमण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, वन, स्थावर जंगम प्राणी यहाँ तक कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको देखा।

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च।
द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥३६॥

यह अद्भुत दृश्य देख वह चकित रह गयी और नेत्र बन्दकर अपने कुलदेवता श्रीनारायणका स्मरण करने लगी। नारायण, नारायण, न जाने मेरे लालाको क्या हो गया। कहीं कोई असुर तो इसके मुखमें नहीं घुस गया। रक्षा करो, रक्षा करो, इतना कहते ही वह झांकी तुरत अदृश्य हो गयी। यशोदा स्वस्थ हो लालाका मुँह चूमने लगी।

शकटासुर और तृणावर्तका पूर्वजन्म

यह शकटासुर हिरण्याक्षका पुत्र उत्कच नामका दैत्य था। उसने महर्षि लोमश मुनिके आश्रममें जाकर वहाँके वृक्षोंको चूर्ण कर डाला। विशालकाय महाबली उस दैत्यकी इस उद्दण्डतासे क्रुद्ध हो मुनिने उसे शाप दिया। जा, तेरा शरीरपात हो जाय। यह सुन वह मुनिके चरणों पर गिर पड़ा और उसने अपने अपराधकी क्षमा याचना की। दयालु मुनिने कहा—तेरा वायवीय शरीर होगा और वैवस्वतमन्वन्तरमें भगवान्के चरणस्पर्शसे तेरी मुक्ति होगी।

वातदेहस्तु ते भूयाद् व्यतीते चाक्षुषान्तरे।
वैवस्वतान्तरे मुक्तिर्भविता च पदा हरेः॥

(गर्गसंहिता गो० खं० १४।२३।)

तृणावर्त पाण्डयदेशका प्रभावशाली राजा सहस्राक्ष था। एक समय वह गन्धमादन पर्वतपर स्त्रियोंके साथ विहार कर रहा था। दैवयोगसे वहीं महाक्रोधी दुर्वासा मुनि आ पहुँचे। उसने अभ्युत्थान-प्रणाम आदिसे उनका उचित सत्कार नहीं किया। इसपर क्रुद्ध हो दुर्वासाने उसे शाप दिया—जा तू असुर हो जा। प्रार्थना करने पर मुनिने कहा—द्वापर में भगवान् तेरा उद्धार करेंगे।

दृष्ट्वा चुकोप नृपतिं शशाप स्फुरिताधरः।
असुरो भव पापिष्ठ योगाद् भ्रष्टो भुवं व्रज॥

(ब्रह्मवैवर्त पु०)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका सातवाँ अध्याय समाप्त।

आठवाँ अध्याय

भगवान्का नामकरण संस्कार, माखन-चोरी तथा मृद्भक्षण-लीला

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः॥१॥

यदुवंशियोंके पुरोहित महान् तपस्वी गर्गाचार्यजी वसुदेवकी प्रेरणासे गोकुलमें नन्दजीके राजभवनमें गये। नन्दजीने बड़े आदर-सत्कारसे उनका पूजन कर बालकोंके नाम-करणकी प्रार्थना की। गर्गजीने कहा—मैं यदुवंशियों का आचार्य हूँ, यह बात संसारमें प्रसिद्ध है। मेरे द्वारा संस्कार किये जानेपर कंस ने तुम्हारे पुत्रको यदि कहीं देवकीका पुत्र समझ लिया और वह मारने आ गया तो बड़ा अनर्थ होगा। इसपर विचार कर लो। नन्दजीने कहा—आप इसकी चिन्ता न करें। एकान्तमें चुपचाप दोनों बालकोंका नामकरण-संस्कार कर दें जिससे कंस तक यह समाचार न जाने पावे। गर्गजीको यह अभीष्ट ही था। उन्होंने स्वस्तिवाचन करके ज्येष्ठ पुत्रके तीन नाम राम, बल और संकर्षण रखे। सबको आनन्द देनेके कारण राम[1] बलमें सबसे अधिक होनेके कारण [2]बल तथा सब यदुवंशियोंमें एकता रखनेके कारण संकर्षण[3] तथा तुम्हारे इस छोटे लालाके वासुदेव कृष्ण आदि नाम रख दिये हैं। यद्यपि इसके गुण और कर्मके अनुसार बहुतसे नाम हैं उन सबको मैं ही नहीं जानता तो अन्य साधारण प्राणी क्या जान सकेंगे? हां युग-युगमें जब यह लीलार्थ विग्रह धारण करते हैं तब इनके सामान्यतः तीन रूप पाये जाते हैं, शुक्ल, रक्तपीत तथा श्याम।

शुक्लो [4]रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः।

सत्ययुग में शुक्लवर्ण। कृते शुक्लश्चतुर्बाहुः' त्रेतामें रक्तपीत, 'त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ' 'हिरण्यकेशः' इत्यादि। द्वापरमें श्यामवर्ण, 'द्वापरे भगवान् श्यामः

---

१. रमयति सर्वान् आनन्दयतीति रामः। २. बलमधिकमस्येति बलः। मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः। ३. सम्यक् कर्षति एकीकरोतीति संकर्षणः।

४. इस पर आचार्य वंशीधर जी लिखते हैं—

कलिः शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥

इस श्रुति के अनुसार जो अविद्यारूपी निद्रा में मग्न है वह मनुष्य कलिरूप है, उसके अनुग्रहार्थ भगवान् कृष्णरूपमें व्यक्त होते हैं। जो अर्द्ध प्रबुद्ध हो कुछ श्रेयः साधनमें प्रवृत्त होता है वह द्वापर है। उसके अनुग्रहार्थं भगवान् हिरण्यवत् पीतवर्ण में व्यक्त होतें हैं। जो मोक्ष प्राप्ति के लिये पूर्ण यत्न कर रहा है वह त्रेता है। उसमें भगवान् रक्त मातृवत् अनुरक्त हो प्रकट होते हैं। जो युधिष्ठिरादिके समान अनन्य भक्त हैं उनके लिये भगवान् अपना शुक्ल शुद्धरूप प्रकाशित करते हैं।

श्यामताके कारण इनका नाम कृष्ण भी होगा। वैयाकरण लोग इन्हें वासुदेव कहते हैं। विशुद्ध अन्तःकरण वसुदेव शब्दसे कहा जाता है, उसमें व्यक्त होनेके कारण इनका नाम वासुदेव पड़ा। नन्दजी! तुम्हारे ये दोनों पुत्र बड़े ही तेजस्वी एवं पराक्रमी होंगे। तुम सावधानीसे इनकी रक्षा करो। यह कह कर गर्गजी चले गये। नन्दजी भगवान्‌की बाललीलाओंका रसास्वादन करते हुए अपनेको पूर्ण भाग्यवान् मानते थे।

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले।
अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा॥

कुछ काल बाद बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाई गोकुलमें घुटनोंके बल चलते हुए इधर-उधर घूम-घूमकर खेलने लगे। उनके दोनों पैरोंमें घुँघरू बँधे थे, उनकी ध्वनिसे प्रसन्न होकर वे व्रजमें किलकारी भरते, दूध-दहीके कीचड़में सने हुए दौड़ते फिरते थे। कभी-कभी किसी अपरिचितको अपना समझकर उसके पीछे चले जाते, पुनः परकीय जानकर कुछ सहम जाते और झट लौट आते थे। मैया यशोदा खेलमें लगे हुए उन बच्चोंको दूध पिलाकर उनके मुखकमलको देख-देख बड़ी प्रसन्न होती थीं। कभी-कभी वे बछड़ोंकी पूँछ पकड़कर खींचा करते तो कभी हाथमें तलवार उठाने लगते। कभी जलती अग्निकी ओर जाते तो कभी कूपमें झाँकने लगते। मैया यशोदा दौड़-दौड़कर इन्हें बचाया करती। उन्हें केवल घरका कार्य ही नहीं, स्नान, भोजन आदि कराना भी कठिन सा हो गया था। यशोदा मैया उनकी क्रीडाओंमें अपूर्व रसका अनुभव करती। कुछ काल बाद दोनों भैया खड़े होकर चलने लगे। अब ये दोनों बालक अन्य व्रजबालकोंके साथ गोपियोंके घर जाते; माखन चुराते, दूध-दहीकी मटकियाँ फोड़ते एवं ऐसे ही नाना प्रकार के ऊधम मचाते थे। एक दिन गोपियाँ इकट्ठी हो नन्दरानीको उलहना देने आयीं और कहने लगीं।

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसञ्जातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान्॥२६॥

अरी नन्दरानी, सुन तो जरा! तेरे लाला तो बड़ा ही ऊधम मचाते हैं। असमयमें जाकर बछड़े खोल देते हैं, वे सब दूध पी जाते हैं। यदि कोई कुछ कहने लगता है तो ग्वालबालोंके साथ ताली बजा-बजाकर उसीकी हँसी

उड़ाते हैं। दूध-दही, माखन चोरीसे खाते हैं और चोरीके बड़े-बड़े हथकण्डे भी जानते हैं। घरमें उनके पहुँचते ही न जाने बन्दर कहाँसे आ जाते हैं। जिन्हें वे माखन बाँट-बाँटकर खिलाते हैं। जब कोई नहीं खाता तब मटकी ही फोड़कर चल देते हैं। अरी मैया! इनकी ढिठाई कहाँ तक बखानूँ। जब हम दूध-दहीका सारा सामान तालेमें बन्दकर रख देती हैं तब कुछ न मिलने पर सोते हुए बच्चोंको चुटकीसे नोचकर भाग जाते हैं और बच्चे चीं-चींकर रोने लगते हैं। छीकोंपर रखे दूध-दहीके मटकोंमें नोंकदार डण्डोंसे छेद कर देते हैं और नीचे मुख लगाकर सबके सब दूध-दही पिया करते हैं। कभी ओखली औंधी कर उसपर लड़केको चढ़ाकर फिर स्वयं उसके कन्धेपर चढ़ जाते हैं और दूध-दही माखन उतार कर खा लेते हैं। प्रेमसे जब कभी हम बुलाकर खिलाना चाहती हैं तब ये नहीं खाते। लिपे-पुते सुन्दर घरोंमें कुत्ता, बिल्ली, कबूतर आदिका सूखा मल गिरवाकर भ्रष्ट कर देते हैं और तेरे सामने साधु के समान बड़े ही सीधे-साधे बनकर खड़े हो जाते हैं। व्रज भरमें इन्होंने बड़ा ऊधम मचा रखा है। यशोदाजी ये सारी शिकायतें सुनकर भी लालाकी कुछ भयभीत छवि निरखकर कुछ भी नहीं कह पातीं। प्रत्युत गोदीमें लेकर प्यार करने लगतीं। एक दिन लालाने ग्वालोंके साथ खेलते हुए मिट्टी खा ली। बालकोंने यशोदासे जाकर इसकी शिकायत की। अरी मैया! तेरे लालाने मिट्टी खायी है। मैया ने कहा—क्यों रे लाला? तूने मिट्टी खाई है? लालाने जोरदार शब्दोंमें कहा—

नाहं[1] भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिन.।
यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम्॥

अरी मैया! मैंने मिट्टी नहीं खाई! ये सब झूठ बोलते हैं। यदि तुझे विश्वास न हो तो मेरा मुँह खोलकर देख ले। मैयाने मुख खुलवाया तो उसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखा। यह देख वह चकित रह गयी और सोचने लगी, क्या यह स्वप्न है? अथवा किसी देव की माया है, अथवा मेरे लाला का ही

१. नह्यति बध्नाति आवरणशक्त्या जीवमिति नहा माया तस्या इदं कार्यं नाहं जगत्। यद्वा—नह्यते बध्यतेऽज्ञानेन यत्रेति नहः प्रपञ्चः स एव नाहस्तं प्रलये भक्षितवानस्मि तर्हि ततः सर्वेऽमिथ्याभिशंसिनः सत्यवचनाः। यद्वा-अहं ना पुरुषः भक्षितवान्। हे सति अम्ब! मातः यशोदे यदि एतेऽगिरोऽभक्षकास्तर्हि ममैव मुखं पश्येति। कथंभूतम्। समक्षं सम्यक् अक्षं ज्ञानं यत्र तत्।

कोई चमत्कार है कुछ निर्णय न कर सकी। अन्ततोगत्वा उसे लालामें ईश्वरबुद्धि हो आयी और वह नारायणका ध्यान करने लगी। लालाने यह जानकर मायाका पर्दा फैला दिया जिससे उसकी स्मृति नष्ट हो गयी और वह लालाको गोदमें बैठाकर दूध पिलाने लगी।

परीक्षित्‌ने पूछा—ब्रह्मन्! नन्द और यशोदाने कौन सा ऐसा पुण्य किया था जिससे भगवान्‌ने उनका स्तनपान किया? देवकी और वसुदेवको तो इस बाललीलाका आनन्द नहीं मिल पाया जिसका ब्रह्मा आदि देवता गान करते हैं।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोण अपनी पत्नी धराके साथ ब्रह्माकी आज्ञासे गोपालन करने व्रजमें आये थे। ब्रह्माने इनके माँगनेपर वरदान दिया था कि जाओ, भगवान्‌में तुम्हारी निश्चल भक्ति होगी। वे ही दोनों यहाँ नन्द और यशोदाके रूपमें अवतीर्ण हुए। भगवान्‌ने ब्रह्माका वचन सत्य करनेके लिये ही उनके घरमें आकर नाना प्रकारकी बाललीलाओं द्वारा सभी व्रजवासियोंको आनन्दित किया।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका आठवाँ अध्याय समाप्त

[मासिक पारायणका उन्नीसवाँ विश्राम]

नवां अध्याय

दधिमंथनलीला तथा श्रीकृष्णका उलूखलमें बन्धन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि[1] ॥१॥

एक समय दीपावलीके दिन जब नन्दरानीकी दासियाँ घरके अन्य कामोंमें लगी थीं तब यशोदा अपने लालाके लिये प्रेमवश स्वयं दधि मथने लगीं। साथ ही वे उनकी बाललीलाओंका स्मरण कर उन्हींका गान कर रही थीं। इस क्रियामें यशोदाकी अपूर्व शोभा हो रही थी। मुखपर पसीनेकी

---

१. यद्यपि दासियाँ बहुत थीं किन्तु पद्मगन्धा, मधुगन्धा, मालतीगन्धा आदि प्रशस्त गौओंका दुग्ध, दधि, अत्यन्त स्वादु सुगन्धित तथा नीरोग होनेसे यही लालाके योग्य है ऐसा विचारकर दासियोंको अन्य कार्योंमें नियुक्तकर यशोदा प्रेमवश स्वयं दधि मथने लगी थीं।

बूँदें आ रही थीं एवं केशोंसे गुँथे हुए पुष्प बिखर रहे थे। इसी समय भगवान्को कुछ भूख लगी। वे दूध पीनेकी इच्छासे मैयाके समीप गये और मथानी पकड़कर बोले—मैया, मुझे भूख लगी है दूध पिला दे। मैया लालाको गोदमें उठाकर दूध पिलाने लगी। दैवयोगसे इसी समय चूल्हेपर चढ़ा हुआ दूध उबलने लगा और यशोदा मैया अतृप्त अवस्थामें ही लालाको छोड़कर बड़े वेगसे दूध उतारने चल पड़ी। लालाको इस पर कुछ क्रोध आ गया। उनके ओठ फड़कने लगे। उन्होंने अपने दाँतोंसे ओठ दबाकर लोढ़ेसे दहीकी मटकी फोड़ डाली और झूठ-मूठ ही ऊँ ऊँ रोनेका बहाना करते अन्दर चले गये रखा हुआ ताजी मक्खन निकालकर खाने लगे। यशोदा दूध उतारकर जब वहाँ आयीं तब फूटी मटकी और बिखरा हुआ दही देख बोलीं—अरे! यह सब करतूत लालाकी जान पड़ती है किन्तु वह दिखायी भी तो नहीं पड़ता कहाँ गया। तब वे उसे खोजती हुई अन्दरकी ओर चलीं और देखा कि—

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम्।
हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात्सुतमागमच्छनैः ॥८॥

लाला तो वहाँ रक्खी हुई उलटी ओखलीपर चढ़ छींकेसे मक्खन उतार-उतारकर खा रहे हैं, और बन्दरोंको भी लुटा रहे हैं। चोरीके कारण वे इधर-उधर ताकते भी जा रहे हैं। यशोदाने दूरसे ही लालाकी यह दशा देखी और धीरे-धीरे पीछेसे लालाके समीप जा पहुँचीं। लाला अपनी मैयाको छड़ी लिये आते देख बड़ी तेजीसे उतरकर भागे। यशोदा भी लालाको पकड़ने दौड़ी। आश्चर्य है जहाँ योगियोंका निरुद्ध मन भी प्रवेश नहीं कर पाता उन्हें यशोदा पकड़ना चाहती है और कृपा शक्तिके सहारे पकड़ भी लेती है, यह है भक्तिकी महिमा। पकड़नेपर लालाने रो-रोकर आँखें मल डालीं जिससे उनके सारे मुखमें काजल फैल गया। यशोदाने पुत्रको भयभीत जानकर छड़ी फेंक दी और उन्हें कोमल रेशमी रस्सीसे बाँधनेका विचार करने लगी। जब उन्होंने सुन्दर रेशमी रस्सीसे कृष्णको उलूखलमें बाधना आरम्भ किया और गांठ लगाने लगी तभी रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ गयी। तब यशोदाने पास-पड़ोसकी और भी रेशमी रस्सियाँ उसमें मिलाकर जोड़ीं किन्तु फिर भी रस्सी दो अँगुल छोटी ही रही। वे लालाको बाँध न सकी। यह देख गोपियों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। सभी मुस्कराती हुई स्तब्ध सी रह गयीं। दो अँगुल कम होनेका तात्पर्य आचार्योंने यह बताया है कि जबतक द्वैतकी निवृत्ति नहीं होती तब तक ईश्वर बंधनमें नहीं आ सकते। भगवान्के बन्धनमें

'भक्ति' और 'वैराग्य' इन दोकी आवश्यकता है। यशोदा घरके सभी काम-काज छोड़कर बड़ी लगनसे पुत्रको बाँधनेमें तत्पर हो रही थी। उसका सारा शरीर पसीनेसे तर-बतर हो गया। श्रृंगार भी बिगड़ गया। यह देख कृपा-शक्ति तत्क्षण प्रकट हो गयी और दयालु भगवान् स्वयं ही तुरत उसके बँधनेमें आ गये।

दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत्स्वबन्धने ॥१८॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार भगवान्ने अपनी भक्तवश्यता दिखलायी है। जो प्रसाद पुत्र ब्रह्माको, पौत्र अथवा अपने आत्मा शिवको एवं जाया लक्ष्मीजीको भी प्राप्त न हो सका, वह प्रसाद यशोदाको प्राप्त हुआ इससे बढ़कर यशोदाका और भाग्य क्या होगा? इसलिए महापुरुषोंने कहा है कि संसारमें यशोदासे बढ़कर कोई दूसरा देवता नहीं जिसके उलूखलमें बँधे हुए मुक्तिप्रद भगवान् स्वयं अपनी मुक्ति चाहते हैं।

यशोदायाः परं नास्ति देवता चेति मे मतिः।
यस्या उलूखले बद्धो मुक्तिदो मुक्तिमिच्छति॥

यशोदा इस प्रकार श्रीकृष्णको उलूखलमें बाँधकर घरके काम-काजमें लग गयीं। इधर भगवान्की दृष्टि द्वारसे कुछ दूरीपर खड़े यमलार्जुन वृक्षोंपर पड़ी, जो पूर्व-जन्ममें नलकूबर और मणिग्रीव नामक कुवेरके पुत्र थे, और नारदजीके शापसे वृक्ष-योनिको प्राप्त हुए थे।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका नवाँ अध्याय समाप्त।

●

दसवाँ अध्याय

यमलार्जुन वृक्षके रूपमें नलकूबर और मणिग्रीवका उद्धार

राजा परीक्षित्ने पूछा—हे भगवन्!

कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम्।
यत्तद् विगर्हितं कर्म देवर्षेर्येन वा तमः[1] ॥ १॥

नलकूबर और मणिग्रीवको शाप हो जानेका कारण क्या है? उन दोनोंने कौनसा ऐसा निन्दित कर्म किया जिससे क्रुद्ध होकर नारदजीने उन्हें शाप दे डाला। कृपया इसे बतानेका कष्ट करें। शुकदेवजी बोले—,

१. लेखकके प्रमादसे यह पाठ अन्य पुस्तकोंमें व्युत्क्रमसे छापा गया है।

हे राजन् ! रुद्रके अनुचर होनेके कारण उन दोनोंको बड़ा अहंकार हो गया था, एक समय वे दोनों मदिरा पीकर उन्मत्त हुए कैलासके सुन्दर उपवनमें अप्सराओंके साथ घूमते मन्दाकिनीके तटपर पहुँचे। वहाँ उनके साथ जल-क्रीडा करने लगे। दैवयोगसे उसी समय नारदजी भी वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखते ही अप्सराओंने लज्जित हो झट जलसे निकलकर अपने-अपने वस्त्र पहन लिये किन्तु वे दोनों मदोन्मत्त हो नग्न ही इधर-उधर घूमते रहे। उन्होंने वस्त्र नहीं पहने। नारदजीने उनकी दशा देख शाप देते हुए कहा— संसारमें बुद्धिको भ्रष्ट करनेवाला जैसा श्रीमद है वैसा सत्कुलजन्म तथा विद्या आदिका मद नहीं। लक्ष्मीकी अधिकता होनेपर मनुष्यमें तीन व्यसन स्वाभाविक ही आ जाते हैं, मद्यपान, परस्त्रीगमन और द्यूतक्रीडन। ऐसा प्राणी अभिमानवश अपने स्वरूपको भूल जाता है। शरीरको अजर-अमर मानकर जीवोंकी हत्या करता है। अण्डे मांस आदि घृणित भोजन करता है। दूसरोंकी पीडाका उसे अनुभव नहीं होता। निरन्तर पापकर्मों में ही उसकी प्रवृत्ति रहती है। जिस किसीको डाँटता है, फटकारता है, मारता है। यह सब श्रीमदका ही बल है ऐसा समझना चाहिये।

तत्सर्वं वित्तजं बलम्।

इसकी मुख्य औषध केवल दरिद्रता ही है।

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम् ॥१३॥

दरिद्र हो जानेसे मनुष्यका दिमाग ठिकाने आ जाता है। अहंकार टूट जाता है। भूखके मारे इन्द्रियां सूख जाती हैं और हिंसा भी निवृत्त हो जाती है। महात्मा लोग भी प्रायः धनिकोंके यहां न जाकर दरिद्रोंके यहां ही भिक्षार्थ जाते हैं। उनके संगसे कुत्सित प्रवृत्ति निवृत्त होकर उसकी शुद्धि हो जाती है। कुबेरके पुत्र होकर ये इतने उन्मत्त हो गये हैं कि इन्हें अपने नग्नत्वका भी ज्ञान नहीं रहा और वृक्षके समान निरावरण हो ठूंठसे स्तब्ध खड़े रहे, अतः ये दोनों वृक्षयोनिको ही प्राप्त हो जायँ, किन्तु मेरे प्रसादसे इन्हें शापकी स्मृति बनी रहे। दिव्य सौ वर्षके बाद ये भगवत्कृपासे शापमुक्त होकर पुनः स्वर्गमें देवत्वको प्राप्त हो जायेंगे। हे राजन् ? यह कहकर नारदजी चले गये। नलकूबर और मणिग्रीव उनके शापसे यमलार्जुन वृक्ष बन गये। भगवान् श्रीकृष्ण नारदका वचन सत्य करनेके लिये उलूखल खींचते-खींचते यमुनातटवर्ती दोनों वृक्षोंके बीचमें होकर निकले जिससे उलूखल टेढ़ा हो उन दोनों वृक्षोंमें अटक गया। जब भगवान्‌ने उलूखल खींचा तब वे दोनों वृक्ष

चट-चटाकर घड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके गिरते ही उनमेंसे अग्निके समान देदीप्यमान दो देवता प्रकट हुए जिन्होंने हाथ जोड़कर नतमस्तक हो भगवान्‌को प्रणाम किया और भगवान्‌के सगुण-निर्गुण रूपकी दस श्लोकोंसे स्तुति करते हुए अन्तमें कहा—हे भगवन्, आप ऐसी कृपा करें कि हमारी वाणी आपके गुणानुवादमें, कर्ण कथाश्रवणमें, हस्त सेवामें; मन चरणोंकी स्मृतिमें, शिर प्रणाममें तथा हमारे नेत्र भक्तोंके दर्शनमें ही सदा लगे रहें। हे राजन् ! भगवान्‌ने प्रसन्न हो कहा—तथास्तु; जाओ तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। ऋषिने शाप के द्वारा तुमपर अनुग्रह ही किया जो मेरा दुर्लभ दर्शन तुम्हें प्राप्त हो सका। अब तुम सानन्द अपने पूर्व स्थानपर चले जाओ। इस प्रकार आज्ञा पाकर वे दोनों उलूखलमें बंधे भगवान्‌की परिक्रमाकर उत्तर दिशामें अलकापुरी को चले गये।

बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ भा० ४३ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका दसवाँ अध्याय समाप्त।

ग्यारहवाँ अध्याय

फलविक्रयिणीपर भगवान्‌की कृपा तथा वत्स और बकासुरका मोक्ष

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ।
तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशंकिताः ॥ भा० १ ॥

वृक्षोंके गिरनेसे बड़ा ही भयंकर शब्द हुआ। उसे सुनकर नन्द आदि गोप वज्रपातकी आशंकासे तुरत वहाँ आ पहुंचे। उन्होंने देखा कि वे दोनों विशाल वृक्ष जड़से उखड़कर पृथ्वीपर पड़े हैं। इनके पतनका कारण यद्यपि उलूखलमें बँधा बालक सामने ही वर्तमान था, फिर भी उसे न जान सब गोप भ्रममें पड़ गये और कहने लगे अरे यह किसका कर्म है, और कहाँ से यह उत्पात हो गया। क्रीडारत बालकोंने कहा—नन्द बाबा ! यह तो तुम्हारे लालाका ही काम है। इसीने हमारे समक्ष उलूखलको खींचकर दोनों वृक्ष गिरा दिये हैं। गिरते ही इनमेंसे प्रकट हुए दो पुरुषोंको भी हमने देखा था। नन्दजीने बालकोंके वचनपर विश्वास नहीं किया क्योंकि वे अपने लालाका असीम बल जानते न थे किन्तु कुछ गोप तो सन्देह करने ही लगे। नन्दजीने उलूखलमें बँधे लालाको देख हँसते हुए उन्हें खोल दिया और वे दौड़कर मैयाके गलेमें जाकर लिपट गये। वहाँ और भी बहुत-सी गोपियाँ बैठी थीं। उन सबोंने ताली बजाकर कहा—लाला ? जरा अपना नाच तो दिखा दो। त्रिलोकीके

नचैया उनके कहते ही नाचने लगे। कभी उनके कहनेपर गाते तो कभी पीढ़ा पसेरा उठाने जाते और जब वह उनसे न उठता तब उसे थामकर बैठ जाते। इस प्रकार भगवान् अपनी सुमधुर बाललीलाओंसे कठपुतलीकी तरह उन व्रजवासियोंके वशीभूत हो सबको बड़ा ही अनुपम सुख दे रहे थे। एक दिन नन्दजीके घरके सामनेसे एक फल बेचनेवाली निकली। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थी—अरे, कोई फल ले लो, फल पर, किसीने उसकी आवाजपर ध्यान ही नहीं दिया। देते भी कैसे? वह तो आज लालाको फल देने आयी थी। लालाने मकानोंके सुदूर अन्दर भी उसकी आवाज सुन ली और वे तुरत दौड़ पड़े। पैसे तो पास थे नहीं केवल अंजुलीमें धान्य ही भरकर फल बेचनेवालीके पास चल पड़े। आज इस खटकिनके भाग्यकी तुलना ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं कर पाते थे क्योंकि जो सारे विश्वको फलप्रदान करते हैं, वे स्वयं ही आज उससे फल लेने जा रहे थे। लालाको देखकर फल बेचनेवालीकी दशा विचित्र हो गई। वह टकटकी लगा लालाके दिव्यसौन्दर्य-रसका पान करने लगी। लाला उसके पास जाकर खड़े हो गये। उनकी अंजुलीमें धान्यका एक दाना भी न रहा। कारण वह तो साराका सारा मार्गमें ही गिर गया था। लालाको भी इस बातका ध्यान न रहा। इधर खटकिन भी अपने शरीरकी सुधि-बुधि भुला बैठी थी। दोनों परस्पर एक दूसरेको देखते ही रह गये। इस तरह कई घण्टे बीत गये। किसीको अपना ध्यान नहीं था।

लीलाशक्तिने कृपाशक्तिसे कहा—अरी बहन! क्या करती हो? मेरे लालाको क्या दिनभर ऐसे खड़े ही रखोगी। देखो बारह बज गये हैं। पूरे चार घन्टे हो गये इनके पैर थक गये होंगे। भूख लगी होगी। थोड़ा-सा माखन खाकर सवेरेसे निकले हैं। तुझे ध्यान नहीं, तू कहीं बावरी तो नहीं हो गयी। देख, मैं अब लीला बन्दकर रही हूँ। तू लालाको उद्बुद्ध कर। बस क्या था, लालाको होश आया। वे फल बेचनेवालीसे बोले—अरी? क्या तू मुझे फल न देगी। इतनी देरसे मुझे बुलाकर खड़ा कर रखा है। कहीं मैया देख लेगी तो बहुत बिगड़ेगी। फिर मुझे बाँधने लगेगी। इन अमृतमय वचनोंको सुनते ही उसे होश आया। लाला खाली अंजुली बाँधे चार घण्टेसे खड़े थे। यह देखकर वह चकित रह गई। वह उनकी छोटी-सी अंजुलिमें फल रखने लगी, पर धीरे-धीरे टोकरीके सारे फल अंजुलिमें समा गये और टोकरी खाली हो गई। लालाने जब देखा कि इसने मुझे सारे फल दे दिये तब लाला भी नहीं चूके। उन्होंने भी तुरन्त उसकी टोकरी रत्नोंसे भर दी।

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयम्।
फलैरपूरयद् रत्नैः फलभाण्डमपूरि च ॥ ११ ॥

खटकिनने अपने जीवनमें बहुत फल बेचे थे, किन्तु उसे ऐसा खरीददार आज तक न मिला था। उसका फल बेचना सदाके लिये बन्द हो गया। उसने सब रत्न लुटाकर असली रत्न श्रीकृष्णको हृदयमें रख लिया और कृतार्थ हो गई। इसी भावका चित्रण करते हुए श्रीशंकराचार्यजीने कहा है—

दुरीश्वरद्वारि बहिर्वितर्दिकादुरासिकायै रचितोऽयमञ्जलिः।
यदञ्जनाभं निरपायमस्ति नो धनञ्जयस्यन्दनभूषणं धनम् ॥

मदान्ध धनिकोंके दरवाजेके बाहर चबूतरेकी बैठकी अच्छी नहीं होती उसके लिये मैं दूरसे ही नमस्कार करता हूँ। हमारा अविनाशी धन तो अर्जुनके रथका भूषण नीलमणि भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं।

लाला भी फलविक्रयिणीको कृतार्थकर अपने साथियों ग्वालबालोंके साथ खेलने लगे। समय अधिक हो ही गया था और नन्दबाबा भोजन करने जा बैठे थे। उन्होंने बालकोंको बुलानेके लिये रोहिणीको भेजा किन्तु क्रीडामें निरत जब ये दोनों बालक नहीं आये तब यशोदाजी बुलाने गयीं और दोनों भाइयोंको बड़े प्रेमसे हाथ पकड़कर घर ले आयीं तथा स्नान-भोजन आदि कराकर उन्हें एक दिव्य शय्यापर सुला दिया।

एक दिन नन्द आदि वृद्ध गोपोंने नाना प्रकारके उत्पातोंको देख व्रजकी समस्याओंपर विचार किया। इसपर उपनन्द नामके गोपने कहा, नन्दजी यहाँ तो प्रतिदिन राक्षसोंके द्वारा उत्पात हुआ करते हैं इसलिये हमें यहाँसे कहीं अन्यत्र चले जाना चाहिये। मेरा विचार है कि आप लोग यहाँसे वृन्दावन चलें जो बड़ा ही सुन्दर है। वह हम लोगोंके निवासके लिए बड़ा सुखमय होगा।

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्[1] ॥ २७ ॥

---

१. नवकाननम्। नवानि नूतनानि काननानि अवान्तरवनानि निधुवनबिल्व-वनादीनि यस्मिन् तत्। यद्वा--कः ककारः आनने मुखे आदौ येषां ते काननाः कदम्बकेशरादयो वृक्षा नवा नित्यनूतना यस्मिन् तत्। यद्वा नव-नवसंख्याकाः कानना वृक्षा यस्मिन् तत्। यद्वा--नूयते स्तूयते इति नवं स्तुतं कं जलं यस्याः सा नवका कालिन्दी आनने अग्रे यस्य तत्। यद्वा--नवानां हर्यादिनव-सिद्धेश्वराणां कं सुखं यया सा नवका भक्तिस्तस्या आननं चेष्टनं क्रीडनं यत्रेति। यद्वा--भाविलीलाभिप्रायेणाह--न बकस्य बकासुरस्य आननं मुखं यत्र तत्। बकमुखस्यात्रैवोत्पाटनादिति संक्षेपः। अत्र पक्षे नञर्थेन न शब्देन समासः, बवयोः सावर्ण्यं च ज्ञेयम्।

वहाँ पशुओंकी हितकारक सामग्री सम्पूर्ण वर्तमान है। बच्चोंके क्रीडार्थं बहुतसे अवान्तरवन भी हैं। सबने यह प्रस्ताव एकस्वरसे स्वीकार कर लिया और सभी लोग शकटों द्वारा वृन्दावन चल दिये। वहाँ पहुँचकर वृन्दावन गोवर्द्धन और यमुनाके सुन्दर तटोंका निरीक्षणकर राम और कृष्ण-को बड़ी ही प्रसन्नता हुई। कुछ दिनों बाद वहीं सुन्दर भवनोंका निर्माण कराकर सब लोग सानन्द रहने लगे। पहले दिन उन लोगोंने केवल शकटोंसे ही अर्द्धचन्द्राकार एक निवास स्थान बना लिया था।

तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्द्धचन्द्रवत् ॥ ३४ ॥

समय आनेपर बलराम और श्रीकृष्ण दोनों वत्सपाल बनाए गये। एक दिन वे अपने साथियोंके साथ बछड़ा चराने यमुना तटपर गये। वहाँ एक असुर इन दोनोंको मारनेकी इच्छासे वत्सरूप धारणकर इनके बछड़ोंमें आ मिला। कृष्णने संकेतसे ही अपने भैयाको यह बात बता दी और स्वयं धीरेसे उसके समीप चले गये। भगवान्ने पूँछ सहित उसके दोनों पैर पकड़ लिये और बड़े वेगसे घुमाकर उसे कैथके वृक्षपर दे मारा जिससे वह तत्काल मर गया। उसने गिरते-गिरते कितने वृक्ष धराशायी कर दिये। यह देख ग्वाल-बालोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे साधु-साधु कहकर दोनोंकी प्रशंसा करने लगे। देवतागण आकाशसे भगवान्पर पुष्प-वृष्टि करने लगे। एक दिन फिर ये दोनों भाई ग्वालबालोंके साथ यमुना तटपर गये। वहाँ बछड़ोंको जल पिलाकर वे स्वयं जल पी ही रहे थे कि एक बक नामका असुर बकका विशाल रूप धारणकर आ पहुँचा। उसने आते ही तुरंत कृष्णको निगल लिया। यह देखकर सब ग्वालबाल घबड़ाकर अचेतसे हो गये, किन्तु भगवान्ने अन्दर जाकर अग्निकी तरह उसका तालुमूल जला डाला, उससे पीड़ित हो असुरने घबड़ाकर तत्क्षण इन्हें उगल दिया, फिर वह क्रोधपूर्वक चोंच फैलाकर श्रीकृष्णकी ओर मारने दौड़ा—

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां गतिः।
पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद् दिवौकसाम् ॥ ५० ॥

भगवान्ने कसकर अपने हाथोंसे उसके दोनों चंचुपुट पकड़ लिये और पटेरातृणकी तरह बीचसे ही उसका मुँह फाड़ डाला। वह धड़ामसे पृथ्वीपर गिरकर मर गया। इसपर सब देवता जय-जयकारकी ध्वनि करते हुए पुष्पवृष्टि करने लगे। ग्वालबाल यह लीला देखकर चकित रह गये। उन्होंने व्रजमें आकर गोप-गोपियोंके समक्ष लालाका यह सारा चरित्र कह सुनाया।

वे सभी यह वृतान्त सुनकर आश्चर्यमें डूब गये। हे राजन्! इस प्रकार बाल-लीलाओं द्वारा भगवान्की कुमारावस्था क्रमशः बीत गयी। नन्द आदि गोप श्रीकृष्ण और बलरामकी इन मधुर लीलाओंका गान करते संसारकी विविध वेदनाएँ भी भूल गये थे।

नाविन्दन् भववेदनाम् ॥ ५८ ॥

वत्स और बकासुरका पूर्वजन्म

यह वत्सासुर मुरका पुत्र प्रमील नामका एक भयानक दैत्य था। एक दिन वह घूमता फिरता वसिष्ठजीके आश्रममें जा पहुँचा। वहाँ इसने नन्दिनी गौ को देखकर ब्राह्मणरूप धारणकर उसे माँगा। वसिष्ठजी तो चुप रहे उन्होंने कुछ नहीं कहा पर नन्दिनीसे न रहा गया; उसने कहा—रे दुष्ट! तू दैत्य होकर ब्राह्मणका वेष बनाकर गौ लेने आया है, इसलिये जा तू गोवत्स ही हो जा।

मुनीनां गां समाहर्तुं भूत्वा विप्रः समागतः।
दैत्योऽसि मुरजस्तस्माद् गोवत्सो भव दुर्मते ॥

(ग० सं० वृन्दावनखण्ड ४।२७)

यह बकासुर पूर्वजन्ममें हयग्रीवका पुत्र उत्कल नामका दैत्य था। उसने संग्राममें देवताओं और राजाओंको जीतकर इन्द्रका छत्र और राजाओं का राज्य ले लिया और वह स्वयं शासन करने लगा। एकदिन वह घूमते-घूमते सिन्धु संगमपर जाजलि मुनिके आश्रममें जा पहुँचा। वहाँ वह जलमेंसे वंसीके द्वारा मछलियोंको खींच-खींचकर खाने लगा। मुनिके निषेध करनेपर भी जब वह न माना तब मुनिने उसे शाप दिया—रे नीच! तू बकके समान मत्स्योंको खाता है इसलिये तू बक ही हो जा—

तस्मै शापं ददौ सिद्धो जाजलिर्मुनिसत्तमः।
बकवत्त्वं झषानत्सि त्वं बको भव दुर्मते ॥

(ग० सं० वृ० खं० ५।३४)

शापसे दुःखित हुए बककी प्रार्थना पर दयालु मुनिने प्रसन्न हो उससे कहा अच्छा द्वापरके अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे तेरी मुक्ति होगी।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।



बारहवाँ अध्याय

अघासुरका मोक्ष

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

क्वचिद्वनाशाय मनो दधद् व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ।
प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥ १ ॥

एक दिन, भगवान् श्रीकृष्ण वनमें कलेवा करनेके विचारसे प्रातःकाल ही उठ बैठे । उन्होंने शृङ्गी बाजा बजाकर अपने साथी हजारों ग्वालबालोंको भी जगा दिया । वे सब अपने-अपने बछड़ोंको आगे कर बालक्रीड़ा करते भगवान्‌के साथ वनमें चल दिये । प्रत्येक ग्वालबालके वत्स हजारसे कम न थे, किन्तु श्रीकृष्णके वत्स असंख्यात थे । ग्वालबालोंने अपने वत्स भगवान्‌के वत्सोंके झुण्डमें मिला दिये थे । प्रत्येक ग्वालबालके पास छीका, बेंत, वेणु और शृङ्गी बाजा था । वे परस्पर एक दूसरेका बेंत या वेणु हंसी-हंसीमें चुराकर दूसरेको दे देते और यदि उसे मालूम हो जाता तो वह बालक उसे किसी दूसरे बालकके पास दूर फेंक देता । वह वेणु या बेंत हँसकर तब लौटाये जाते जब उसका अधिकारी बालक रोने लगता था । जब कभी भगवान् वनशोभा देखने दूर चले जाते तब ग्वालबाल भगवान्‌को छूनेके लिये दौड़ते । जो उन्हें छूता वह गर्वसे यही कहता कि पहले मैंने छुआ है । दूसरा कहता पहले मैंने छुआ है ऐसी ही नाना क्रीडाएँ करते ग्वालबाल विचर रहे थे । कोई शृङ्गी बाजा बजाता, कोई भ्रमरोंके साथ गाता तो कोई उड़ते पक्षियोंकी छायाके साथ दौड़ता, कोई मेढकोंके साथ कूदता एवं कोई बन्दरोंके साथ खों--खोंकर पेड़पर चढ़ जाता । कुछ एक दूसरेकी छाया देखकर हँसते थे । और कहते थे देखो भैया इसकी कैसी सूरत बनी है नाकके ऊपर मुँह बना है । ऐसो ही विविध क्रीडाएँ भगवान् अपने सखाओंके साथ कर रहे थे । जिनकी चरणधूलि सैंकड़ों जन्मोंके साधनों द्वारा योगियोंको भी दुर्लभ है वे साक्षात् भगवान् ही नेत्र गोचर हो जिनके सामने उपस्थित हों इससे बढ़कर व्रजवासियोंका भाग्य और क्या होगा ?

एक दिन कंसका भेजा हुआ अघासुर नामक दैत्य वहीं वनमें आया । वह पूतना और बकासुरका छोटा भाई था । उसने विचारा कि इसी कृष्णने मेरे भाई और बहनको मारा है । आज मैं उनका बदला लेनेके लिये इस वैरी कृष्णको इसके साथियों सहित ही मार डालूंगा । इससे मेरे बन्धुओंको

तिलाञ्जलि मिल जायगी और उनकी आत्मा शान्त होगी। ऐसा विचारकर वह दुष्ट राक्षस अजगरका विशाल रूप धारणकर श्रीकृष्णको निगलनेकी इच्छासे मुँह फैलाकर मार्गमें ही लेट गया।

पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥ १६ ॥

इसका गुफाके समान लम्बा मुख था, पर्वतके शिखरोंके समान दाँत, लम्बी चौड़ी सड़कके समान जिह्वा, आंधीके समान श्वास तथा अंगारे- उगलते उसके नेत्र थे। उसका एक ओठ आकाशमें और दूसरा पृथ्वीसे सट रहा था। पहले तो वालकोंने उसे वृन्दावनकी एक शोभा समझी, किन्तु फिर अजगरकी कल्पना करके यों कहने लगे—

अस्मान् किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद् बकवद् विनङ्क्ष्यति।
क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥ २४ ॥

अरे भैया ! क्या यह हम लोगोंको निगलेगा, अच्छा, कोई चिन्ता नहीं। यह भी वकासुरकी तरह ही क्षणमात्रमें श्रीकृष्ण द्वारा मारा जायगा। ऐसा कहकर सभी ग्वालवाल भगवान्का सुन्दर मुख देखने लगे। भगवान् उन्हें रोकना ही चाहते थे कि वे ताली वजाते उसीकी ओर चल दिये और लीला शक्तिकी इच्छा से सवके सव सर्पके श्वास लेते ही खिचकर वछड़ों सहित उसके मुखमें चले गये। केवल एक मात्र श्रीकृष्ण ही वाहर रह गये। वे भी उसके मारनेका उपाय सोचकर तत्क्षण ही उसके मुखमें घुस गये। यह देख भयसे मेघमें छिपे देवतागण हाहाकार करते चिल्ला उठे। कंस तथा उसके अनुचर अघासुरके वान्धव सभी राक्षस इससे वड़े ही प्रसन्न हुए। दैत्यने ज्यों ही सवको निगलनेकी इच्छासे मुख वन्द करना चाहा तुरन्त भगवान् वड़े वेगसे उसके गले तक वढ़ गये जिससे उसकी प्राण-वायु रुक गयी। शरीरमें उसके चलने तकका स्थान शेष न रहा। घवरा कर उसके नेत्र उलट गये। वह व्याकुल हो छटपटाने लगा। तत्क्षण उसके प्राण ब्रह्मरन्ध्रका भेदनकर वाहर निकल गये और उसकी दिव्य-ज्योति आकाशमें स्थित हो भगवान्के निकलनेकी प्रतीक्षा करने लगी। जब भगवान् वत्स वालकों को अपनी अमृतमयी दृष्टिसे जीवितकर उनके साथ वाहर निकले तव वह ज्योति देवताओंके देखते-देखते ही भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो गयी।

विवेश तस्मिन् मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥

यह देख देवतागण आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं। ऋषि, महर्षि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर आदि जय-जयकारकी ध्वनि

कर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। हर्षके साथ जय-जयकारकी यह माङ्गलिक ध्वनि लीलाशक्तिकी इच्छासे सुदूर ब्रह्मलोक तक पहुँच गयी, जिसे सुनकर ब्रह्मा तत्क्षण भूलोकमें आये और श्रीकृष्णकी यह अद्‌भुत महिमा देखकर चकित रह गये। हे राजन्! अजगरका वह सूखा चर्म वृन्दावनमें चिरकाल तक व्रजवासी बालकोंके क्रीडार्थ गुफा रूपमें परिणत हो गया। भगवान्‌की कुमारावस्थाकी यह लीला बालकोंने एक वर्ष बाद व्रजमें आकर कही। राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन्! साल भर तक ये सब ग्वाल बाल कहाँ रहे? इसमें भी कुछ रहस्य अवश्य होगा। कृपाकर आप इसका कारण बतायें। सूतजीने कहा हे शौनक! जब राजा परीक्षित्‌ने इस प्रकार प्रश्न किया तब शुकदेवजी भगवान् के ध्यानमें मग्न हो समाधिस्थ हो गये। कुछ क्षणों बाद पुनः धीरे--धीरे बाह्यदृष्टि प्राप्त होने पर उन्होंने उत्तर देना आरम्भ किया।

अघासुरका पूर्वजन्म

अघनामका यह असुर पूर्वजन्ममें शंखासुरका पुत्र था। यह इतना सुन्दर था कि दूसरा कामदेव सा ही प्रतीत होता था। एक समय मलयाचल पर जाते हुए कुरूप अष्टावक्र मुनिको देखकर यह बड़े जोरसे हँस पड़ा और बोला—देखो तो सही, टेढ़ी गतिसे चलनेवाले यह मुनि कैसे कुरूप जान पड़ते हैं। यह सुनकर मुनिने शाप दिया, दुर्मते! तू टेढ़ी गतिवाला कुरूप सर्प ही होगा। प्रार्थना करनेपर प्रसन्न हो मुनिने कहा—जिस समय कोटि कामसे भी सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण तेरे उदरमें प्रवेश करेंगे उसी समय तेरी सर्पयोनिसे मुक्ति हो जायगी।

कोटिकन्दर्पलावण्यः श्रीकृष्णस्तु तवोदरे।
यदाऽऽगच्छेत्सर्परूपात्तदा मुक्तिर्भविष्यति॥
(वृ० खं० ६।१४)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका बारहवाँ अध्याय समाप्त।

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा द्वारा वत्स और वत्सपोंका अपहरण एवं भगवान्‌की वर्षपर्यन्त उनके रूपमें पूर्ववत् क्रीडा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। भक्तोंका यह स्वभाव ही है कि वे कथा सुनते हुए भी प्रश्नों द्वारा उसे क्षण-क्षणमें

नवीन बनाते रहते हैं। ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें उस एक वर्ष के अन्तरका रहस्य बतलाता हूँ।

तथाघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान्।
सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत्॥ ४॥

अघासुरके मुखसे वत्स एवं ग्वाल-वालोंकी रक्षाकर भगवान् उन्हें यमुनाके तटपर लाये और बोले – मित्रो! देखो तो सही, यह तट कैसा रमणीय है। हम लोगोंके खेलने योग्य सम्पूर्ण सामग्रियाँ यहाँ वर्तमान हैं। यहाँ गद्देके समान बड़ी कोमल एवं स्वच्छ बालू बिछी है। वृक्षोंपर बैठे पक्षी और भ्रमर अपने कलरव एवं गुञ्जार द्वारा हमारा स्वागत कर रहे हैं। मेरा विचार है कि आज हम सब यहीं भोजन करें। दिन चढ़ गया है और हमें भूख भी लगी है। बछड़े भी समीपमें जल पीकर धीरे-धीरे घास चरें। ग्वालवालोंने कहा— हाँ भैया! ठीक है। ऐसा ही हो! इतना कह उन सबने बछड़ोंको जल पिलाकर हरी-हरी घासमें छोड़ दिया और स्वयं भगवान्के सामने मण्डल बनाकर बैठ गये। सबके मध्यमें भगवान् श्रीकृष्ण बैठे थे। यद्यपि सबका भगवान्के सम्मुख होना संभव न था, फिर भी, अचिन्त्य-लीलाशक्तिने सबके सम्मुख भगवान्को प्रकट कर दिया। सभी अपने सम्मुख भगवान्को देखते बड़े प्रसन्न हो रहे थे। उन ग्वालवालोंको ऐसा अनुभव होता था कि हम ही भगवान्के सम्मुख पास की पंक्तिमें बैठे हैं और तो. दूसरी पंक्ति में कुछ बगल में तथा कुछ पीछे बैठे हुए हैं। अनन्तर सबने अपने-अपने छींकेसे दही, भात, मीठा, नमकीन, वड़ा, शाक-भाजी, आमकी चटनी कुछ फल तथा मुरब्बा आदि नाना प्रकारके भोजन निकाले। उन्हें केले आदिके पत्तोंपर रखकर भगवान्के साथ भोजन करने लगे। कुछ तो अपने छींकेमें ही खाने लगे। सभी ग्वालबाल अपने-अपने भोजनका स्वाद बखानते हुए कृष्ण और श्रीदामासे कहने लगे। देखो भैया! यह हमारा बड़ा बड़ा ही स्वादिष्ट है। तुम भी इसे थोड़ा सा चखकर देखो। यह कहकर वे अपना बड़ा भगवान्के हाथोंपर रख देते और हँसी-हँसीमें स्वयं उनका लेकर खा लेते। भोजन करते समय भगवान्की यह झाँकी बड़ी ही आकर्षक थी। श्रोतागण इस झाँकी का ध्यान करें।

बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु।
तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः॥११॥

भगवान्ने कमरपर बँधे डुपट्टेमें वंशी खोंस रखी थी। श्रृंगी बाजा और बेंत बायीं और दायीं काँखमें दबाये थे, दही-भात बायें हाथ में और बिल्व आमलक आदि फल अँगुलियोंमें ले रखे थे। परिहास वाक्योंसे भगवान् ग्वाल-वालोंको हँसाते हुए कमल की कर्णिकाके समान सबके बीचमें बैठे भोजन कर रहे थे। आकाशमें स्थित देवतागण आश्चर्यसे चकित हो यह लीला देख रहे थे कि यज्ञभोक्ता भगवान् आज बालक्रीडामें निरत हो उनके साथ भोजन कर रहे हैं। हे राजन्! इस प्रकार, इधर भोजन का क्रम चल रहा था और उधर बछड़े घास चरते-चरते न जाने कहाँ बहुत दूर वनमें निकल गये। इसपर भगवान्ने व्यग्र हुए ग्वाल-बालोंसे कहा—

मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥

मित्रो! तुम लोग घबराओ मत, भोजनसे विरत न होओ। मैं तुम्हारे बछड़े ले आता हूँ। यह कहकर भगवान् हाथमें दही भातका कौर लिये ही बछड़ोंको ढूँढ़ने पर्वतोंकी कन्दरा और कुञ्जोंकी ओर दौड़ पड़े। ब्रह्मा भगवान् श्रीकृष्णकी और भी कुछ महिमा देखनेकी इच्छासे यह अवसर पाकर वहाँ आये और वनसे बछड़ोंका तथा पुलिनसे ग्वालवालोंका अपहरण कर स्वयं अन्तर्हित हो गये। भगवान्ने घूम-घूमकर सारा वन छान डाला, पर न बछड़े मिले और न पुलिनपर बैठे ग्वालवाल ही। तब सर्वज्ञ हरिने तुरंत समझ लिया कि यह काम ब्रह्माका है। ऐसा विचार भगवान्ने ब्रह्मा गौ एवं गोपियोंके सन्तोषार्थ रूप रंग और आकृतिमें ठीक-ठीक उसी प्रकारके बछड़े और ग्वालवालोंके विविध रूप धारण किये और फिर अपने-अपने बछड़ोंको हाँकते पृथक्-पृथक् अपने-अपने गोष्ठमें ले आये। ग्वालबालोंकी माताएँ एवं गौएँ साक्षात् ब्रह्मरूपी अपने पुत्रोंको पाकर इतने प्रेमसे दूध पिलाती थीं कि देखनेवालोंको भी आश्चर्य होता था। इस प्रकार स्वयं ही समस्त ग्वाल-वाल और बछड़े बने हुए भगवान् एक वर्ष तक पूर्ववत् क्रीड़ा करते रहे। एक दिन गोवर्द्धन पर्वतपर चरती हुई बछड़े वाली गौएँ दुर्गममार्गका अतिक्रमणकर तथा अपने नवजात बछड़ों को भी छोड़ छलांग मार नीचे व्रजमें दौड़ आयीं, बलिष्ठ गोपोंके रोकने पर भी न रुक सकीं और कृष्णरूपी बछड़ोंको चाटती हुई बड़े प्रेमसे दूध पिलाने लगीं। यह देख बलरामको भी बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने ध्यान लगाकर ज्ञानदृष्टिसे जब देखा तो सब बछड़े एवं ग्वालवालोंको कृष्णरूपमें पाया। बलरामने इसका कारण श्रीकृष्णसे पूछा। भगवान्ने संक्षेपमें इसका सारा रहस्य बता दिया। अपना[1] त्रुटिकाल बीतने पर ब्रह्माने पुनः गोकुलपर दृष्टि

१. सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिरित्यभिधीयते।

डाली तबतक यहाँ लगभग एक वर्ष बीत चुका था। उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण तो यहाँ ग्वालवालों एवं बछड़ोंके साथ वैसे ही पूर्ववत् क्रीड़ा कर रहे हैं। वे विचारने लगे कि तब मैंने जिन ग्वालवालोंका अपहरण कर रखा है वे कौनसे हैं? भगवान्के साथ भी ठीक ऐसे ही बाल-वत्स हैं? दोनोंके रूप-रंग और संख्या समान हैं। इनमें कौन असली है और कौन नकली है इसका किसी तरह भी निर्णय न कर सके।

सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथंचन ॥ ४३ ॥

अतः इस कौतूहलपर ब्रह्मा किंकर्तव्य शून्य हो स्वयं अपनी मायासे मोहित हो गये।

स्वयैव माययाऽजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥ ४४ ॥

थोड़ी ही देर बाद ब्रह्माको वे सब बछड़े एवं ग्वालवाल कृष्णरूप में दीख पड़े फिर देखा कि उन सबके चार-चार भुजायें हैं जिनमें उन्होंने शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हैं तथा नाना प्रकारके आभूषण एवं पीताम्बरसे वे सुसज्जित हैं। अणिमादि सिद्धियाँ मूर्तिमती होकर उनकी उपासना कर रही हैं और उनके दिव्यतेजसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकाशित हो रहा है। यह देखकर ब्रह्मा कठपुतलीकी तरह स्तब्ध रह गये।

भगवान् का यह अद्भुत ऐश्वर्य देखना उनके वशका न रहा। यह देख भगवान्ने तुरन्त अपनी मायाका पर्दा हटा दिया, जिससे ब्रह्मा कथञ्चित् कुछ स्वस्थ हुए और फिर उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण हाथमें पूर्ववत् दही भातका कौर लिये अभीतक बछड़ोंको ढूँढ रहे हैं। यह देख ब्रह्मा तुरत अपने हंसवाहनसे नीचे उतर भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर विह्वल हो गिर पड़े और प्रेमाश्रुओंसे उन चरणोंका [illegible] अभिषेक करते रहे।

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः।
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥

फिर, उन्होंने धीरेसे उठ नेत्रोंको पोंछकर भगवान्को देखते ही सिर नीचा कर लिया और वे काँपते-काँपते, हाथ जोड़, गद्गद वाणीसे भगवान्की यों स्तुति करने लगे।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

●

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मस्तुति और अपहरण किये वत्स-वत्सपोंका पुनः व्रजमें आगमन

ब्रह्माजी बोले—

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय[1] ॥१॥

भगवन् संसारमें स्तुति करने योग्य केवल एक मात्र आप ही हैं, मैंने मायाके अधिपति आपपर मायाका प्रयोगकर आपका महान् अपराध किया है । आप कृपाकर मुझे क्षमा करें । मैं आपकी स्तुति करता हूँ ।

---

१. अपराधी ब्रह्मा भयसे कम्पित हो गद्गद वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हैं—नौमीति—

'नौमि'की प्रतिज्ञा कर केवल स्वरूपानुवाद करना स्तुति नहीं कहलाती । वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीने बड़े ध्यानसे 'मृदुपदे' यहाँ तक ब्रह्माकी पदावली सुनी । अभीतक एक पदसे भी स्तुति न हो सकी थी । इससे आगे ब्रह्मा 'पशुपालकाय' यह पद कहना चाहते थे, किन्तु सरस्वतीने तत्क्षण उस पदको वहीं स्तम्भित कर हठात् ब्रह्माके मुखसे 'पशुपाङ्गजाय' इस पदको निःसारित किया । इस एक ही पदसे पूर्णतया स्तुति हो गयी । यह पद अनन्त अर्थका बोधक है ।

सामान्यतः वक्ता और श्रोताओंके मनोरञ्जनार्थ कतिपय अर्थोंका यहाँ उल्लेख किया जाता है ।

पशुपाङ्गजाय

१. पशून् पातीति पशुपो नन्दः तस्याङ्गाज्जातः पशुपाङ्गजः तस्मै पशुपाङ्गजाय नन्दनन्दनाय ।

२. यद्वा पशुपो नन्दः तस्य अङ्गं मित्रं वसुदेवः पशुपाङ्गात् वसुदेवात् जातः पशुपाङ्गजस्तस्मै वसुदेवपुत्राय । 'अङ्गं मित्रशरीरयोः' इति कोशात् ।

३. यद्वा पान्तीति पाः पशवश्च पाश्च पशुपा वत्सवत्सपा अङ्गजा देहजा यस्य तस्मै । 'सर्वस्वरूपो बभौ' इत्युक्तेः ।

४. यद्वा पशुपां गोपानां मध्ये गजाय मुख्याय । विश्वपावत् । 'माने मतङ्गजे मुख्ये वस्तुभेदे गजोऽचले । इति धरणिः ।

नीलमेघके समान सुन्दर आपका श्याम-विग्रह है उसमें बिजलीके समान पीताम्बर चमक रहा है। घुंघुचीके कर्णभूषण एवं मोर-मुकुटसे आपका मुख-कमल सुशोभित है। वनमाला, दही-भातका कौर, बेंत, शृंगी बाजा वेणु और श्रीवत्ससे आपकी अपूर्व शोभा हो रही है। आपके चरण इतने कोमल हैं कि उनसे पत्थर भी पिघल जाते हैं। मैं मोहित हो यह न समझ सका कि मेरे इष्टदेव ही आज नन्द-नन्दनके रूपमें व्रजमें पधारे हैं। आप मुझे क्षमा करें। हे देव! जान पड़ता है मेरे अनुग्रहार्थं ही आपने सगुण-विग्रह धारण किया है। मैं इस सगुण रूपकी ही महिमा जाननेमें समर्थ नहीं हूँ तो आत्मसुखका अनुभव करनेवाला और करानेवाला जो आपका निर्गुण रूप है उसकी महिमा मैं भला क्या जान सकूँगा? हाँ, जो ज्ञानोपार्जनका प्रयत्न न कर, केवल आपकी मंगलमयी कथाका ही श्रवण करते हैं और शरीर, मन एवं वाणीसे उसका आदर करते हैं वे प्रायः आपको जान लेते हैं। कथा श्रवणसे आपमें भक्ति और उससे ज्ञान-वैराग्यकी प्राप्ति होती है, यह सिद्धान्त

५—यद्वा पशून् अज्ञानिनः पान्ति धर्मज्ञानोपदेशेन रक्षन्तीति पशुपा ब्राह्मणा अंगजा मुखजा यस्य तस्मै।

६—यद्वा पशून् पशुवद् बद्धान् प्राणिनः पान्ति रक्षन्तीति पशुपाः क्षत्रियाः अंगजा बाहुजा यस्य तस्मै।

७—यद्वा पशून् प्राणिनः पशुवत् विचरणशीलान् याचकान् पान्ति धनादिना रक्षन्तीति पशुपा वैश्या अंगजा ऊरुजा यस्य तस्मै।

८—यद्वा पश्यन्ती पशवः सर्वविधप्राणिनः तान् पान्ति सेवया रक्षन्तीति पशुपाः शूद्रा अंगजाः पादजा यस्य तस्मै। 'आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन' इति श्रुतेः।

९—यद्वा-पशुर्वै 'देवानाम्' इति श्रुतेः पशवः कर्मजडास्तान् पान्तीति पशुपा देवा अंगजा यस्य तस्मै।

१०--यद्वा-पशुं नन्दिनं पातीति पशुपो महादेवः अंगजः हृदयजो यस्य तस्मै। 'शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः' इत्युक्तेः।

११--यद्वा-पशून् पापिनः पाति पापात् रक्षतीति पशुपा गंगा अंगजा अंगुष्ठजा यस्य तस्मै पशुपांगजायेति संक्षेपः।

इत्थं चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्र-समुद्र-द्वीपनदनदीवृक्षपर्वत-पशुपक्षि-कीटपतङ्गादीनां सर्वेषां वस्तुजातानां भगवतोऽङ्गजत्वात् सरस्वत्योद्भावितं पशुपाङ्गजायेति-पदमनन्तार्थबोधकमित्यवधेयम्।

अटूट है। भक्तिकी उपेक्षाकर जो केवल ज्ञान चाहता है उसे क्लेशके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं मिलता जैसे चावलकी इच्छासे धानकी भूसी कूटनेवालेको केवल क्लेश ही मिलता है। यह परम्परासे भी प्रमाणित है कि पहले भी बहुतसे योगी जन कथा द्वारा प्राप्त हुई आपकी भक्तिसे परागति (मुक्ति) प्राप्त कर चुके हैं।

प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥ ५ ॥

देहधारी पुरुषको निर्गुणका ज्ञान होना संभव नहीं है और सगुणके गुणोंका तो अन्त ही नहीं। ऐसी दशामें जो प्राणी अपने कर्मोंका फल भोगता हुआ मन-वाणी एवं शरीरसे आपके चरणोंमें नमन करता हुआ आपके मंगलमय नामका आश्रय ले जीता है, वह शीघ्र ही आपका कृपापात्र हो मुक्तिका हिस्सेदार हो जाता है। हे प्रभो ! मैं अपनी दुर्जनतापर क्या कहूँ। मायाके अधिपति आपपर मायाका प्रयोग कर मैंने अपना ऐश्वर्य देखना चाहा। अग्निराशिके समक्ष एक चिनगारीके समान मेरी सत्ता ही क्या है। रजोगुणसे उत्पन्न मैं अज्ञानी अपनेमें ईश्वरत्वका अभिमान कर अज्ञानसे ऐसा अन्धा हो गया कि आपको पहचान ही न सका। आप कृपाकर मेरा अपराध क्षमा करें।

एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥ १० ॥

हे भगवन् ! मैं महान् अपराधी हूँ अतः कृपाकर आप अपने मनमें ऐसी प्रेरणा कर मेरा अपराध क्षमा करें।

एष ब्रह्मा अनाथः मयि नाथे सति नाथवान् भविता अन्यथा अनाथ एव स्यात् इति विचार्य एष ब्रह्मा अनुकम्प्यः।

हे नाथ ! मेरी और आपकी तुलना ही क्या ? सातविस्तेका शरीरवाला कहाँ मैं और कहाँ आप जिनके रोम-रोममें असंख्य ब्रह्माण्ड घूमा करते हैं। गर्भमें स्थित बालकके पैर फेंकनेको क्या माता उसका अपराध मान सकती है ? कभी नहीं, तब आप ही बतायें ब्रह्माण्डमें स्थित ऐसी कौन-सी वस्तु है जो आपके उदरसे बाहर हो। प्रलयकालमें जलशायी नारायणके नाभि-कमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई, यह वेदवाणी मिथ्या नहीं है। इस प्रकार मैं तो साक्षात् आपका पुत्र हूँ। आप मेरा अपराध क्षमा करें। सृष्टि, पालन और संहारके हेतु तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु और शिव आपके ही स्वरूप हैं। आप दुष्टोंके नाश और भक्तोंकी रक्षाके लिये नाना योनियोंमें अवतार ग्रहण करते हैं। आपकी लीलाओंका जानना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि मोहका कारण यह जगत् सामने वर्तमान है। यद्यपि यह जगत् स्वप्नतुल्य

होनेसे नश्वर है फिर भी अधिष्ठानरूप आपकी सत्तासे सत्यवत् भासित हो रहा है। सत्य तो इसमें केवल एक आत्मा ही है, जिन्हें गुरुकृपासे यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है वे इस मिथ्या संसार-समुद्रसे पार हो जाते हैं। जिन्हें ज्ञान नहीं हुआ उन्हींके लिये यह प्रपञ्च ज्योंका त्यों बना रहता है। जैसे रज्जुमें सर्पका भ्रम अज्ञानकल्पित है वैसे ही बन्ध-मोक्ष ये भी दोनों अज्ञानकल्पित हैं। जैसे सूर्यके सतत रहते रात-दिनका व्यवहार नहीं रहता उसी प्रकार नित्यचैतन्यघन आत्माका निरन्तर विचार करनेपर बन्ध-मोक्षकी भी व्यवस्था नहीं रहती। अज्ञानी जन इस देहके आधारभूत आत्मामें शरीरका अध्यासकर और शरीरमें आत्मबुद्धि कर आत्माको बाहर खोजते फिरते हैं ऐसे मूर्खोंकी अज्ञता को मैं क्या कहूँ। जरा विचार तो करें, घरमें खोई हुई वस्तु क्या कभी वनमें खोजनेपर मिल सकती है।

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः।
असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः॥२८॥

अन्तर्दीक्षा सम्पन्न योगी पुरुष तो शरीरके अन्दर ही षट्चक्रोंका भेदन कर नेति-नेति द्वारा जड़-जगत्का त्यागकर चेतन आत्माको खोज लेते हैं। जैसे प्रकाशके विना रज्जुमें अध्यस्त सर्पबुद्धि नहीं हट सकती वैसे ही देहाध्यासकी निवृत्तिके विना आत्माका ज्ञान भी नहीं हो सकता और विना आत्मज्ञानके मुक्ति भी नहीं हो सकती; यह दृढ़ निश्चित है। वस्तुतः आपके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान तो आपके भक्तोंको ही होता है, अन्यको नहीं। चाहे वह कितना ही प्रयत्न क्यों न करे। इसलिये हे नाथ! इस जन्ममें अथवा अन्य किसी निकृष्ट योनिमें ही मेरा जन्म क्यों न हो मैं आपका दासानुदास बनकर आपकी चरणसेवा कर सकूँ इसे ही मैं अपना अहोभाग्य मानूँगा।

तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्दस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥३४॥

हे नाथ! यदि मेरा जन्म भूतलमें हो तो इस पृथ्वीपर भगवान्की क्रीडाभूमि वृन्दावनमें हो। उसमें भी यदि कहीं गोकुलमें हो जाय तब तो मेरे भाग्यका कहना ही क्या। वहाँ किसी गोकुलवासीके चरणकी धूलि मुझपर पड़ जायगी तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। कारण—श्रुतियाँ जिन आपकी चरणरजको आजतक ढूँढ ही रही हैं पर प्राप्त न कर सकीं, वही आप इन गोकुलवासी गोपोंके जीवनधन होकर उनके साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। धन्य है आपकी दयालुता, व्रजकी गौएँ एवं गोपियोंके सौभाग्यको मैं क्या कहूँ।

जिन्हें बड़े-बड़े यज्ञ भी तृप्त न कर सके उन्हीं आपको गौ और गोपियोंने दूध पिला-पिलाकर तृप्त कर दिया। आप इनके ऋण से कभी मुक्त न हो सकेंगे। विशेष क्या कहूँ ? आपका ऐश्वर्य मेरे शरीर मन और वाणीके परे है। जो यह कहते हैं कि हम ब्रह्मको जानते हैं वे जाने। मैं तो उसे जान नहीं सकता। आप चन्द्र और सूर्यके समान जीवोंके अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करते हैं आपको मेरा प्रणाम है। नाथ ! अब कल्पान्तमें ही आपका दर्शन हो सकेगा अतः मैं आज आपको कल्पभरका पुनः प्रणाम कर रहा हूँ। आप मुझे क्षमा करें और जानेकी आज्ञा दें। भगवान्ने मौन द्वारा ही ब्रह्माको जानेकी आज्ञा दे दी। वे भगवन्महिमा का स्मरण करते हुए अपने सत्यलोक चले गये। ब्रह्माने यहां महत्त्वपूर्ण ४० श्लोकों द्वारा भगवान्की करुणाभरी स्तुति की है। हे राजन् ! ब्रह्माके चले जानेपर भगवान् बछड़ोंको लेकर यमुनातटपर आये जहाँ सभी ग्वालवाल बैठे भोजन कर रहे थे। वे देखते ही भगवान्से बोले—अरे भैया ! तुम तो बड़ी ही जल्दी आ गये। अभी तो हमने एक कौर भी नहीं खाया। आओ, हमारे साथ भोजन करो—

नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः[1] साधु भुज्यताम् ॥ ४५ ॥

यद्यपि भगवान्से बालकोंको बिछुड़े हुए एक वर्ष बीत गया था, किन्तु भगवान्की मायासे मोहित हुए वे उसे आधा क्षण ही मानते थे। भगवान्ने हँस-हँसकर उनके साथ भोजन किया और पुनः उन सबको लेकर व्रजमें आये। ग्वालवालोंने व्रजमें आकर कहा—'अरे नन्द बाबा, अरी मैया यशोदा ! आज तेरे लालाने बड़े भयानक विशाल अजगरको मारा है और उससे हमारी रक्षा की है।' हे राजन् ! जो तुमने यह पूछा था कि पाँचवें वर्षका चरित्र छठे वर्षमें क्यों कहा, उसका कारण यही था। जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे इस चरित्रका श्रवणकर ब्रह्म-स्तुतिका पाठ करता है उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्ने सुमधुर निलायन[2] आदि बाललीलाओं द्वारा अपनी कुमारावस्था[3] व्यतीत की।

ससखवत्सकमोत्त्रणकौतुकद्रुतविलम्बितपुत्रमुदेऽद्भुतम् ।
निखिलरूपमतो दधदच्युतोऽवतु स वः कलयन् व्रजमङ्गलम् ॥(श्रीधरी)

सखाओं सहित हरण किये गये बछड़ोंके पुनःआनयन सम्बन्धी लीला कौतुकसे जिन्हें विलम्ब हो गया है ऐसे अपने पुत्र ब्रह्माकी प्रसन्नताके लिये

---

१. इतः अत्र सार्वविभक्तिकस्तसिः। २. छिपे हुए ग्वालवालोंका अन्वेषण।
३. कौमारं पञ्चमाब्दन्तम्।

जो आश्चर्य जनक वत्सवत्सप रूप धारणकर प्रकट हुए वह भगवान् श्रीकृष्ण व्रजका मङ्गल करते हुए वक्ता एवं श्रोताओंको भक्ति प्रदानकर मृत्युरूपी संसार सागरसे उनका उद्धार करें।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका चौदहवाँ अध्याय समाप्त।



पन्द्रहवाँ अध्याय

भगवान्की गोचारण-लीला में धेनुकासुर का वध और यमुनाके विषाक्त जलसे मृत गोपोंको जीवन दान।

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥

छठे वर्ष कार्तिक शुक्ल अष्टमीको व्रजमें भगवान्की गोचारणलीला आरम्भ हुई। वे अपने भाई एवं सखाओं सहित गौएँ चराते हुए वृन्दावनको अपने सुकोमल-चरणचिह्नोंके इतस्ततः प्राकट्यसे अत्यन्त पवित्र करने लगे। एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण विहारकी इच्छासे गौएँ आगे कर वेणुवादन करते हुए वृन्दावनमें प्रविष्ट हुए। इस समय वृन्दावन की शोभा अपूर्व हो रही थी। चित्र-विचित्र पक्षियों के मधुर कलरव नानाप्रकार के हो रहे थे। मृगोंके झुण्ड के झुण्ड इधर-उधर चौकड़ी भर छलांगें मार रहे थे। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु बह रही थी। फलपुष्पोंके भारसे वृक्षोंकी डालियाँ झुककर धरतीको छू रहीं थीं। यह देख भगवान्ने मुस्कराकर भाई बलरामसे कहा—भैया! देखो तो, सही ये वृक्ष अपने शाखारूपी हाथोंमें फल-पुष्प लेकर अपने पापों की निवृत्ति के लिये आपके चरणोंमें प्रणाम कर रहे हैं। जिन पापों से इन्हें वृक्षयोनि प्राप्त हुई है। यह भ्रमरोंका कुल आपकी मङ्गलमयी कीर्तिका गान करता हुआ पीछे-पीछे आ रहा है। जान पड़ता है, ये सब आपके भक्तोंमें मुख्य मुनियोंके गण हैं। वनमें छिपे हुए भी आपको इन्होंने छोड़ा नहीं। नृत्यद्वारा मयूर, कटाक्षपात द्वारा हरिणी और मधुर-मधुर स्वरोंसे कोकिलाएँ आपका स्वागत-गान कर रही हैं। आपके चरणस्पर्शसे यह पृथ्वी, तृण एवं करस्पर्शसे वृक्षलताएँ भी धन्य हो गयी हैं।

हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावनकी इस अनुपम शोभासे प्रसन्न हो नानास्थानोंमें क्रीडा करने लगे। कभी भ्रमरोंके साथ गाते तो कभी पक्षियोंकी बोली वोलते, कभी मयूरोंके साथ नृत्य करते तो कभी ग्वालवालोंके हाथ पकड़कर उनके साथ कुश्ती लड़ते। कभी थक जाने पर वृक्षके नीचे गोपोंकी गोदमें सिर रख कर सो जाते थे।

वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपवर्हणः ।। १६ ।।

कुछ ग्वाल-वाल भगवानके पैर दवाते तो कुछ पंखा डुलाते थे। इस प्रकार भगवान् ग्रामीणजनोंके समान लीला करते हुए वीच-वीचमें अपना ऐश्वर्य दिखाया करते थे। एक दिन श्रीदामा आदि गोपोंने वलदाऊ और श्रीकृष्णसे कहा—भैया ! यहाँसे थोड़ी दूरपर ताल नामका एक सुन्दर वन है। उसके फल बड़े ही मीठे और सुगन्धित हैं जिनपर हम सवका मन ललचा रहा है। उन्हें खानेकी हमे वड़ी इच्छा हो रही है। किन्तु, धेनुकासुरके भयसे वहाँ कोई जा नहीं पाता, यदि आप की राय हो तो वहाँ चलें। लाला हमें वे मधुर फल खिलादो। यह सुनकर दोनों भैया हँसते हुए उस वनकी ओर ही चल दिये। वलदाऊने वहाँ पहुँचते ही ताल-वृक्षोंको बड़े जोरोंसे हिला डाला जिससे वहुतसे फल नीचे गिर पड़े। उनके गिरनेका शब्द सुनते ही गर्दभासुर वड़ी तेजीसे दौड़कर आया और वलरामजीकी छातीपर दुलत्ती मारकर रेंकता हुआ झट पीछे की ओर हट गया। पुनः दुबारा उसके आक्रमण करनेपर वलदाऊने उसके पीछेके दोनों पैर पकड़ लिए और बड़े वेग से घुमाकर उसे पेड़पर दे मारा। उसका विशाल शरीर बहुतसे वृक्षोंको तोड़ता हुआ निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देख उसके भाई-बन्धु सभी गधे टोली वना कर एक साथ लड़ने दौड़ पड़े। वलदाऊने उन सवको उसी तरह पेड़ोंपर पटक-पटककर मार डाला। इसपर प्रसन्न हो देवता गण आकाशसे पुष्पवृष्टि कर स्तुति करने लगे। धेनुकासुरके मारे जाने पर मनुष्य, निर्भय हो उस तालवनमें जाकर आनन्दसे फल खाने लगे तथा पशु घास चरने लगे। अनन्तर गोपों से स्तूयमान हो भगवान् वहाँसे अपने भाई एवं गोपोंके साथ व्रजमें लौट आये। यशोदा और रोहिणीने दोनोंको उबटन द्वारा स्नान करा खीर, पूड़ी, हलुआ आदि स्वादिष्ट भोजन कराया। दोनों भैया सुखपूर्वक दिव्य शय्यापर सो गये। एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण वलदाऊके विना ही अपने सखाओं सहित स्वयं यमुना तटपर चले गये। वहाँ गर्मीसे व्याकुल हो गौ और गोपोंने अनजानमें यमुनाका विषाक्त जल पी लिया और वे तुरंत ही मर गये। यह देख श्रीकृष्णने अपनी अमृतमयी दिव्य दृष्टिसे सबको पुनः जीवित कर

दिया। इसपर सभी ग्वालबाल परस्पर एक-दूसरेको देखकर आश्चर्यसे चकित रह गये। उन्होंने अपने पुनः जीवित होनेमें भगवान् श्रीकृष्णके अनुग्रहको ही प्रधान रूपसे हेतु माना।

अन्वमंसत तद्राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ।।५२।।

धेनुकासुरका पूर्वजन्म

धेनुकासुर पूर्वजन्ममें साहसिक नामका बलिका पुत्र था। एक बार वह खूब बन-ठनकर गन्धमादन पर्वतपर तिलोत्तमा अप्सराके साथ विहार कर रहा था। समीपमें ही दुर्वासा ऋषि समाधिमें लीन थे जिनपर वामी जम गयी थी। वह इसे जानता न था। साहसिक और तिलोत्तमाकी क्रीडासे ऋषिका ध्यान भंग हो गया। जिसपर उन्होंने क्रोधसे शाप दिया कि तू असुरयोनिमें जाकर गधा होगा और यह तिलोत्तमा भारतमें जाकर वाणकी पुत्री ऊषा होगी वहाँ श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धका आलिंगन प्राप्त कर शुद्ध हो जायगी।

उत्तिष्ठ गर्दभाकार गर्दभो भव दुर्मते।
बलदेवस्य हस्तेन मुक्तिस्ते भविताऽसुर ।।
(ग० सं० वृ० खं० ८।३६)

तिलोत्तमे भारते त्वं वाणपुत्री भविष्यसि।
श्रीकृष्णपौत्राश्लेषेण पुनः पूता भविष्यसि ।।
(ब्रह्मवैवर्त २३।१४६)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

सोलहवाँ अध्याय

'कालियनाग' का दमन, नागपत्नियों द्वारा भगवान्का स्तवन और उनका अनुग्रह

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः।
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत् ।।१।।

भगवान् श्रीकृष्णने कालियनागके विषसे दूषित हुआ यमुनाका जल देखकर उसकी शुद्धिकी इच्छासे उस सर्पको वहाँसे निकाल दिया। राजा

परीक्षित्‌ने पूछा—हे ब्रह्मन् ! भगवान्‌ने सर्पको जलके अन्दर कैसे पकड़ा ? वह वहाँ बहुत युगोंसे क्यों रहता था ? शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! यमुनाके दक्षिण भागमें एकयोजन प्रमाणवाला अगाधजलसे भरा एक विशाल ह्रद (गर्त) था। जिसमें कालिय नाग सपरिवार रहता था। यमुना के प्रवाहसे उसका स्पर्श नहीं होता था। हरिवंश पुराणके अनुसार यहाँ ऐसा ही समझना चाहिये, अन्यथा यमुना का जल मथुरावासियोंके व्यवहारमें नहीं आ सकता था। उसके विषकी ज्वालाओंसे ह्रदका जल दिनरात उबलता रहता था। आकाशमें उड़ते पक्षी भी उसके ऊपर आ जानेसे नीचे गिर पड़ते थे। वहाँकी विषाक्त-वायुके स्पर्शमात्रसे तटवर्ती स्थावर-जंगम प्राणियोंकी मृत्यु हो जाती थी। वहाँ तीरपर केवल एक कदम्बका वृक्ष था जिसपर स्वर्गसे अमृत लाते समय गरुडजी विश्रामके हेतु बैठे थे। उस समय उनके घड़ेसे अमृतकी कुछ बूँदें टपक पड़ीं थीं जिसके प्रभावसे वह हरा-भरा था सूख न सका था। कालियके दमनका विचार कर भगवान् इसी ऊँचे कदम्बपर चढ़ गये और कमरसे डुपट्टा कसकर वहींसे ताल ठोंककर धड़ामसे उस ह्रदमें कूद पड़े।

आस्फोट्य गाढरशनो न्यपतद् विषोदे ॥६॥

इस ऊँची छलांगपर उस ह्रदका भयंकर विषाक्त जल चारों ओर चार सौ हाथ दूरी तक उछल कर फैल गया। भगवान्‌ने उस ह्रदको अपने बाहु-दण्डोंसे अच्छी तरह खूब मथ डाला। कालिय इसे सहन न कर सका, वह बड़ी तेजीसे दौड़कर भगवान्‌के समीप आया और उनके मर्मस्थलोंको डसता हुआ उनके सारे शरीरमें कसकर लिपट गया। यह देख सभी ग्वालबाल चिल्ला उठे और कितने तो मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। साँड़, गौएँ, बछड़े और बछिया भी जोरोंसे रंभाती हुई ह्रदकी ओर दौड़ पड़ीं। इस दुर्घटनाके सूचनार्थ व्रजमें नाना प्रकारके अपशकुन होने लगे। नन्द आदि गोप इन अपशकुनोंसे भगवान्‌के निधनकी आशंका कर घबरा उठे। व्रजके वृद्ध, बालक और स्त्रियाँ सबके सब भगवान्‌के चरणचिह्नोंके सहारे उन्हें खोजते हुए यमुना तटपर जा पहुँचे।

तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः।
भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥१७॥

वहाँ सर्पसे वेष्टित भगवान्‌को चेष्टारहित देखकर गोप एवं गौएँ करुण क्रन्दन करती मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। गोपियाँ भगवान्‌के विरहमें तीनों लोकोंको शून्य समझती किंकर्तव्यविमूढ सी हो गयीं। यशोदा और

नन्द तो रोते-रोते उस ह्रदमें ही घुसने जा रहे थे। बलदाऊने उन्हें समझा-बुझाकर किसी प्रकार रोका। क्योंकि वे श्रीकृष्णका प्रभाव जानते थे, अतः वे इससे विचलित नहीं हुए। भगवान्ने इस प्रकार गोकुलको अपने कारण दुःखित देख धीरे-धीरे अपना शरीर फैलाया जिससे सर्पकी त्वचा फटने लगी और वह भगवान्को छोड़कर क्रोधभरी तीक्ष्ण दृष्टिसे ताकता हुआ पृथक् खड़ा हो गया। कालियनाग और भगवान् दोनों ही एक-दूसरेको पकड़नेकी इच्छासे इधर-उधर चक्कर लगाने लगे। घूमते-घूमते जब कालियनाग थक गया तब भगवान् उसके फण नवाकर उसपर चढ़ गये और उसके फणोंपर नृत्य करना आरम्भ किया। यह देख सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, अप्सराएँ और देवगण नाना प्रकारके वाद्यों सहित गान और स्तुति करते हुए पुष्पवृष्टि करने लगे।

भगवान्के तीव्र चरणोंके प्रहारसे कालियका सारा शरीर क्षत-विक्षत हो जर्जरित हो गया, फण फट गये। वह मुख और नासिकासे रक्त उगलने लगा। मरणासन्न हो कालियने घबड़ा कर मनसे भगवान्की शरण ली। उसी समय नागपत्नियाँ अपने पतिकी यह दुर्दशा देख विकल हो उठीं। बच्चोंको आगे कर भगवान्के चरणोंमें जा गिरीं और हाथ जोड़ स्तुति करने लगीं। यहां नागपत्नियोंने इक्कीस श्लोकोंसे भगवान्की स्तुति की है जिनमें छः श्लोकोंसे दण्डका अनुमोदन, और दस श्लोकोंसे भगवान्के चरणोंमें प्रणाम तथा पांच श्लोकोंसे पतिके अपराधकी क्षमा याचना कर उसे मुक्त करनेकी प्रार्थना की है। उसका सारांश यह है—

नागपत्नियाँ कहती हैं—भगवन् ! आपने इस पर जो दण्ड-विधान किया है, वह वस्तुतः दण्ड नहीं, आपका अनुग्रह है। कारण, जिन पापोंसे इसे सर्प-योनि प्राप्त हुई है उन पापोंका इस दण्डने नाश कर डाला। अब तो यह मोक्षका अधिकारी बन गया है। इसके भाग्यकी सराहना हम क्या करें ? इसने पूर्व जन्ममें ऐसी कौनसी तपस्या, अथवा धर्मका अनुष्ठान किया था जो आप इस पर प्रसन्न हुए और आपकी चरणरज इसे प्राप्त हो सकी। जिसे प्राप्त कर मनुष्य स्वर्गादि पदोंकी तो बात ? ही क्या मोक्षको भी ठुकरा देता है। अधिक क्या कहें जिस चरण-रजकी इच्छामात्रसे सम्पूर्ण ऋद्धि-सिद्धियाँ उस पुरुषके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो जाती हैं। इतना कह भगवान्के तत्तत् रूपोंको प्रणाम कर वे प्रार्थना करती हैं। हे भगवन् ! हम सब आपकी प्रजा हैं और आप हमारे स्वामी हैं। एक बार तो आप इनका अपराध क्षमा कर दें। ये हमारे प्राणधन हैं, प्राण छोड़ना ही चाहते हैं। इन्हें आप मारें

नहीं कृपाकर हमें दे दें। हम आपके चरणोंमें गिरकर वार-बार क्षमा याचना करती हैं।

स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥५१॥

इस प्रकार नाग-पत्नियोंकी प्रार्थनासे प्रसन्न हो भगवान्ने कालिय नागको छोड़ दिया। वह क्लेश पूर्वक धीरे--धीरे श्वास लेता हुआ हाथ जोड़कर भगवान्से बोला—भगवन्! हम तो जन्मसे ही तामसी और क्रूर स्वभावके हैं। क्या करें, आपकी मायासे मोहित हुए हमसे यह स्वभाव छोड़ा नहीं जाता। आप जगत्के ईश्वर हैं सर्वसमर्थ हैं। आपकी इच्छा है, दण्ड दें या छोड़ दें या मारें। भगवान्ने कहा—अरे सर्प! तुम सपरिवार शीघ्र ही यहाँसे चले जाओ, विलम्ब न करो, कारण, यह नदी मनुष्य, पशु और पक्षियोंसे सेवित है। जिसके भयसे तुम रमणक द्वीप छोड़कर यहाँ आये हो वह गरुड़ अव तुम पर प्रहार न करेगा। क्योंकि तुम्हारे शिरपर हमारे चरणोंकी छाप लग गई है। हे राजन्! भगवान्की आज्ञा पाते ही कालिय-नाग अपनी पत्नियों सहित भगवान्का गन्धपुष्पादिसे पूजनकर रमणक द्वीपको चला गया, तभीसे यमुनाका जल विषरहित हो अमृतके समान सबके लिये पेय हो गया।

कालियका पूर्वजन्म

स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वेदशिरा नामक एक मुनि विन्ध्याचल पर तप कर रहे थे। वहीं अश्वशिरा नामक मुनि भी तप करने जा पहुँचे। उन्हें देख वेदशिराने कुछ आवेशमें आकर मुनिसे कहा—तुम हमारे आश्रमपर तप न करो। क्या तुम्हें तप करनेको और भूमि नहीं है? यह सुनकर अश्वशिराने क्रुद्ध हो कहा—यह तो भगवान्की भूमि है, न जाने कितने मुनियोंने यहाँ तप किया होगा। तुम सर्पके समान फुफकारते हुए व्यर्थ क्रोध करते हो, इसलिये सर्प हो जाओ और गरुडसे सदा तुमको भय वना रहे।

वेदशिराने कहा—अरे तुम्हारा मनोभाव तो वड़ा दूषित है, तुमने साधारण-सी बातपर ऐसा कठोर शाप दे डाला और कौएके समान अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हो, इसलिये, तुम कौआ हो जाओ। इस प्रकार दोनों ही मुनि परस्परके शापसे दुःखित हो रहे थे। उसी समय भगवान् विष्णुने प्रकट हो दोनोंको सान्त्वना दी। भगवान्ने वेदशिरासे कहा—मुने! सर्प होनेपर भी तुम्हारे मस्तकपर मेरा चरणचिह्न वना रहेगा जिससे तुम्हें गरुडका भय न होगा। पुनः अश्वशिरासे कहा—मुने! कौआ होनेपर भी तुम्हें त्रैकालिक

ज्ञान रहेगा। इस प्रकार दोनों मुनि परस्पर शापके कारण वेदशिरा कालिय नाग हुए और अश्वशिरा काकभुशुण्डि हुए।

श्वसन् सर्प इव त्वं भो वृथा क्रोधं करोषि हि।
सदा सर्पो भव त्वं हि भूयात्ते गरुडाद्भयम्॥
(ग० सं० वृ० खं० १०।८)

कार्यार्थी काक इव कौ त्वं काको भव दुर्मते।
साक्षात्काकभुशुण्डोऽभूद् योगीन्द्रो नीलपर्वते॥
(वृ० खं० १०।१५)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका सोलहवाँ अध्याय समाप्त।



सत्रहवाँ अध्याय

यमुना ह्रदमें कालियके निवासका कारण एवं भगवान्‌का दावानलपान

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—हे भगवन्!

नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः।
कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम्॥१॥

कालियने नागोंका निवास स्थान रमणक द्वीप क्यों छोड़ा? एक उसीने गरुड़का क्या अपराध किया था? आप कृपाकर इसका रहस्य हमें बतायें।

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! गरुणजी रमणक द्वीपमें पहुंचकर जिस सर्पके घर घुस जाते उसीको खा-पीकर साफ कर डालते थे। नागोंको गरुड़के इस दुर्व्यवहारसे बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने एक विशाल सभाकी आयोजना कर उसमें गरुड़को आमन्त्रित किया। अनन्तर सर्वसम्मतिसे एक प्रस्ताव पासकर गरुड़से प्रार्थना की गयी कि आप ऐसा क्रूर व्यवहार न करें, हम सब मिलकर बारी-बारीसे प्रतिमासकी अमावस्याको एक वृक्षके नीचे आपके लिये बलि का प्रबन्ध कर देंगे। आप उसे भक्षणकर वहींसे कृपाकर लौट जाया करें। गरुड़ ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सभी नाग इस नियमके अनुसार प्रति अमावस्यापर बारी-बारीसे बलि दिया करते थे। एक दिन जब कालियकी बारी आयी तब उसने अभिमानवश बलि नहीं दी। इसपर आगे वालेने भयभीत हो नाना व्यञ्जनों सहित एक बूढ़े सर्पको रखकर बलि दे दी। किन्तु, विष एवं वीर्यके मदसे उद्धत कालियने

गरुड़को तुच्छ समझ उनके निमित्त रखी हुई वह बलि स्वयं जाकर खा ली और बूढ़े सर्पको घर भेज दिया। गरुडजीने आकर जब यह समाचार सुना तब वे कुपित हो कालियको मारने दौड़े। कालिय भी अपने एक सौ एक फण उठाकर बड़े वेगसे गरुड़पर झपटा और दाँतोंसे उन्हें डस लिया।

दद्भिः सुपर्णं व्यदशद् ददायुधः ॥६॥

तं [1]तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान् प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः।
पक्षेण सव्येन[2] हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥७॥

महापराक्रमी कश्यप पुत्र गरुड़जीने क्रुद्ध हो बड़े वेगसे कालियपर अपने बायें पंखका प्रहारकर उसे दूर फेंक दिया। कालिय इस प्रहारसे अत्यन्त व्याकुल हो बड़े वेगसे यमुनाके दुर्गम ह्रदमें जा घुसा। वहाँ सौभरि मुनिके शापवश गरुड़ प्रवेश नहीं कर पाते थे। बात यह थी कि एक समय सौभरि मुनि यमुनातटपर तप कर रहे थे। वहाँ एक दिन भूखसे व्याकुल हो गरुड़जी जा पहुँचे। मुनिने उनकी कुचेष्टा देख निषेध किया किन्तु फिर भी उन्होंने बलात् मत्स्योंके एक अधिपतिको मारकर खा लिया। इसपर मत्स्योंको दुःखित देख सौभरिने घोषित कर दिया कि यदि गरुड़ इस ह्रदमें प्रविष्ट होकर मत्स्य भक्षण करेंगे तो उनकी तत्काल मृत्यु हो जायगी। इस श्लोकसे ह्रदमें गरुड़के प्रवेशका निषेध किया गया है, मत्स्यभक्षण का नहीं, यह बात केवल कालिय जानता था। इसलिये, वह वहाँ जाकर छिप गया किन्तु श्रीकृष्णने उसे दण्ड देकर निकाल दिया।

कालियको ह्रदसे निकालकर जब भगवान् जलसे बाहर निकले तब नन्द आदि गोप उनका आलिंगन कर बड़े प्रसन्न हुए। यशोदाने भी गोदमें बैठाकर अपने प्रेमाश्रुओंसे उनका अभिषेक किया और ब्राह्मणोंको इसके उपलक्ष्यमें गौ तथा सुवर्णका दान किया। उस रात्रिमें सब गोप भूख प्यास तथा थकावटके कारण वहीं यमुना तट पर सो गये। रात्रिको दैवात् वनमें भीषण अग्नि लग गई जिसने चारों ओरसे गोपोंको घेर लिया। वे भयभीत हो इधर-उधर भटकते हुए त्राहि-त्राहि करते भगवान्की शरणमें गये। अनन्तशक्ति भगवान् श्रीकृष्णने सबके देखते देखते वह तीव्र दावानल क्षणमात्रमें पी लिया।

तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥२५॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

---

१. 'तार्क्ष्यौ गरुड़कश्यपौ' इत्यमरः।

२. 'सव्यं दक्षिणवामयोः' इति वैजयन्ती।

अठारहवां अध्याय

ग्रीष्म-ऋतुकी क्रीडामें सम्मिलित प्रलम्बासुरका वध

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! प्रातःकाल यमुनातटसे उठकर भगवान् प्रसन्नचित्त हो गोपोंके साथ पुनः व्रजमें लौटे। वहाँ गोपालवेषमें उन दोनोंके क्रीडा करते ग्रीष्म-ऋतुका आगमन हुआ। यद्यपि यह ऋतु शरीरधारियोंको अत्यन्त प्रिय न थी फिर भी वह वृन्दावनके अनुपम गुणोंसे ऋतुराज वसंत के समान ही लक्षित हो रही थी। झरनों, सरोवरों एवं नदियोंके शीतल जलसे वृक्ष, घास और पृथ्वी इतनी तर हो रही थी कि सूर्यकी प्रचण्ड शीतल किरणोंके तापका उनपर कुछ भी असर न हो सका था। कमलपरागमिश्रित शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बराबर बह रही थी। मयूर कोकिल सारस आदि पक्षियोंके मधुर-मधुर कलरव हो रहे थे। वनकी सुषमा सबका मन लुभा रही थी। ऐसे ही समय में क्रीड़ाकी इच्छासे वेणु बजाते हुए भगवान् एक दिन गोपोंके साथ वनमें प्रविष्ट हुए। वहीं आपसमें मल्लयुद्ध तथा नृत्य गान होने लगा। पुनः भ्रामण-क्षेपण आदि नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हुए उन सबोंने झूलेमें झूलना आरम्भ किया। अन्तमें राजाओंके समान चेष्टा कर सिंहासनपर बैठे प्रजाका न्याय करने लगे। इस प्रकार दोनों भैया लोक-प्रसिद्ध क्रीड़ा करते हुए वनमें विचर रहे थे।

१. भ्रामण—परस्पर एक दूसरेका हाथ पकड़कर घुमाना। २. लङ्घन-गर्तादिका लाँघना। ३. क्षेप-क्षेपण--पत्थरके टुकड़े अथवा गोलियोंको क्षेपणमन्त्र से फेकना। ४. आस्फोटन--ताल ठोकना। ५. विकर्षण-परस्पर एक दूसरे को खींचना। ६. नियुद्ध-मल्लयुद्ध, कुश्ती लड़ना। ७. कभी विल्व-कभी-कुम्भ (गूलर) और कभी आमलकोंको मुष्टिसे फेककर क्रीडा करना, परस्पर दो फलोंका आघात करना। ८. अस्पृश्य-छुआछून। ९. नेत्रबन्ध-आंखमिचौनी।

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ॥ १६ ॥

उसी समय प्रलम्ब नामका एक असुर गोपका रूप धारणकर कृष्ण-बलदाऊको हरण करनेकी इच्छासे वहां आया। भगवान्ने उसे मारनेके विचार-से उसके साथ मैत्री कर ली और गोपोंसे कहा—भैया ! अब हमलोग दो दल बनाकर खेलेंगे। इतना कह एक दलके नायक भैया बलराम और दूसरेके नायक श्रीकृष्ण बन गये। दो-दो गोप साथ मिलकर अपने पृथक्-पृथक् नाम रखकर आते और हमारा नाम सुकर्मा और इसका नाम कुकर्मा है, बताओ किसे लोगे ? जिस दलने जिसे पसन्द किया, वह गोप उसके पक्षमें और दूसरा

दूसरे पक्षमें चला जाता। इस प्रकार कुछ गोप बलरामके पक्षमें और कुछ श्रीकृष्णके पक्षमें बँट गये। फिर कबड्डी आरम्भ हुई। खेलमें यह शर्त रखी गई कि जो दल हार जायगा वह विजयी गोपोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर भाण्डीरवटतक ढोयेगा। खेल आरम्भ हुआ। उसमें बलरामका दल जीता और कृष्णके दलकी हार हुई। हारे हुए गोप विजयी दलको पीठपर चढ़ाकर भाण्डीर वटकी ओर ले चले। कृष्णने श्रीदामाको, भद्रसेनने वृषभको और प्रलम्बासुरने बलरामको अपनी पीठपर चढ़ा लिया। प्रलम्बासुर बलरामको लेकर बड़ी तेजीसे दौड़ा और उतारनेका स्थान भाण्डीर वटको लाँघकर उन्हें आकाशमें ले गया। वहाँ पहुँचते ही उसने अपना विशाल पर्वताकार शरीर धारण किया। पहले तो बलराम कुछ डरे, फिर जब उन्होंने देखा कि यह तो दैत्य है मुझे हरकर ले आया है। तब क्रोधमें भर उसके सिरपर जोरसे एक मुक्केका ऐसा प्रहार किया जिससे उसका सिर तत्काल फट गया। वह मुखसे रक्त उगलता हुआ धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ा एवं तत्क्षण उसके प्राणपखेरू उड़ गये। गोपगण इस अद्भुत घटनासे चकित रह गये और बोले—भैया ! आपने बहुत अच्छा किया। देवतागण प्रलम्बासुरके मारे जानेसे बड़े प्रसन्न हुए और आकाशसे पुष्पवृष्टि कर बलरामकी साधु-साधु कर प्रशंसा करने लगे।

अभ्यवर्षन् बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥ ३२ ॥

प्रलम्बासुरका पूर्वजन्म

कुबेरने शिवपूजनार्थं पुष्पोंके लिये लगाये अपने बगीचेमें यह नियम कर दिया था कि जो इसके पुष्प तोड़ेगा वह मेरे शापसे असुर हो जायगा। एक समय हूहू गन्धर्वका पुत्र विजय तीर्थोंमें भ्रमण करते-करते इस बगीचेमें जा पहुँचा। वहाँ इसने अनजानमें कुछ पुष्प तोड़ लिये, दैवात् पुष्प तोड़ते ही वह तुरत असुर हो गया। बाद उसने कुबेरकी शरणमें जाकर क्षमायाचना की। कुबेरने कहा—अच्छा, द्वापरके अन्तमें बलदेवके हाथसे तेरी मुक्ति होगी।

द्वापरान्ते च ते मुक्तिर्बलदेवस्य हस्ततः।
भविष्यति न सन्देहो भाण्डीरे यमुना तटे ॥

(म० सं० मा० खं० २०।२३)

हूहूसुतः स गन्धर्वः प्रलम्बोऽभून्महासुरः।
कुबेरस्य वराद्राजन् परं मोक्षं जगाम ह ॥ २०।२४

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका अठारहवाँ अध्याय समाप्त।

उन्नीसवां अध्याय

मुञ्जारण्यमें अग्निसे गोप और गौओंकी रक्षा ।

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! भाण्डीरवटके समीप सब ग्वालवाल क्रीड़ामें अत्यन्त दत्तचित्त थे, उनकी गौएँ स्वेच्छासे घास चरती हुई सघन वनमें चली गयीं और चिल्लाती कई वनोंको लाँघती हुई मूँजके वनमें जा पहुँची ।

अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद्वनम् ।
इषीकाटवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः ॥ २ ॥

[इस श्लोकमें बकरी और भैंसोंका भी निर्देश किया गया है। तब क्या भगवान् इन्हें भी चराया करते थे, ऐसी शंका होती है। इसका तात्पर्य आचार्यों ने इस प्रकार बताया है—

अजा स्यादप्रसूता गौः सकृत्सूता महिष्यपि ।
अन्या गाव इति प्रोक्ता इति शब्दार्थवेदिनः ॥ शब्दरत्न

जो गाय बिआई नहीं उन्हें 'अजा', जो एक बार बच्चा पैदाकर चुकीं उन्हें 'महिषी' तथा अन्योंको 'गौ' कहा गया है। भगवान् बकरी या भैंस नहीं चराते थे ।

गोप लोग गौओंको न देखकर चिन्तित हो उन्हें इधर-उधर ढूँढने लगे । किन्तु उनका कहीं पता न चला। तब वे बड़े व्याकुल हो, खुरों और दाँतोंसे कटी घासके तथा गौओंके खुर चिन्होंके सहारे आगे बढ़े । वहाँ उन्होंने देखा कि गौएँ मूँजके वनमें रास्ता भूलकर चिल्ला रही हैं। तब थके प्यासे गोपोंने सबको वहाँसे लौटाया। इधर भगवान्ने भी गंगा, यमुना सरस्वती आदि नामोंको ले-लेकर गौओंको पुकारा। नाम सुनते ही वे गौएँ रँभाती हुई दौड़-दौड़कर आने लगीं। इसी समय, उस वनमें भयंकर अग्नि लग गयी जिसने चारों ओरसे गोप और गौओंको घेर लिया। ग्वालवाल त्राहि-त्राहि कर चिल्ला उठे । भगवान्ने कहा—गोपों ! तुम डरो मत, अपने नेत्र बन्द कर लो । गोपोंने तदनुसार अपने-अपने नेत्र बन्द कर लिये । भगवान्ने तुरत अपनी योगशक्तिसे उस अग्निका पानकर गोप और गौओंकी रक्षा की और उन्हें भाण्डीर वटके समीपतक पहुँचा दिया। जब गोपोंने अपने-अपने नेत्र खोले तब अपनेको भाण्डीर वटके समीप देखकर उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा ।

सायंकाल भगवान् गोप और गौओं सहित व्रजमें लौटकर आये। भगवान्का दर्शनकर गोपियोंको बड़ा आनन्द हुआ। अनन्तर गोपोंने नन्द बाबा और यशोदासे कहा—अरी मैया! तेरे बलदाऊ और कन्हैयाने तो आज प्रलम्बासुरका वध किया और दावाग्निसे हमलोगोंकी रक्षा की। भगवान्के इस अद्भुत पराक्रमको सुनकर सभी गोपी और गोप इन दोनोंको देवता मानने लगे।

वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायणका बीसवाँ विश्राम]

बीसवाँ अध्याय

भगवान्की लीलामें सहायतार्थं वर्षा एवं शरद्-ऋतुका आगमन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा।
विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥ ३ ॥

फिर भगवान्की लीलामें सहायता करने हेतु वर्षा ऋतुका आगमन हुआ। जिसमें रंग-बिरंगे और सुहावने नाना प्रकारके बहुतसे जीवजन्तु उत्पन्न हुए। दिशाओंमें बिजली चमकने और गर्जने तर्जने लगीं। आकाश घनघटाओंसे आच्छन्न हो गया। मेघके दलके दल गरज-तरजके साथ वायुके झकोरोंके साथ जल बरसाने लगे। ग्रीष्मके तापसे तपी हुई सूखी पृथ्वी जल पाकर वैसेही फूलकर निखर उठी जैसे कामनासे तपस्या करनेवाले पुरुषका शरीर तपका फल मिलते ही प्रसन्न हो हरा-भरा हो जाता है। जैसे वर्षाऋतुमें सन्ध्याके समय अन्धकारसे जुगुनू चमकते हैं तारे नहीं वैसे ही कलियुगमें मनुष्योंकी पापमय प्रवृत्ति होनेसे पाखण्डोंका ही साम्राज्य दीखता है वेदोंका अस्तित्व नहीं रहता।

यथा पापेन पाखण्डा नहि वेदाः कलौ युगे ॥ ८ ॥

मेघकी ध्वनि सुनकर मेढक वैसे ही टर्र-टर्र करने लगे जैसे कि गुरुमुखसे मन्त्र सुनकर बटु-समुदाय वेद रटते हैं। वर्षामें क्षुद्र नदियाँ उमड़कर वैसे ही बहने लगीं जैसे कि विषयी पुरुषोंकी शारीरिक सम्पत्ति (स्वास्थ्य) इतराकर बह जाती है। पृथ्वी राजलक्ष्मीके समान छत्राकोंसे शोभित हो गई।

धानोंके खेत किसानोंको आनन्द देने लगे। जल-स्थल-वासी सभी जीव वृष्टिसे तृप्त हो बड़े ही सुहावने मालूम पड़ने लगे। समुद्र भी नदियोंसे मिलकर बड़ी-बड़ी तरंगोंसे ज्वारभाटाके साथ उछलता था। मयूर मधुर-मधुर सुन्दर ध्वनियाँ करते नृत्य कर रहे थे। खजूर, जामुन आदिके वृक्ष फलोंसे लदे थे। वनके चारों ओर अपूर्व सुषमा बिखर रही थी। भगवान् ऐसी अनुपम वनकी समृद्धि देखकर क्रीड़ा करने हेतु गोपोंके साथ वहाँ पहुँचे। गौएँ अपने स्तनोंके भारसे धीरे-धीरे चल रही थीं। भगवान्के बुलाते ही उनके स्तनोंसे दूध टपकने लगता था। वर्षा होनेपर भगवान् कभी वृक्षके मूलमें तो कभी गुफामें जाकर क्रीडा करते थे। कभी शिलाओंपर कन्दमूल फल रखकर खाते तो कभी दही-भात श्रीदामा आदि गोपोंके साथ खाते थे। साँड़, गौ और बछड़े हरी-हरी घासोंपर नेत्र बन्द किये मुँह चला रहे थे। इस प्रकार वर्षा ऋतुने मूर्तिमान् हो भगवान्के लिये प्राकृतिक आनन्दका द्वार खोल दिया। भगवान्ने सहर्ष उसे अपनाकर पुनः विदा किया। वर्षा ऋतुके विदा होते ही शरद ऋतु का आगमन हुआ। जैसे योग द्वारा मनुष्योंके चित्त निर्मल हो जाते हैं वैसे ही शरद ऋतुके आगमनसे आकाश और जल स्वच्छ हो गया। मेघ अपना सर्वस्वरूपी जल त्यागकर शुक्लवर्ण हो गये जैसे कि मुनिगण कामनाओंको त्यागकर निर्मल एवं शान्त हो जाते हैं। समुद्र भी वैसे ही सुस्थिर हो गया जैसे योगीजन शब्दजालका त्यागकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं, आकाश, नक्षत्रों एवं ताराओंसे सुशोभित होने लगा। चन्द्रमाकी निर्मल चाँदनी सर्वत्र बिखर गई। नगर और ग्रामोंमें नवान्नप्राशनार्थ नाना प्रकारके उत्सव होने लगे। चारों ओर लोग इस शारदीसुषमापर मुग्ध हो आनन्दित हो उठे।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका बीसवाँ अध्याय समाप्त।

इक्कीसवाँ अध्याय

भगवान्का सुमधुर-वेणुनाद और गोपियों द्वारा उसका गुणगान

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार, शरद ऋतुके आगमन से वनकी शोभा अपूर्व हो गई थी।

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम् ।
मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥२॥

पुष्पित वनराजियोंपर बैठे मतवाले भ्रमर एवं पक्षी गण मधुर कलरव कर रहे थे, जिससे नदी, पर्वत, सरोवर सभी जगह प्रतिध्वनियाँ गूँज उठीं थी। भगवान्‌ने अद्‌भुत गोप वेष धारण कर वेणुवादन किया और गोचारणके लिये गोपोंके साथ वनमें प्रवेश किया। हे राजन्! तुम भगवान्‌के इस विश्वमोहन रूपका ध्यान करो।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं[1] च मालाम्।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥५॥

जिनके सिरपर मोर पंखका मुकुट शोभा पा रहा है। कानोंमें चतुर्दल कर्णफूलोंकी छवि सुशोभित है। पीताम्बर एवं वैजयन्ती (पञ्चविध सुगन्धित पुष्पमाला) धारण किये हुए वेणुके छिद्रोंको अधरसुधा पिला रहे हैं। गोपमण्डली जिनकी कीर्तिगानमें मस्त हो रही है। संचारके समय वनभूमि एवं पत्थरोंपर पड़े जिनके चरणचिन्होंको देखकर मनमें अनुराग उमड़ आता है, ऐसे परम विमोहक गोपवेषमें भगवान् श्रीकृष्णने वृन्दावनमें प्रवेश किया। वेणुका सुमधुर नाद कानोंमें पड़ते ही गोपियाँ क्षुभित हो उठीं। कुछ देर तक तो वे कुछ बोल ही न सकीं फिर किसी तरह चित्त स्थिर कर आपसमें कहने लगीं—अरी सखियो! सचमुच नेत्र पानेका यही मुख्य फल है कि वनमें गौ चराते हुए भगवान्‌का श्रीमुख आज हम देख रही हैं। वेणु वादन करते हुए वे अपने कृपा भाजनोंको कैसे मधुमय कृपा-कटाक्षसे देख रहे हैं। दूसरीने कहा—सखि! जब ये रंग-बिरंगे पुष्पोंसे सुसज्जित हो सुन्दर वस्त्र पहने गोपोंके बीच सभामें बैठकर वेणु वादन करते हैं तब इन्हें देख कामदेव भी लज्जासे सिर नीचा कर लेता है। इनकी सुन्दरता अवर्णनीय है। तीसरीने कहा—क्यों री सखि! इस वेणुने न जाने कौनसे ऐसे पुण्य किये हैं जो यह अकेली ही भगवान् की अधरसुधा पान करती है। अरी, जरा

---

१. श्वेतैः पीतैस्तथा रक्तैर्हरितैर्नीलवर्णकैः।
पुष्पैरेभिः सुगन्धैश्च वैजयन्त्यस्ति मालिका ॥

अथवा

वैदूर्यमुक्ताफलनीलवज्रैः समाणिकैः संग्रथिता हि माला।
वायोरपां भूमिखतेजसां हि तत्त्वैः प्रदिष्टा खलु वैजयन्ती ॥
(भक्तिसुधार्णव)

देख तो सही, जिन नदियोंके जलसे यह पुष्ट हुई है उन्हें रोमाञ्च हो रहा है। इसकी जातिके वृक्षोंको तो देख, मधुधाराके रूपमें इनके आनन्दाश्रु उमड़े आ रहे हैं। चौथीने कहा—इनके निवाससे वृन्दावन आज पृथ्वीका गौरव बन गया है। पाँचवींने कहा—देखो न, सखि! ये हरिणियाँ भी तो भगवान्के सुन्दर वेषकी अपने प्रेमपूर्ण निरीक्षणोंसे पूजा कर रही हैं। छठीने कहा—उधर देखो सखि! विमानोंपर पतियोंके साथ बैठी देवाङ्गनाएँ भी इस छविपर कैसी विमुग्ध हो रही हैं। अपने शरीरतक की उन्हें सुध-बुध नहीं रही। सातवींने कहा—अरी सखियो! क्या कहूँ—

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थु-
र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥ १३ ॥

तिर्यग् योनिमें उत्पन्न ये गौएँ भी दोनों कान उठाकर यह वेणुनाद सुन रही हैं। इनके बछड़े मुँहमें भरा दूध भी नहीं घोंट पाते, केवल खड़े-खड़े भगवान्की छवि निहार रहे हैं। इनकी दूध निगलनेकी शक्ति तक इस व्यामोहिनी वंशीने विलुप्त कर दी है। आठवींने कहा—इस वनके पक्षी तो मुनिराजसे जान पड़ते हैं जो शाखाओंपर बैठे नेत्र बन्द किये वेणुगीत सुन रहे हैं। नौवींने कहा—वेणुनाद सुनकर नदियाँ तक रुक जाती हैं और तरंगरूपी अपने हाथोंसे भगवान्के चरणोंमें कमल भेंट कर पूजा करती हैं। दसवींने कहा—देख सखि! घाममें गौ चराते हुए अपने सखापर मेघ छाया कर कैसे विन्दुरूपी पुष्प बरसा रहे हैं। ग्यारहवींने कहा—भीलोंकी स्त्रियाँ घासपर लगे भगवान्के चरणकुङ्कमको अपने स्तन और कपोलोंपर मलकर आनन्दसे फूली नहीं समाती हैं।

मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः।[1]

बारहवीं बोली--गोवर्द्धन पर्वत तो भक्तराज जान पड़ता है क्योंकि वह कोमल-कोमल घासें, झरना, कन्द, मूल, फल आदिसे प्रतिदिन सपरिवार भगवान्का सत्कार करता है। तेरहवींने कहा—अरी सखियो! इनके सुन्दर रूप तथा मुरलीकी मधुर तानपर गतिमान् स्थावरभावको और स्थावर जङ्गमभावको प्राप्त हो रोमाञ्चित हो जाते हैं। इस प्रकार, तेरह गोपियोंने पृथक्-

१. पानीयं सूते इति पानीयसूः निर्झरः।

पृथक् भावसे वेणुनादकी महत्ताका वर्णन किया। दस इन्द्रियाँ एवं चार अन्तःकरण मिलकर कुल चौदह होते हैं। इनमें अभिमानको त्याग, इन्द्रियों द्वारा बुद्धिसे चित्तमें भगवान्को स्थिरकर गोपियोंने अपने मन उन्हींके चरणों में लगा दिये यही इन तेरह श्लोकोंकी संख्याका तात्पर्य है।

परिकरीकृतपीतपटं हरिं शिखिकिरीटनतीकृतकन्धरम्।
लकुटवेणुकरं चलकुण्डलं पटुतरं नटवेषधरं भजे॥

(ग० सं०)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त

बाईसवाँ अध्याय

गोपियोंका चीरहरण एवं उन्हें वरप्रदान

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः[1]।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्॥ १॥

हेमन्त ऋतुके प्रथम मास मार्गशीर्षमें नन्द गोकुलकी कन्याओंने हविष्यान्न भोजनकर कात्यायनी देवीके पूजनका नियम आरम्भ कर दिया। वे प्रतिदिन [2]अरुणोदयवेलामें चार घड़ी रात्रि शेष रहते यमुना स्नान करने जाती थीं वहाँ देवीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर गन्ध-पुष्पादिसे श्रद्धापूर्वक उनका पूजन करती और साथ ही श्रीकृष्णको अपना पति बनानेका संकल्प कर इस मन्त्रका जप करती थीं—

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः॥ ४॥

इस मन्त्रका कम-से कम एक सहस्र अशक्तावस्थामें एक माला अथवा यथा-शक्ति जप करनेसे कन्याको अपने अनुकूल सुन्दर पतिकी प्राप्ति होती है। व्रजकी कन्याओंने श्रीकृष्णमें चित्त लगाकर एक महीने तक विधिपूर्वक व्रतका पालन किया। वे परस्पर एक दूसरेका हाथ पकड़ अपने नामके साथ श्रीकृष्णका नाम मिलाकर गान करती हुई स्नान करने जातीं थीं। एक दिन स्नानके लिये यमुना तटपर जाकर वे नित्यकी भाँति अपने वस्त्रोंको किनारेपर रख; कृष्णका

---

१. यहाँ यौवन प्राप्त कन्याओं का ग्रहण है। 'कुमारी कन्यकानार्यो': इति धरणि
२. उदयात् प्राक् चतस्रस्तु घटिका अरुणोदयः (माधव)

गान करती हुई वे जलमें विहार करने लगीं। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण उनके मनोरथ सिद्ध करनेके लिये अपने सखाओं सहित वहाँ जा पहुँचे और गोपकन्याओंके तटपर रखे हुए वस्त्रोंको उठाकर झट कदम्बके ऊपर चढ़ गये। बादमें हँसते हुए बालकोंके समक्ष श्रीकृष्णने कन्याओंसे कहा—

हसद्भिः प्रहसन् बालैः परिहासमुवाच ह ॥९॥

अरी! देखो तो सही, ये वस्त्र कदम्बकी शाखाओंपर किसने लटका दिये? गौएँ चराते हुए दूरसे ही मैंने देखा कि क्या मेरा कदम्ब यही है? आज तो यह पुष्प और फलकी जगह रंग-बिरंगे वस्त्र धारण किये हुए है। इसी कौतूहलसे मैं यहाँ आकर इसपर चढ़ गया। कन्याओंने कहा—लाला! ये तो हमारे वस्त्र हैं। कृष्णने कहा—यदि तुम्हारे हैं तब शाखाओंपर कैसे लटके? कन्याओंने कहा—तुमने ही तो चुराकर लटकाये हैं। कृष्णने कुछ आवेशमें आकर कहा—ठीक है, मुझे चोर ठहरानेकी तुममें सामर्थ्य है? मैं नन्दराजका पुत्र हूँ। जान पड़ता है, इस अभियोगको लेकर तुम्हें राजा कंसके समीप जाना पड़ेगा। कन्याओंने कहा—लाला! नाराज न होओ। देख लो ये वस्त्र स्त्रियोंके हैं या पुरुषोंके? कृष्णने कहा—यह तो मैं देख ही रहा हूँ। तो क्या संसारमें स्त्री तुम्हीं हो, दूसरी नहीं? कन्याओंने कहा—इस निर्जन वनमें हमारे सिवा दूसरी और आयेगी कौन? कृष्णने कहा—क्या एकान्तमें विचरनेवाली तुम्हीं हो, दूसरी कोई नहीं? तब कन्याओंने कहा—लाला! हम दूसरोंकी तरह यहाँ खेलने नहीं दुर्गापूजन करने आती हैं। श्रीकृष्णने कहा—क्या दुर्गापूजनेवाली तुम्हीं हो, दूसरी नहीं। कन्याओंने कहा—नहीं लाला, नहीं। कृष्णने कहा—वाह, क्या बात है! ये वस्त्र देवांगनाओंके जान पड़ते हैं। वे रात्रिमें आकाशसे उतरकर यहाँ वस्त्र रखती थीं और स्नान-पूजनकर चली जाती थीं। कन्याओंने कहा—तब वे वस्त्र यहाँ छोड़ क्यों गयीं? लाला, तू तो बड़ा चंट हो गया है। यह सुनकर कृष्ण हँस पड़े और कहने लगे—अच्छा, तुम सब यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्र ले लो, मैं सत्य कहता हूँ, परिहास नहीं करता। पृथक्-पृथक् अथवा एक साथ आकर अपने वस्त्र ले जाओ। भगवान्के ऐसे परिहासपर वे कन्याएँ प्रेमविह्वल हो गयीं और एक दूसरीको देख मुसकराती हुई लज्जावश बाहर न निकल सकी। कंठपर्यन्त ठण्डे जलमें खड़ी वे थर-थर काँपती हुई भगवान्से बोलीं—

आकण्ठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥
श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम्।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥ १५ ॥

श्यामसुन्दर ! हम सब तुम्हारी दासियाँ हैं, जो तुम कहोगे वही हम करेंगी। हे धर्मज्ञ ! तुम हमारे वस्त्र दे दो, नहीं तो हम जाकर राजा कंससे तुम्हारी शिकायत कर देंगी। यहाँ क्रमसे शूद्र, वैश्य, ब्राह्मण और क्षत्रिय वंशकी कन्याओंका वर्णन है। श्रीकृष्णने कहा—यदि तुम हमारी दासी हो और हमारा कहना भी करना चाहती हो तो हमारी आज्ञा है कि तुम यहीं आकर वस्त्र ले जाओ। इसपर कन्याएँ हाथोंसे अपनी लाज बचाकर जलसे बाहर निकलीं। शुद्धभावसे प्रसादित भगवान्ने उनके वस्त्र कंधोंपर रखकर कहा—कन्याओ ! तुम सबने जलमें नग्न स्नानकर वरुणदेवका महान् अपराध किया है। इसके प्रायश्चित्तके निमित्त अञ्जलि बाँधकर उन्हें प्रणाम करो और अपने वस्त्र ग्रहण करो।

स्मृतियोंमें नग्नस्नान निषिद्ध बताया गया है—

स्नानं दानं तथा होमं शयनं गमनं भुजिम्।
विवस्त्रो न प्रकुर्वीत कुर्वाणः पापकृद् भवेत्॥

कन्याओंने भगवान्की आज्ञा मानकर वैसा ही किया और भगवान्ने भी उन्हें उनके वस्त्र दे दिये। अनन्तर, वे कन्याएँ भगवान्के चरण-स्पर्शकी कामनासे सलज्ज हो वहीं खड़ी रहीं। यह देख भगवान्ने उनसे कहा—कन्याओं ! मैंने तुम्हारा संकल्प जान लिया है। मैं उसका अनुमोदन करता हूँ। वह सत्य होगा, इसमें सन्देह नहीं। इस समय तुम व्रजमें लौट जाओ। आगे आनेवाली शरद ऋतुकी रात्रियोंमें तुम मेरे साथ विहार करोगी। शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्की आज्ञा पाकर वे कन्याएँ श्रीकृष्णके चरण-कमलका चिन्तन करती हुई अपने-अपने घर लौट गईं। भगवान् भी गौएँ चराते-चराते वृन्दावनसे बहुत दूर आगे निकल गये। तीव्र मध्याह्नके समय छत्रके समान सिरपर छाया किये वृक्षोंको देखकर भगवान्ने गोपोंसे कहा—अहो ! इनका जन्म प्राणियोंको सुख देनेवाला है। ये स्वयं वायु, वर्षा; शीत और घाम सहकर दूसरोंको सुख पहुंचाते हैं। संसारमें मनुष्यके जीवनकी सार्थकता इसीमें है कि वह प्राणसे, धनसे और वाणीसे सबका कल्याण करे किसीका भी अनिष्ट चिन्तन न करे।

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा॥ ३५॥

तदनन्तर, भगवान् पत्र पुष्प और फलोंकी समृद्धिसे झुके हुए वृक्षोंके मध्यसे निकलकर यमुना तटपर गये वहाँ गौओंको शीतल-मधुर जल

पिलाकर और स्वयं भी भगवान्ने सबके साथ जल पिया। किन्तु कुछ ही देर बाद गौ चराते-चराते गोपगण भूखसे व्याकुल हो उठे, वे बलदाऊ एवं श्रीकृष्णके समीप जाकर इस प्रकार बोले।

कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥३८॥

चीरहरणका रहस्य

अतसीकुसुमोपमेयकान्तिर्यमुनाकूलकदम्बमध्यवर्ती ।
नवगोपवधूदुकूलशाली वनमाली वितनोतु मङ्गलानि ॥

चीरहरणका प्रसंग भावुक प्राणियोंको बहिर्दृष्टिके सिवा अन्तर्दृष्टिसे भी मननीय है। गोप भगवान् श्रीकृष्ण और गोपियाँ उनके अंशभूत जीव हैं। जीव 'पुरुषत्व' को भुलाकर प्रकृति बना हुआ है। स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर ये दो उसके आवरण हैं। शास्त्रोंमें ये 'अपरा' और 'परा' प्रकृति रूपसे कहे गये हैं। ये ही गोपीरूप जीवके दो वस्त्र हैं। जब जीवने भगवत्प्राप्तिकी इच्छासे साधना आरम्भ की तब भगवान्ने कृपाकर उसके उक्त दोनों वस्त्र हर लिये जिससे जीवका देहाभिमान निवृत्त हो गया और वह नग्न अर्थात् विशुद्धचित्त होकर ईश्वरसे मिलनेका अधिकारी हो गया।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

ये आवरण अनेक जन्मोंके हैं। मायाके राज्यमें इनके छूटनेपर भी 'लज्जा' और 'लोकापवाद' रूप दो बाधाएं रह ही जाती हैं। ये ही दो हाथ हैं। भगवान्ने इन्हें भी उठवा दिया। सिर झुकानेसे मायाके सर्वथा परास्त होनेका संकेत सूचित होता है। मायाकी सर्वथा निवृत्ति होनेपर ही गोपियाँ हाथ उठाकर और सिर झुकाकर भगवान्को प्रणाम कर सकीं। बाह्यदृष्टिमें कथा है कि जनकपुरकी कन्याएँ भगवान् श्रीरामके अलौकिक सौन्दर्यको देखकर मोहित हो गयी थीं। वे उसी जन्ममें उन्हें अपना पति बनाना चाहती थीं। किन्तु मर्यादापुरुषोत्तम राम उस जन्ममें उनकी वह कामना पूर्ण न कर सके। उन कन्याओंने भगवान्को अपना तन-मन-धन सब कुछ अर्पण कर दिया। एक दिन स्वप्नमें ही भगवान् श्रीराम प्रेमाकृष्ट हो उनके समक्ष प्रकट हो गये। कन्याओंने उनके गलेमें जयमाला डालकर उन्हें अपना पति बना लिया था।

भगवान्‌ने भी स्वप्नमें इसकी स्वीकृति देते हुए उन्हें आदेश दिया कि तुम कात्यायनी देवीका व्रत करो। मैं कृष्णावतारमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।

श्रीरामस्य वराज्जाता नवनन्दगृहेषु याः।
कमनीयं नन्दसूनुं दृष्ट्वा ता मोहमास्थिताः॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि चक्रुः कात्यायनीव्रतम्।
(ग० सं०)

तदनुसार रामके वरदानसे वे कन्याएँ व्रजमें उत्पन्न हुईं। भगवान्‌के रूप-पर मोहित हो वे सब उन्हें पति रूपमें वरण करना चाहती थीं। उन्होंने विवाह नहीं किया। केवल देवीकी आराधनाकर उन्होंने अपने जन्म बिता दिये। उसी पूर्वसंस्कारवश इन गोपकन्याओंकी वेणुनाद सुनते ही स्मृति जाग उठी और हेमन्त ऋतुके मार्गशीर्ष मासमें उन्होंने कात्यायनी देवीकी आराधना आरम्भ कर दी। कृतप्रतिज्ञ भगवान् वरप्रदान द्वारा अपनी नित्यसिद्ध पत्नियोंके चिर अभिलषित मनोरथ पूर्ण करनेको वहाँ पहुँच गये। वे उनके वस्त्र उठाकर ले गये क्यों? भगवान्‌को पति बना नग्न स्नान कर वरुणको अंग प्रदर्शन करना एक महान् अपराध था। इसके प्रायश्चितार्थ एक हाथसे प्रणाम करना भी धर्मशास्त्रमें निषिद्ध है—

एकेन पाणिना यो वै प्रणमेद्देवमच्युतम्।
तस्य दण्डः करच्छेद इति धर्मविदो विदुः॥

इसीलिये मस्तकमें अञ्जलि बाँधकर प्रणाम करनेकी भगवान्‌ने व्यवस्था दी और नग्नस्नानका निषेध किया। भगवान् तो इनके नित्यसिद्ध पति थे ही उन्होंने विनोदमें उनके अनुरूप ही छोटा-सा प्रायश्चित बताकर उन्हें अपना लिया यह साधारण बात न थी। आचार्य वंशीधरजी इस विषयका संकेत कर लिखते हैं—

ननु 'नग्नां नेक्षेत्परस्त्रियम्' इति स्मृतेर्भगवताप्यन्याय्यं कुतः कृतमिति चेच्छृणु—'नहि ताः परस्त्रियः ताभिर्भगवते समर्पितदेहत्वात् पूर्वावतारेषु तथैव भगवतापि प्रतिज्ञातत्वाच्च।

इससे स्पष्ट है कि ये कन्याएँ भगवान्‌की नित्यसिद्ध पत्नियाँ थीं। कुछ आचार्योंका यह दृष्टिकोण भी मननीय है—यह भागवतीकथा मुक्त, मुमुक्षु एवं विषयी तीनों प्रकारके प्राणियोंके कल्याणार्थ कही गयी है। विषयी प्राणियोंका आकर्षण बिना शृंगार सम्बन्धके नहीं हो सकता इसलिये व्यासजीने बड़े विवेकपूर्वक इस कथाके व्याजसे उन्हें तत्त्वज्ञान करानेका प्रयत्न

किया है। भगवान्का यह नियम है कि जो जिस भावनासे उन्हें भजता है वे उसी तरह उसका मनोरथ पूर्ण करते हैं। गोपियाँ कामसे, कंस भयसे, शिशुपाल आदि राजा द्वेषसे, यादव संबन्धसे, पाण्डव स्नेहसे और नारद आदि भक्तिसे भगवान्को प्राप्त हुए। इसलिये जैसे भी हो किसी भी उपायसे भगवान्में अपना मन स्थिर करना चाहिये। यही जीवनका मुख्य लक्ष्य है गोपियोंके अनुरागसे ओत-प्रोत यह आख्यान इसी तथ्यपर प्रकाश डालता है।

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
संबन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो ॥भा० ७।१।३०
तस्मान् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥३१॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका बाईसवाँ अध्याय समाप्त।

तेईसवाँ अध्याय

अन्नयाचनाके व्याजसे यज्ञपत्नियोंपर भगवान्की कृपा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! पूर्व अध्यायमें बतलाया जा चुका है कि भूखसे व्याकुल ग्वालवाल भगवान्की शरणमें आये। ये बालक प्रतिदिन भोजन साथ लाते थे, किन्तु उस दिन कन्याओंको छकानेकी जल्दबाजीमें खाद्यसामग्री छोड़कर चले आये थे। अतः जब भूख लगी तब वे बलदाऊ एवं श्रीकृष्णके समीप जाकर बोले—

राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण।
एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥

भैया! आप तो शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। आज क्षुधारूपी शत्रु हमें सता रहा है। कृपया आप इसका भी दमन करें। क्षुधाको भी वेदमें शत्रु कहा गया है—

क्षुत्खलु वै मनुष्यस्य भ्रातृव्यः

भगवान्ने यज्ञपत्नियोंपर कृपा करनेकी इच्छासे ग्वालबालोंसे कहा हे गोपो! तुम लोग यज्ञ-मण्डपमें चले जाओ। वहाँ वैदिक ब्राह्मण स्वर्गकी कामनासे 'आङ्गिरस' नामका यज्ञ कर रहे हैं। तुम हमारा एवं बलदाऊका नाम लेकर उनसे भोजन माँग लाओ। ग्वालबाल भगवान्की आज्ञासे यज्ञ मण्डपमें गये और ब्राह्मणोंको प्रणाम कर बोले—हे भूदेवगण! आप

हमारी एक प्रार्थना सुनें। यहाँ पासमें ही गौ चराते हुए कृष्ण और बलदाऊ आ गये हैं और वे दोनों इस समय भूखे हैं। उन्होंने हमें यहाँ भेजा है, यदि आपकी श्रद्धा हो तो आप कुछ भोजन हमें दे दें। किन्तु ब्राह्मणोंने क्रियाके गर्वसे भगवान्‌की इस याचनापर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। यद्यपि यज्ञ, देवता, यजमान, धर्म और नाना यज्ञीयद्रव्य, सभी पदार्थ भगवान्‌के ही स्वरूप हैं। उनसे पृथक् कुछ भी नहीं है।

देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥१०॥

फिर भी, तुच्छ स्वर्गकी कामना रखनेवाले बुद्धिहीन वे ब्राह्मण साक्षात् परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णको मनुष्य रूपमें समझ न सके। उन्होंने 'हाँ' या 'न' कुछ भी उत्तर नहीं दिया। गोप निराश होकर वहाँसे लौट आये और वहाँका सारा वृत्तान्त भगवान्‌से कह सुनाया। भगवान्‌ने हँसकर गोपोंसे कहा—अच्छा, अब तुम एक बार पुनः जाओ और उनकी यज्ञपत्नियोंसे जाकर भोजन माँगो। वे तुम्हें इच्छानुसार अवश्य भोजन देंगी। गोप लोग भगवान्‌की आज्ञा मान पुनः वहाँ गये और यज्ञपत्नियोंको प्रणाम कर भगवान्‌का आदेश उन्हें सुनाया। उसे सुनते ही वे भावावेशमें विक्षिप्त सी हो गयीं और नानाप्रकारके पकवान चाँदीके पात्रोंमें भरकर बड़ी शीघ्रतासे भगवान्‌के समीप जा पहुँची। वहाँ उनके अनुपम सौन्दर्यका पानकर वे मुग्ध हो स्तब्धसी रह गईं और उनके सारे पाप ताप सर्वदाके लिये निवृत्त हो गये। भगवान्‌ने भी यज्ञपत्नियोंका स्वागत-सत्कार कर उन्हें आदरसे बैठाया, उनका अन्न ग्रहण किया और बोले—हे विप्रपत्नियों! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें हमारा वांछित दर्शन हो चुका। अब तुम यज्ञमण्डपमें लौट जाओ। कारण तुम्हारे पति तुम्हारे द्वारा ही अपना यज्ञ पूरा कर सकेंगे। यज्ञपत्नियोंने कहा—हे नाथ! आप ऐसा कठोर वचन न कहें। हम तो सबको त्यागकर आपकी शरणमें आयी हैं। हमारे भाई-बन्धु अब हमें ग्रहण नहीं करेंगे। हम अब आपकी ही सेवा कर अपना शेष जीवन बितायेंगी। आपसे अतिरिक्त हमारी दूसरी गति नहीं है। भगवान्‌ने कहा—देवियो! तुम चिन्ता न करो। तुम्हारा कोई भी अनादर न करेगा, तुम वहाँ जाओ और हमारा ध्यान करती रहो उससे तुम शीघ्र ही हमको प्राप्त हो जाओगी। हे राजन्! यह सुनकर वे ब्राह्मणपत्नियाँ यज्ञमण्डपमें गयीं और ब्राह्मणोंने उनमें किसी प्रकारकी दोष दृष्टि न कर बड़े प्रेमसे उनके साथ यज्ञ पूर्ण किया। वहाँ यज्ञमण्डपमें एक स्त्रीको उसके पतिने हठपूर्वक रोक रखा था। वह भगवान्‌का दर्शन करने

न जा सकी थी। उसने वहीं यथाश्रुत भगवान्‌का ध्यानकर भावावेशमें शरीर त्याग दिया और वह सबसे पहले भगवान्‌से जाकर मिल गयी। भगवान्‌ने यज्ञपत्नियोंद्वारा अर्पित चातुर्विध अन्नसे गोपोंको यथेच्छ भोजन कराया और स्वयं भी भोजन किया। याज्ञिक ब्राह्मण अपनी पत्नियोंकी भगवान्‌में इस प्रकारकी अलौकिक निष्ठा देखकर बड़े प्रसन्न हुए और अपनेको उससे हीन जान पश्चात्ताप कर धिक्कारने लगे—

धिग् जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम्।
धिक्कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥४०॥

जो भगवान्‌से विमुख हैं उन प्राणियोंके त्रिविध[1] जन्मको, विद्याको, व्रतको, बहुज्ञताको, कुलको और क्रियाके चातुर्यको अधिक क्या कहें उनका जो कुछ भी वैभव ऐश्वर्य है उन सबको धिक्कार है, धिक्कार है।

हमने भगवान्‌की आज्ञाका उल्लंघन किया। हम बड़े अज्ञानी एवं हतभाग्य हैं। गोपों द्वारा भगवान्‌ने हमें अपना स्मरण भी कराया, फिर भी हम अभिमान वश उन्हें पहचान न सके। हे भगवन्! आप हमारा अपराध क्षमा करें। हम आपकी शरणमें हैं। इस प्रकार पश्चाताप कर अपनेको धिक्कारते हुए वे ब्राह्मण भगवान्‌के दर्शनोंकी अभिलाषा करने लगे, किन्तु कंसके भयसे वे वहाँ जा न सके। कंसाद्भीता न चाचलन्।

यज्ञपत्नियोंका पूर्वजन्म

ये यज्ञपत्नियां पूर्वजन्ममें सप्तर्षियोंकी स्त्रियाँ थीं। एक समयकी बात है कि अग्निदेव उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गये जिसपर ऋषियोंने अग्निको सर्वभक्षी होनेका और अपनी पत्नियोंको मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होनेका शाप दे दिया। पत्नियोंके अनुनय-विनय करने पर सप्तर्षियोंने उनपर अनुग्रह किया और कहा—कृष्णावतारमें भगवान्‌को अन्न-प्रदान कर तुम्हें विष्णु लोककी प्राप्ति हो जायगी।

ता आगत्य महीं शापाद् बभूवुर्विप्रयोषितः।
दत्त्वान्नं हरये भक्त्या प्रजग्मुर्हरिमन्दिरम्॥
(ब्रह्मवैवर्त १८।१२३)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका तेईसवाँ अध्याय समाप्त।

---

१. शुद्ध माता पिता से २. उपनयन से ३. दीक्षा से।

चौबीसवाँ अध्याय

गोवर्धनमहोत्सव द्वारा इन्द्रका दमन

शुकदेवजी बोले-हे राजन् ! अभी तुम्हें एक यज्ञका प्रसंग सुनाया, अब इन्द्र यज्ञका प्रसंग सुनो। पूर्वयज्ञमें ब्राह्मणोंको अपनी क्रियाका गर्व था और इसमें है इन्द्रको अपने इन्द्रत्व का गर्व। भगवान्ने दोनों यज्ञोंमें उन दोनोंके अहंकारको दूरकर उनपर कृपा की।

भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः।
अपश्यन्निवसत् गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥१॥

बलदेवजीके साथ गोकुलमें निवास करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने एक दिन गोपोंको इन्द्रयज्ञके लिये उद्यत देखा। उन्होंने नन्द बाबाके समीप जाकर बड़ी नम्रतासे पूछा—पिताजी ! यह किस यज्ञका उद्योग हो रहा है। इसका उद्देश्य और फल क्या है ? इसमें क्या सामग्री लगती है ? क्या यह पूजा शास्त्रीय है या आचार-परम्परासे प्राप्त है ? नन्द बाबाने कहा—लाला ! यह यज्ञ इन्द्रके लिये हो रहा है। वे मेघोंके राजा हैं उनकी प्रेरणासे ही मेघ जलवृष्टि द्वारा नाना प्रकारके धान्य पैदा कराते हैं। हम उन्हीं द्रव्योंसे इन्द्रका पूजन कर शेष धान्यों द्वारा अपने परिवारका पोषण करते हैं। जो मनुष्य काम, क्रोध या लोभसे इस परम्परागत धर्मका त्याग करता है उसे संसारमें सुख नहीं मिलता। हे राजन् ! नन्दआदि गोपोंके ऐसे वचन सुनकर भगवान्ने इन्द्रके अहंकार नष्ट करनेकी दृष्टिसे कहा- पिताजी ! आप यह क्या कहते हैं ? संसारमें जीव कर्मसे उत्पन्न होता है और उसे सुख-दुःख, मान अपमान,हानि-लाभ ये सब कर्मसे ही मिलते हैं। यदि फल देने वाला कोई अन्य ईश्वर है तो वह कर्म कर्त्ताको ही फल देता है अकर्ताको नहीं। ऐसी दशामें कर्म करने वालोंको इन्द्रसे क्या प्रयोजन ? इन्द्र किसीके स्वभावको तो अन्यथा कर नहीं सकते। ऊंच-नीच योनियाँ तथा शत्रु-मित्र ये सब कर्मसे ही प्राप्त होते हैं। इसीलिये हमारा कर्म ही गुरु और ईश्वर है, कर्मैव गुरुरीश्वरः उसीका हम लोग पूजन करें। चारो वर्ण अपने-अपने कर्मका ही फल सुख या दुःख भोगते हैं। नानाप्रकारका जगत् प्रकृतिके गुणोंसे उत्पन्न होता है। रजोगुणसे प्रेरित हो मेघ स्वयं सर्वत्र वर्षा करते हैं, उसीसे प्रजा का पोषण होता आया है और आगे भी उसी प्रकार होगा, इसमें इन्द्र क्या करेंगे।

प्रजास्तैरेव सिध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥२३॥

पिताजी ! हम लोग वन-पर्वतोंमें निवास करते हैं। हमारे प्रधान देवता ये वन-पर्वत ही हैं। इसलिये गौ-ब्राह्मण और गोवर्द्धनका ही यज्ञोत्सव तथा पूजा होनी चाहिये। इस यज्ञके लिये जितनी भी सामग्री यहां उपस्थित है वह सब इसीमें लगा देनी चाहिए। नानाप्रकारके पकवान बनायें जायं। खीर, मूँगका पाक, हलुवा, मालपुए, पूड़ी, कचौड़ी, कढ़ी, पकौड़ी, दही-बड़े आदि नानाप्रकारके व्यञ्जन बनायें जायं। सारे व्रज का दूध इकट्ठा किया जाय। कर्मकाण्डी वैदिक ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे विधिवत् होम कराया जाय और उन्हें भोजनसे तृप्तकर विपुल दक्षिणा दी जाय। अतिथि-अभ्यागत जो भी आवें उन सभीका उचित सत्कार किया जाय। ऐसा ही महत्त्वपूर्ण यज्ञ गौ-ब्राह्मण, गोवर्धन एवं मुझे भी प्रसन्न करनेवाला है। यदि आपकी सम्मति हो तो ऐसे ही यज्ञ का उपक्रम किया जाय। लालाका यह प्रस्ताव सुनकर नन्द आदि सभी गोपोंने साधु-साधु कह हृदयसे उसका समर्थन किया। नन्दराज और यशोदा रानी पुत्रोंके साथ गर्गाचार्यको आगेकर गाड़ियोंपर आवश्यक सामग्री लाद कर गिरिराजका पूजन करने बड़ी उत्कण्ठासे चल पड़ीं। साथमें नन्दजीके उपनन्द आदि नौ भाई और वृषभानु भी पुत्र-पौत्र एवं स्त्रियोंसहित चल दिये। सुन्दर सजी हुई पालकीपर बैठीं वृषभानुनंदिनी अपनी ललिता, विशाखा आदि सखियों सहित पूजन करने चल दीं। और भी हजारों गोपी-गोप हाथोंमें नाना प्रकारकी भेंट लिये नाच-गान करते वहाँ जा पहुँचे। जब भगवान् शंकर ने यह समाचार सुना तो वे भी भाँग धतूरा, और विषपानके नशेमें मस्त हो झूमते हुए पार्वतीजीके साथ नन्दीश्वर पर सवार हो सैकड़ों गणोंके साथ गिरिराजका दर्शन करने चल दिये।

धत्तूरभङ्गाविषपानविह्वलो हिमाद्रिपुत्रीसहितो गणावृतः।
आरुह्य नन्दीश्वरमादिवाहनं समाययौ श्रीगिरिराजमण्डलम् ॥
(ग० सं० गिरिराजखंड २।१४)

बहुतसे ऋषि-मुनि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, सिद्ध-योगेश्वर और ब्राह्मण-मण्डली भी वहाँ पहुंच गयी। सुमेरु, हिमालय आदि बड़े-बड़े पर्वत भी मूर्तिमान् होकर वहाँ उपस्थित हो गये। बड़ा विशाल समारोह वहाँ जुट गया। नन्दजीने वैदिक ब्राह्मणोंके द्वारा गोवर्धनका पूजन आरम्भ किया। भगवान् गोपोंके विश्वासार्थ एक विशाल रूप धारणकर पर्वतपर जा विराजे। नन्दजीने बड़े उत्साहसे नानाप्रकारके पकवान एवं उपहार भेंट किये। उसी

समय भगवान् शिवने अपने झोलेमेंसे भाँगपड़े लड्डू, वर्फी, मोहनभोग एवं नानाप्रकारके पकवान निकालकर स्वयं भगवान्को अपने हाथसे खिलाये। उनके खाते ही गिरिराजको नशा चढ़ गया उसी नशामें जो गोप जहाँ-जहाँ थाल लिये खड़े थे उन्हीं थालोंसे नानाप्रकारके व्यञ्जन लेकर बड़े प्रेमसे जीमने लगे और सबके लिये प्रसादी छोड़ते गये। यह अद्‌भुत चरित्र देखकर देवताओंने चकित हो आकाशसे पुष्पोंकी वृष्टि की और मनुष्योंने बड़े उत्साहसे पुष्प सहित लावा खील और बतासोंकी वर्षा की। अनन्तर देखो! मैं गिरिराज हूँ। इस प्रकार गोपोंसे कहते हुए भगवान्, वह सारा अन्नकूट जीम गये।

देवेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षं जनेपु वर्षत्सु च लाजसंघम्।
शैलोऽस्मि लोकानिति भाषयन् सन् जघास सर्वं कृतमन्नकूटम्॥
(ग० सं० २।२१)

भगवान्ने स्वयं भी गोपोंके साथ अपने उस रूपको प्रणाम किया और कहा—देखो, इन गिरिराज ने कैसा सुन्दर रूप धारणकर हम लोगोंपर अनुग्रह किया है। तुम लोग सदा इन्हें प्रणाम करते रहना, इनकी उपेक्षा न करना अन्यथा ये दण्ड देंगे। बादमें सब गोप लोग श्रद्धा-भक्तिसे गोवर्धनकी पूजा और परिक्रमा कर अपने-अपने स्थानको चले गये। नन्द आदि गोप भी गिरिराजका विधिवत् पूजनकर श्रीकृष्णके साथ व्रजमें लौट आये।

सहकृष्णा व्रजं ययुः॥ ३८॥

श्रीमद्भागवत-कथा-साप्ताहिकके दशम स्कन्धका चौबीसवाँ अध्याय समाप्त



पच्चीसवाँ अध्याय

गोकुलपर मूसलाधार वर्षा और श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन-धारण

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इन्द्र अपनी परम्पराप्राप्त पूजाको इस प्रकार बन्द हुई देख नन्द आदि गोपोंपर बड़े कुपित हुए। उन्होंने प्रलयकारी सांवर्तक नामक मेघगणको बुलाकर कहा—देखो तो सही, इन जंगली गोपोंने कृष्णके बहकावे में आकर मेरा कितना अपमान किया। परम्परासे प्राप्त मेरी पूजा ही बन्द कर दी।

अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥३॥

धनसम्पत्तिका इन्हें बड़ा अहंकार हो गया है। कृष्णके आश्वासनसे ये उन्मत्त हो उठे हैं। तुम शीघ्र ही गोकुलमें जाकर इनके पशुओंको नष्ट कर डालो जिससे इनका मद चूर्ण हो जाय। मैं भी ऐरावतपर चढ़कर तुम्हारे पीछे-पीछे नन्दके गोकुलका नाश करनेके लिये मरुद्गणों सहित आ रहा हूँ। हे राजन्! इन्द्रके आदेशपर प्रलयकारी सांवर्तक नामक मेघगण बन्धनसे मुक्त हो गोकुलपर मूसलाधार वर्षा करने लगे। गर्जना करती बिजलियाँ क्षण-क्षणमें चमकने लगीं। तीव्र वायुके भयंकर झकोरे उठने लगे। बड़े-बड़े ओले भी गिरने लगे। चारों ओरसे त्राहि-त्राहिकी आवाजें आने लगीं। पुत्रोंको अपनी छातीसे चिपटाये गोपी और गोपगण शीतसे काँपते हुए कन्हैयाकी शरणमें पहुँचे और कहने लगे—

गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥११॥

नन्दलाला! गोकुलके आप ही नाथ हैं, रक्षक हैं। इस प्रलयकारी संकटसे हमारी रक्षा करें। कन्हैयाको यह समझते देर न लगी कि इन्द्रका यज्ञ बन्द करा देनेसे कुपित हो मदमें भरा हुआ वह गोकुलका नाश करनेपर तुल गया है। मैं इसके मदका नाश कर डालूंगा। इतना कहकर भगवान्ने तुरंत अपनी योगशक्तिसे गोकुलकी रक्षाके लिये गोवर्धन पर्वतको एक हाथ पर उठा लिया और गोपोंसे कहा—

अथाह गोपान् विशताद्रिगर्ते हे तात मातर्व्रजवल्लवेशाः ।
सोपस्करैः सर्वधनैश्च गोभिरत्रैव शक्रस्य भयं न किञ्चित् ॥
(ग० स० गि० खं ३।१७)

अरे बाबा नन्द! अरी मैया यशोदा! हे व्रजके रक्षक गोपों! आप डरें नहीं! आप सब आनन्दसे सपरिवार सारी सामग्री सहित इस पर्वतके नीचे आ जायँ। यहाँ इन्द्रका भय नहीं और न मेरे हाथसे पर्वतके गिरनेकी आशंका ही है। कन्हैयाके इस प्रकार आश्वासन पाते ही सब व्रजवासी गोप, गौ, बछड़े, बैल, गाड़ी आदि सारी सामग्री लेकर उस पर्वतके नीचे जा घुसे। जब जलका तीव्र प्रवाह पर्वतके नीचे जाने लगा तब भगवान्ने मनसे सुदर्शन एवं शेषको आज्ञा दी। वे दोनों तत्क्षण वहाँ जा पहुँचे। कोटिसूर्यके समान तपता हुआ चक्र पर्वतके ऊपर स्थित हो धारासंपात जलको अगस्त्यके समान पीने लगा। नीचे कुण्डलाकार बनकर शेषजीने सारा जल-प्रवाह रोक दिया। गड्ढेके भीतर एक बिन्दु भी जल न जा सका।

जलौघमागतं वीक्ष्य भगवांस्तद्गिरेरधः ।
सुदर्शनं तथा शेषं मनसाज्ञां चकार ह ।।
कोटिसूर्यप्रभं चाद्रेरूर्ध्वं चक्रं सुदर्शनम् ।
धारासंपातमपिबदगस्त्य इव मैथिल ।।
अधोऽधस्तं गिरिं शेषः कुण्डलीभूत आस्थितः ।
रुरोध तज्जलं दीर्घं यथा वेला महोदधिम् ।।

नन्दलाला भी बिना कुछ खाये-पिये सात दिनों तक पर्वत धारण किये खड़े रहे और एक पैर भी वहाँसे डिगे नहीं।

इन्द्र अपनी सारी शक्तियोंके विरुद्ध नन्दकुमारका यह अद्‌भुत पराक्रम देखकर चकित रह गया। उसका मद चूर-चूर हो गया और उसने भयभीत हो वर्षाकारी मेघोंको रोक दिया। स्वान् मेघान् संन्यवारयत् आकाश आकाश निर्मल हो गया। भगवान् सूर्य निकल आये। कन्हैयाने भी गोपोंसे कहा—भैया! अब वर्षा रुक गयी है। तुम सब सहर्ष बाल-बच्चों सहित बाहर निकल जाओ। तब गोपगण अपना-अपना गोधन लेकर बाहर निकले। कन्हैयाने सबके देखते-देखते ही गोवर्धन पर्वतको उसी स्थान पर पुनः स्थापित कर दिया। व्रजवासियोंका हृदय श्यामसुन्दरके इस अद्‌भुत पराक्रम पर प्रेमसे भर गया! वे दौड़कर नन्दलालाको गले लगाकर अपना प्यार व्यक्त करने लगे। गोपियाँ दधि-अक्षत पुष्प आदिसे उनकी पूजा करने लगीं। नन्द और यशोदाने तो उन्हें अपने हृदयसे चिपटाकर प्रेमोन्मादमें बहुत देर तक छोड़ा ही नहीं। यह देखकर देवतागण शंख, दुन्दुभि आदि बाजे बजाते हुए आकाशसे पुष्पवृष्टि करते स्तुति करने लगे। चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। नन्दनन्दन गौ और गोपोंके साथ पुनः व्रजमें लौट आये। गोपियाँ भी लालाके इन अद्‌भुत चरित्रोंका मार्गमें गान करती हुई लौट आयीं।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त।

छब्बीसवाँ अध्याय

नन्द और गोपोंद्वारा भगवान्‌के महत्त्वपूर्ण ऐश्वर्यका वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार नन्दलालाके अद्‌भुत प्रभावशाली अलौकिक चरित्रोंको देखकर एक बार सब गोपोंने मिलकर नन्दजीसे कहा—बाबा नन्द! तुम्हारे लालाके विलक्षण चरित्रोंको देखकर हमें बड़ा आश्चर्य होता है। इसने हम जंगली ग्रामीणोंमें कैसे जन्म लिया जो इसके अनुरूप न था। इसका प्रभाव तो देखो—दूध पीते-पीते इसने क्रूर महाराक्षसी

पूतनाको मार डाला। शकटमें घुसे शकटासुरको पैरसे मारकर उलट दिया। गला दबाकर तृणावर्तको आकाशसे भूमिपर दे पटका। यमलार्जुनके विशाल वृक्ष जड़से उखाड़ डाले। बकासुरका मुख पकड़कर बीचसे चीर डाला। वत्सासुर, धेनुकासुर और प्रलम्बासुरको तो खेल-खेलमें ही मार गिराया। महाभीषण विषैले कालियनागका दमन किया। अभी यह केवल सात वर्षका ही है इसने इतना विशाल गोवर्धन पर्वत उठा लिया। नन्दबाबा! तुम्हारे लाला-को देखकर हमें बड़ा कौतूहल हो रहा है। यह तो साक्षात् भगवान्‌का अंश ही प्रतीत होता है। आश्चर्य है इसने हम लोगोंमें कैसे जन्म ले लिया।

नन्दजीने कहा—अरे भैया! तुम शंका मत करो। गर्गाचार्यने इसके विषयमें जो पहले मुझसे कहा था वह सब सत्य हो रहा है। यह साक्षात् नारायणका अंश है इसमें सन्देह नहीं। पूर्वजन्ममें भी इसने दुष्टोंका नाश कर साधु पुरुषोंकी रक्षा की थी। मैं इस लालाका महत्त्व तुमसे क्या कहूँ।

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः।
नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः॥ २१॥

जो इससे प्रेम करते हैं उन्हें शत्रु किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुंचा सकते जैसे असुर देवताओंका पराभव नहीं कर पाते। कुपित इन्द्रने प्रलयकारी वर्षाकर गोकुलकी क्या दशा कर डाली थी। बाल-बच्चे, स्त्री-पशु सभी दुःखसागरमें डूब रहे थे, कोई भी रक्षक न था। उस समय इसी मेरे छोटेसे लालाने कितने कष्टसे सात दिनोंतक एक हाथपर पर्वत धारण कर रखा था, न जाने इसमें कहाँसे इतना बल आ गया? समझमें नहीं आता, व्रजकी रक्षा कर इसने इन्द्रका मद चूर-चूर कर दिया। मेरे लाला तो इन्द्रके भी इन्द्र हो गये। इतना कह नन्दजी भावावेशमें लालाको हृदयसे लगाकर प्रेमाश्रुओंसे उसका घण्टोंतक अभिषेक करते रहे।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त।

सत्ताईसवाँ अध्याय

इन्द्रद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और उनका दुग्ध तथा गङ्गाजलसे अभिषेक

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

गोवर्धने धृते शैल आसाराद्रक्षिते व्रजे।
गोलोकादाव्रजत् कृष्णं सुरभिः शक्र एव च॥ १॥

गोवर्धन पर्वत धारणकर धारासंपातवृष्टिसे जब कन्हैयाने गोकुलकी रक्षा-कर ली तब स्वर्गसे इन्द्र और गोलोकसे कामधेनु दोनों ही भगवान् श्रीकृष्णके समीप आये। अपराधी होनेसे इन्द्र भयभीत हो खड़े थे, और कामधेनु गोकुलकी रक्षासे प्रसन्न मुद्रामें खड़ी थी। इन्द्र लजाते हुए एकान्तमें नन्दलालाके समीप जाकर उनके चरणोंपर गिर पड़े और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—भगवन् ! आपका स्वरूप शुद्ध-सत्त्वमय और ज्ञानघन है। मायिक संसारसे वह सर्वथा परे है। आपके उस रूपमें काम, क्रोध, लोभ आदिकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। आप केवल हम सरीखे अज्ञानियोंके शिक्षार्थं ही दण्ड-विधान करते हैं। ऐश्वर्यसे मदोन्मत्त हो मैं आपको पहचान न सका। आप मेरा अपराध क्षमा करें और ऐसी कृपा करें जिससे मेरी फिर कभी ऐसी दुर्बुद्धि न हो। आपका अवतार पृथ्वीके भारभूत अधर्मियोंके नाश हेतु एवं धर्मात्माओंके रक्षार्थं हुआ है। मैं आपके स्थूल और सूक्ष्म सभी रूपोंको नमस्कार करता हूँ। आप अन्तर्यामी रूपसे अविद्याको निवृत्त कर भक्तोंकी रक्षा करते हैं, आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥ १० ॥

हे देव ! आपने मेरा अहंकार नष्ट कर मुझपर महान् अनुग्रह किया। मैं आपकी शरणमें हूँ, आप मेरा अपराध क्षमा करें। इस प्रकार इन्द्रने दस श्लोकोंसे भगवान्‌की स्तुति की। इनमें चार श्लोकोंसे भगवान्‌के अनुग्रहका वर्णन। १. से अपराध क्षमापन। १. से अवतार का प्रयोजन। २. से चरणोंमें प्रणाम। १. से स्वापराधनिवेदन तथा १ से शरणागतिका वर्णन किया गया है। नन्दलालाने स्तुतिसे प्रसन्न हो हँसकर इन्द्रसे कहा—देवराज ! तुम इन्द्र पदके वैभव से बड़े उन्मत्त हो गये थे। मैंने अपनी स्मृति दिलानेके लिये ही तुम्हारा यज्ञ बन्द कराया था। मैं जिसपर पूर्णतया अनुग्रह करता हूँ उसे सम्पत्तियोंसे हीन कर देता हूँ, क्योंकि लक्ष्मीके मदसे अन्धा हुआ प्राणी मुझे भूल जाता है। अच्छा; अब तुम जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। अहंकार त्याग-कर सद्भावनासे स्वर्गका पालन करो। उसी समय कामधेनु भी वहाँ आ पहुँची और वह नन्दलालाको प्रणाम कर बोली—भगवन् ! आज आपने मुझे सनाथ बना दिया। मेरे तो इष्ट-देवता एवं इन्द्र आप ही हैं। ऐसा कह कामधेनु अपनी दुग्धधारासे नन्दलालाका अभिषेक करने लगी। इन्द्रने भी ऐरावतकी सूँड़से उद्धृत आकाश-गंगाके जलद्वारा नन्दलालाका अभिषेक किया और उनका नाम 'गोविन्द' रखा—

गाः पशून् गां स्वर्गं वा इन्द्रत्वेन विन्दतीति।
गाः सर्वेन्द्रियाणि, आकर्षकत्वेन विन्दतीति वा गोविन्दः ॥

उसी समय देवतागण आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे, गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं। तीनों लोकोंमें आनन्द ही आनन्द छा गया। अनन्तर इन्द्र कन्हैयासे आज्ञा लेकर स्वर्गलोक चले गये।

शुकदेवजी कहते हैं, हे राजन्! इस प्रकार कृष्णका अभिषेक होनेपर गोवर्धन हर्षातिरेकसे द्रवीभूत हो गया। भगवान्‌ने प्रसन्न हो उसपर अपना करकमल रखा, जिसका चिन्ह आजतक दिखायी पड़ता है।

तद्धस्तचिन्हमद्यापि दृश्यते तद्गिरौ नृप।
(ग० सं० गि० ख ४।१२)

आकाशगंगाके जलसे जो अभिषेक हुआ था। उससे वहाँ मानसी-गंगा उत्पन्न हुई। कामधेनुकी दुग्धधारासे जो अभिषेक हुआ उससे महापातकोंका नाश करनेवाला गोविन्द-कुण्ड हुआ जिसमें श्रद्धा रखनेवाले भक्तोंको आज भी कभी-कभी दुग्धका स्वाद मालूम पड़ता है।

तस्मिन् कदाचिद् दुग्धस्य स्वादुत्वं प्रतिपद्यते।
(ग० सं० गि० खं० ४।१७)

गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्ति और माहात्म्य

गर्गसंहिताका प्रसंग है—एक समय भगवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भूलोक आते समय श्रीराधाजीसे भी साथ चलनेको कहा। इस पर श्रीराधाजीने कहा—जहाँ वृन्दावन, यमुना और गोवर्धन नहीं, वहाँ मेरे मनको सुख शान्ति प्राप्त न हो सकेगी।

अतः यदि इन स्थलोंका भूलोकमें आप निर्माण कर सकें तो मैं वहाँ चल सकती हूँ। यह सुनकर भगवान्‌ने अपने हृदयकी ओर दृष्टिपात किया। तत्क्षण उनके हृदयसे प्रेमांकुरके रूपमें सजल तेज निकलकर गोलोककी रासभूमि पर गिर पड़ा और वह पर्वतके आकारमें परिणत हो गया। वह पर्वत रत्नमय नाना शृङ्ग, सुन्दर झरने, कदम्ब आदि वृक्ष एवं कुञ्जोंसे सुशोभित था। उसमें और भी नाना प्रकारकी दिव्य सामग्रियाँ थीं। उसे देख श्रीराधाजी बड़ी प्रसन्न हुईं। भगवान्‌की प्रेरणासे शाल्मलीद्वीपमें द्रोणाचलकी पत्नीमें गोवर्धन का जन्म हुआ। भगवान्‌के जानुसे वृन्दावन और वाम-स्कन्धसे यमुना प्रकट हुई। गोवर्धनका जन्म सुनकर हिमालय, सुमेरु आदि बड़े-बड़े पर्वत वहाँ उपस्थित

हुये। उन्होंने उसे भगवद्रूप जान बड़ी श्रद्धासे प्रणाम और पूजनकर उसकी स्तुति की और गिरिराज बनाकर सब अपने-अपने धामको चले गये।

एक समय तीर्थ-यात्रा करते हुए पुलस्त्य मुनि दैवात् वहाँ आ पहुँचे। वे गोवर्धनको देखकर मुग्ध हो गये और द्रोणके समीप जाकर बोले—मैं काशी निवासी ब्राह्मण प्रार्थी होकर आपके समीप आया हूँ। आप इस पुत्रको मुझे दे दें। मैं इसे काशीमें स्थापित कर वहीं तप करूँगा। यह सुनकर द्रोणके नेत्रोंमें पुत्रस्नेहसे आँसू भर आये। इधर मुनिके-शापका भी भय था। अन्ततः द्रोणने विवश हो गोवर्धनको ले जानेकी अनुमति दे दी। बादमें गोवर्धन ने स्वयं मुनिसे कहा—महाराज! मैं दो योजन ऊँचा और पाँच योजन चौड़ा हूँ आप मुझे कैसे ले जायंगे। पुलस्त्यने कहा—

उपविश्य करे मे त्वं गच्छ पुत्र यथासुखम्।
वाहयामि करे त्वां वै यावत्काशीसमागमः॥

वत्स! तुम मेरे हाथपर बैठकर सुखपूर्वक चलो। जबतक काशी नहीं आती तबतक मैं तुम्हें वहन करता रहूँगा। गोवर्धनने कहा—मुनिराज! एक शर्त है। यदि आप मुझे कहीं मार्गमें रख देंगे तो मैं फिर उठ न सकूँगा। मुनिने यह शर्त सहर्ष स्वीकार की। बादमें गोवर्धन मुनिके हाथपर बैठ गये। वे उन्हें धीरे-धीरे ले चले। व्रजभूमि आनेपर गोवर्धनकी पूर्व स्मृति जाग उठी। वे मनमें सोचने लगे। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक भगवान् श्रीकृष्ण राधारानीके साथ यहाँ अवतीर्ण होकर बाल्य, पौगण्ड, कैशोर आदि अवस्थाओंकी 'दानलीला', 'मानलीला' आदि बहुत-सी सुन्दर लीलाएँ करेंगे। इसलिये मैं यहाँसे जाऊंगा नहीं। ऐसा विचारकर गिरिराज बड़े भारी हो गये। जिससे मुनि थक गये। वे उन्हें पृथ्वीपर रखकर लघुशंका करने गये। बादमें स्नानादिसे शुद्ध हो वे जब उठाने लगे तो वह उठ न सकें। मुनिने कहा—गिरिराज! क्या नाराज हो गये? उठो अपना अभिप्राय कहो। गोवर्धनने कहा—मुनिराज! मैंने शर्त की थी और आपने उसे सहर्ष स्वीकार किया था। तदनुसार अब मैं यहाँसे उठूँगा नहीं। यह सुनकर मुनि क्रोधसे लाल हो गये और शाप देते हुए बोले—तुम बड़े धृष्ट हो! तुमने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया, इसलिये तुम प्रतिदिन तिलतिल घटते जाओगे। मुनिके चले जानेपर गिरिराज शापवश आजतक तिलतिल घट रहे हैं।

नित्यं संक्षीयते नन्द तिलमात्रं दिने दिने।

फिर भी जबतक गंगा और गोवर्धन पृथ्वीपर हैं तबतक संसारमें कलिका प्रभाव पूर्णरूपसे न जम सकेगा।

एक समय गोमतीतीरवासी विजय नामका ब्राह्मण अपना ऋण लेने मथुरा गया। वहाँ अपना कार्य समाप्त कर जाते समय गोवर्धनका एक गोल पत्थर उठाकर ले गया। मार्गमें उसने एक बड़ा भयंकर राक्षस देखा, जिसके हृदयमें मुख, तीन पैर, छः भुजायें, एक हाथकी नासिका, सात हाथकी जिह्वा बड़े-बड़े दाँत एवं लाल-लाल नेत्र थे। ब्राह्मण ऐसे विकराल राक्षसको देखकर थर-थर काँप उठा और मारे भयके कहीं भाग भी न सका केवल रोने लगा। तबतक वह भूखा राक्षस घुरघुराता हुआ उसके सामने आ खड़ा हुआ। ब्राह्मणसे और कुछ तो बना नहीं उसने वह गोवर्धनका पत्थर ही उसपर दे मारा। उसके स्पर्श मात्रसे उसने राक्षस शरीर त्यागकर दिव्य शरीर धारण किया और ब्राह्मणके चरणों पर गिरकर बोला—हे ब्राह्मणदेवता! आपने इस पाषाणके प्रहारसे मेरा उद्धार कर दिया। मैं पूर्व जन्ममें एक बड़े धनवान वैश्यका पुत्र था। बाल्यावस्थासे ही मैं कुमार्गगामी हो गया था। मदिरा पीकर वेश्याओंके घर पड़ा रहता था। माता-पिता और स्त्री सभी मुझे बहुत डाँटा करते। पर मेरी कुचालमें कुछ अन्तर नहीं पड़ा। नित्यके कलह और अपमानसे ऊबकर एक दिन मैंने विष देकर माता-पिताको मार डाला और स्त्रीकी भी तलवारसे हत्या कर डाली। धनके लोभसे मैंने सैकड़ों ब्रह्महत्यायें भी कीं। कोई पापकर्म मुझसे बचा नहीं। एक दिन मैं मांसकी इच्छासे मृगोंको मारने वनमें गया। वहाँ मुझे एक सर्पने डस लिया और मेरी तत्काल मृत्यु हो गयी। मैं नानाप्रकारकी नरकयातनाएँ भोगकर इस राक्षस योनिमें आया। एक दिन मैं किसी शूद्रके शरीरमें प्रविष्ट हो व्रजमें गया। तुरन्त कृष्ण भगवान्के पार्षदोंने मुझे मारकर भगा दिया। बहुत दिनोंका भूखा मैं आज आपको खाने आया था। आपने गिरिराजके पाषाणसे प्रहार कर मेरा उद्धार कर दिया। गन्धमादनकी यात्रा तथा नानाप्रकारके पुण्यों और तपस्याओंसे जो फल प्राप्त होता है उससे भी कोटिगुण अधिक गोवर्धनके दर्शनका फल होता है।

गन्धमादनयात्रायां यत्फलं लभते नरः।
तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं गिरिराजस्य दर्शने॥
(ग० सं० गि० खं० १०।१५)

उसके यह कहते ही आकाशसे एक दिव्य विमान उतरा। उसपर चढ़कर वह सीधा गोलोक चला गया। ब्राह्मण यह दृश्य देखकर चकित रह गया। वह पुनः वहाँसे लौटकर गोवर्धन गया और वहाँ प्रेमसे गोवर्धनकी पूजा और प्रदक्षिणा कर उनका महत्त्व गाते-गाते घरचला गया।

हे राजन् ! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्णका यह परम पावन चरित्र और गिरिराजका महोत्सव तुम्हें सुनाया। यह मनुष्योंके समस्त महापापोंका नाश करनेवाला है।

श्रीकृष्णचन्द्रस्य परं चरित्रं गिरीन्द्रराजस्य महोत्सवं च।
मया तवाग्रे कथितं विचित्रं नृणां महापापहरं पवित्रम्॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त।
(ग० सं० गि० खं० २।२७)

अट्ठाईसवाँ अध्याय

वरुणलोकसे नन्दका आनयन एवं गोपोंको वैकुण्ठलोकका दर्शन

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत्॥१॥

लीलाकौतुकी कन्हैयाने इन्द्रका दमन कर लेने पर एक दिन वरुणको भी शिक्षा देनेका विचार किया! नन्दबाबाने नियमानुसार एक दिन एकादशीका निराहार व्रत किया। दूसरे दिन द्वादशी थोड़ी ही थी। इसीलिये अरुणोदयके पूर्व रात्रिमें ही स्नान करने यमुनाजीमें उतर गये। वरुणका दूत एक यक्ष वहाँ जलकी रक्षामें नियुक्त था। वह आसुरी वेला समझ अज्ञानसे नन्दबाबाको पकड़कर वरुणके पास ले गया। गोपगण नन्दजीको न देख कन्हैया और बलदाऊका नाम ले-लेकर चिल्लाने लगे। उनका करुणक्रन्दन सुनकर नन्दलाला दौड़कर वहाँ आये और वरुणद्वारा अपने पिताको अपहृत सुनकर तुरत वरुणलोक जा पहुंचे। लोकपाल वरुण श्रीकृष्णको देखते ही झट सिंहासनसे उठ खड़े हुए और विधिपूर्वक षोडशोपचारसे उनका पूजनकर बोले--प्रभो ! आज आपका दर्शन पाकर मेरा जीवन कृतार्थ हो गया। मेरा दूत अज्ञानसे आपके पिताको यहाँ पकड़ ले आया है। आप इसे क्षमा करें और मुझपर भी अनुग्रह करें। यह कहकर वरुणने तुरन्त नन्दजीको लाकर उन्हें सौंप दिया। कन्हैया अपने पिताको ससम्मान घर ले आये। नन्दबाबाने लोकपाल वरुणका अद्भुत ऐश्वर्य और वहाँ अपने लालाका किया गया भव्य-सत्कार देख चकित रह गये। उन्होंने गोकुलमें आकर गोपोंके समक्ष उसका यथावत् वर्णन

किया। उसे सुन सभी गोप श्रीकृष्णको साक्षात् जगदीश्वर जानकर आपसमें कहने लगे—'क्या कन्हैया दयाकर हमें अपना दिव्य वैकुण्ठलोक कभी दिखा सकेगा? नन्दलालाने गोपोंका यह अभिप्राय जानकर विचार किया कि नाना योनियोंमें कर्मवश भ्रमण करते हुए इस जीवको मेरे स्वरूपका ज्ञान होना सचमुच कठिन है, अतः उन्होंने एक दिन दयावश गोपोंको प्रकृतिसे परे अपना दिव्य वैकुण्ठ- लोक दिखा दिया।

दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥१४॥

नन्द आदि गोप वैकुण्ठका दर्शन पाकर परमानन्दमें निमग्न हो गये। वहाँ समस्त वेद, पुराण, इतिहास, आगम तन्त्र धर्मशास्त्र आदि मूर्तिमान् होकर भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे थे। यह देख सब गोप चकित रह गये। नन्दलाला गोपोंको इस प्रकार अपना ऐश्वर्य दिखाकर फिर उन्हें व्रजमें लौटा लाये।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशमस्कन्धका अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त

रासपञ्चाध्यायी-प्रारम्भ

कृष्णातीरे कोकिलाकेलिकीरे गुञ्जापुञ्जे देवपुष्पादिकुञ्जे।
कम्बुग्रीवौ क्षिप्तबाहू चलन्तौ राधाकृष्णौ मङ्गलं मे भवेताम् ॥

जगद्विजयी कामका भगवान् श्रीकृष्णके साथ मल्लयुद्ध, मैदान-रासभूमि।

उन्तीसवाँ अध्याय

वेणुनादद्वारा गोपियोंका आवाहन उनके साथ प्रेमालाप और विहार

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥ १॥

नन्दलालाने कुमारियोंसे पहले जो प्रतिज्ञा की थी, तदनुसार ही सालभर बाद जब शरत्कालकी दिव्यरात्रि आयी जिसमें चारों ओर बेला चमेली, जुही आदि नाना प्रकारके पुष्प खिले थे, योगमायाके आश्रयसे वनमें विहार करनेकी इच्छा की। इसी समय चन्द्रदेव अपनी पूर्ण सोलह कलाओंसे

उदय हो गये। उन्होंने अपनी दिव्य-किरणोंसे सम्पूर्ण वनको जगमगा दिया। भगवान्‌ने उस समय मधुरतान भरी वेणुका वादन किया जिसका नाद सुनते ही गोपियोंका मन विवश हो भगवान्‌की ओर आकृष्ट हो गया और वे विना किसीसे पूछे ही बड़े वेगसे अपने कान्त कन्हैयाके पास दौड़ चलीं। कोई दूध दुह रही थी, कोई उसे औटा रही थी, कोई हलुआ वना रही थी, कोई अपने पतिदेवको भोजन परोस रही थी, कोई बच्चोंको दूध पिलाती थी, कोई अपने-अपने पतिके चरण दवाती थीं और कोई आँखोंमें सुरमा लगा रही थीं। पर उन सवने अपने ऐसे समस्त कार्य जहाँके तहाँ छोड़ दिये और भावावेशमें उल्टे-सीधे वस्त्र-आभूषणोंको धारण कर अपने-अपने घरोंसे निकल पड़ीं। उन्हें पति भाई और वन्धुओंने रोकना भी चाहा, किन्तु, वे उस नन्दलालाके प्रेमरसकी दीवानी वनी भला कहाँ रुकनेवाली थीं? उनके चित्त तो भगवान् श्यामसुन्दरकी रूपसुधामाधुरीका पान कर रहे थे। कुछ गोपियोंको उनके पतियोंने घरमें वन्द कर दिया। पर, इन गोपियोंके मन और प्राण वहीं जा पहुँचे जहाँ नन्दलाला थे। वे नेत्र मूँदे घरमें भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करती वेसुध-सी पड़ीं रहीं। दुःसह वियोगजन्य तापसे पाप तथा ध्यानमें प्राप्त भगवान् श्रीकृष्णके आलिङ्गनसे पुण्य ये दोनों ही उनके नष्ट हो गये और वे गुणमय भौतिक शरीर त्यागकर सवसे पहले भगवान्‌से जा मिलीं।

राजा परीक्षित ने शुकदेवजीसे पूछा—भगवन्! गोपियाँ तो भगवान्‌को पतिरूपमें मानती थीं। उनकी कन्हैयामें ब्रह्मदृष्टि तो थी नहीं तव उनका वन्धनभूत संसार निवृत्त कैसे हुआ?

शुकदेवजीने कहा—राजन्! यह हम पहले ही वता चुके हैं कि शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्णसे द्वेष करता हुआ भी मुक्त हो गया। फिर ये गोपियाँ तो भगवान्‌की नित्यसिद्ध पत्नियाँ थीं। इनका उनमें अनन्य अनुराग था फिर, इनमें सन्देह कैसा? काम, क्रोध, भय, स्नेह आदि किसी भी भावसे यदि चित्त भगवान्‌की ओर चला जाय तो वही तन्मयता वन्धनमुक्त कर देती हैं यह निश्चित है।

नन्दलालाने वड़े चातुर्यसे समागत समस्त गोपियोंसे कहा—

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥१८॥

अरी! तुम वड़ी भाग्यशालिनी हो, तुम्हारा स्वागत है। पर वताओ, तो सखी मैं तुम्हारे प्रीत्यर्थं क्या करूं? व्रजमें कुशल तो है न? अब यह वतलाओ

कि तुम सब यहाँ आयीं क्यों ? यह घोर रात्रिका समय है जिसमें नानाप्रकारके भयंकर जीव-जन्तु घूम रहे हैं। ऐसे समय बनके बीच स्त्रियोंको रहना उचित नहीं। तुम सब व्रजमें लौट जाओ। तुम्हारे माता-पिता, भाई-बन्धु तुम्हें न देखकर तुम्हारी खोजमें व्याकुल होंगे। उनके हृदयमें सन्ताप उत्पन्न करना ठीक नहीं। सुन्दर वनका एवं हमारा दर्शन तो तुम्हें हो ही चुका है। अब तुम्हारा घर लौट जाना ही अच्छा है। पतिकी सेवा करना ही स्त्रियोंका परम धर्म बताया गया है। उसका त्याग कथमपि उचित नहीं होता। दूसरी बात यह है कि श्रवण, दर्शन, ध्यान और कीर्तनसे जैसा मुझमें अधिक प्रेम होता है, वैसा पास रहनेपर नहीं होता। इसलिये, तुम्हें अपने घर लौट जाना चाहिये। हे राजन्! साक्षात् कन्हैया द्वारा उपदिष्ट यह विपरीत वक्तव्य सुनकर गोपियाँ गंभीर चिन्तामें डूब गयीं और अपना मुख नीचाकर अंगूठेसे पृथ्वी कुरेदने लगीं। अश्रुओंके प्रवाहसे उनका सारा शृंगार बिगड़ गया, मुख सूख गये। दुःखसे पीड़ित हो वे चुपचाप चित्रकी भाँति स्तब्ध खड़ी रह गयीं। कुछ देर बाद नेत्र पोंछकर वे गद्गद वाणीमें भगवान्से बोलीं—नाथ ! आप ऐसे कठोर वचन न कहें। हम तो सबको त्यागकर आपकी शरणमें आयी हैं। अब हम लौटकर जायें कहाँ ? आप हमारा परित्याग न करें। 'न मे भक्तः प्रणश्यति' इस अपनी प्रतिज्ञाका आप पालन करें। आपने पति, पुत्र और बन्धुओंकी सेवा करना स्त्रियोंका परम धर्म बतलाया है; इसे हम स्वीकार करती हैं। हमारे ये सारे भाव आपमें ही सदाके लिये सन्निहित रहें। क्षणिक सुख देनेवाले नश्वर पति और पुत्रादिको लेकर हम क्या करेंगी ? 'गतिर्भर्ता' इसके अनुसार आप ही हमारे सब कुछ रहें। दूसरी बात यह है कि—

चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद् यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ।।

घरके काम-काजमें लगे रहनेवाले हमारे चित्त और इन्द्रियाँ तो वेणु बजाकर आपने खींच लीं। अब हमारे हाथ किसी कार्यको उठते ही नहीं और पैरोंमें भी एक पग चलनेकी शक्ति नहीं रही तब आप ही बतायें हम वहाँ कैसे जायँ और जाकर भी वहाँ क्या करें ? प्रभो ! आप इस कामका दुःसाहस तो देखें। यह हमारे माध्यमसे आपपर विजय प्राप्त करना चाहता है। ताल ठोक सीना उठाकर हमारी ओर आ रहा है। नाथ ! अपने चरणों द्वारा इसका तुरन्त दमन कर दें। ब्रह्मा आदि देवताओंको जीतकर इस कामको

बड़ा अभिमान हो गया है। हम चाहती हैं कि जैसे भी हो इसका मद आप चूर्ण कर दें। इसने हमारे शरीरमें कामाग्नि सुलगा दी है। हम अबलाओंको यह बुरी तरह नचा रहा है। यदि आप इसका शीघ्र दमन न करेंगे तो हे सखे ! हम ध्यान द्वारा ही आपके चरणोंतक पहुँच जायँगी।

ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ ३५ ॥

किन्तु इस कामकी दासी बनकर न रहेंगी। देखें तो इसने अपने ये पाँचों बाण १. आलिंगन २. कर-अलकादिका स्पर्श. ३. नर्महास. ४. नखाग्रपात. ५. सस्मित-कटाक्षपात हमारे माध्यमसे आपपर छोड़े हैं। आप अपने स्तम्भन-रूपी दिव्यास्त्रसे इन्हें निष्फल कर दें। आपकी दिव्यातिदिव्य रूपसुधामाधुरी से ही इसका पराभव निश्चित है। यह सुनकर भगवान् हँस पड़े और उनके साथ प्रेमालाप तथा नानाप्रकारकी जनमोहक आह्लाद-लीलाएँ करने लगे। कामने देखा, अब तो श्रीकृष्ण स्त्रियोंके वशीभूत हो गये हैं। उसका अहंकार और भी बढ़ गया। वह सोचने लगा कि अब तो ये यहाँसे भाग न सकेंगे। मैं इन्हें पराजित कर लूँगा। भगवान् उसका अभिप्राय ताड़ गये और उसके दमनका विचार कर उसे प्रमादका पूरा मौका देनेके लिये वहीं अन्तर्धान हो गये, कारण बिना वियोगके संयोगकी पुष्टि नहीं होती।

न विना विप्रलम्भेन संयोगः पुष्टिमश्नुते।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त

तीसवाँ अध्याय

गोपियों द्वारा भगवान्‌का वन वनमें अन्वेषण

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! अकस्मात् श्यामसुन्दरके छिप जानेपर गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। वे भगवान्‌के हाव-भाव, कटाक्ष, बातचीत और गतिसे अपहृतचित्त होकर स्वयं ही परस्पर कृष्णके समान विहार करने लगीं। कोई स्वयं ही कृष्ण बनकर दूसरी गोपीसे कहती, मैं कृष्ण हूँ, मुझे देखो।

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम्।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥४॥

कोई ऊँचे स्वरसे भगवान्‌का गान करतीं कोई पागलोंकी भाँति वन-वनमें जाकर कृष्णको ढूंढतीं और उन्हें कहीं न पाकर वृक्षोंके पास जाकर उनसे

पूछतीं—हे अश्वत्थ ! हे वट ! हे अशोक ! हमारे चितचोर नन्दलाला कहाँ गये ? क्या तुमने उन्हें देखा हैं ? अरी सखि तुलसी, तुम तो भगवान्‌की वड़ी प्यारी हो। अरी मालती, अरी जुही, तुम्हारी सुगन्ध तो भगवान्‌को बहुत भाती है। वताओ तो, तमने माधवको कहीं देखा है ? अरी पृथ्वी, तुझपर तो रोमाञ्च छाए हुए हैं। तेरे ऊपर ही तो चलकर वे गये हैं, तू ही बता दे, वे कहाँ हैं ? देख, रोते-रोते हमारी आँखें फूल आयी हैं। क्या तुझे दया नहीं आती ? अरी हरिणियो, तुम कहाँ दौड़ी जा रही हो ? क्या वे तुम्हें छोड़ गये ? वताओ तो सही, क्या तुमने उन्हें देखा ? इधरसे तो उनके गलेमें पड़ी कुन्दमालाकी सुगन्ध आ रही है। अरे वृक्षों, तुम सिर झुकाकर किसे प्रणाम कर रहे हो। मालूम पड़ता है, हमारे प्रियतम प्राणधन इधरसे ही पधारे हैं। बताओ तो सही; उन्होंने क्या तुम्हारे प्रणाम स्वीकार किये ? हा सखियो कोई भी तो कुछ नहीं वताता। अव हम उन्हें कहाँ ढूढें ? अच्छा, अव इन वृक्षोंसे लिपटी लताओंसे ही पूछा जाय। इस प्रकार गोपियोंने वनके वृक्ष, लता, देवी, देवता, सभीसे पूछा और जव किसीने कुछ नहीं बताया, तब वे उन्मत्त हो प्रियतमकी लीलाओंका ही ध्यान कर स्वयं वैसे ही अभिनय करने लगीं।

कस्याश्चित्पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम्।
तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहन् शकटायतीम् ॥१५॥

कोई गोपी कृष्ण बनकर पूतना वनी गोपीका स्तनपान करने लगी। किसीने कृष्ण बन शकटासुर वनी गोपीको पैरसे मारा। कोई तृणावर्त बनी तो कोई कृष्ण बन गयी। कोई वत्सासुर वनी तो कोई बकासुर बनी। कोई कालिय-दमनकी लीलाका अभिनय करने लगी। इस प्रकार भगवान्‌की विविध लीलाओंका अनुकरण कर पूछती-पूछती वे एक ऐसे स्थानपर जा पहुँचीं जहाँ उन्होंने पृथ्वीपर बने श्रीकृष्णके चरणचिह्न देखे। किसीने उन्हीं चरणचिह्नोंके बीच-बीचमें कन्हैयाके कन्धोंपर हाथ रखकर जाती हुई किसी दूसरी गोपीके भी चरणचिन्होंका अनुमान किया और विकल हो कहने लगी—अरी, ये चरणचिह्न किसके हैं ? इन्हें देखकर हमें वड़ी डाह-सी हो रही है। जान पड़ता है यहाँकी भूमिमें काँटे-कंकड़ देखकर भगवान्‌ने उसे अपने कन्धोंपर चढ़ा लिया है। इसीसे कन्हैयाके पैरोंकी छाप पृथ्वीपर अधिक गहरी जान पड़ती है। देखो सखि ! यहाँपर अपनी प्रियाको कन्धेसे उतारकर उसके निमित्त छलियाने पुष्प चुने हैं ऐसा मालूम होता है। यहाँ देखो, उनके पैरोंका अगला हिस्सा बना है। हे राजन् ! भगवान् जिस गोपीको साथमें ले गये थे

वह अपनेको सर्वश्रेष्ठ मानने लगी थी। कुछ दूर जाकर वह भगवान्‌से बोली—नाथ ! अब तो मुझसे चला नहीं जाता थक गयी हूँ। भगवान्‌ने कहा—प्यारी, ऐसी बात है तो मेरे कन्धेपर बैठ जाओ। ऐसा कहनेपर ज्योंही उसने कन्धेपर चढ़नेके लिये पैर उठाया त्योंही भगवान् अन्तर्धान हो गये और उसका पैर उठा-का उठा ही रह गया। वह व्याकुल हो-हा नाथ ! हा रमण ! हा प्रियतम ! कहकर पुकारने लगी। ढूंढ़ती गोपियोंने वहाँ पहुंचकर जब उसे देखा तब वह खड़ी-खड़ी करुणक्रन्दनकर रही थी ! उसने अपने मान और दौर्जन्यसे अपमानका कारण गोपियोंसे कह सुनाया। उसे सुनकर सभी गोपियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर वे सब प्रियतमको बुलानेकी इच्छासे यमुनातटपर आयीं और एक साथ मिलकर गोपीगीत द्वारा उनका स्वागत गान करने लगीं।

समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकांक्षिता. ॥४५॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका तीसवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायणका इक्कीसवाँ विश्राम]

इकतीसवाँ अध्याय

प्रियतमको बुलानेके लिये सुमधुर गोपी-गीत

गोपियाँ [1]कनकमञ्जरीवृत्तसे भगवान्‌का स्वागत गान करती हैं—इस गोपीगीतमें महत्त्वपूर्ण १८ श्लोक हैं। अन्तिम एक श्लोकसे अपने प्रियतमको उपालम्भ दिया गया है।

जयति[2] तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥१॥

हे हमारे प्रियतम ! आपके जन्मसे व्रजका महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है। लक्ष्मीजी भी ऋद्धि-सिद्धिसहित निरन्तर यहीं निवास करने लगीं हैं। हम किसी तरह अपने प्राण धारणकर दिशा-दिशामें सर्वत्र आपको खोज रही हैं। हम आपकी अमुल्य दासियाँ हैं, आप कृपाकर हमें दर्शन दें। हे नाथ ! आपके सुकटाक्षपूर्ण नेत्रोंसे कमलकी शोभा भी मात हो जाती है। आप उन्हीं नेत्रोंसे हमारे चित्त बेधकर अदृश्य हो गये हैं। यह उचित न

१. 'कनकमञ्जरी नश्च रौ लगौ' इति लक्षणात्।
२. इन श्लोकोंमें, प्रत्येक पदका द्वितीय अक्षर एक सा है।

था। नाथ ! कहीं ऐसा न हो कि हमारे प्राणपखेरू उड़ जायँ और आपको स्त्री-वधका पाप लगे। हे सुरतनाथ ! यह ध्यान रहे। नेत्रसे जैसा वध होता है वैसा शस्त्रोंसे नहीं होता। विषाक्त यमुनाजलसे, अजगररूपधारी अघासुरसे, वर्षासे, वायुसे, वज्रपातसे, वृषभासुर, और व्योमासुर आदि बड़े-बड़े असुरोंसे, कहाँ तक कहें, सभी प्रकारके भयोंसे आपने हमारी वार-वार रक्षा की है। आज यह प्रवल कामशत्रु हमारे सामने खड़ा है। ताल ठोक रहा है। इसका दमन आप क्यों नहीं करते ? हमारे माध्यमसे आप इसे परास्त करें।

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान सात्वतां कुले ॥ ४ ॥

हे सखे ! आप केवल यशोदानन्दन ही नहीं अपितु अखिलदेहधारी जीवोंके अन्तरात्माके साक्षी हैं अत एव ब्रह्माकी प्रार्थनापर विश्वकी रक्षाके लिये आपने यदुकुलमें जन्म धारण किया है। अव आप ही वतायें क्या हम विश्वके वाहर हैं ? जो हमारी रक्षाके समय आप अन्तर्हित हो गये।

(व्यङ्ग्यार्थ) जान पड़ता है, आप यशोदानन्दन नहीं हैं, कारण यशोदा तो दयाकी मूर्ति हैं और आपमें दयाका अभाव है। हमारी अन्तरात्माको भी आप नहीं जानते, अन्यथा आपको हमारे दुःखोंका पता रहता। विश्वरक्षार्थ ब्रह्माने प्रार्थना भी नहीं की, अन्यथा आप हमारी रक्षा करते। भक्तोंके कुलमें भी आपने जन्म नहीं लिया, अन्यथा उनके सम्बन्धसे भी आपमें कुछ दया आ जाती, आपका जन्म तो आकाशमें हुआ होगा स भवान् खे उदेयिवान्। इसलिये उसके दो अवगुण—असङ्गता और उदासीनता आपमें आ गये हैं। अन्यथा, आप हमें छोड़ते नहीं। दो वार युद्धका विगुल वजाकर आपने कामरूपी शत्रुको हमारे सिरपर खड़ा कर दिया है। वह ताल ठोक रहा है और हम कामवाणोंसे मरणासन्न हो रही हैं। हमारे जीवनके लिये कमसे कम चार वातें स्वीकार करें। सिरपर हाथ रखकर हमें आश्वासन दें। कामके अंकुशोंको अपने चरणोंसे दवा दें। विरह-पिपासासे व्याकुल हमें अपना मुख-कमल दिखाकर उसकी रूपसुधा-माधुरी पिला दें। हे नाथ ! आपकी मधुर मन्द-मन्द मुस्कान, मनोहर चितवन, विविध लीलाएँ और नर्म वचनोंका स्मरण कर हमारा मन क्षुभित हो रहा है। जव आप वनमें गौ चराने जाते हैं तव आपको देखे विना आधा क्षण भी हमें युगके समान मालूम होता है। सायंकाल जव आप घर लौटकर आते हैं तव आपको देखते समय भी न जाने नेत्रोंकी पलकें कैसे गिर जाती हैं ? क्या कहकर कोसें

उस मतिमन्द-विधाताको, जिसने नेत्रोंपर पलकें चढ़ा दीं। वे आपकी रूपमाधुरी सुधाके पानमें बाधा डाल देती हैं। हे नाथ—

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥

आपका कथारूपी अमृत त्रिविधतापोंसे तप्त प्राणियोंका जीवन है। पापोंका निवर्तक एवं श्रवणमात्रसे मंगलकारी है। इसलिये व्यास आदि महर्षियोंने वर्णनकर उसकी भूरि-भूरि सराहना की है। संसारमें जो सर्वत्र उस दिव्य कथाका प्रवचन या उपदेश करते हैं वे महान् पुण्यात्मा और बड़े दानी हैं। व्यङ्ग—आपकी कथा ही (मृत) मरणकारी है। तप्त तैलमें शीतल-बिन्दुकी तरह हमारे प्राणोंको खौला देती है। कवियोंका तो वर्णन करनेका स्वभाव ही है 'कवयः किं न जल्पन्ति' इसलिये उन्होंने उसका वर्णन किया। आपकी कथा पापोंका नाश करती होगी। जिनके पाप हों वे उसे सुने। हमारा उससे क्या प्रयोजन? वह श्रवण-सुखद भले ही हो कार्यतः सुखद नहीं, श्रीमदान्धोंने प्राणियोंको मारनेके लिये ही कथावाचकों द्वारा संसारमें उसका विस्तार कर दिया है। उसे जो सुनाते हैं उन्होंने लोगोंका घर छुड़ाया, याचक बनाया, पागल बना दिया, वियोग द्वारा तड़पा-तड़पाकर मार डाला, ये सब प्राणिघातक हैं। हे सखे! यदि हमें बचाना चाहो तो अब विलम्ब न करो, शीघ्र ही दर्शन दे दो। हे नाथ! आपका सुकोमल चरणकमल हम अपने कर्कश वक्षस्थलपर धीरेसे डरती-डरती धारण करती हैं, कहीं उनमें आघात न पहुंच जाय, उन चरणोंसे आप वन-वनमें जाया करते हैं तो क्या वनकी कंकड़भरी पथरीली भूमिसे उनमें व्यथा न होती होगी? ऐसा सोच-सोचकर हमारा मन क्षुभित हो जाता है। आप दर्शन देकर उसे स्वस्थ करें।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका इकतीसवाँ अध्याय समाप्त

●

बत्तीसवाँ अध्याय

गोपियोंके बीच श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव और परस्पर कुछ मार्मिक प्रश्नोत्तर

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार गान करती और नाना प्रकारसे बिलखती हुई गोपियाँ नन्दलालाके दर्शनोंकी इच्छासे विह्वल हो

उच्चस्वरमें रोने लगीं। देखनेसे ऐसा लगता था मानो उनके प्राण ही निकल जायँगे। अब तो भगवान्‌से भी न रहा गया।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥ २॥

वे मन्द-मन्द मुस्कराते हुए गोपियोंके बीचमें प्रकट हो गये। कामने इधर शरद्‌में वसन्त-ऋतु प्रकट कर दी थी, जो उनके पीताम्बरमें जा छिपी। भगवान्‌ने इसे भी सहर्ष स्वीकार कर लिया और उसीसे गोपियोंके अश्रु पोंछे। श्यामसुन्दरका सर्वातिशायी अलौकिक सौन्दर्य देखकर कामका भी मन चञ्चल हो उठा। वह अपने रूपमें न रह सका। तुरन्त अपना व्यापक रूप धारणकर गोपियोंके मन-मंदिरमें जा विराजा। जिससे वे अधिक विह्वल हो उठीं। कामने अपनी विशाल सेनासे बाणों द्वारा भगवान् पर आक्रमण कर दिया जिससे भगवान् भी उसके अनुरूप अनेक बन गये। किसी गोपीने अपने करसे भगवान्‌का कर-कमल ग्रहण किया तो किसीने उनकी चन्दनचर्चित सुकोमल बाहु ही अपने कन्धे पर रख ली। किसीने उनके चबाये हुए ताम्बूल अञ्जलिमें ले लिये तो किसीने उनके चरणकमल ही अपने वक्षस्थलपर रखे। कोई भृकुटी चढ़ा कर दाँतो तले ओठ दबा कटाक्ष करने लगी, तो कोई योगियोंकी भाँति नेत्रोंद्वारा भगवान्‌को हृदयस्थकर उनका आलिंगन करने लगी। भगवान्‌के दर्शन और स्पर्शसे सभी गोपियाँ आनन्दमग्न हो गयीं। उनका वियोगजन्य ताप दूर हो गया। उस समय भगवान् अपनी शक्तियोंसहित अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। वे सबको साथ लिये नाना-पुष्पोंसे सुवासित सुरम्य यमुना तट पर गये जहाँ चन्द्रमाकी निर्मल चाँदनी बिखर रही थी। वहाँ गोपियोंने अपने प्रियतमके लिये अपनी-अपनी कुचकुंकुमरंजित साड़ियाँ बिछा दीं जिसपर त्रिलोकी को मोहित करने वाला अतीव सुन्दर रूप धारण कर श्यामसुन्दर बैठ गये और गोपियाँ भी उनके साथ एक आसन पर बैठ गयीं। योगीजन जन्म-जन्मान्तरकी कठोर तपस्यासे भी जिन्हें हृदयमें नहीं ला पाते थे उन्हें गोपियोंने सस्मितकटाक्षपातोंसे अपने वशमें कर लिया। वे भगवान्‌के सुकोमल करोंको एवं चरण-कमलोंको अपनी गोदमें रख उन्हें धीरे-धीरे सुहलाती हुई प्रणयकोपावेशमें बोलीं—

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम्।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः॥ १६॥

हे नाथ ! कुछ लौकिक प्राणी भजन करने वालोंका भजन करते हैं और और कुछ महात्मालोग भजन न करनेवालोंका भी भजन करते हैं। कुछ इन दोनोंका ही भजन नहीं करते, यह तीन पक्ष हुए। इनमें कौन सा निर्दोष पक्ष है और कौन सा आपको प्रिय है। यह आप सत्य-सत्य बतानेकी कृपा करें। भगवान्ने कहा—गोपियो सुनो ! उपकार-प्रत्युपकारकी भावना रखकर जो भजन करते हैं उसमें स्वार्थ है, वहाँ न प्रेम है न सुख है और न धर्म ही है। जो निरपेक्ष भजन करते हैं वहाँ प्रेम और धर्म दोनों हैं। जो दोनोंमें किसीका भी आश्रय नहीं लेते ऐसे प्राणी चार प्रकारके हैं (१) आत्माराम—जिनकी वाह्यदृष्टि नहीं। (२) पूर्णकाम—जो भोग-सामग्री रहते हुए भी इच्छारहित हैं। (३) कृतघ्न— किये हुए उपकार को नहीं माननेवाला। (४) गुरुद्रोही—जो उपकार भूलकर अकारण द्रोह करते हैं। हे सखियो ! मैं इन सबसे पृथक् तुम्हारा निरपेक्ष हितकारी परम सुहृद हूँ। मैं अपने भक्तोंकी इच्छापूर्ति तत्काल इसलिये नहीं करता कि उनकी मनो वृत्तियाँ निरवच्छिन्न रूपसे सर्वदा मुझमें लगीं रहें। दूसरी बात परोक्षमें तुम्हारा मेरे प्रति कैसा भाव है, यही देखने एवं तुम्हारे प्रेमालाप सुननेके लिये ही मैं अन्तर्हित हो गया था। तुम सबने घर-परिवारकी ममता त्यागकर जो अनन्यभावसे मेरा वरण किया इसका प्रत्युपकार बदला मैं देवताओंकी आयु पाकर भी नहीं चुका सकता। मैं सर्वदा ही तुम्हारा ऋणी बना रहूँगा इसमें सन्देह नहीं। तुम चाहो तो मुझपर दयाकर मुझे इस ऋणसे मुक्त कर सकती हो; अन्यथा दूसरा कोई उपाय नहीं।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त

तैंतीसवाँ अध्याय

रासलीलाका प्रारम्भ

भगवान् श्रीकृष्णके साथ मल्लयुद्धमें सपरिवार कामका पराजय

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः।
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥

नन्दलालाकी ऐसी प्रेमरसभरी मधुर वाणी सुनकर गोपियोंका विरहजन्य ताप दूर हो गया। साथ ही प्रेमोल्लाससे उनका हृदय भी गदगद हो गया। वे कामकलासे प्रेरित हो भगवान्के दिव्य विग्रहसे जाकर लिपट गयीं और

अपने दिव्य-अंगोंसे भगवान्‌के दिव्य-सौन्दर्यका पान करने लगीं। कामको भगवान् अवसर दे ही चुके थे। वे कब पीछे हटनेवाले थे। इसीलिये शुकदेवजीको बलात् कहना पड़ा—

भगवानपि ता रात्रीः··· ··· ···रन्तुं मनश्चक्रे।

यद्यपि निर्गुण होनेसे भगवान् आत्माराम एवं पूर्णकाम हैं, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु इस समय नन्दनन्दनके रूपमें 'अनात्माराम' और 'अपूर्णकाम' की सी लीलाएं करनेसे उनकी 'सगुणता' व्यक्त होती है और यही इस दिव्य-लीलाका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है। इससे भगवान्‌की आत्मारामता एवं पूर्ण-कामता नष्ट नहीं होती, वह केवल तिरोहित रहती है। लीलाओंके बीच कभी कभी उसकी अभिव्यक्ति होती है जैसा कि कहा है—

ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः।

रासभूमिमें गोपियोंके अनेक मण्डल उपस्थित हैं। भगवान् अनेक रूप धारणकर उनके साथ रास करनेको उद्यत हो रहे हैं। वे दो-दो गोपियोंके गलेमें हाथ डाले उनके बीचमें खड़े वेणुवादन कर रहे हैं। श्यामसुन्दरके क्षण-क्षणमें अभिनव विश्वविमोहन और कृपारसभरित इस स्वरूपका आप लोग हाथ जोड़कर ध्यान करें।

अङ्गनामङ्गनामन्तरा माधवो माधवं माधवं चान्तरेणाङ्गनाः।
इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यगः सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥
(विल्वमंगल)

भगवान्‌के मध्यमें स्थित गोपियोंको निरतिशय सुख हो रहा है। । इस अद्‌भुत झाँकीके दर्शनार्थं देवाङ्गनाओंसहित देवताओंके विमानोंसे आकाश-मण्डल आच्छन्न हो गया। भेरी, मृदंग और दुन्दुभियाँ बजने लगीं। अनवरत पुष्पवृष्टिसे रासभूमि अत्यन्त मृदुल हो गयी। गोपियोंका अपने प्रियतमके साथ सोल्लास नृत्य होने लगा। इनके हाथ-पैरोंका लास्य, भृकुटिविलास, कटि-भंगिमाएं, चोली और कुण्डलोंका दोलन, चूड़ा एवं करधनीकी ग्रन्थियोंमें आया हुआ शैथिल्य एकसे एक अद्‌भुत रसकी अनुभूति कराने लगे। रास-रंगीली गोपियोंके मुखकमलपर स्वेदविन्दु झलक आये। वे मेघमण्डलमें बिजलीके समान रासमण्डलमें चमकने दमकने लगीं।

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।
स्विद्यन्मुख्यः कवररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः॥८॥

वृन्दावनके रासमण्डलमें अपने प्राणधनके साथ नृत्य और गान करती हुईं गोपियोंके कङ्कण, नूपुर और घुँघुरुओंकी ध्वनिसे चारों ओर आकाशमण्डल गूँज उठा। विशाखा सखीने भगवान्‌के साथ गानमें आरोहावरोह क्रमसे ऊँचे स्वरकी आलाप ली। ललितासखीने उसमें ध्रुवतालकी ऐसी अन्तरा लगायी कि नन्दलाला भी उसका कौशल देख हँस पड़े। उन्होंने दोनों सखियोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। रासेश्वरी श्रीराधारानीके सुकोमल अंगोंमें कुछ थकावट सी आ गयी। उनकी शिथिल वेणीसे वेला-चमेलीके पुष्प झरने लगे। वे धीरेसे भगवान्‌का कन्धा थामकर खड़ी हो गयीं। श्यामला सखी अपने कन्धेपर रखी भगवान्‌की सुकोमल भुजा चूमने लगी। शैव्याने भगवान्‌के चबाए हुए ताम्बूल अपने मुँहमें ले लिये। सखी चन्द्रावलीने भगवान्‌के कर-कमल अपने वक्षस्थलपर रख लिये। पद्माने उनके चरण-कमल ही अपने हृदयपर धर लिये। भद्रा भगवान्‌का आलिंगन कर उन्हें चूमने लगी। इस प्रकार कामदेवने अपनी पत्नी रतिके साथ गोपीमण्डलको पूर्णतया कल्लोलित कर दिया। नन्दलालाके साथ-साथ गान करती वे नाना-प्रकारसे विहार करने लगीं। श्यामसुन्दर भी अपने प्रतिविम्वरूप उन गोपियोंके अनुरूप बनकर हाव-भाव पूर्वक कटाक्ष करते हुए उन्हें व्यामोहित करते थे। हे राजन्! गोपियाँ भगवान्‌के अंग-संगसे आनन्दविह्वल हो स्तब्ध-सी हो चलीं। उन्हें अपने केश, साड़ी एवं चोलीतककी सुध-बुध न रही। श्रीकृष्णका यह अद्भुत विहार देखकर विमानोंमें बैठी देवाङ्गनाएँ भी सुध-बुध खो बैठी। नक्षत्रों सहित चन्द्रमाकी भी गति रुक गयी और वह भी कामासक्त हो गोपीरूपमें परिणत हो गया।

कामार्दितः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥१६॥

रासमण्डलमें जितनी गोपियाँ थीं भगवान् भी उतने ही रूप धारणकर उनके साथ सोल्लास क्रीड़ा करने लगे। श्रान्त गोपियोंके मुखका पसीना भगवान् अपने कर-कमलोंसे पोंछते थे। गोपी बना काम भी भगवान्‌के साथ अपनी पूरी शक्ति लगाकर मल्लयुद्ध कर रहा था, किन्तु वह अभीतक सफल न हो सका था। श्रम दूर करनेके लिये भगवान् स्थलरास समाप्त कर जलक्रीड़ा करनेके लिये गोपियोंसहित जलमें प्रविष्ट हुए और वहाँ गजेन्द्रके समान क्रीड़ा करने लगे। हँस-हँसकर कटाक्षपात करती हुईं गोपियाँ भगवान्‌पर जल-सेचन करने लगीं। इतना सब होते हुए भी भगवान्‌में किसी प्रकारका विकार नहीं आया किन्तु कामका अहंकार टूट गया। यह देख देवतागण आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। फिर, भगवान् जलसे निकलकर यमुनाके सघन-कुञ्जोंमें

जहाँ दिव्य-भवनोंका निर्माण था, जिनमें सब ऋतुओंके रंग-विरंगे पुष्प खिले थे, जो अलौकिक सुगन्ध से सुवासित हो रहे थे. पृथक्-पृथक् भवनमें गोपियोंके साथ नाना प्रकारसे सानन्द विहार करने लगे। कामने अपनी पूरी शक्तिसे भगवान्‌को पराजित करनेके लिये गोपियोंको इतना उन्मत्त कर दिया कि वे भगवान्‌के शरीरसे एक क्षण भी पृथक् न हो पायीं। वह स्वयं भी सर्व-सुन्दरी गोपी बनकर भगवान्‌को विचलित करनेमें जुट गया। कहीं रात्रि बीत न जाय, यह चिन्ता उसे मथ रही थी। भगवान् यह पहले ही समझ गये थे इसलिये उन्होंने कालकी गति पहलेसे ही रोक दी थी। काम इसे समझ न पाया था। चन्द्रदेव स्वयं गोपी बने श्रीकृष्णके अंकमें विराज रहे थे। यही दशा कामकी भी थी। भगवान्‌की इस दिव्य-मधुमयी-रासलीलासे जो भी आकृष्ट हुआ वह तुरन्त गोपी-भावमें परिणत हो गया और भगवान्‌ने भी उसका उसी प्रकार मनोरथ पूर्ण किया। कामने देखा—चन्द्रमा आकाशके ठीक मध्यमें हैं और उनकी गति बन्द है। इससे वह बड़ा प्रसन्न हुआ। भगवान्‌ने कामको अपनी शक्ति आजमा लेनेका पूरा अवसर दे दिया। वह रात्रि ब्रह्माकी रात्रि-सी हो गयी, जिसमें चार युग सहस्र बार बीत चुके थे। इसीलिये 'सर्वा निशाः' ऐसा बहुवचनका उल्लेख किया गया है। इतने दीर्घकालके विरामहीन समागमसे कामकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी। वह भगवान्‌को तो च्युत न कर सका परन्तु स्वयं सेना सहित च्युत हो गया। कारण भगवान्‌की चरमधातु आत्मामें अवरुद्ध थी।

सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥२६॥

श्रीधरी—आत्मन्येव अवरुद्धः सौरतश्चरमधातुर्न तु स्खलितो यस्येति कामजयोक्तिः। वंशीधरी—वीर्यं निरुध्य सुरतं करोतीति, अयमेव कामजयः। संहितामें लिखा है—

स्त्रीसङ्गेऽपि न पतितं रेतो यस्य परेच्छया।
स धन्यः पुरुषो लोके कामजेता स कथ्यते॥

यह देख कामका सिर नीचा हो गया और वह संग्राम छोड़ भाग खड़ा हुआ। लज्जाके मारे वह फिर खड़ा न रह सका। उसने भगवान्‌को 'अच्युत' कहकर प्रणाम किया।

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—हे भगवन्! धर्मके स्थापन एवं अधर्मकी निवृत्तिके हेतु भगवान् अवतीर्ण हुए। वे पूर्णकाम एवं मर्यादाओंके रक्षक हैं। उन्होंने परस्त्रियोंके साथ जो रास-विलास किया, वह धर्मके प्रतिकूल जान पड़ता है भगवान्‌ने ऐसा क्यों किया, इसका अभिप्राय क्या है?

शुकदेवजी बोले—राजन् ! समर्थ एवं तेजस्वी पुरुषोंके आचरण कहीं-कहीं धर्म-विरुद्धसे जान पड़ते हैं और उनमें साहस (निर्भयता) भी देखी जाती है। ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, बृहस्पति आदि देवता जिसके उदाहरणरूपमें वर्तमान हैं। ब्रह्माने पुत्रीका अनुगमन, इन्द्रने अहल्यागमन, चन्द्रने गुरुपत्नी तारागमन, बृहस्पतिने भ्रातृपत्नी गमन। किन्तु ऐसे काममें उन्हें दोष वैसे ही नहीं लगता, जैसे गौ, ब्राह्मण आदिका शरीर जलानेपर भी अग्निको 'ब्रह्महत्या' आदि दोष नहीं लगते। सर्वभक्षी होनेपर भी जैसे अग्नि अपवित्र नहीं होती वैसे ही ये भी न अपवित्र होते हैं और न इन्हें दोष ही लगता है। असमर्थ प्राणी मूर्खतावश मनसे भी ऐसा प्रयास न करे अन्यथा शिवका अनुकरणकर विषभक्षण करनेमें विनाश निश्चित है। दूसरी बात--देहाभिमानसे रहित प्राणियोंके पुण्य-पाप स्वर्ग-नरक अर्थात् सुख-दुःखप्रद नहीं होते। लोकमें उनके कर्म केवल प्रारब्धकर्मोंकी समाप्तिके लिये होते हैं। फिर जो भगवान् चर-अचर सभी प्राणियोंके नियन्ता हैं एवं साक्षी है उनके पुण्य-पापका प्रश्न ही कैसा ? जिनकी कृपा-कटाक्षके लेशमात्रसे ऋषि-मुनि बन्धनमुक्त हो निर्भय विचरते हैं उनके बन्धनकी आशंका कैसी ?

तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥ ३५ ॥

जो गोप, गोपी आदि सभी प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे निवास करते हैं क्रीडाके हेतु ही जिन्होंने यह लीला विग्रह धारण किया है। उनकी यह क्रीडा अलौकिक क्षमताका प्रदर्शन एक अनुकम्पाका निदर्शन है। वे साधारण मानवसदृश नहीं हैं जिसके पीछे सर्वत्र स्वकीय-परकीय भेदभाव चिपका है। यदि यह कहें कि सर्वात्माकी ऐसे कर्ममें प्रवृत्ति क्यों ? तो इसका सीधा समाधान यही है कि शृङ्गार-रसमें अनवरत लिप्त चित्तवाले अतिबहिर्मुख प्राणियोंको अपनी ओर आकर्षण करनेके लिये भगवान्ने यह लीला प्रकट की थी ताकि मनुष्य किसी भी प्रकारसे उनकी शरणमें आ जाय।

भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३७ ॥

जिन गोपियोंसे भगवान्ने क्रीडाकी थी उनके पति गोपोंकी तो भगवान्-पर दोषदृष्टि नहीं हुई। कारण वे अपनी पत्नियोंको प्रतिक्षण अपने समीप ही देखते थे।

मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ॥ ३८ ॥

तब दूसरे पामर प्राणियोंको भगवान् पर आक्षेप करनेका अधिकार क्या ? ऐसी दशामें अज्ञानियों द्वारा भगवान्पर कलंककी कल्पना करना ही कलंक है।

हे राजन् ! भगवान्ने यह लीला कामके पराजयके निमित्तकी थी। ब्रह्माकी रात्रि समाप्त होनेपर वे गोपियाँ जानेकी इच्छा न रहनेपर भी भगवान्के आदेशसे अपने-अपने घर चली गयीं। जो मनुष्य व्रजाङ्गनाओंके साथ भगवान्की इस अद्भुत 'रासलीलाका श्रद्धा भक्तिसे श्रवण-मनन या उसका वर्णन करता है। उसकी कामवासनाएँ शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं, और वह प्रेमलक्षणा पराभक्ति प्राप्तकर भगवान्का सानिध्य प्राप्त करता है।

रासलीला-रहस्य

यह प्रकरण अत्यन्त गम्भीर है जिसमें विद्वान्-अविद्वान् सभीको भ्रम होना स्वाभाविक है। विद्वान् तो कुछ संकोचसे किन्तु अविद्वान् स्पष्ट शब्दोंमें अविवेक पूर्वक अपना भ्रम उपस्थित करते हैं। इतना ही बस दोनोंमें अन्तर है। पूर्वाचार्योंने इसपर काफी प्रकाश डाला है किन्तु उसका भी समझना सबके लिये कठिन है। कुछ विद्वान् कोरी आध्यात्मिक व्याख्या कर अपना पिण्ड छुड़ाते हैं। जो इस प्रकरणके सर्वथा अनुपयुक्त है। क्योंकि इससे भगवान्की लीलाओंका अपलाप होता है जो उन्हें भी सन्मत नहीं। भोगी पुरुष इस अलौकिक पद्धतिका रहस्य नहीं समझ सकता, कारण वह अनुभूति अन्तरंग साधनसे होती है। लीला-पुरुषोत्तमकी लीलाको जान लेना एक तो यों ही कठिन है तिसपर भी इस मधुमयी-प्रेमलीलाका ज्ञान तो अत्यन्त कठिन है। भगवान्की परम प्रेयसी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजीकी कृपादृष्टिसे ही इन लीलाओंका कुछ ज्ञान हो सकता है, तर्क या युक्तियोंके बलपर नहीं। हम अपने भावुक श्रोताओंके समक्ष इसपर गम्भीरतापूर्वक युक्तियुक्त विचार प्रस्तुत करते हैं इसका मनन करें।

भगवान्की लीलाथें जैसे सिसृक्षा (सृजनेच्छा) होती है वैसे ही उनकी युयुत्सा' (युद्धेच्छा) और रिरंसा (रमणेच्छा) भी होती है। 'एकोऽहं बहुः स्याम' की 'सिसृक्षा' में उनकी इच्छाशक्ति मायाने अनन्तानन्त जगत् उत्पन्न किये जो सामने वर्तमान हैं। 'युयुत्सा' की पूर्ति अपने द्वारपालों जय-विजयके साथ तीन जन्मतक युद्ध द्वारा की और 'रिरंसा' में अपनी प्रधान शक्तिको शाप दिलाकर यह लीला आरम्भ की। गोलोकमें निरन्तर रासलीला चलते हुए भी भगवान्की ऐसी इच्छा ही क्यों हुई ? इसका प्रधान कारण था 'कामके गर्वका नाश'। यह बात प्रसिद्ध है कि भगवान् जीवोंके कल्याणार्थं ही दयावश किसीके गर्वको रहने नहीं देते। ब्रह्मा आदि देवताओंको जीतकर काम एक समय बड़ा ही उन्मत्त हो गया था। उसका सामना करनेका साहस

किसीको न था। एक दिन दैवयोगसे नारदजीसे उसकी भेंट हो गयी। कामने नारदजीको प्रणाम कर कहा—देवर्षे! आपने मेरा प्रभाव देखा? मैंने तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली। मेरे भयसे कन्दराओंमें भागकर छिपे ऋषिमुनियोंकी लँगोटियाँ मैंने खुलवा डालीं। मेरी भुजा खुजला रही है, मुझसे कोई लड़नेवाला दीखता नहीं। मेरी शान्तिका कोई उपाय बतावें। पर, ध्यान रखें कि मेरे सामने विजयी वही ठहरेगा जो संभोग करते हुए भी च्युत न हो। नारदने कहा—कंस आदि दुष्ट राजाओंके भारसे पीड़ित पृथ्वीके उद्धारार्थ भगवान् ने अवतार लेनेकी प्रतिज्ञा की है। तुम्हें उन्हींसे युद्ध कर अपनी खुजली मिटा लेनी चाहिये।

भगवान् भी कामके अहंकारकी बात पहलेसे ही जान गये थे। वे लीला कौतुकी एक दिन गोलोकमें विरजा गोपीके यहाँ चले गये। रासेश्वरी श्रीराधाने जब यह समाचार सुना तब उन्हें मानका सञ्चार हो गया। भगवान् अपनी प्रियतमाको मनाने उनके घर गये और बड़े प्रेमसे अतीव कोमल उनके चरण-कमल सुहराते हुए उन्हें मनाने लगे। उनका कोप कुछ शान्त हो ही रहा था कि सुदामा गोपने आकर कुछ ऐसी असंवद्ध बातें कह दीं जिनसे वे पुनः कुपित हो उठीं और बोलीं—क्यों रे सुदामा! तू तो असुरों की तरह बातें करता है? अतः तू असुर ही हो जा। यह सुनते ही सुदामा रो पड़ा और बोला—देवि आपने यह क्या किया? भगवान् से मेरा वियोग करा दिया। मैंने तो परिहासमें ही यह सब कुछ कहा था। वियोगके कष्टोंका आपको अनुभव नहीं, इसीलिये आप मुझे ऐसा शाप दे बैठीं। भगवान् करें कि आपको भी सौ वर्षों तक भगवान् के वियोगका दुःख भोगना पड़े। यह कहकर सुदामा गोलोक-से चल पड़ा। रासेश्वरी श्रीराधाजी उसके जाते ही "पुत्र कहाँ जाते हो, कहाँ जाते हो। यह पुकार' कर पुत्रवियोगसे आर्त हो उठीं। इधर उन्हें भगवान् से भावी वियोगकी आशंका भी सता रही थी। वे विकल हो बोलीं—प्राणनाथ! मेरा आपसे कभी वियोग न हो और सुदामा भी यहाँसे न जाय, ऐसा कोई उपाय करें। यह कह भगवान् के गलेसे लिपटकर रोने लगीं। भगवान् ने उन्हें समझाते हुए कहा—प्रिये! चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं। हम,तुम दोनों ही भूलोकमें चलकर दिव्य मधुमयी लीला करेंगे। पृथ्वीभारसे पीड़ित हो रही है। उसका भार उतारना है। कामका अहंकार भी बहुत बढ़ गया है। वह उन्मत्त हो अब मुझसे ही लड़नेकी प्रतीक्षा कर रहा है, उसे भी सन्तुष्ट करना है। व्रजमें गोलोककी सम्पूर्ण विभूतियाँ पहुँच गयी हैं। देव-देवियाँ वहाँ गोप-गोपियाँ और गौएँ बन हमारे आगमनकी प्रतीक्षामें हैं।

वृन्दावन 'चिन्मयधाम' बन गया है। वहाँ अब प्राकृतिक मनुष्योंकी गन्ध भी नहीं है।

"सम्भवन्तु सुरस्त्रियः" "न मानुष्यः कथञ्चन।"

इसलिये गोलोकमें अनवरत होनेवाली रासलीलाकी एक झाँकी वहाँ भी आवश्यक हो गयी है। पृश्नि और सुतपाको जो वर दिया था, उसे सार्थक करना है। वे देवकी और वसुदेवके रूपमें उत्पन्न हो गये हैं। द्रोण नामके वसु और उनकी पत्नी धरा वहाँ नन्द एवं यशोदाके रूपमें उत्पन्न हैं। नन्द आदि गोप और उनकी स्त्रियाँ, वसुदेव आदि यदुवंशी, देवकी आदि उनकी स्त्रियाँ, ज्ञाति, बन्धु, सुहृद् और तुम्हारे अनुवर्ती ये सब नन्द और वसुदेव कुलमें प्रायः देवता ही हैं।

'सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत॥ ६३॥

(कंस, कंक आदि दैत्यरूपमें अवतीर्ण हैं। इसीसे यहाँपर प्रायः शब्द का प्रयोग किया गया है)।

प्राणेश्वरी! यह शाप नहीं, शापके व्याजसे विश्वके निमित्त वरदान है। इससे मधुररसमयी वह स्रोतस्विनी प्रवाहित होगी जिसमें अवगाहन कर प्रपञ्चमें फँसे हुए जीवोंके पाप-ताप सदाके लिये मिट जायेंगे। मैं भी तुम्हारे विरहके मोहनमहाभावमहोदधिमें गोते लगाकर कृतार्थ हो जाऊँगा। सुदामा तो गोलोकका है ही वह क्रीड़ा कर शीघ्र ही लौट आयेगा। तुम व्यर्थ शोक न करो। इस प्रकार रासेश्वरी श्रीराधाके अवतीर्ण होने और उनके नित्य रास एवं नित्य-निकुञ्जलीलाकी एक झाँकी जगत्को भी मिल जानेकी यह भूमिका प्रस्तुत हुई।

श्रीहरिके अंशसे वृषभानु गोप एवं पितरोंकी मानसी कन्या कलावती कीर्तिदा गोपीके रूपमें प्रकट हुईं। यथासमय उन दोनोंका विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ। भगवान्का जन्म भाद्रकृष्ण अष्टमी बुधवारको अर्द्धरात्रिमें और श्रीराधाजीका जन्म भाद्रशुक्ल अष्टमी चन्द्रवार मध्याह्नमें हुआ। देवर्षि नारदने विचार किया कि जब भगवान् अवतीर्ण हो गये तब उनकी प्रियतमा श्रीराधाजी भी अवश्य कहीं प्रकट हुई होंगी। वे उनके दर्शनोंके लिये व्याकुल हो व्रजकी गलियोंमें इधर-उधर घूमते-फिरते थे। एक दिन वे दैवयोग से वृषभानुके प्रासादके नीचे जा पहुँचे। वह प्रासाद उन्हें अपनी ओर खींचने सा लगा, जिससे वे विवश हो उसके अन्दर चले गये। वहाँ श्रद्धा-भक्तिसे उस अनुपम कन्याके दर्शनकर वे भावातिरेकमें स्तब्धसे रह गये। बड़ी कठिनाईसे

नारदजीने वृषभानुनन्दिनीका पूजन-वन्दन और स्तवन किया। प्रार्थना करनेपर उन्हें उनके किशोरीरूपका भी दर्शन हुआ और वे कृतकृत्य हो किसी तरह वहाँसे लौट सके।

एक दिनकी घटना है नन्दजी श्रीकृष्णको प्रेमवश गोदमें लिये किसी सघन वनमें चले गये थे। वहाँ अकस्मात् आँधीके साथ-साथ भीषण वर्षा भी आरम्भ हो गयी। इस दशामें बालककी रक्षा कैसे हो, ऐसा विचार कर उन्होंने आर्तभावसे नारायणका स्मरण किया। नारायण-नारायण? रक्षा-रक्षा करो—इतना कहते ही तत्क्षण वहाँ एक दिव्य तेजोमय प्रकाश फैल गया। उसमें एक किशोर अवस्थाकी अतीव सुन्दर बालिका दिखायी पड़ी। उसका अद्भुत सौन्दर्य देखकर नन्दजी स्तब्धसे रह गये और उन्हें गर्गके वचनका स्मरण हो आया। उन्होंने उसे तुरंत राधा समझ सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा—देवि! आओ, इन्हें ले जाओ, ये तुम्हारे प्रियतम हैं। इन्हें घर ले जाकर यशोदा रानीको दे देना। तबतक मैं भी गौओंको सँभालकर ले आता हूँ। राधाजी श्रीकृष्णको गोदमें लेकर गहन वनमें प्रविष्ट हुईं। वहीं वृन्दावनकी भूमिपर गोलोकका दिव्य रासमण्डल प्रकट हुआ। श्रीराधाजी नन्दपुत्रको लिये उसी मण्डपमें चली गईं। सहसा भगवान् श्रीराधाजीकी गोदसे अन्तर्हित हो गये। वे चकित हो इधर-उधर ढूंढने लगीं। इतनेमें नित्य-किशोरमूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण सामने दीख पड़े। उन्हे देखते ही राधाका हृदय प्रेमोल्लाससे विह्वल हो उठा। भगवान्ने कहा—प्रिये! गोलोककी सारी बातें भूल गयीं या कुछ स्मरण हैं? मुझे भी भूल गयीं क्या? मैं तो तुम्हें नहीं भूला और न कभी भूलूँगा ही। यह चर्चा हो ही रही थी कि योगमायासे प्रेरित हो ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने नतमस्तक हो श्रीराधा एवं श्रीमाधवके चरणोंमें प्रणाम किया और अग्नि प्रकटकर विधिपूर्वक दोनोंका पाणिग्रहण संस्कार करा दिया। श्रीराधाने श्रीकृष्णको दिव्य पुष्पोंकी माला पहनायी एवं श्रीकृष्णने श्रीराधाके गलेमें माला डाली। उसी समय आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। नाना प्रकारके बाजे बजने लगे। इस तरह ब्रजके गोप और गोपियोंके सर्वथा अनजानमें ही इनकी यह विवाहलीला सम्पन्न हो गयी।

अनन्तर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और भगवान्‌का किशोररूप भी अन्तर्हित हो गया। वे पुनः बालरूपमें श्रीराधाजीकी गोदमें आ विराजे। तब श्रीराधाको बाह्य-ज्ञान हुआ और उन्होंने नन्दनन्दनको लाकर यशोदारानी के समीप पहुँचा दिया। भाण्डीरवनकी सम्पूर्ण घटना भी श्रीराधाने उन्हें

सुना दी। वर्षासे किशोरीजीकी साड़ी भीग गयी थी। मैया यशोदा उन्हें दूसरी साड़ी पहनानेका विचार कर ही रही थीं कि उनका अनुपम दिव्य सौन्दर्य देखकर वे निश्चेष्ट सी रह गयीं। इधर किशोरीजी धीरे-धीरे उपवनके लताजालमें जा छिपीं। कुछ दिनों वियोगावस्थामें रहकर पुनः उनका श्रीकृष्णसे एक स्थानपर मिलन हुआ और धीरे-धीरे यह चर्चा सम्पूर्ण व्रजमें फैल गयी। कुछ गोपियाँ इसे सुनकर प्रसन्न होतीं तो कुछ नाक-भौंह सिकोड़तीं थीं। कितनी ही उनके समीप जाकर कहने लगतीं—अरी भानुनन्दिनी! तूने यह क्या किया? निर्मलकुलमें······। व्रजमें दो गोपियाँ ऐसी थीं जिनके हृदयमें यह मिलन शूल-सा चुभता था। इनमें एक वृद्धा थी और दूसरी समवयस्का। इन दोनोंको अपने सतीत्वपर महान् गर्व था। अनसूया और सावित्रीसे भी ये अपनेको ऊँची समझतीं और भाँति-भाँतिके प्रश्नोंसे किशोरीजीकी भर्त्सना कर उन्हें लज्जित किया करती थीं। किशोरीजीका तो संसार ही दूसरा था। उनके तो रोम-रोममें श्रीकृष्ण रमे थे। उन्हें मानापमानकी क्या चिन्ता? वे ऐसे प्रश्न सुनकर केवल रोदेतीं। जब यह चर्चा बहुत फैल गयी तब व्रजकाननकी अधिष्ठात्री देवी वृन्दासे न रहा गया। उन्होंने एकदिन रोकर भगवान्से अपनी यह व्यथा सुनायी। उसे सुनते ही भगवान्के भी नेत्रोंसे अश्रुके दो बिन्दु ढुलक पड़े। वृन्दा समझ न पायी कि श्रीकृष्ण इसका क्या प्रतीकार करेंगे। योगमाया तो उनकी ओर झाँक ही रही थी। तुरंत अभिप्राय जानकर उसने दृश्य बदल दिया और एक दूसरा ही खेल आरम्भ हो गया। नन्दलाला मणिजटित आँगनमें खेलते-खेलते गिर पड़े और तत्क्षण मूर्छित हो गये। नन्द और यशोदा यह देख दोनों चीत्कार करते वहाँ आ पहुँचे और अन्य बहुतसे गोप और गोपियाँ भी वहाँ एकत्र हो गयीं। यशोदा श्यामसुन्दरको गोदमें उठाकर बिलखने लगीं—हाय! मेरे नीलमणि! तुझे क्या हो गया? अरे! मेरे लालाका तो सम्पूर्ण अंग जल रहा है। नाड़ी धक् धक् करती चल रही है। आँखें भी खुलती नहीं। नारायण! नारायण! मेरे लालाकी रक्षा करो, रक्षा करो। उनका विलाप सुनकर सबका धैर्य छूटने लगा। बाबा नन्दने एक ही घड़ीमें डुगडुगी पिटाकर सारे व्रजमें सूचना फैलवा दी कि कन्हैयाको जो स्वस्थ करेगा उसे मुँहमाँगा पुरस्कार दिया जायगा। यह सुनकर सघनवन से एक तरुण वैद्य निकलकर आये। यशोदा रानी उन्हें देखते ही बोल उठीं—वैद्यराज! मेरे नीलमणिको स्वस्थ कर दो। जो माँगोगे, दूँगी। मेरे तो प्राण सूखे जा रहे हैं। वैद्यराजने सान्त्वना देते हुए कहा—व्रजरानीजी!

घबराओ नहीं धीरज धरो, मैं अभी तुम्हारे लालाको स्वस्थ किये देता हूँ। जरा मेरी बात सुनो, जल्दीसे सोनेकी एक नयी कलसी मँगा दो। उसमें मेरी बतायी विधिसे जल मँगाना होगा। कलसी तत्क्षण आ गयी। वैद्यने एक कीलसे उसमें सहस्र छिद्र बनाये और एक चमकता हुआ यन्त्र अपनी झोलीसे निकालकर उससे श्रीकृष्णचन्द्रके कुञ्चित केशोंकी एक लड़ काट ली। फिर एक-एक केश जोड़ कर उनसे एक विशाल केशतन्तु निर्माण किया जिसे लेकर वे यमुना-तट पर गये। नौकासे यमुना पार कर उन्होंने उस केशतन्तुका एक छोर तमालके मूलमें बाँधा तथा उसका दूसरा छोर ठीक उसीके सामने दूसरे तमालसे इस पार आकर बाँध दिया। वैद्यराजने यशोदा रानीसे कहा—व्रजरानी! किसी सती स्त्री को भेजो जो इस तन्तुपर पैर रखकर तीन बार पार जाय और लौट आवे। फिर चौथी बार इसी छिद्रपूर्ण कलसीमें पारका यमुना जल भरकर श्रीकृष्णचन्द्रके समीप ले आये। बस मैं तत्क्षण उसी जलसे तुम्हारे लालाको स्वस्थ कर दूँगा। यह सुनकर यशोदा माथा धुनकर रो पड़ी और बोली—वैद्यराज! यह भी कभी संभव हो सकता है। तरुण वैद्यने कहा—व्रजरानीजी! आप घबरायें नहीं। सतीकी महिमा अपार है, वह शून्यमें चल सकती हैं, शून्यमें ही जल भर सकती है। फिर व्रज तो सतियोंकी खान है। इसमें असंभव क्या। यशोदाने कातर-कण्ठसे सतियोंका आवाहन किया और स्वयं ही कलसी उठाकर जल भरने चल पड़ीं। किन्तु वैद्यराजने हाथ पकड़ लिया और कहा—माँके लाये जलसे यह कार्य सम्भव न हो सकेगा। वैद्यने गोपसुन्दरियोंकी भीड़की ओर देखा। उसमेंसे एकने कहा हमारी ओर क्या देखते हो? हम तो श्याम-कलंकिनी हैं। हमारे लाये जलसे ये स्वस्थ कहाँ हो सकेंगे? यशोदा की प्रार्थनापर वह युवती एवं वृद्धा भी आयीं जो सतीत्वके गर्वमें किशोरीजीका सदा उपहास एवं भर्त्सना किया करती थीं। सर्वप्रथम युवतीने ही इठलाते हुए बड़े अभिमानसे कलसी उठा ली और जल भरने चल दी। गोपियोंकी अपार भीड़ उसके पीछे चल पड़ी, किन्तु केशतन्तुपर ज्योंही उसने चरण रखा वह टूट गया और युवती यमुनामें गोते खाने लगी। बचाओ-बचाओका हल्ला चारों ओर मच गया। किसी प्रकार मल्लाहोंने उसकी प्राण-रक्षा की। अब वृद्धाकी बारी आयी। केशतन्तुका पुनः ग्रथन किया गया, किन्तु जो दशा युवतीकी हुई ठीक वही दशा वृद्धाकी भी हुई। यह देख यशोदाके मुखपर निराशाकी लहर छा गयी। वह वैद्यराजसे बोली—वैद्यराज! आप ही ज्योतिष गणनासे किसी ऐसी सतीका परिचय बतायें जिसके द्वारा यह कार्य

सिद्ध हो सके। वैद्यराजने पृथ्वीपर तीन रेखायें खींचकर कुछ चित्र एवं यन्त्र बनाये और इनपर पर्दा डालकर वह बाहर खड़े हो, मन्त्र-जपने लगे। जब पर्दा हटाया गया तब उन रेखाओंपर दो अक्षर एवं एक श्लोकमें उनका अर्थ लिखा था। वे दो अक्षर 'रा' और 'धा' थे। उनका अर्थ इस प्रकार लिखा था —

राधेत्येवं च संसिद्धा राकारो दानवाचकः।
धा निर्वाणं च तद्दात्री तेन राधा प्रकीर्तिता॥

इसे देख वैद्यराज प्रफुल्लितचित्त हो बोले—व्रजरानीजी! अब चिन्ताकी बात क्या? व्रजमें एक परम सती रहती हैं जिनका नाम राधा है। अब वे ही इस संकटसे मुक्त कर सकती हैं। उन्हें ही शीघ्र बुलाया जाय। किशोरीजी को यहाँकी इस घटनाका कोई पता तक न था। वे तो एकान्तमें बैठी पुष्पोंकी माला गूँथती, भगवान्के ध्यानमें मग्न हो उन्हें कुछ गाना सुना रही थीं। यह समाचार सुनते ही वे विक्षिप्त-सी हो गयीं, हा क्या प्रियतम रुग्ण हैं? वे झट गोकुल चल दीं। उनके आते ही सारा गोकुल प्रकाशसे भर गया। तरुण वैद्यराजने आसनसे उठ श्रीकिशोरीजीके चरणोंमें सिर टेककर प्रणाम किया और यह विधि बतलाई। वे तुरन्त कलसी उठाकर जल भरने चल दीं। उन्होंने पहले उस केशतन्तुको सिर झुकाकर प्रणाम किया और फिर अपने सुकोमल चरण उसपर रखकर चल पड़ीं। चारों ओर जय-जय हो इस प्रकार 'जय-जयकार' की ध्वनि होने लगी। क्रमशः तीन बार किशोरीजी इस केशतन्तु सेतु पर इस पारसे उस पार गयीं और आयीं। तदनन्तर सहस्र छिद्रोंवाली स्वर्ण कलसी जलसे पूर्णकर चल दीं। वे सहज ही पारसे जलकी भरी कलसी सिरपर रखे इस पार लौट आयीं। इसपर आकाशसे पुष्प-वृष्टि होने लगी। सारा पथ पुष्पोंसे भर गया। किशोरीजीसे यह जल भरी कलसी लेते हुए वैद्यके नेत्रोंसे श्रद्धाभरी अश्रुधारा बह चली वे बोले—देवि! तुम्हीं अपने करकमलोंसे एक अंजली जल नन्दनन्दनपर छोड़ दो। किशोरीजीने लज्जासे वैद्यके कथनानुसार श्रीकृष्ण पर जल चढ़ा दिया। जल पड़ते ही श्यामसुन्दर तुरन्त इस प्रकार उठ बैठे जैसे सोकर जगे हों। लज्जासे सिर नीचा किये किशोरीजी अपने घरकी ओर चल दीं और उनका उपहास करनेवाली गोपियाँ उनकी चरणरज अपनी अञ्जलियोंमें बटोरने दौड़ पड़ीं। बड़े-बड़े भावुक वृद्ध गोप भी इस देवीके चरणरजमें लोट-पोटकर कृतार्थ हो गये।

इस प्रकार श्रीरासेश्वरी राधा और उनके अभिन्न प्रियतम श्रीकृष्णके प्रेमकी एक झाँकीका वर्णन किया गया। अब आगेका प्रसंग सुनो। इनके यहाँ आनेके पहले ही गोलोकका दिव्य वृन्दावन यहाँ आ पहुँचा था। लीला पर्यन्त भौतिक वृन्दावन उसीमें लीन रहा। यह योगमायाकी विलक्षण रचना थी कि रासलीलाके इन लता, निकुञ्ज, वन और वृक्षोंकी सुषमा क्षण-क्षणमें अभिनव होती मन हर रही थी । इस भूमिका मान भी उनकी इच्छापर निर्भर हो गया था। जिस समय जैसा संकोच या विस्तार अभीष्ट होता, वही हो जाता था। लीला-पुरुषोत्तमने अपनी प्रियतमा श्रीराधारानीके साथ यहाँ रासक्रीड़ा की थी, संभव है इसमें किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। आपत्ति हो सकती है गोपकन्याओंके साथ विहारमें। उसके सम्बन्धमें नीचे विचार प्रस्तुत किया जाता है। इसपर ध्यान दें।

यहाँ पर सबसे पहले यह विचार करना चाहिये कि ये गोपकन्यायें कौन थीं ? पद्मपुराणमें चार प्रकारकी गोपियोंका उल्लेख किया गया है।

गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यकाः।
देवकन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्यः कथञ्चन ॥

एक समय, वेदोंने मूर्तिमान हो वैकुण्ठमें भगवान्‌की चिरकालतक स्तुति की। इससे प्रसन्न हो भगवान्‌ने उनसे वर माँगनेको कहा। श्रुतियोंने कहा—भगवन् ! कोटिकन्दर्पसे भी सुन्दर आपका श्रीविग्रह देखकर हमारा मन कामसे क्षुभित हो कामिनीभावको प्राप्त हो गया है। आपके लोककी गोपियाँ जिस प्रकार आपको पति बनाकर कामभावसे आपकी सेवा करती हैं उसी प्रकार हमारी भी इच्छा हो रही है। कृपाकर आप हमारा मनोरथ पूर्ण करें। भगवान्‌ने कहा—श्रुतियो ! तुम्हारा यह मनोरथ दुर्लभ है फिर भी सत्य होगा। आगामी सारस्वतकल्पमें जब ब्रह्माजी सृष्टि करनेको उद्यत होंगे, तब तुम्हें व्रजकी गोपियाँ होनेका अवसर प्राप्त होगा। तभी वृन्दावनके रासमण्डलमें पति बनकर मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। श्रुतियाँ चिरकालतक उसी रूपका चिन्तन करती-करती कालान्तरमें व्रजकी गोपियाँ बनीं और उन्होंने गान्धर्व-विवाहसे भगवान्‌को अपना पति बनाया। भगवान्‌ने श्रुतिरूपा अपनी पत्नियोंसे क्रीड़ाकर उनका मनोरथ पूर्ण किया था।

यह प्रसङ्ग वेदस्तुति श्लोक १० की व्याख्यामें देखें।

दूसरी श्रेणी ऋषिजा गोपियोंकी थी जो मुनिसे कन्याएँ हुईं। जब भगवान् श्रीराम दण्डकारण्य गये थे तब उनके दिव्य-सौन्दर्यपर मुनियोंके

मन क्षुब्ध हो गये। वे उसी जन्मसे उस विग्रहका अंग-संग करना चाहते थे किन्तु यह संभव न हो सका। तव वे तीव्र तपस्या एवं योग साधना द्वारा गोकुलमें गोपियाँ वने और कामभावनासे रासमण्डलमें पहुँच उन्होंने भगवान्‌को पति वनाकर अपनी इच्छा पूर्ण की। अन्तमें वे सब भगवान्‌के साथ गोलोकके रासमण्डलमें सम्मिलित हुए। पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है—

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः।
रामं दृष्ट्वा हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम्॥
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्च गोकुले।
हरिं संप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्॥

तीसरी श्रेणी गोपकन्याओं की है। इनका निर्देश गोपी चीरहरणके प्रसङ्गमें आ चुका है। ये जनकपुरकी कन्यायें रामके रूपपर मोहित हो उसी जन्ममें भगवान्‌को पति वनाना चाहती थीं। भगवान्‌के विरहसे व्याकुल हो इन्होंने उस समय खाना-पीना तक छोड़ दिया था। भगवान् श्रीरामने उनके प्रेमसे आकृष्ट हो एक दिन स्वप्नमें उन्हें दर्शन दिया, वे देखते ही उनके चरणोंमें गिर पड़ीं और गलेमें जयमाला डालकर उन्होंने भगवान्‌को पति वना लिया। भगवान्‌ने भी उन्हें आश्वासन दिया। उस जन्ममें उन्होंने किसी अन्यसे अपना विवाह नहीं किया। हेमन्त-ऋतुमें कात्यायनी-देवीका पूजन करनेवाली ये ही गोपकन्याएँ थीं। ये पूर्वजन्मसे ही भगवान्‌की नित्यसिद्ध पत्नियाँ थीं। भगवान्‌ने उनका मनोरथ पूर्ण किया। चौथी श्रेणीकी गोपियाँ देवकन्याएँ थीं। आकाशवाणी सुनकर ब्रह्माने भगवान्‌का आदेश देवताओंको वतलाया था कि आप सब अपने-अपने अंशसे यदुकुलमें सपत्नीक जन्म धारण करें।

"भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम्", "तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः"

इन्होंने भी गान्धर्व-विवाह द्वारा भगवान्‌को अपना पति वनाया था। यहाँ परकीया कोई भी न थीं। इसलिये भगवान्‌की ऐसी दिव्य-लीलामें दोषकी कल्पना करना महान् अपराध है। आचार्य वंशीधरजी लिखते हैं।

परस्परानुरोधेन कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्व इति संप्रोक्तो विवाहः सङ्गमे सति॥

इति स्मृतेर्भगवति व्यभिचारदोषो नायाति परकीयासङ्गतेरेव व्यभिचारत्वात्।

चन्द्रमा भी भगवान्के स्वरूप हैं। उनकी १६ कलाएं हैं। वे ही कलाएं सोलह हजार गोपियाँ बनकर रासमण्डलमें पहुँची और उन्होंने भगवान्के साथ विहार किया। स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डमें कहा है—

षोडशैव सहस्राणि गोप्यस्तत्र समागताः।
हंस एव मतः कृष्णः परमात्मा जनार्दनः॥
तस्यैताः शक्तयो देवि षोडशैव प्रकीर्तिताः।
चन्द्ररूपी मतः कृष्णः कलारूपास्तु ताः स्मृताः॥
सम्पूर्णमण्डला तासां मालिनी षोडशी कला।
षोडशैव कला यास्तु गोपीरूपा वराननाः।
एकैकशस्ता; संभिन्नाः सहस्रेण पृथक्-पृथक्॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्ण-जन्मखण्डके २८ वें अध्यायके अनुसार गोपियोंके ३३ गण रासमण्डलमें आये। एक बार भगवान्का सुमधुर वेणुनाद सुनकर भी जब श्रीरासेश्वरी नहीं आयीं तब भगवान्ने पुनः वेणुनाद किया। इस बार, श्रीराधाने विचारा कि अब न चलनेपर प्रणयकोप हो सकता है अतः वे दिव्य छविमें तुरंत चन्द्रावलीके साथ प्रकट हो गईं और भगवान्पर विमोहक कटाक्षपात कर मन्द-मन्द मुसकान सुधा बिखेरने लगीं। रासोल्लासमें उनके रोमकूपोंसे लाखों गोपियाँ प्रकट हो गयीं।

सहचर्यस्तथा गोप्यो राधारोमोद्भवा नृप।
(ग० सं०)

उनकी छवि कोटि-कोटि कामोंको भी लजानेवाली थी। श्रीरासेश्वरीजीके साथ सुशीला आदि ३३ सखियाँ अपनी-अपनी टोलीके साथ प्रकट हुईं। (१) सुशीलाके साथ १६ हजार (२) कुन्ती गोपीके साथ १० हजार (३) कदम्बमालाके साथ १३ हजार तथा (४) यमुनाके साथ १४ हजार गोपियाँ थीं। इसी प्रकार (५) जान्हवीके साथ ६, (६) पद्ममुखीके साथ ६, (७) सावित्रीके साथ १५, (८) स्वयम्प्रभाके साथ ७, (९) सुधामुखीके साथ १४, (१०) शुभाके साथ १४, (११) पद्माके साथ १४, (१२) सर्वमंगलाके साथ १६, (१३) गौरीके साथ १४, (१४) कालिका तथा (१५) दुर्गाके साथ १६,१६, (१६) कमलाके साथ १३ (१७) सरस्वतीके साथ १३, (१८) भारतीके साथ १० (१९) अपर्णाके साथ १४ (२०) रतिके साथ १४ (२१) गंगाके साथ १४ (२२) अम्बिकाके साथ १६ (२३) सतीके साथ १३ (२४) नन्दिनीके साथ १० (२५) सुन्दरीके साथ १३ (२६) कृष्णप्रिया और (२७) मधुमतीके साथ १६-१६ (२८) चम्पाके साथ १३ २ (६)

चन्दनाके साथ १६ (३०) माधवीके साथ ११ (३१) पारिजाताके साथ १० (३२) चन्द्रमुखीके साथ १६ और (३३) शशिकला १४ हजार गोपियोंको साथ लिये रासमण्डलमें उपस्थित हुईं। यहाँ प्रत्येक अंकके साथ हजार संख्या कहनी चाहिये।

त्रयस्त्रिंशद्वयस्याश्च ताः सुशीलादयः क्रमात्।
राधिकायाः प्रियतमा गोपीनां प्रवरा ययुः ॥

गर्गसंहिता गोलोकखण्डके अनुसार गोपियोंके अन्य भी बहुतसे गण वहाँ उपस्थित हुए। सीतावरणानन्तर मिथिलाकी स्त्रियोंने एकान्तमें भगवान् रामको पति बनानेकी प्रार्थना की थी। वे भी दान और तपस्या द्वारा रामके प्रसादसे गोपियाँ हुईं। मार्गमें कोसल-देशकी स्त्रियाँ भी रामके सौन्दर्यपर मोहित हो गयी थीं। उन्हें भी गोपी होनेका वरदान प्राप्त हुआ। जब सीतासहित राम अयोध्या आये तो वहाँकी स्त्रियाँ उनके सौन्दर्यपर मोहित हो गयीं। वे सरयूके तटपर कठोर तपस्या कर भगवान्के अनुग्रहसे गोपियाँ बनीं। श्रीरामके दण्डकारण्य जाने पर गोपालमन्त्रोपासक जो मुनिगण रासार्थं भगवान्का ध्यान कर रहे थे उनके ध्यानमें जटा-मुकुट धारण किये भगवान् राम जा पहुँचे। वे समाधिसे उत्थित हो रामसौन्दर्य पर मुग्ध हो गये। वे सब सीताके समान भगवान्की सेवा करना चाहते थे।

यथा सीता तथा सर्वे भूयास्म इति वादिनः।

भगवान्के वरदानसे वे भी गोपियाँ बने। जब भगवान् राम पंचवटीमें गये तब वहाँकी शबराङ्गनाएँ रामदर्शनसे मोहित हो प्राण त्यागना चाहती थीं। भगवान्ने ब्रह्मचारी वेषमें उन्हें आश्वासन देकर गोपियाँ होनेका वरदान दिया। लोकापवादसे सीताके त्यागनेपर रामने बहुतसे यज्ञ किये और उनमें सुवर्णकी सीता बनाकर यज्ञोंकी पूर्ति की। इस प्रकार रामके मन्दिरमें यज्ञसीताओंका समूह एकत्र हो गया था। एक दिन वे सबकी सब चैतन्य होकर रामसे समागम करने जा पहुँची।

यज्ञसीतासमूहोऽभून्मन्दिरे राघवस्य च।
ताश्चैतन्यघना भूत्वा रामं रन्तुं समागताः ॥

भगवान्ने उन्हें भी गोपी होनेका वरदान दिया। इसी प्रकार वैकुण्ठनिवासिनी, श्वेतद्वीपनिवासिनी, लोकाचल आदि स्थानोंमें निवास करनेवाली देवियाँ भगवत्प्रसादसे गोपियाँ बनीं। उन्होंने रासमण्डलके रंगमंचपर

भगवान्‌के कन्धोंपर बाहुएँ रखकर प्रेमसे विह्वल हो उनको अपने वशमें कर लिया। उनकी तपस्याका वर्णन शेषजी भी सहस्रमुखसे नहीं कर सकते। तब साधारणकी तो बात ही क्या? इसलिये गर्गाचार्यको लिखना पड़ा।

या रासरंगे विनिधाय बाहुं कृष्णांसयोः प्रेमविभिन्नचित्ताः।
चक्रुर्वशे कृष्णमलं तपस्तद्वक्तुं न शक्तो वदनैः फणीन्द्रः॥

वेदकी १६ हजार १ सौ आठ ऋचाएँ भी गोपियाँ बनी थीं।

अष्टावष्टसहस्रे द्वे शताधिक्यः स्त्रियस्तथा।
ऋचोपनिषदस्ता वै ब्रह्मरूपा ऋचः स्त्रियः॥

(कृष्णोपनिषत्)

(आगमशास्त्रका वचन है—प्रमदाशतकोटिभिराकुलितः)

श्रीजीवगोस्वामी और श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती प्रभृति पूर्वाचार्योंने गोपियोंकी संख्या त्रिशत कोटि बतायी है। उनमें राधा और चन्द्रावलीको प्रधान बताया है। इन दोनोंमें भी सर्व प्रधान श्रीराधाजी हैं, ऐसा भक्ति-शास्त्रका निर्णय है। व्रजसे जो गोपियाँ रासमण्डलमें आयीं: उनके पीछे-पीछे कई हजार विवाहिताओंने भी भगवान्‌के समीप जाना चाहा, इसमें अनौचित्य समझकर योगमायाकी प्रेरणासे उनके पतियोंने उन्हें वहीं घरोंमें रोक दिया। उन्होंने वहीं भगवान्‌के ध्यानमें लीन हो अपना भौतिक शरीर त्यागकर दिव्यरूप प्राप्त किया और वे रासमण्डलमें सबसे आगे पहुँच गयीं। इन्हींके सम्बन्धमें २९वें अध्यायमें कहा है।

अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः॥ ९॥
तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्याऽपि संगताः।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः॥ ११॥

भगवान्‌के प्रति जारभाव इन्हींका था। कारण इनके पति वर्तमान थे। कुछ विवाहिता ऐसी थीं जो रोकनेपर भी न रुक सकीं सीधे वहाँ चली गयीं। वे भी योगमायाके प्रसादसे संगदोषसे रहित हो चिन्मय शरीर धारणकर नित्यसिद्ध गोपियोंके साथ रासमें सम्मिलित हुईं। आचार्योंने कहा है—

गोपैर्व्यूढा अपि योगमायासाहाय्यप्रसादात् तदङ्गस्पर्शदोषाद्रहिताश्चिन्मयदेहीभूता नित्यसिद्धगोपीभिः सहिता एव प्रेष्ठमभिसस्रुः।

योगमायाने गोपोंके सन्तोषार्थ वहाँ मायिक गोपियोंकी रचना कर दी थी जो उन्हींके साथ विहार करती थीं, उन्हें यही अनुभव होता था कि हमारी स्त्रियाँ हमारे ही निकट हैं वे कहीं गयी नहीं। इसलिये उनकी भगवान्पर किसी प्रकारकी दोष दृष्टि नहीं हुई। यही बात इस श्लोकमें कही गयी है—

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ॥३८॥

रासलीलाकी समाप्तिपर जब ये गोपियाँ घर लौटीं तब योगमाया द्वारा वे मायिक गोपियाँ अन्तर्हित कर ली गयीं, यह भगवान्की अद्भुत जगन्मोहिनी लीला थी। इसमें परकीयाओंकी गन्ध भी न थी। उनके विहार स्थान भाण्डीरवन, श्रीवन, कदम्बकानन, नारिकेलवन, पूगवन, निम्बारण्य, मधुवन, कुन्दवन, बिल्ववन आदि ३३ वन थे। इस प्रकार विचार करनेपर रासलीला प्रकरणमें भगवान्पर यद्यपि किञ्चिन्मात्र भी आपेक्षाका अवसर नहीं। तथापि ऐसी लीलाओंके बाह्य-प्रदर्शनकी आत्माराम भगवान्को आवश्यकता क्या थी? इसका सीधा समाधान है कामके गर्वका नाश। श्रीधरस्वामीने इसीका संकेत कर लिखा है।

ब्रह्मादिजयसंरूढदर्पकन्दर्पदर्पहा।
जयति श्रीपतिर्गोपीरासमण्डलमण्डनः॥

ब्रह्मा आदि देवताओंको जीतकर कामदेवको महान् गर्व हो गया था। वह साक्षात् भगवान्से ही खुले मैदानमें अपना बल आजमाना चाहता था। भगवान्ने अनुग्रहवश उसके गर्वका नाश करनेके लिये उसकी चुनौती सहर्ष स्वीकार कर ली। कामदेव सज-धज कर अपनी सेना सहित उपस्थित हुआ। यद्यपि भगवान्के अन्तःपुरमें उसका प्रवेश सम्भव न था, कारण, जहाँ-क्रोधकी गति नहीं वहाँ कामका प्रवेश कैसे?

कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत।

फिर भी भगवान्ने उसे पूरा अवसर दे दिया। उसकी सर्वत्र अव्याहत गति हो गयी। कामने अपनी पत्नी रतिके साथ सबकी भावनाएँ उत्तेजित कर दीं। गोपियोंका सम्पूर्ण मण्डल उसके वशवर्ती हो गया। इसी समय भगवान् विश्वमोहन-रूप धारणकर मुस्कराते हुए उन सबके बीच प्रकट हो गये।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ।। ३२।१।

जितनी गोपियाँ थीं उतने ही कृष्ण बन गये। इस छविमाधुरीपर मन्मथका भी मन ललचा गया। वह अव्यक्त रूपसे रासेश्वरी श्रीराधामें भी प्रविष्ट हुआ। वे विह्वल हो भगवान्‌के गलेमें जा लिपटीं। भगवान्‌ने सर्वप्रथम उन्हींसे विहार आरम्भ किया। बादमें इनके रोमोंसे उत्पन्न जो सहस्रों गोपियाँ थीं उनके साथ विहार किया। 'रमयाञ्चकार' 'रन्तुं मनश्चक्रे' 'सह ताभिमुंमोद ह' इन पदोंका यही सामञ्जस्य है। इस रासमें भगवान्‌के अतिरक्त कोई दूसरा पुरुष न था। काम भी गोपी बनकर युद्धमें निरत था। ब्रह्माकी रात्रि पर्यन्त यह निरवच्छिन्न विहार यमुनाके सावरण कुञ्जोंमें चलता रहा, अन्ततः कामके अंग-प्रत्यंग शिथिल पड़ गये और भगवान् अच्युत ज्यों-के-त्यों निर्विकार ही रहे। इसी अवस्थाका निर्देश करते कहा है—'आत्मन्यवरुद्धसौरतः' कामविजयका यह ऐश्वर्यपूर्ण चरित्र अपूर्व है। त्रिलोकीमें ऐसा अन्य कोई भी पुरुष नहीं, जो ऐसी अवस्थामें निर्विकार रह सके। इसे भगवान् ने प्रत्यक्षकर यहाँ दिखा दिया। मदोन्मत्त काम भगवान्‌के इस अलौकिक तेजके सम्मुख भयभीत हो उनके चरणों पर गिर पड़ा और बोला—

मदावेशाच्च्युताः सर्वे त्वमेको वस्तुतोऽच्युतः ।
जितोऽहं भवता सम्यग् मां क्षमस्व दयानिधे ।।

भगवन् ! संसारमें जिनमें मेरा आवेश हुआ वे सभी च्युत हो गये, पर वस्तुतः यदि कोई अच्युत रहा तो आप ही। आपने मुझे जीतकर मेरा विश्वविजयित्वका अहंकार तोड़ डाला। मैं आपकी शरणमें हूँ मेरा अपराध क्षमा करें। भगवान्‌ने कहा—काम ! तुम्हारा मद उतारनेके लिये ही मैंने यह महारासमयी लीला रची थी। जाओ तुम्हारा कल्याण हो। अनन्तर काम भगवान्‌के अद्भुत ऐश्वर्यका गुणानुवाद करता हुआ वहाँसे विदा हुआ। इससे स्पष्ट है कि रासलीलाका यह अनुकरण काम-विजयख्याति का एक निदर्शन है। यही संकेत श्रीधरस्वामीका है।

"तस्माद्रासक्रीडाविडम्बनं कामविजयख्यापनायेत्येव तत्त्वम् ।"

वंशीधरीमें कहा है—

अयं कामः स्त्रीभिर्लीलामिषेण मया जेय इति बुद्ध्या विचार्य रमणं चक्रे इति भावः ।

कतिपय विद्वानोंका कथन है कि भगवान्ने गोपियोंके साथ विहार किया ही नहीं। उस समय उनकी अवस्था ८ वर्षके लगभग थी। जब कि काम-वासनाका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरी बात यह है कि भगवान्का शरीर तो दिव्य है उसमें शुक्र आदि विकारोंकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसपर कहना है कि भगवान् कालपुरुष भी तो हैं। वे कालके अधीन नहीं, उनके लिये अवस्थाका पारतन्त्र्य भी नहीं। इच्छानुसार उनकी अवस्थाका अभिनय हुआ करता है। श्रीराधाकृष्णके विवाह-प्रसंगमें बताया ही गया है कि उस समय दोनों ही किशोरावस्थाके हो गये थे। रासलीलाके ध्यानमें किशोरावस्थाका निर्देश भी किया गया है।

"हस्तन्यस्तनतापवर्गमखिलोदारं किशोराकृति।"

विष्णुपुराण एवं हरिवंशपुराणमें भी कहा है।

"सोऽपि कैशोरकवया मानयन् मधुसूदनः।
रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः॥
युवतीर्गोपकन्याश्च रात्रौ संकाल्य कालवित्।
कैशोरकं मानयानः सह ताभिर्मुमोद ह॥

इसलिये मुख्यतः यह प्रकरण गोपियोंके साथ रासविहारद्वारा इस अवस्थाके साफल्यका ही द्योतक है।

कैशोरं सफलीकरोति कलयन् कुञ्जे विहारं हरिः।

गोपीचीरहरणके प्रसंगमें भी 'कुमारी' पदसे "यौवनप्राप्त कन्या" ही अर्थ ग्राह्य है। 'कुमारी कन्यकानार्योः' (वंशीधरी)। श्रीधरस्वामीने भी 'श्यामसुन्दर' इस श्लोककी व्याख्यामें—,'मुग्धा ऊचुः, प्रौढा ऊचुः' कहकर इसी अर्थका निर्देश किया है, ५-६-८ वर्षकी कन्याओंका नहीं। भगवान्का विग्रह तो दिव्यातिदिव्य है, उसमें संदेह नहीं।

मलमूत्रादिरहिताः पुण्यश्लोकाः प्रकीर्तिताः।

किन्तु इस विग्रहमें सौरत शुक्र नहीं था, यह कहना उचित नहीं, अन्यथा 'अवरुद्धसौरतः' इसकी संगति न हो सकेगी। भगवान्का वीर्य विरजा गोपीने धारण किया जिससे समुद्रोंकी उत्पत्ति हुई, इसका उल्लेख ब्रह्मवैवर्तपुराणमें स्पष्ट है—उसकी संगति क्या होगी।

विरजा सा रजोयुक्ता धृत्वा वीर्यममोघकम्।
सद्यो बभूव तत्रैव धन्या गर्भवती सती॥
दधार गर्भमीशस्य दिव्यं वर्षशतं च सा।
ततः सुषाव तत्रैव पुत्रान् सप्त मनोहरान्॥

यहाँ रहस्य भौतिक और दिव्य, अनित्य और नित्य, आपातरमणीय और सर्वदा-रमणीयका है। यहाँ बालरूप भी सत्य है और किशोर बनकर श्रीराधासे विवाह कर लेना भी सत्य है। स्वयं कामदेव द्वारा 'अच्युत' कहा जाना भी सत्य है और विरजाका गर्भधारण भी सत्य है। जीव और ब्रह्मके मध्यकी इस मनोरम मोहमयी लीलाको समझ लेना श्रीराधारानीकी कृपापर ही अवलम्बित है। रासलीलाके इसी गम्भीरार्थके संकेतके लिये यह संक्षिप्त व्याख्या भी यहाँ आवश्यक हुई। अब प्रश्न यह उठता है।

दशमस्कन्धमें इस लीलाकी उपयोगिता क्या ? इसपर कहना है कि महापुराणोंके १० लक्षणोंमेंसे ७ लक्षणोंका तो तृतीय स्कन्धसे नवमस्कन्ध तक वर्णन किया गया है और दशमस्कन्धमें निरोधका वर्णन है। श्रीधर-स्वामीने लिखा है—

दशमे कृष्णसत्कीर्तिवितानायानुवर्ण्यते।
धर्मग्लानिनिमित्तस्तु निरोधो दुष्टभूभुजाम्॥

इसमें भगवान्ने दुष्टोंका संहार एवं दमन किया। स्पष्ट है कि इस स्कन्धमें निरोध पूतना वधसे आरम्भ हुआ। बादमें बहुतसे दैत्योंको मारकर इन्द्रका दमन हुआ ! वरुण भी वशमें किये गये। चौतीसवें अध्यायमें पुनः शंखचूर्णका वध हुआ। ऐसे 'उपक्रम' और 'उपसंहारके बीच इस रसमयी प्रेम-लीलाकी संगति क्या ? अगत्या स्वीकार करना पड़ेगा कि भगवान्ने 'जगद्विजयी उद्दण्ड काम'के साथ उसीके अनुरूप युद्धका ढंग बनाकर उसके द्वारा प्रयुक्त पञ्चसायकोंका इन ५ अध्यायोंमें दमन किया है। यह रासलीला अध्याय २९से ३३ अध्याय तक वर्णित है। जिससे इस लीलाकी अलौकिकता सिद्ध होती है, कारण प्रकृतिके तत्त्वोंकी संख्या २८ ही मानी गयी है। उसके ऊपर अलौकिक लोकमें अलौकिक गोपियोंके साथ अलौकिक परमपुरुष किशोरमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णने यह लीला की थी। ५ अध्यायोंमें इसके वर्णनका तात्पर्य यह है कि कामके पाँच बाण भगवान्की ओर चलनेपर वे केवल निष्फल ही नहीं होते वरन् उनसे उल्टा काम ही पराजित होता है और वह भगवान्से क्षमायाचना करता लौट जाता है। 'रासलीला'के शब्दार्थसे भी यही ध्वनित होता है कि यह लीला लौकिक नहीं 'रसो वै सः' रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति'। इस श्रुतिके अनुसार 'रस' शब्दका अर्थ 'ब्रह्म' होता है। इससे स्वार्थमें अण् प्रत्यय होनेसे रास शब्द बना। अर्थात् यह 'ब्रह्मकी लीला' थी जो ब्रह्मकी शक्तियोंसे सम्पन्न हुई। मानसरोवरस्थ हंस

कभी काकतीर्थमें आकर नहीं रमता। साधारण राज्यपालके आनेपर मामूली मामूली नगरोंकी भी कैसी विलक्षण सजावट हुआ करती है। फिर साक्षात् जगन्नियन्ताके अवतीर्ण होने पर वैकुण्ठ एवं गोलोकके वृन्दावन भी यहाँ क्यों न अवतीर्ण हों? और निरावरण कुञ्ज भी उनकी इच्छामात्रसे सावरण क्यों न हों। इस प्रकरणमें गोपीतत्त्व ही सर्वोपरि है। उसी की प्रधानता बतायी गयी है। जिन श्रुतियोंके श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे लोग ब्रह्मज्ञानी बन अपने स्वरूपका अनुभव करते हैं उन श्रुतियोंने ही साक्षात् गोपी बनकर भगवान्के साथ विहार किया। इसीसे अनुमान करें कि गोपीतत्त्व कितना उच्चतम है। जन्म-जन्मान्तरकी कठोरतम साधना या प्रभुकृपासे ही इसका कुछ रहस्य समझमें आ सकता है, तर्क या युक्तिके बल पर नहीं। परम दयालु भगवान्ने प्राणियोंके कल्याणार्थ काममद नष्ट करनेके लिये ही यह अद्भुत लीला की थी। इसमें भ्रम या अनर्गल आक्षेप बाधक न बनें, एतदर्थ यहाँ समाधानात्मक थोड़ी सी व्याख्या भी दे दी गयी है। शुकदेवजी इस रासलीलाके उपसंहार में कहते हैं—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽश्रृणुयादथ वर्णयेद्यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

जो मनुष्य व्रजांगनाओंके साथ भगवान्की इस विशिष्ट क्रीड़ा (रासलीला) का श्रद्धा-भक्तिसे श्रवण करता है या उसका वर्णन करता है, वह भगवान्में परा प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्तकर हृद्रोग दुःसह कामरूप शत्रुका समूल नाश कर डालता है और कालान्तरमें वह इस लीलाका अधिकारी हो जाता है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

रासपञ्चाध्यायी समाप्त।



चौंतीसवाँ अध्याय

सुदर्शन एवं शंखचूडका उद्धार

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान्ने रासलीला द्वारा कामके गर्वका नाशकर विद्याधरोंके अधिपति सुदर्शनको भी शापसे छुड़ाकर अपने वशमें किया। एक समय फाल्गुन मासकी शिवरात्रिको देवयात्राके समय गोपगण शकटोंपर चढ़कर अम्बिका-वनमें गये। वहाँ उन्होंने सरस्वती नदीमें स्नान

कर भगवान् शिव एवं अम्बिका देवीका गन्ध-पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे षोडशोपचार पूजन किया। अनन्तर भगवान्‌के प्रीत्यर्थं ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके व्यञ्जनोंसे भोजन कराकर उन्हें सुवर्ण, गौ और वस्त्र आदिका दान किया। व्रतके उद्देश्यसे उस रात्रिको वे केवल जल पीकर ही सरस्वती तटपर सो गये। दैवयोगसे अकस्मात् वहाँ एक भूखा विशाल अजगर आ गया। वह सोते हुए नन्द बाबाको निगलने लगा। नन्दजी 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर चिल्ला उठे मुझे बचाओ बचाओ। यह सुनकर गोपाल दौड़े और उस सर्पको जलती लकड़ीसे मारने लगे।

सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥

किन्तु, जब इसपर भी उसने नन्दजीको नहीं छोड़ा तब भगवान्‌ने आकर उसे चरणसे स्पर्श किया। स्पर्श होते ही वह तुरत सर्पका रूप त्यागकर सुन्दर विद्याधरके रूपमें परिणत हो गया। भगवान्‌ने उससे पूछा—तुम कौन हो? इस नीच योनिमें कैसे आये? सर्पने कहा—भगवन्! मैं सुदर्शन नामका विद्याधर हूँ। एक दिन मैं सौन्दर्यके गर्वसे विमानमें चढ़ा उन्मत्त हो इधर-उधर घूम रहा था। मैंने मार्गमें अङ्गिरा गोत्रके कुरूप ऋषियोंको देखा। उनके रूपपर मुझे हँसी आ गयी। उन्हींके शापसे मैं इस नीच योनिमें आ गया। किन्तु मुझे ऋषियोंका वह शाप अनुग्रह बन गया जो मुझे आपके चरण-कमलका स्पर्श मिल सका। यह कहकर वह भगवान्‌को प्रणामकर स्वर्ग चला गया और नन्द आदि गोप भी व्रतकी समाप्ति कर व्रजवासियों सहित कृष्णका गुणानुवाद करते हुए व्रजमें लौट आये। एक दिन होलीकी पूर्णिमाको वनमें रात्रिके समय बलदाऊ और कृष्ण पृथक्-पृथक् मण्डल बनाकर अपनी पत्नियोंके साथ क्रीडा कर रहे थे। साथमें मूर्च्छना और आलापके साथ सुन्दर गान भी चल रहा था। उसी समय कुबेरका अनुचर शंखचूड नामक यक्ष वहाँ आ पहुँचा। वह छड़ी घुमाकर कुछ स्त्रियोंको उत्तर दिशाकी ओर ले जाने लगा। इसपर व्याघ्र त्रस्त गौओंकी तरह वे सब भगवान्‌का नाम ले-लेकर जोरोंसे चिल्ला उठीं। अपनी पत्नियोंका कोलाहल सुनकर दोनों भाई डरो मत, डरो मत, इतना कह शालका विशाल वृक्ष उखाड़कर बड़े वेगसे उसके पीछे दौड़े—

क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम्।
यथा गा दस्युना[1] ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ॥ २८ ॥

---

१. 'दस्यू तस्करशाद्वलो' इति यादवः।

वह भी अपने प्राण बचा स्त्रियोंका गोल छोड़कर दूसरी ओर भाग चला। श्रीकृष्णने स्त्रियोंकी रक्षामें बलरामजीको नियुक्त कर स्वयं उसका पीछा किया और थोड़ी ही दूरपर पकड़कर उसके सिरपर वज्रतुल्य मुष्टिकासे प्रहार किया, जिससे उसकी खोपड़ी चकनाचूर हो गयी। भगवान्ने उसके सिरसे मणि निकालकर अपने भाईको दे दी। चूड़ामणिके निकालते ही उसका प्राण निकल गया और वह धराशायी हो गया।

शंखचूडका पूर्वजन्म

यह शंखचूड गोलोकवासी भगवान्का सखा श्रीदामा नामक गोप था। एक समय भगवान् लीलार्थ अपनी पत्नी विरजाके यहाँ चले गये, यह सुनकर श्रीराधाको मानका संचार हुआ। भगवान् उन्हें मनाने श्रीदामाके साथ उनके निकुञ्जमें गये। भगवान्के बचनोंसे राधाका कोप कुछ शान्त हो ही रहा था कि श्रीदामाने कुछ ऐसे वचन बोल दिये जिससे वे पुनः कुपित हो उठीं और बोलीं—दुर्बुद्धे ? तू गोलोकसे चला जा और राक्षस हो जा। इसी शापसे श्रीदामा अलकापुरीमें सुधनके घर उत्पन्न हो कुबेरका अनुचर हुआ।

एवं शापेन श्रीदामा पुरा पुण्यजनालये।
सुधनस्य गृहे जन्म लेभे राजन् महातपाः॥
शंखचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभवत्।
(गर्गसंहिता वृ० खं० २३।४३।४४)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त



पैंतीसवाँ अध्याय

गोपियोंका युगलगीत

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण जब गौएँ चराने वनमें चले जाते थे तब गोपियाँ स्वागताछन्दसे भगवान्का स्वागतगान करती बड़े कष्टसे दिन बिताती थीं और वियोगावस्थामें बारह युगलश्लोकोंसे भगवान्की लीलाओंका मधुरगान उनका इस प्रकार चलता था।

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥
व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥

श्यामसुन्दर जब वामबाहुपर कपोल टेक अधरोष्ठपर रखी वेणुके छिद्रोंको कोमल अंगुलियोंसे दबाकर भ्रू चलाते हुए जब स्वर निकालते हैं, उस समय विमानपर बैठी देवांगनाएँ आश्चर्यसे चकित रह जाती हैं। कामसे व्याकुल हो उन्हें अपने शरीरके वस्त्रोंका भी ध्यान नहीं रह जाता। व्रजकी गौएँ, साँड़ और मृगोंके झुण्डके झुण्ड दूर-दूरसे आकृष्ट होकर चले आते है। मुंहमें घास दबाये वे चित्रकी तरह खड़े हो कान लगाकर उसे सुना करते हैं। नदियोंकी गति रुक जाती। वनके वृक्ष और लताओंको भी रोमाञ्च हो जाते हैं। तरुओंसे मधुधारा बहने लगती है। सारस, हंस आदि पक्षी समीप आकर बैठ जाते हैं और नेत्र बन्द किये मौन हो वेणुगीत सुनते है। मेघ भी मन्द-मन्द गर्जनाकर अपने सुहृद भगवान्पर जल-बिन्दुरूपी पुष्पोंकी वर्षाकर छाया कर देते हैं। इन्द्र आदि देवता भी वेणुके रागका भेद न जानकर चकित रह जाते हैं। कितनी ही हरिणियाँ घरकी आशा छोड़कर उनके पीछे हो लेती हैं। शामको जब वे घर लौटते हैं तब ब्रह्मा आदि कितने ही देवता उन्हें मार्गमें घेरकर उनकी स्तुति करने लगते हैं। बड़ी कठिनाईसे किसी तरह सायंकाल चन्द्रके समान श्रीकृष्णचन्द्रका दुर्लभ दर्शन मिल पाता है। सखि! उस समय उनका सुन्दर मुख देखकर दिनका सारा ताप दूर हो जाता है।

एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीला नु गायतीः ।
रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥

इस प्रकार गोपियाँ भगवान्में चित्त लगाकर उनकी लीलाओंका गान करती हुई दिनमें भी आनन्दका अनुभव करती थीं। उन्हें वियोगजन्य दुःख नहीं होता था।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

छत्तीसवाँ अध्याय

अरिष्टासुरका वध एवं कंसका अक्रूरको गोकुल जानेका आदेश

शुकदेवजी बोले— हे राजन् !

अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः।
महीं महाककुत्कायः कम्पयन् खुरविक्षताम् ॥ १ ॥

एक दिन अरिष्टनामक असुर साँड़का विशाल रूप धारणकर व्रजमें आया। उसका शरीर एवं डिल्ल भी बड़ा विशाल था। वह रंभाता हुआ भीषण शब्द करता पृथ्वी खोदने लगा। पूँछ उठाकर अपने पैने-पैने सींगोंसे पृथ्वीके उन्नत स्थलोंको ढहाता जाता था। उसके रंभानेके भयंकर शब्दोंसे स्त्रियोंके अकालमें ही गर्भ गिर जाते थे। मेघ भी पर्वतकी शंकासे उसके विशाल डिल्ल पर आकर बैठ जाते थे। ऐसा भयानक वह असुर थोड़ा-थोड़ा मूत्र एवं गोबर करता हुआ इधर-उधर व्रजमें आकर घूमने लगा। उसके पैने-पैने सींग देखकर गोप और गोपियाँ घबरा गयीं और पशु तो गोकुल छोड़कर भाग खड़े हुए। सभी गोकुलवासी त्राहि-त्राहि करते कन्हैयाको पुकारने लगे। कन्हैया भयभीत गोकुलको आश्वासन देकर तुरन्त उसके सामने जा डटे और उन्होंने उस साँड़को ललकारा। वह टेढ़ी नजरसे नन्दलालाको ताककर बड़ी तेजीसे उनकी ओर झपटा। कन्हैयाने झट उसके दोनों सींग पकड़े और उसे १८ पैर पीछे ले जाकर ढकेल दिया। वह धड़ामसे पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। पुनः क्रोधमें भरकर वह भगवान्‌की ओर झपटा।

तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले।
निष्पीडयामास यथार्द्रमम्बरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥ १३ ॥

भगवान्‌ने पुनः उसके सींग पकड़ पृथ्वीपर दे पटका और एक पैर से दवाकर गीली धोती की तरह उसे निचोड़ डाला। अनन्तर उसका एक सींग उखाड़कर उसीसे ऐसा प्रहार किया कि वह तुरन्त ही पृथ्वी पर लोट-पोट हो गया। उसके मुखसे खूनका फौव्वारा छूटने लगा। नेत्र बाहर निकल पड़े। वह प्राण त्याग कर सीधे भगवान्‌के धाममें चला गया। देवतागण आकाशसे पुष्पवृष्टि करते भगवान्‌की स्तुति करने लगे।

अरिष्टके मारे जाने पर एक दिन नारद जी कंसके यहाँ पहुंचे और उन्होंने कहा—महाराज ! इस वसुदेवने तो तुम्हें बड़ा ही धोखा दिया। यह अपने पुत्र बलराम और श्रीकृष्णको नन्दजीके पास रखकर यशोदाकी कन्या यहाँ ले आया था। उन्हीं पुत्रोंने तुम्हारे गणोंको मारा है। यह सुनते ही कंस हाथमें तलवार लेकर वसुदेवको मारने दौड़ा। नारदजीने उसे सलाह दी, ऐसा न करो अन्यथा यह सुनते ही वे दोनों भाग जायेंगे। इसपर कंसने वसुदेवको पत्नी सहित लोहेकी जंजीरोंसे बाँध दिया। अनन्तर बलराम और कृष्णको मथुरा बुलानेकी योजना की। नारदजीके चले जानेपर कंसने हयाकृति केशीको बुलाकर कहा—तुम गोकुलमें जाकर बलराम और कृष्णको मार डालो। बादमें उसने कुवलयापीड हाथीके महावत तथा मुष्टिक, चाणूर, शल-तोशल आदि मल्लोंको बुलाकर कहा—अरे वीरो ! हमारे परम शत्रु बलराम और कृष्ण गोकुलमें छिपे रहते हैं। हम उन्हें यहाँ यज्ञ दर्शनके बहाने बुलायेंगे। उनके आने पर तुम कुश्तीमें उन्हें पछाड़कर मार डालना। अखाड़ा खुदवानेका प्रबन्ध करो। उसके चारों ओर कुर्सियाँ मञ्च आदि लगवा दो जिनपर बैठकर जनता अच्छी तरह दंगल देख सके। चतुर्दशीको धनुषयज्ञ का आयोजन होगा। तुम उस दिन रंगभूमिके द्वारपर कुवलयापीड हाथीको खड़ा करना और घुसते समय ही उन दोनोंको उसी हाथीसे रौंदवा देना। मल्लोंको यह आदेश देकर कंसने अक्रूरको बुलवाया और उनका हाथ पकड़ बड़े प्रेमसे कहा—दानाध्यक्ष ! तुमसे अन्य हमारा हितचिन्तक यहाँ कोई नहीं है। अतः आज तुम हमारी मैत्री निभाओ। वसुदेवके पुत्र बलराम और कृष्ण गोकुलमें रहते हैं। देवताओंने उन्हींके हाथसे मेरी मृत्यु सूचित की है। तुम धनुषयज्ञ-निरीक्षणके व्याजसे उन्हें यहाँ बुला लाओ। मैं हाथी या मल्लों द्वारा उन दोनोंको मरवाकर अन्तमें उनके बान्धवोंका भी नाश कर डालूँगा। हे मित्र ! मैं तभी आनन्दसे निष्कण्टक राज्य कर सकूँगा। अक्रूरने कहा—हे राजन् ! संकल्प तो तुम्हारा बहुत अच्छा है। सम्भव है; इससे तुम्हारी मृत्यु टल जाय, किन्तु कार्यका सिद्ध होना या न होना यह सब दैवके अधीन है। फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हूँ। हे राजन् ! इस प्रकार कंस अक्रूरको आदेश देकर अपने राजभवनमें चला गया और अक्रूर भी अपने भवनमें चले गये।

प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥

अरिष्टासुरका पूर्वजन्म

यह अरिष्टासुर वरतन्तु नामका बृहस्पतिका शिष्य था। एक दिन यह उनके पास पढ़ने गया और पैर फैलाकर उनके सामने बैठ गया। इस अपमानसे कुपित हो गुरुने उसे शाप दिया। दुष्ट ! तू वृषभके समान पैर फैलाकर बैठता है, इसलिये जा तू वृषभ हो जा। तदनुसार वंगदेशमें यह वृषाकृति असुर हुआ। इससे यह शिक्षा मिलती है कि गुरुके या अपने बड़ोंके समक्ष पैर फैलाकर कभी बैठना नहीं चाहिये।

गुरुहेलनकृत् तस्मात्त्वं वृषो भव दुर्मते।
तेन शापाद् वृषोऽभूवं वंगदेशेषु माधव ॥

(ग० सं० मा० खं० २४।२६)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

सैंतीसवाँ अध्याय

केशी और व्योमासुरका वध

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! इधर कंस द्वारा प्रेषित केशी नामका दैत्य घोड़ेका भीषण रूप धारण कर बड़े वेगसे गोकुल पहुँचा। उसने अपने हिनहिनाहटसे सबको भयभीत कर दिया। वह कंसके हितमें कटिबद्ध हो युद्धके लिये कृष्णको खोज ही रहा था कि भगवान्ने आगे बढ़कर उसे अवज्ञापूर्वक ललकारा। यह देख उसने भयावनी हिनहिनाहटके साथ भगवान्की ओर दौड़कर उन्हें मारनेके लिये दुलत्ती चलायी। भगवान्ने वार बचाकर उसके पीछेके दोनों पैर कसकर पकड़ लिये और वेगसे घुमाकर उसे चार सौ हाथकी दूरीपर फेंक दिया। वह मूर्च्छित हो धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। जब उसे होश आया तब वह फिर मुँह फाड़कर बड़े वेगसे भगवान्की ओर झपटा। भगवान्ने मुस्कराते हुए अपनी वाम भुजा ही उसके मुखमें घुसेड़ दी जैसे कोई चूहाके मारणार्थ सर्पको बिलमें घुसेड़ता है। इससे वह और भी क्रोधमें भर गया और कटकटा कर उसे दाँतोंसे चबाने लगा। किन्तु इस क्रियासे उसके सारे दाँत टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भगवान्की भुजा उसके शरीरके भीतर धीरे-धीरे बढ़ने लगी जैसे उपेक्षा करनेसे शरीरमें रोग बढ़ता है।

समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ।
प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपात लेण्डं विसृजन् क्षितौ व्यसुः ।।८।।

अन्तमें उसकी प्राणवायु रुक गयी। वह घबराकर हाथ पैर पटकने लगा। उसका सारा शरीर पसीनेसे तर बतर हो गया। नेत्र उलट गये। लीद भी निकल पड़ी। वह प्राणशून्य हो धराशायी हो गया। भगवान्ने फटी ककड़ीके समान उसके शरीरसे अपनी भुजा निकाल ली। इस प्रकार भगवान्ने विना यत्नके ही इतना विशाल दैत्य मार डाला। यह देख देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे प्रसन्नतासे भगवान्पर फूलोंकी वर्षा करने लगे।

एक दिन देवर्षि नारद घूमते-फिरते भगवान्के पास जाकर एकान्तमें उनसे बोले—भगवन्! आज इस भयंकर दैत्यको मारकर आपने लोकका बड़ा कल्याण किया। इसकी हिनहिनाहटसे ही देवता स्वर्ग छोड़कर भाग जाते थे। अब तो जल्दी ही परसोंके दिन चाणूर आदि मल्लों सहित सपरिवार कंसका वध होगा, तथा भविष्यमें और भी आपके पारिजात-हरणादि निर्मल चरित्र होंगे जिन्हें देखनेका हमें सौभाग्य प्राप्त होगा। आप साक्षात् ज्ञानकी मूर्ति तथा मायासे परे हैं! क्रीडार्थ ही आज मनुष्य-विग्रह धारण कर इस यदुवंशको अलंकृत कर रहे हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। यह कह नारदजी भगवान्की आज्ञा लेकर ब्रह्मलोक चले गये।

एक दिन भगवान्ने गोवर्धन पर्वतपर गौ चराते हुए गोपोंके साथ [1]निलायन क्रीडा आरम्भ की। इसमें कुछ गोप चोर बने, कुछ रक्षक और कुछ भेंड़ बन गये। भेंड़ बने गोपोंको चोर उठाकर ले जाते और रक्षक उनकी रखवाली किया करते। मयदानवका मायावी पुत्र व्योमासुर गोपरूपमें चोर बनकर वहाँ पहुँचा। उसने भेंड़ बने बहुत-से ग्वाल-बालोंको चुराकर पर्वतकी गुफामें बन्दकर दिया। केवल चार या पाँच ग्वालबाल शेष रह गये। भगवान्ने उसका यह चरित्र देख गोपोंको ले जाते हुए ही उसे पकड़ा। पकड़ते ही वह तुरन्त अपना पर्वताकार विशाल रूप धारण कर प्रकट हो गया। उसने अपनेको भगवान्से छुड़ानेकी पूरी चेष्टा की, किन्तु वह उसमें सफल न हो सका। भगवान्ने उसे दोनों हाथोंसे पकड़कर पृथ्वीपर दे पटका और देवताओंके देखते-देखते यज्ञीय बकरेके समान उसका गला घोटकर मार डाला।

---

१. निलायनं चोरितवस्तुतिरोधापनम्।

पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥ ३३ ॥

इसपर प्रसन्न हो देवगण आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे। अनन्तर भगवान्‌ने शिला हटाकर गुफामें बन्द बड़े ग्वाल-वालोंको निकाला और प्रसन्नता पूर्वक उनके साथ गोकुलमें प्रवेश किया।

केशीका पूर्वजन्म

यह केशी कुमुद नामका इन्द्रका अनुचर था। इन्द्रपर छत्र लगाता था। वृत्रासुरको मारनेपर जब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी तब उसके निवृत्त्यर्थ उन्होंने अश्वमेधयज्ञ आरम्भ किया। कुमुद यज्ञके सुन्दर अश्वको देखकर ललचा गया और चढ़नेकी इच्छासे उसे चुराकर तललोक में चला गया इन्द्रके आदेशसे मरुद्गण पाशोंसे बाँधकर उसे पकड़ लाये। इन्द्रने उसे शाप देते हुए कहा—तूने अश्व चुराया है, इसलिये तू दो मन्वन्तरतक घोड़ेकी आकृतिवाला दैत्य होगा।

शशाप मां बलारातिस्त्वं रक्षो भव दुर्मते।
हयाकृतिस्ते संभूयाद् भूमौ मन्वन्तरद्वयम्।
(ग० सं० म० खं २।२२)

व्योमासुरका पूर्वजन्म

काशीमें भीमरथ नामका एक विष्णुभक्त दानी राजा रहता था। वह पुत्रको राज्य देकर तप करने मलयाचलपर चला गया। वहाँ उसने बहुत वर्षोंतक तपस्या की। एक दिन उसके आश्रमपर शिष्यमण्डलीसहित पुलस्य मुनि आ पहुँचे। उसने तपस्याके गर्वमें अभ्युत्थान और प्रणामादिसे उनका उचित सत्कार नहीं किया। इससे कुपित हो पुलस्त्यने शाप दे दिया—तू दैत्य हो जा। प्रार्थना करनेपर प्रसन्न हो मुनिने कहा—द्वापरके अन्तमें भगवान्‌के हाथसे मारे जाने पर तेरी मुक्ति होगी।

शापं ददौ पुलस्त्योऽपि दैत्यो भव महाखल।
सोऽयं भीमरथो राजा मयदैत्यसुतोऽभवत्।
श्रीकृष्णभुजवेगेन मुक्तिं प्राप विदेहराट्॥
(ग० सं० मा० खं० २४।१४)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त

अड़तीसवाँ अध्याय

अक्रूरका गोकुल-गमन तथा उनका राजोचित सत्कार

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! कंसकी आज्ञासे अक्रूरजीने मथुरामें रात्रि बिताकर प्रातःकाल रथारूढ हो नन्दजीके गोकुलमें प्रस्थान किया। मार्गमें उनके हृदयमें प्रेमलक्षणा-भक्तिका संचार हुआ, वे मनमें विचारने लगे—मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा पुण्य, तपस्या अथवा सत्पात्रको दान दिया है जो मैं आज केशव भगवान्‌का दर्शन करूँगा।

ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः।
यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम्॥ ६॥

आज मेरे सब पाप नष्ट हो गये। मेरा जन्म सफल हो गया जो मैं आज योगियोंके ध्यान करने योग्य भगवान्‌के श्रीचरणोंमें प्रणाम करूँगा। योगीजन भी जिनका केवल ध्यान ही करते रहते हैं, जल्दी दर्शन उन्हें भी नहीं हो पाता। कंसने यह कार्य सौंपकर मुझपर बड़ा ही अनुग्रह किया। जिन चरणोंके नखमण्डलकी दिव्यज्योतिसे अम्बरीष आदि राजा संसार-सागरको पार कर गये। जो ब्रह्मा आदि देवता तथा लक्ष्मीसे पूजित होते हैं दयालुतावश जो अपने सखाओंके साथ गौओंके पीछे-पीछे चलते रहे हैं। गोपियोंने जिन्हें अपनी छातीसे लगाकर अपना मानसिक संताप दूर किया था उन्हीं चरणोंका आज मुझे दर्शन होगा। आज प्रातःकालसे ही मुझे शुभ शकुन दीख रहे हैं। मृग भी मेरे दक्षिण भागसे निकल कर जा रहे हैं। आज मुझे अवश्य ही भगवान्‌के मुखाम्बुजश्रीकी झाँकीका दर्शन होगा।

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम्।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः॥ ६॥

सुन्दर कपोल; मनोहर नासिका, मन्द-मन्द मुसकानपूर्ण चितवन एवं अरुणकमलसे विशाल लोचन भगवान्‌के मुखमण्डलपर अनुपम छवि पाते हैं। खुले हुए घुँघराले केशोंसे उसकी शोभा और भी अपूर्व हो रही है। अहो, आज मेरे चिरकालसे प्यासे नयन श्यामसुन्दरकी उस मुख-माधुरीसुधाका पानकर तृप्त हो जायेंगे। मैं उन्हें देखते ही तुरन्त रथसे उतरकर सखासहित दोनों भाइयोंके चरणोंमें गिरकर प्रणाम करूँगा। क्या मेरे सिरपर भगवान् अपना

वरदहस्त रखेंगे ? कंसका दूत होनेपर भी वे मुझपर शत्रुदृष्टि तो नहीं ही करेंगे। कारण; अन्तर्दृष्टिसे वे सबका मनोभाव अच्छी तरहसे जानते हैं। जब वे मुझे चरणोंसे उठाकर अपनी विशाल भुजाओंद्वारा मेरा आलिङ्गन करेंगे तब मेरी आत्माप विन्न हो जायगी और मेरे कर्म-बन्धन सदाके लिये निवृत्त हो जायँगे। वे प्रेमसे मेरा हाथ पकड़ घरमें भी ले जायँगे और भोजनादिसे मेरा राजोचित सत्कार कर अपने बन्धुओंकी कुशल पूछेंगे, तब मुझे कितना अनुपम सुख मिलेगा। हे राजन् ! इस प्रकार अक्रूरजी मार्गमें नाना प्रकारके मनोरथ करते भगवान्के ध्यानमें ऐसे निमग्न हो गये कि उन्हें मार्गका कुछ भी ज्ञान न रहा। रथके घोड़े स्वच्छन्दतासे दिन भर इधर-उधर ही दौड़ते फिरते रहे। दैवेच्छासे ही वह किसी तरह शामको गोकुल पहुँच सके। वहाँ भूमिमें भगवान्के चरणचिह्नोंको देखकर वे भावावेशमें तुरंत रथसे उतर पड़े। और सोचने लगे, अहो ! यह भगवान्की दुर्लभ चरणरज है, कहाँ मिलती है यह कहकर वे उसीमें लोटने लगे। उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च छा गये। नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी। किसी तरह उठकर वे ज्यों ही आगे बढ़े थे कि गोदोहनके-स्थानमें उन्होंने बलराम एवं श्रीकृष्णको देखा। उन दोनों भाइयोंका अद्भुत सौन्दर्य देखकर अक्रूरजी चकित हो उनके चरणोंमें गिर पड़े। प्रेमविभोर दशामें चरणोंसे लिपटे पड़े अक्रूरजी उठानेपर भी उठते न थे। अश्रुओंकी लगातार झड़ीसे उनका सम्पूर्ण शरीर आर्द्र हो गया था। हर्षातिरेकसे उनसे कुछ कहा भी नहीं जाता था। भगवान्ने बड़े प्रेमसे उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और घर ले जाकर नाना प्रकारसे उनका सत्कार किया। भोजन आदिसे निवृत्त होने पर मुख शुद्धयर्थ उन्हें ताम्बूल तथा एला लवंगादिसे पुनः अच्छी तरह तृप्त किया। अनन्तर नन्दजीने कहा—अक्रूरजी ! उस दुष्ट कंसके रहते आप लोगोंकी कुशल मैं क्या पूछूँ, जिसने स्वयं अपने भानजों तकको नहीं छोड़ा उन्हें भी मार डाला। इससे अधिक क्रूर और कौन होगा। कहिये, यहां आनेमें आपको कष्ट तो हुआ होगा। हम आपकी क्या सेवा करें। इस प्रकार नन्दजीकी प्रेममयी मधुर प्रश्नावली सुनकर अक्रूरजीका सारा मार्गश्रम दूर हो गया।

अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।

●

उन्तालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरा-गमन और गोपियोंका विलाप

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः।
लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान् स चकार ह ॥ १ ॥

अक्रूरजीको सुखपूर्वक पलंगपर बैठाकर बलराम और श्रीकृष्णने नाना प्रकारसे उनका आदर-सत्कार किया। मार्गमें इन्होंने जो-जो मनोरथ किये थे वे सभी क्रमशः उन्हें प्राप्त हुए। यद्यपि भगवान्के प्रसन्न होनेपर संसारकी कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती, फिर भी भगवद्भक्त किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करते। सायंकाल भोजन आदिसे निवृत्त होकर भगवान्ने अक्रूरसे कहा—हे तात ! आपका आगमन बड़ा ही सुन्दर हुआ। कहिये, हमारे सम्बन्धी बन्धु-बान्धव कुशलसे तो हैं न ? हमारे मामा कंस तो कुलमें रोग-रूपसे बढ़ते जा रहे हैं। उनके रहते आपलोगोंकी कुशल क्या पूछें। हमारे कारण, माता-पिताका बन्धन हुआ, उन्हें नाना प्रकारका कष्ट दिया गया। उनके पुत्रोंका मरण हुआ। कहाँतक दुखगाथाएँ कहीं जाय। आज आपके दर्शनोंसे हमें बड़ी शान्ति मिली। अच्छा, बताइये, आपके आनेका कारण क्या हैं ? आपने कैसे कृपा की ?

हे राजन् ! भगवान्के इस प्रकार पूछनेपर अक्रूरजीने आदिसे अन्ततक कंसका सारा सन्देश कह सुनाया जिसके लिये उन्हें भेजा गया था। साथ ही कंसकी यदुवंशियोंसे दृढवैरता तथा उसने वसुदेवको मारनेकी जो कुचेष्टा की थी उसे भी बता दिया। भगवान्ने कंसका सन्देश सुनकर नन्दबाबासे निवेदन किया। नन्दजीने ढिंढोरा पिटवाकर सब गोपोंको सूचना दी कि कल मथुरामें राजा कंसके यहाँ धनुष-यज्ञमें चलना है। भेंटके लिये सभी लोग गोरस एवं नाना प्रकारके उपहार साथ लेते चलें और अपनी-अपनी गाड़ियाँ जोतकर तैयार रखें। बलराम और कृष्णको लेने अक्रूरजी आये हैं। यह समाचार सुनकर गोपियाँ बड़ी व्यथित हुईं। उनके मुखकमलोंपर उदासी छा गई। वे सब भगवान्की लीलाओंका स्मरण कर उनके विरहसे मूर्च्छित हो एक साथ रो-रोकर कहने लगीं—अरे क्रूर विधाता ! क्या तुझे तनिक भी दया नहीं ? तू प्रेमसे प्राणियोंका संयोग कराकर उसे बीचमें

ही तोड़ देता है। तेरा यह अज्ञानी बालकों जैसा खेल बड़ा ही मूर्खतापूर्ण है। हा, तू मन्द-मुसकानयुक्त भगवान्की मुखाम्बुजश्रीको आज हमारी आँखोंसे ओझल कराने जा रहा है। इसे तेरा दुष्कृत्य कहें या और कुछ। किसके सहारे अब हम अपना शोक दूर करेंगी? अरे विधाता! तू तो बड़ा ही निर्दय जान पड़ता है। नेत्र तो तेरे द्वारा भगवान्के दर्शनार्थ ही हमें दिये गये हैं? उन्हीं भगवान्को तू हमसे छीनकर ले जा रहा है। बता हम अब क्या देखें? याद रख, तुझे 'दत्तापहारिता' का भारी दोष लगेगा। हा अब तो मथुरा-वासिनी स्त्रियोंका प्रभात बड़ा ही मंगलमय होगा। भगवान्के दर्शनकर आज उनके नेत्र सफल हो जायेंगे। अरे! इस क्रूरका नाम अक्रूर किसने रखा, जो हमें सान्त्वना न देकर हमारे प्राणधनको दूर ले जाना चाहता है। अरे, जिसके लिये हमने सब कुछ निछावर कर दिया उसकी भी बुद्धि न जाने कैसे कठोर हो गयी! वह भी हमसे बिना पूछे ही रथपर जा बैठा है। ये मूर्ख गोपगण भी कितनी जल्दबाजी कर रहे हैं। क्या करें। किसीको मौत भी नहीं आती जिससे यह आजकी यात्रा तो रुक जाती। हा, आज हमारा दैव ही प्रतिकूल हो रहा है।

दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ ७२ ॥

अच्छा, अब हम स्वयं जाकर उन्हें रोकेंगी। कुलके वृद्ध-बान्धव हमारा क्या करेंगे। कारण, उनके बिना हमारा जीवन अब रह न सकेगा।

एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति च ॥

हे राजन्! इस प्रकार कृष्णमें आसक्तचित्त विरहसे पीड़ित गोपियाँ लज्जा त्यागकर हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! हे दीनबन्धो! इत्यादि भगवान्के नाम ले-लेकर ऊँचे स्वरसे रोने लगीं। उनके रोते-रोते ही अक्रूरने सन्ध्या-वन्दनादिसे निवृत्त हो सूर्योदयके समय रथ हाँक दिया। नन्द आदि गोप भी गोरस भरे घट तथा बहुत सी भेंट साथमें लेकर शकटों द्वारा उनके पीछे-पीछे चल पड़े। भगवान्ने अपने वियोगमें दुःखित गोपियोंको अपने शीघ्र लौटनेका आश्वासन दिया और दूतोंके द्वारा भी समझा-बुझाकर बड़े प्रेमसे उन्हें सान्त्वना दी। जबतक रथकी थोड़ी भी ध्वजा तथा उड़ती हुई धूलि दिखायी पड़ती रही तबतक विरहपीड़ित गोपियाँ लिखित चित्रके समान स्तब्ध सी खड़ी रहीं और फिर अन्तमें निराश होकर वापस लौट आयीं। अनन्तर भगवान्की, लीलाओंका गान करती वे किसी तरह दिन बिताती

थीं। वेगशाली रथ द्वारा भगवान् श्री बलराम और अक्रूरके साथ मध्याह्नमें यमुना तटपर पहुँचे। अक्रूर जी दोनों भाइयोंको रथपर बैठाकर उनकी आज्ञा लेकर स्नान करने यमुना जलमें उतरे। वहाँ गोता लगाकर जब गायत्रीका जप करने लगे तब उन्होंने बलराम और श्रीकृष्ण दोनोंको वहाँ देखा। वे चकित हो रथकी ओर गये तो वहाँ भी उन्हें बैठे देखा। पुनः गोता लगानेपर अबकी बार जलमें भगवान् शेषका दर्शन हुआ। सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर जिनकी स्तुति कर रहे थे। उनके उत्सङ्गमें चतुर्भुज भगवान्को देखा, जो शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा नाना आभूषणों से सुशोभित थे। ऋद्धि सिद्धि आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ जिनकी सेवामें संलग्न थीं। ऐसी अद्भुत शेषशायी भगवान्की झाँकीका दर्शन कर अक्रूर के शरीरमें रोमाञ्च छा गये और नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। नतमस्तक हो वह हाथ जोड़कर गद्गद वाणीसे भगवान्की यों स्तुति करने लगे।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त

—:❀:—

चालीसवाँ अध्याय

अक्रूर द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति

अक्रूरजीने यहाँ तीस श्लोकोंसे भगवान्की स्तुति की है उनमें पहला श्लोक यह है।

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माविरासीद् यत एष लोकः॥ १॥

आरम्भमें सबके मूलकारण श्रीनारायणको नमस्कार कर उनसे ब्रह्मा आदि देवताओं सम्पूर्ण तत्त्वों एवं विश्वकी उत्पत्ति बतायी। निर्गुण स्वरूपकी दुर्ज्ञेयता बताकर सम्प्रदायभेदसे पूज्य और पूजकोंके भेदकी चर्चामें सबके चरम लक्ष्य नारायणको सिद्ध किया। भगवान्के सगुणरूपके वर्णनमें विराट् रूपका संकेत कर उनके कतिपय अवतारोंकी चर्चा की और प्रेमपूर्वक सबको प्रणाम किया। अन्तमें भगवान्से प्रार्थना की—प्रभो! मैं चंचल मनको

रोकनेमें समर्थ नहीं हूँ। मैं अनधिकारी हूँ। केवल आपकी ही अहैतुकी कृपासे मुझे आपके दिव्य-रूपका दर्शन हुआ।

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥

आप चित्त, अहंकार, बुद्धि और मनके क्रमसे अधिष्ठाता हैं इनके प्रवर्तक हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप इस दुःखमय संसारसे मेरा उद्धार करें। मैं आपकी शरणमें हूँ। मेरी रक्षा करें। रक्षा करें। दूसरा अर्थ—

हे वासुदेव! जीवोंका शुद्ध अन्तःकरण वसुदेव शब्दसे कहा जाता है, उसमें प्रकट होनेके कारण आप वसुदेवनन्दन हैं अतः आप ही हमारे आराध्य रहें, दुष्ट भूपति कंस न हो, आपको नमस्कार है। समस्त प्राणियोंके आप क्षय निवास हैं अतः हमारा निवास आपके चरणोंमें रहे, गृहरूपी अन्धकूपमें न हो आपको नमस्कार है। हे हृषीकेश! हमारी मन आदि इन्द्रियोंका आकर्षण आपकी ओर रहे, स्त्री-पुत्रादिमें न हों आपको नमस्कार है मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मेरी रक्षा करें।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका चालीसवाँ अध्याय समाप्त।



इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका मथुरा प्रवेश, सर्वप्रथम रजक-वध, दर्जी और मालीपर कृपा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! अक्रूरजीके स्तुति करते-करते जब भगवान् ने अपना रूप अन्तर्हित कर लिया तब वे उसे न देख विस्मित हो जलसे बाहर निकले और सन्ध्या-वन्दनादि कर रथपर आकर बैठ गये। भगवान् ने अक्रूरजीसे कहा—तात! आज आपने जलमें क्या कोई अद्भुत वस्तु देखी है ऐसा हमें लक्षित हो रहा है। अक्रूरजीने कहा—भगवन्! जिन आपमें सम्पूर्ण अद्भुत वस्तुएं निवास करती हैं उन आपका परम अद्भुत रूप देखनेपर मैंने जलमें और अद्भुत क्या देखा। मुझपर यह आपका महान् अनुग्रह है।

यह कह अक्रूरने रथ आगे बढ़ाया और अपराह्णमें मथुरा पहुँच गये। मार्गमें विशाल जन समाज दोनों भाइयोंको देख उनपर लगी हुई दृष्टि को हटा न सका। नन्द आदि गोप पहलेंसे ही मथुराके उपवनमें पहुँचकर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनसे मिलकर भगवान्‌ने सप्रेम अक्रूरसे कहा—तात! अब आप आगे चलें। हम भी आपके पीछे ही कुछ विश्राम करके आ रहे हैं। अक्रूरजीने दोनों भाइयोंके साथ ही अपने चलनेकी प्रार्थना की और कहा—आप भक्तवत्सल हैं हमारा त्याग न करें। भगवान्‌ने कहा—तात! क्षमा करें। हम यदुवंशियोंके द्रोही कंसको मारकर ही. भाईके साथ आपके घर अवश्य आयेंगे, और अपने सब बन्धुओंको सुखी करेंगे। आप चिन्ता न करें। हे राजन्! भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर अक्रूर कुछ दुःखितसे हो मथुरापुरीमें चले गये। वहाँ कंसको दोनों भाइयोंके आगमनका समाचार देकर पुनः अपने घरपर चले आये।

अथापराह्णे भगवान् कृष्णः संकर्षणान्वितः।
मथुरां प्राविशद् गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः॥ १६॥

अनन्तर, भगवान् दिनके अन्तिम प्रहरमें अपने भाई तथा गोपगणोंके साथ मथुरा देखने निकले। नगरकी सजावट बड़ी ही विलक्षण थी। स्फटिक-मणियोंके बने नगरके दरवाजों में सोनेकी किवाड़ें लग रही थीं। पुरीके चारों ओर खाईं खुदी थी। बगीचेके विविध पुष्पोंकी सुषमा और उनकी सुगन्ध चारों ओर गमक रही थीं। चौराहोंकी विलक्षण सजावट देख मनुष्योंका मन आकृष्ट हो जाता था। घरके प्रत्येक दरवाजेपर दधि, पुष्प और चन्दनसे चर्चित जल भरे घट शोभा पा रहे थे। केलेके खम्भें, सुपारीके वृक्ष और वन्दनवारोंसे उनकी अपूर्व शोभा हो रही थी। चारों ओर प्रज्वलित दीपोंकी कतारें प्रतिसद्ममें जगमगा रही थीं। जिस समय दोनों भाई राजमार्गसे मथुरामें प्रविष्ट हुए, उन्हें देखनेके लिये स्त्रियाँ दौड़कर अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़ गयीं। घरके सारे काम-काज छोड़कर जो जिस अवस्थामें थीं वैसे ही दर्शन करने जा पहुँचीं। इस जल्दीबाजीमें उन्हें अपने उल्टे-सीधे वस्त्र-आभूषणोंकी भी घुन न रही। ऊपरका वस्त्र नीचे और नीचे का ऊपर, कानका भूषण नाकमें और नाकका कानमें धारणकर लिया। भगवान्‌का दिव्य सौन्दर्य देखकर उनका मन भगवान्‌की ओर आकृष्ट हो गया। वे आनन्दमूर्ति भगवान्‌की इस भुवन-मोहिनी झाँकीको नेत्रोंद्वारा हृदयमें लाकर उनका आलिङ्गन करने लगीं, पर अघाती न थीं, फिर भी उनकी मानसिक

व्यथाएँ सर्वदाके लिये शान्त हो गईं। मार्गमें सर्वत्र नागरिक जन दोनों भाईयोंका गन्ध, पुष्प, धूप दीप और नैवेद्यसे विधिवत् पूजन-सत्कार करते जाते और स्त्रियाँ ऊपरसे अनवरत पुष्प-वृष्टि करती जाती थीं। कुछ दूर आगे जाने पर भगवान्ने सामने आते एक धोबीको देखा, जो रंगरेजका भी काम करता था। भगवान्ने उससे साधिकार अपने पहनने योग्य उत्तम नूतन वस्त्र माँगे। किन्तु कंसका वह मदोन्मत्त धोबी डाँटकर बोला—अरे! वन पहाड़ोंमें रहने वाले जंगलियो! क्या तुम ऐसे ही वस्त्र पहना करते हो? राजकीय वस्तुओंकी इच्छा करते तुम्हें शर्म नहीं आती? भाग जाओ सामनेसे। खबरदार, कभी भी ऐसी इच्छा न करना। अन्यथा सैनिक राजदूत पकड़ कर तुम्हें बन्द कर देगें।

एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः।
रजकस्य [1] कराग्रेण शिरः कायादपातयत्॥ ३७॥

राजकीय धोबीके ऐसे असम्बद्ध वचन बोलने पर भगवान्ने करमें खड्गकी भावनाकर उसे एक ऐसा झापड़ मारा कि उसका सिर कट-कर पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर लातसे मारकर उसे दूर फेंक दिया। यह देखकर रजकके अनुगामी और उसके संगी-साथी सभी कपड़ोंके गट्ठर वहीं छोड़-छोड़के भाग खड़े हुये। दोनों भाइयोंने अपने अनुकूल पीले-नीले नूतन वस्त्र लेकर शेष गोपोंको बाँट दिये और कुछ बचे खुचे पृथ्वीपर फेंककर लुटा दिये। उसी समय दैवात् एक कुशल नागरिक दर्जी वहाँ आ पहुँचा। उसने उन दोनोंके अनुरूप वस्त्र सीकर उन्हें पहना दिये। भगवान्ने प्रसन्न हो उसे अपनी सारूप्य मुक्ति तथा ऐहिक सम्पत्ति और आरोग्यता प्रदान की। कपड़े पहन कर सुसज्जित हो भगवान् जब आगे बढ़े तब उन्हें सुदामा नामका एक माली मिला। उसने भगवान्के चरणोंमें गिरकर प्रणाम किया और अपने घर ले जाकर विधिवत् पाद्य अर्घ्यसे पूजन सत्कार कर उन्हें सुगन्धित मालायें पहनायीं। भगवान्ने प्रसन्नतापूर्वक उसे भक्ति, और वंशमें सदा स्थिर रहनेवाली लक्ष्मी तथा आयुष्यका वरदान देकर उसके घरसे सानन्द प्रस्थान किया।

रजकका पूर्वजन्म

यह अयोध्यानिवासी धोबी था। उसने सीताजीको लक्ष्यकर रामको कटु वचन कहे थे। इस लोकापवादसे भगवान् श्रीरामने जानकीका परित्याग

१. खड्गानुकारिणा।

किया था। मर्यादा-पुरुषोत्तमने उस समय इसे दण्ड देना उचित न समझा। यही पुनः मथुरामें रजक बना। दयालु रामने कुवाक्यजन्यदोषकी निवृत्तिके लिये स्वयं अपने हाथसे इसे मारकर दुर्लभ मुक्ति-प्रदान की।

मथुरायां द्वापरान्ते रजकः स बभूव ह।
कुवाक्यदोषशान्त्यर्थं तं जघान हरिः स्वयम्॥
(ग० सं० म० खं० १०।८)

कूर्मपुराणके ३२ वें अध्यायका संकेत कर आचार्य वंशीधरजीने लिखा है कि जब राम बनमें निवास करते थे, रावण वेष बदलकर सीता हरण करने आया, उस समय जानकीजी अग्निदेवकी शरणमें गयीं। तुरन्त अग्निदेव प्रकट हुए। वे रावणवधार्थं मायिक सीताका निर्माण कर असली सीताको लेकर अन्तर्धान हो गये। रावणने उसी मायिक-सीताका हरण किया। रावणवध होनेपर जब राम लंकासे सीताको लौटा लाये तब लोगोंके विश्वासार्थं मायिक-सीता अग्निमें प्रविष्ट हुई। अग्निदेव उन्हें भस्मकर तुरत असली सीता लेकर प्रकट हुए थे। यह रहस्य रजक जानता न था अतः मिथ्या कलंक-जन्य अपराधके कारण वह सैकड़ों वर्ष तक नरक-यातना भोगता, किन्तु दयालु भगवान्‌ने उसे मार कर नरकयातनासे बचाकर उसका उद्धार किया।

सृष्ट्वा मायामयीं सीतां स रावणवधेप्सया।
सीतामादाय धर्मिष्ठः पावकोऽन्तरधीयत॥
दग्ध्वा मायामयीं सीतां भगवानुग्रदीधितिः।
रामायाऽदर्शयत् सीतां पावकोऽभूत् सुरप्रियः॥

दर्जीका पूर्वजन्म

पूर्वजन्ममें मिथिला नगरीमें यह बड़ा कुशल भगवद्भक्त दर्जी था। राजा सीरध्वजकी आज्ञासे राम और लक्ष्मणके लिये उसने सुन्दर वस्त्रोंका निर्माण किया था। भगवान्‌के सौन्दर्य पर मुग्ध हो उसने मनमें विचारा कि कब ऐसा अवसर हो जो मैं अपने हाथोंसे इन्हें सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनाऊँ। भगवान्‌ने मनकी बात जानकर उसे वरदान दिया कि तेरा मनोरथ पूर्ण होगा। वही दर्जी पुनः इस मथुरामें आकर दर्जीके रूपमें उत्पन्न हुआ।

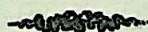
श्रीरामस्य वरात्सोऽयं मथुरायां बभूव ह।
तयोर्वेषं कारयित्वा तत्सारूप्यं जगाम ह॥
(ग० सं० म० खं० १०।१६)

सुदामा मालीका पूर्वजन्म

यह सुदामा चैत्ररथ-वनका हेममाली नामक माली था। वह प्रतिदिन श्रीकृष्णप्राप्तिके लिये तीन सौ कमल भगवान् शिवके आगे रखकर प्रणाम किया करता था। एक दिन शिवजीने प्रसन्न हो इससे वर माँगनेको कहा। हेमामालीने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—भगवन्! कभी साक्षात् श्रीकृष्ण मेरे घर पधारें तो मैं वहीं उनका दर्शनकर अपने नेत्र सफल करूँ। यह वरदान मुझे देनेकी कृपा करें। शिवजीने कहा—द्वापरके अन्तमें तेरा मनोरथ पूर्ण होगा। भगवान् शिवके वरदानसे वही हेममाली सुदामा नामका माली हुआ!

महेश्वरवरेणासौ हेममाली महामनाः।
मालाकारो द्वापरान्ते सुदामा संबभूव ह।
(ग० सं० म० खं १०।२५)

श्रीमद्भागवत-कथा-साप्ताहिकके दशम स्कन्धका इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त



[मासिक-पारायणका बाईसवाँ विश्राम]

बयालीसवाँ अध्याय

कुब्जापर भगवत्कृपा, धनुष-भंग और कंसको दुःस्वप्न-दर्शनसे भय

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

अथ व्रजन् राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम्।
विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन् रसप्रदः ॥१॥

राजमार्गसे जाते समय भगवान्ने सामनेसे आती हुई एक सुन्दरी युवतीको देखा, जो तीन जगहसे टेढ़ी थी। वह हाथमें चन्दनका पात्र लिये थी। भगवान्ने भ्रू-चालन पूर्वक हंसकर उससे पूछा—सुन्दरि! तुम कौन हो? यह चन्दन किसके लिये ले जा रही हो? ठीक-ठीक बताओ इसे हम दोनोंको दे दो। इससे तुम्हें अविलम्ब श्रेयकी प्राप्ति होगी। कुब्जाने कहा—हे सुन्दर! मैं कंसकी मनोनीत दासी हूँ। कुब्जा मेरा नाम है। यह मेरे द्वारा घिसा हुआ चन्दन है जो कंसको अत्यन्त पसन्द है। पर, अब आपसे बढ़कर दूसरा कौन है जो इसका अधिकारी हो। यह कहकर

कुब्जाने भगवान्‌के सौन्दर्य, मन्द-मुसकान, हाव-भावपूर्ण चितवन और मीठी-मीठी बातचीतसे मोहित हो हार्दिक प्रीतिके साथ दोनों भाइयोंको वह चन्दन दे दिया। दोनों भाई उस अङ्गरागको लगाकर अत्यन्त सुशोभित हुए। भगवान्‌ने प्रसन्न हो कुब्जाको अपने दर्शनका प्रत्यक्ष फल दिखाते हुए उसे सीधा करनेका विचार किया।

ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥ ६ ॥

उन्होंने अपने दोनों पैरोंसे कुब्जाके दोनों पैर आगेसे दबाये और दो अंगुलियाँ उसकी ठोड़ीमें लगाकर धीरेसे एक झटका दिया, जिससे उसका शरीर तत्क्षण सीधा हो गया। वह भगवान्‌के सुकोमल हस्तके स्पर्शमात्रसे अप्सराके सदृश हो दिव्य स्त्री बन गयी।

मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ॥ ८ ॥

उसने कामसक्त हो मुस्कराते हुए भगवान्‌का डुपट्टा पकड़ लिया और बोली—नाथ! मेरा चित्त आपने मथ डाला है! मैं अब आपको छोड़ नहीं सकती। आप मुझपर प्रसन्न हों और मेरे घर चलें। भगवान्‌ने कहा—प्रिये! घबराओ नहीं। मैं कंसको मारकर तुम्हारे घर अवश्य आऊँगा। तुम चिन्ता न करो। इतना कह मीठी-मीठी बातोंसे समझा-बुझाकर भगवान्‌ने प्रेमपूर्वक उसे विदा किया। यह कुब्जा भगवान्‌की स्वरूपभूता साक्षाद्भूशक्ति सत्यभामाका अंश अर्थात् साकार पृथ्वी ही थी, जो दुष्ट राजाओंके त्रिवर्गापालन-रूप भारसे तीन जगह टेढ़ी हो गई थी। भगवान्‌ने कौतुकसे ही उसे सीधा करके यह सूचित किया कि अब तेरा भार शीघ्र उतर जायगा। कुब्जा भगवान्‌की नित्यसिद्ध पत्नी थी। इसीसे यह विनोद-लीला हुई। इसमें किसी प्रकारके आक्षेपका अवसर नहीं। अनन्तर भगवान् नागरिकोंसे धनुषका स्थान पूछते-पूछते उस स्थानपर पहुँचे जहाँ इन्द्रधनुषके समान वह विशाल धनुष रखा था। जिसकी रक्षा बहुत-से सैनिक कर रहे थे। भगवान्‌ने सैनिकोंके मना करनेपर भी उस धनुषको बायें हाथसे उठा लिया और सबके देखते-देखते उसे खींचकर बीचसे तोड़ डाला। धनुष भंगकी भीषण ध्वनिसे आकाश-पाताल द्यावाभूमि तथा सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। उसे सुनकर साहसी कंसका भी हृदय काँप उठा।

धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः।
पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥ १८ ॥

इस घटनासे क्षुभित हो सैनिकोंने उन्हें घेर लिया और वे कहने लगे—अरे, पकड़ो-पकड़ो इन दोनोंको, बाँध लो, देखो ! ये भागने न पायें। यह सुन दोनों भाइयोंने क्रुद्ध हो धनुषके दोनों खण्ड उठा लिये और उन्हींसे सभी सैनिकोंको मार डाला। पुनः कंसने और भी बहुतसे वीर सैनिक भेजे। उन्हें भी इसी प्रकार मारकर पृथ्वीपर सुला दिया। सभी पुरवासी उनका यह अद्भुत पराक्रम देख उन्हें देवता मानने लगे फिर दोनों भाई यज्ञशालासे निकलकर नगरकी सुन्दर सजावट देखने लगे। अनन्तर भगवान् वहाँसे अपने भाई तथा गोपोंके साथ अपने डेरेपर लौट आये। पुराच्छकट-मीयतुः[1] और हाथ-पैर धो, खीर-पूड़ी खाकर सुखपूर्वक शय्यापर सो गये।

इधर कंसको नानाप्रकारके अपशकुन होने लगे। उसे दर्पण अथवा जलमें अपना सिर नहीं दीखता और चन्द्र सूर्यके दो रूप दीखने लगे। अपनी परछाईंमें उसे छिद्र दिखाई पड़ने लगे। कान बन्द करनेपर वह प्राणकी संचारध्वनि नहीं सुन पाता था। वृक्षोंके हरे पत्ते उसे पीले दीखने लगे। धूल या कीचड़में पैरोंके चिह्न नहीं दीखते थे। वह स्वप्नमें प्रेतोंसे आलिङ्गन, गधेपर सवारी और विषपान करते अपनेको देखता था पुनः नग्न हो तेलसे स्नानकर, जपा-कुसुमकी माला पहने दक्षिण-दिशाकी ओर यात्रा करते वह अपनेको देखने लगा। इस प्रकारके अपशकुन शीघ्र मृत्यु होनेकी सूचना देते हैं। इस भयसे उसे रातमें निद्रा नहीं आती थी। प्रातःकाल उठते ही उसने दंगलकी घोषणा कर दी। तूर्य, भेरी मृदङ्ग आदि नानाप्रकारके बाजे बजने लगे और कुश्ती देखनेके लिये सबलोग मञ्चोंपर जा बैठे। स्वयं कंस भी दुःखित मनसे एक विशाल ऊँचे सिंहासनपर बैठ गया। चाणूर आदि मल्ल अखाड़ेमें उतरकर ताल ठोंकने लगे ! उनके तालकी तीव्र ध्वनि सब वाद्योंके ऊपर सुनायी पड़ती थी। बाहरके और भी बहुतसे नामी मल्ल अपने-अपने उस्तादोंके साथ अखाड़ेके समीप आकर बैठ गये। नन्द आदि गोप भी अपनी भेंटे कंसको अर्पितकर एक मंचपर जा बैठे।

निवेदितोपायनास्त एकस्मिन् मञ्च आविशन् ॥ ३८ ॥

श्रीमद्भागवतकथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका बयालीसवाँ अध्याय समाप्त

—:ꕥ:ꕥ:—

---

१. शकटं शकटावमोचनस्थानम्। शकटाः सन्ति अत्रेति शकटम्। अत्र अर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययः।

तैंतालीसवाँ अध्याय

कुवलयापीडका-वध कर भगवान्‌का मल्लशालामें प्रवेश एवं चाणूरसे वार्तालाप

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! रंगभूमिके दरवाजे पर भेरी नगाड़े आदि नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे। मल्लोंके ताल-ठोकनेका शब्द दूर-दूर तक सुनाई पड़ रहा था। उसे सुनकर बलराम और श्रीकृष्ण भी वहाँ जा पहुँचे। दरवाजेपर कुवलयापीड नामक एक विशाल मतवाला हाथी खड़ा था। जिसमें दस हजार हाथियोंका बल था। कमरमें दुपट्टा कसे घुंघराले बालों-को संभालकर भगवान्‌ने गम्भीर वाणीमें पीलवानसे कहा—

अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम्।
नो चेत् सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि [1]यमसादनम् ॥ ४ ॥

अरे महावत ! मुझे अन्दर जानेके लिये रास्ता दो। मेरे सामनेसे हट जाओ अन्यथा हाथी सहित मैं अभी तुझे यमलोक पहुँचा दूँगा। यह सुनते ही पीलवानने कुपित हो हाथीको भगवान्‌की ओर दौड़ा दिया। हाथीने झपटकर भगवान्‌को अपनी सूंड़से पकड़ा, पर वे तुरत झटका देकर उसकी सूंड़से निकल गये और हाथीको जोरसे एक थप्पड़ मारकर उसके पैरोंके बीच जा छिपे। हाथीने इन्हें घ्राणरन्ध्रसे सूंघकर कई बार पकड़ा, पर वे बराबर निकलते ही गये। बादमें भगवान्‌ने पैंतरा काटकर हाथीकी पूंछ पकड़ ली और उसे चार सौ हाथकी दूरी तक खींचकर ले गये। फिर तुरत सामने आकर उसके जोरसे एक थप्पड़ मारा। वह तिलमिलाकर छटपटाता हुआ पुनः भगवान्‌की ओर झपटा। अबकी बार भगवान्‌ने उसकी सूंड़ पकड़ ली और उसे झटकेसे पृथ्वी पर दे पटका। हाथीके गिरते ही कन्हैया-ने पैरसे दबाकर उसका एक दाँत उखाड़ लिया और उसीसे पीलवान सहित हाथीको मार डाला। दूसरा दाँत बलरामने उखाड़ लिया। अनन्तर मृतक हाथीको छोड़कर दोनों भाई हाथीका एक-एक दाँत कन्धेपर रखे रंग-भूमिमें प्रविष्ट हुए। उनके मुखमण्डलपर पसीनेके बिन्दु झलक रहे थे।

---

१. सदनमेव सादनम्। स्वार्थेऽण्। वस्तुतस्तु यमेन मनोनिरोधेन साद्यते आसाद्यते प्राप्यते इति यमसादनं मोक्षम्।

उस समय नवरसोंकी साक्षात् मूर्ति धारण किये रंग-भूमिमें उपस्थित भगवान् एक रससे और अधिक होकर मनुष्योंको दशधा प्रतीत होने लगे।

१ २ ३
मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
४ ५ ६
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
७ ८ ९
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
१०
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥ १७॥

मल्लोंको वज्ररूप, जनताको उत्तम नर, स्त्रियोंको मूर्तिमान् कामरूप, गोपोंको प्रिय-बन्धु, दुष्ट राजाओंको शासक, माता-पिताको बालरूप, कंसको मृत्युरूप, अज्ञानियोंको अपूर्ण, साधारण रूप, योगियोंको परमतत्त्व और यादवों को इष्ट-देवताके रूपमें उनके दर्शन हुए। कंस तो उनके कंधेपर रखे हाथीके दाँतोंसे ही हाथीको मरा समझ उन्हें अजेय जानकर घबरा गया। रंगभूमिका विशाल जन समुदाय युगल-बन्धुओंके मुखकमलका दर्शन कर तृप्त नहीं हो रहा था। वह आपसमें मिलकर मधुर-मधुर चर्चा करता था देखो यह छोटे लाला श्यामवर्णके साक्षात् नारायणके अंश ही पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। इन्हींने पूतना, केशी, धेनुक आदि बड़े-बड़े दैत्योंका संहार किया है। कालियका दमन तथा इन्द्रका मद भी चूर किया है। गोवर्धन धारण कर गोकुल की रक्षा की हैं। यह दूसरे इनके बड़े भाई बलराम हैं। इन्होंने ही प्रलम्बासुर आदि बड़े-बड़े असुरोंको मारा है। इस प्रकार सब लोग प्रेमसे आपसमें चर्चा कर ही रहे थे, उधर तूरी तथा दुन्दुभि आदि बाजे भी बज रहे थे उसी समय चाणूर नामक मल्लने कृष्ण और बलरामको सम्बोधन कर ललकारा—अरे! आप दोनों तो कुश्ती लड़नेमें बड़े कुशल पहलवान हैं। राजाने यही सब देखनेके लिये तो आपको यहाँ बुलाया है। हम सब राजाकी प्रजा हैं, इसलिये हमें राजाका प्रिय कार्य करना चाहिये। भगवान्ने कहा—अरे मल्ल! ठीक हैं किन्तु हम बालक हैं, बालकोंके साथ लड़ेंगे।

---

१ २ ३ ४ ५ ६
१. रौद्रोऽद्भुतश्च शृङ्गारो हास्यं वीरो दया तथा।
भयानकश्च बीभत्सः शान्तः सप्रेमभक्तिकः! इति क्रमेण रसा ज्ञेयाः।
७ ८ ९ १०

२. विकलः अपर्याप्तो राजते इति तथा विराट्।

जिससे सभासंदोंको किसी प्रकार का दोष न लगे। चाणूरने कहा—नहीं, आप बालक नहीं हैं बड़े बलवान् हैं। आपने दस हजार हाथियोंका बल रखने वाले कुवलयापीडको खेलमें ही मार डाला, इसलिये आप मेरे साथ और बलराम मुष्टिकके साथ कुश्ती लड़नेके लिये दंगलमें उतर जायें।

मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥

कुवलयापीडका पूर्वजन्म

यह कुवलयापीड बलिका मन्दगति नामक पुत्र था। इसका शरीर बड़ा विशाल था। एक समय रंगजीकी यात्रामें यह मनुष्योंको धक्का देकर बड़े वेगसे जा रहा था। दैवात् इसके बाहुवेगसे मार्गमें जाते हुए वृद्ध 'त्रित' नामक मुनि गिर पड़े। उन्होंने शाप देते हुए कहा—अरे दुष्ट! तू यात्रामें भी मत्तगजके समान लोगोंका मर्दन करते चलता है, इस अपराधसे तू हाथी हो जा।

गजवत्त्वं मदोन्मत्तो भूजनान् परिमर्दयन्।
विचरस्यङ्ग यात्रायां त्वं गजो भव दुर्मते ॥
सोऽयं मन्दगतिर्दैत्यो गजोऽभूद्विन्ध्यपर्वते।
नाम्ना कुवलयापीडो नागायुतसमो बले ॥

(गर्ग, सं० मथु० खं० ११।१६, २४)

उसकी प्रार्थनासे पुनः प्रसन्न हो मुनिने कहा। जा मथुरामें श्रीकृष्णके हाथसे मारे जानेपर तेरी मुक्ति होगी। तदनुसार यह विन्ध्यपर्वतपर विशाल गज हुआ। जरासन्धने इसे पकड़कर दहेजमें कंसको दिया था। जरासन्ध कंसका ससुर था।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त



चौवालीसवाँ अध्याय

चाणूर आदि मल्लोंसहित कंसका वध

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

एवं चर्चितसंकल्पो भगवान् मधुसूदनः।
आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥

भगवान् तो पहलेसे ही यह निश्चय कर चुके थे। तदनुसार वे स्वयं चाणूरसे एवं बलराम मुष्टिकसे अखाड़ेमें भिड़ गये। वे हाथसे हाथ और पैरसे पैर बाँधकर एक-दूसरेको चाँपने लगे। खींचने लगे, ढकेलने लगे, उठापटक करने लगे, खड़े, बैठे, लेटे, उलटे, सीधे, तिरछे नाना प्रकारके दाँव-पेचोंके साथ कभी जानुसे जानु टकराते, कभी शिरसे शिर लड़ाते तो कभी सीनासे सीना भिड़ाते मल्ल युद्ध करने लगे। दोनों ओरसे विविध पैंतरोंका भी प्रदर्शन हो रहा था। स्त्रियाँ यह बलाबलका युद्ध देखकर आपसमें कहने लगीं—अरे! इन सभासदोंको घोर पाप लगेगा, जो कि ये बेजोड़की कुश्ती करा रहे हैं। कहाँ वज्रकाय ये पर्वताकार मल्ल और कहाँ किशोरावस्थाके ये मृदुगात्र छोटेसे बालक। देखो तो सही? कृष्णके मुखकमलपर श्रमसे पसीना आ गया है, मुष्टिकके प्रति सामर्ष रामका भी मुख इस बलप्रयोगमें लाल हो उठा है। यह व्रजकी भूमि धन्य है, बड़ी पुण्यमयी है, जहाँ गोपवेशमें छिपे हुए भगवान् श्रीकृष्ण वेणुवादन करते अपने भाईके साथ क्रीडाहेतु गोचारणार्थं विचरते हैं। इन गोपियोंने पूर्वजन्ममें कौन ऐसी तपस्या की है जो लक्ष्मी तथा ऐश्वर्यके एकान्त भाजन क्षण-क्षणमें अभिनव होनेवाले भगवान्के अनुपम रूपका दर्शनकर अपने नेत्रोंको सफल करती हैं। जो गोपियाँ गोदोहन धान्यकुट्टन तथा दधिमन्थनके समय भगवान्में चित्त लगाकर अनुरागसे उनका गान करती हैं वे व्रजांगनाएँ धन्य हैं। प्रातःकाल व्रजसे निकलकर सायंकाल गौओंके साथ वेणुवादन करते व्रजमें लौटते समय जो इनके सस्मित मुखका अवलोकन करती हैं वे गोपियाँ बड़ी पुण्यात्मा हैं, उनके भाग्यकी सराहना हम क्या कर सकती हैं।

अरी सखि! ये दोनों तो हृदयसे लगाने लायक हैं, हा क्या करें। दुष्ट कंस इनसे कुश्ती करा रहा है! यह अनर्थ हमसे देखा नहीं जाता। यह कहती-कहती स्त्रियाँ करुणाभरी दृष्टिसे भगवान्को देखकर रोने लगीं। देवकी और वसुदेव भी यह दृश्य देखकर घबरा उठे। स्त्रियोंके इस प्रकार प्रेम एवं दीनता पूर्ण वचन सुनकर भगवान्ने शत्रुको मारनेका विचार किया और उछलकर वज्रपातके समान एक ऐसा मुक्का और लात मारी कि चाणूरकी नस-नस ढीली पड़ गयी। वह भी क्रोधमें भर बाजके समान वेगसे ऊपर उछला और भगवान्की छातीपर तानकर एक घूँसा मारा। भगवान्को वह प्रहार ऐसा जान पड़ा मानो जैसे हाथीको मालाका प्रहार हो—

नाचलत् तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ॥ २२ ॥

इसी समय भगवान्‌ने उसके दोनों हाथ कसकर पकड़ लिये और सैकड़ों बार घुमाकर उसे घड़ामसे पृथ्वीपर दे पटका। पटकते ही उसके तुरत प्राण-पखेरू उड़ गये। उधर बलरामने भी मुष्टिकको पछाड़कर पृथ्वीपर दे मारा। वह मुखसे खून उगलता हुआ तत्क्षण मर गया। मुष्टिकके मरते ही कूट नामक मल्ल सामने आ डटा। बलरामने अवहेलनापूर्वक बायें हाथसे एक ही घूँसा मारकर उसे पृथ्वीपर सुला दिया। इधर श्रीकृष्णके सामने अन्यायसे एक ही साथ शल और तोशल लड़ने आ धमके। भगवान्‌ने मुद्गरकी भावनाकर एक ही लातसे शलका मस्तक फोड़ डाला और तोशलको बीचसे ही चीर कर पृथ्वीपर फेंक दिया।

चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते।
शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ २८ ॥

इस प्रकार चाणूर, मुष्टिक, कूट शल और तोशलके मारे जानेपर शेष मल्ल भयभीत हो प्राण लेकर भाग खड़े हुए। भगवान्‌के इस अद्भुत् पराक्रमको देखकर कंसको छोड़ सभी देखनेवाले मुक्तकण्ठसे उनकी प्रशंसा करने लगे। मल्लोंके भाग जानेपर कंसने क्षुब्ध हो बड़े क्रोधसे डाँटते हुए कहा—अरे! बन्द करो गाजा-बाजा। वसुदेवके इन दोनों लड़कोंको नगरसे बाहर निकाल दो। दुर्मति नन्दका सारा धन छीन कर इसे बाँध लो। मिथ्यावादी वसुदेवको शीघ्र ही मार डालो। यह सुनते ही भगवान् रोषमें भर कंसके विशाल ऊँचे मञ्चपर कूदकर चढ़ गये। कंस घबराकर तुरत ढाल-तलवार हाथमें लेकर खड़ा हो गया और इधर-उधर अपने बचावके लिये पैंतरे मारने लगा किन्तु गरुड़ जैसे सर्पको दबोचे उसी प्रकार भगवान्‌ने लपक-कर कंसके केश कसकर पकड़ लिये और उसे नीचे रंगभूमिमें गिराकर स्वयं सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका बोझ लेकर उसके ऊपर कूद पड़े। इस क्रियासे कंसकी नस-नस पिस गयी और वह सदाके लिये सो गया।

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात्।
तस्योपरिष्टात्स्वयमब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥ ३७ ॥

भगवान्‌ने कंसकी चोटी पकड़कर कुछ देरतक पृथ्वीपर उसे खूब घसीटा। जिससे सब लोग समझ लें कि कंस मर गया है, मूर्च्छित नहीं है। दूसरी बात दुर्लभ ब्रजकी रज इस पापीके शरीरमें लग जाय तो इसका कल्याण होगा। कंसके मारे जानेपर राजकीय सैनिकोंका चारों ओरसे हाहाकार मच गया।

कंस चलते-फिरते खाते-पीते, हर समय भयभीत हो श्रीकृष्णका ही चिन्तन किया करता था। इसलिये अन्ततः वह भगवान्के ही दुर्लभ स्वरूपको प्राप्त हो गया। उसके अनुज कंक आदि ८ भाई थे वे सब अपने भाईका बदला लेने बड़े वेग-से दौड़ पड़े। किन्तु, बलरामने लौह-दण्डसे उन्हें भी मार-मारकर पृथ्वीपर सुला दिया। इसपर हर्षसे आकाशमें दुन्दुभि बजने लगीं। देवतागण पुष्पवृष्टि करने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। कंस आदि वीरोंकी स्त्रियाँ सिर धुन-धुनकर करुण विलाप करने लगीं। भगवान्ने उन सबको आश्वासन देकर उनके मृत-पतियोंका विधिवत् दाह-संस्कार कराया। अनन्तर माता-पिताको बन्धनसे मुक्त कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। देवकी-वसुदेव उन्हें साक्षात् ईश्वर जान स्वयं ही हाथ जोड़कर खड़े हो गये। और शंकित हो अपने बच्चोंका आलिङ्गन तक न कर सके। सस्वजाते न शङ्कितौ।

कंस तथा चाणूर आदि पाँच मल्लोंका पूर्वजन्म

यह कंस पहले कालनेमि नामक असुर था। समुद्र-मन्थनके प्रसंगमें भगवान् विष्णुद्वारा युद्धमें मारा गया था। सञ्जीविनी विद्याके प्रभावसे शुक्राचार्यने उसे जीवित कर दिया। बादमें इसने भगवान् विष्णुसे युद्ध करनेकी इच्छासे महान् उद्योग किया। मन्दराचलके समीप दिव्य सौ वर्ष तक दूर्वाका रस पीकर ब्रह्माजीकी आराधना की। ब्रह्माके प्रसन्न होनेपर उसने उनसे यह वर माँगा कि देवताओंके हाथसे मेरी मृत्यु न हो। ब्रह्माजीने कहा—अच्छा, कालान्तरमें तुझे यह वर प्राप्त होगा। वही कालनेमि उग्रसेनकी पत्नीसे कंसके रूपमें उत्पन्न हुआ। वह कुमारावस्थामें ही बड़े-बड़े मल्लोंसे युद्ध करता था। एक समय जरासन्ध दिग्विजयके लिये निकला था। यमुना तटपर उसका शिविर था। वहाँसे उसका कुवलयापीड हाथी जंजीर तोड़कर भाग खड़ा हुआ। मार्गमें बहुत-से राजाओंके शिविर और भवनोंको रौंदता हुआ कंसकी रंग-भूमिमें जा डटा। सभी मल्ल उसे देखकर भाग खड़े हुए। कंसने उसकी सूँड़ पकड़ कर पृथ्वीपर दे पटका और हाथोंसे उसे घुमाकर सौ योजन दूर जरासन्धकी सेनामें ही फेंक दिया। उसका यह अद्भुत पराक्रम और बल देखकर जरासन्धने प्रसन्न हो अस्ति और प्राप्ति नामक अपनी दो कन्याएँ उसे ब्याह दीं। बाद, कंसने दिग्विजयमें दशमस्कन्धीय जितने भी दैत्य हैं उन सबको युद्धमें पराजित किया और उन्हें दास बनाकर अपनी राजधानीमें ले आया। एक बार कंसने जाकर महेन्द्र

पर्वतको उखाड़ा। यह देखकर परशुरामजी बड़े कुपित हुए। यह उनके चरणोंमें जा गिरा। परशुरामने डाँटकर इससे कहा—अरे कीड़े बंदरीके बच्चे! तू मच्छरके समान है। देख क्षत्रियोंका नाश करनेवाला यह विशाल धनुष है, इसे यदि तू न चढ़ा सका तो मैं तेरा बल नष्ट कर दूँगा। कंसने वह धनुष चढ़ा दिया और उनके चरणोंपर गिर पड़ा। परशुरामजीने प्रसन्न होकर कंसको वह धनुष दे दिया और कहा—जो इस धनुषको तोड़ेगा वही तेरा वध करेगा। तदनुसार भगवान्‌ने धनुष तोड़ कर उसका वध किया।

यत्कोदण्डं वैष्णवं तद् येन भङ्गीभविष्यति।
परिपूर्णतमो देवः स वै त्वां घातयिष्यति॥
(गर्ग० सं० गोलो० खं० ६।४३)

अमरावतीमें उतथ्य मुनिके कामदेवके समान पाँच पुत्र थे। वे अध्ययनका परित्याग कर बलिसे कुश्ती लड़ना सीखते थे। यह देखकर एक दिन क्रुद्ध हो मुनिने कहा। अरे मूर्खो! तुम ब्राह्मणकुलमें जन्म लेकर यह क्षत्रियका कर्म सीखते हो इसलिये तुम भारतमें जाकर मल्ल ही हो जाओ। इसी शापवश वे पाँचों मल्ल हुए थे।

तस्माद् भवन्तो भूयासुर्मल्ला वै भारताजिरे।
चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च॥
(गर्ग० सं० मथु० खं० १२।९)

कंसके कंक आदि आठ भाइयोंका पूर्वजन्म

पहले अलकापुरीमें देवयक्ष नामक एक शिव-भक्त रहते थे। उनके आठ पुत्र थे। यक्षने पुत्रोंको शिवपूजनके लिये मानसरोवरसे एक सहस्र कमल लानेको कहा। वे कमलोंको तोड़कर ला ही रहे थे कि मार्गमें उनकी दिव्य-सुगन्धसे मोहित हो उन्होंने उन्हें सूंघ लिया और पिताको दे दिये। इस उच्छिष्टताके अपराधसे वे तीन जन्म तक असुर हुए।

उच्छिष्टीकृतदोषेण शिवपूजातिरस्कृताः।
आसुरीं योनिमापन्ना मूढास्ते जन्मभिस्त्रिभिः॥
(गर्ग० सं० मथु० ख० १२।१७)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त

●

पैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण बलरामका गुरुकुलमें विद्याध्ययन तथा गुरुदक्षिणामें मृत–गुरुपुत्रका आयनन

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! माता-पिताको अभी हमारे ईश्वरत्वका ज्ञान होना उचित नहीं क्योंकि इससे हमारी नाट्यलीला ही बन्द हो जायगी। ऐसा विचार कर भगवान्ने पुत्र-स्नेहरूपी मायाका प्रसार किया और वह उनके चरणोंमें गिरकर उन्हें प्रसन्न करते हुए कहने लगे—हे पिता हे भैया ! हम दोनोंसे आपलोगोंको किसी अवस्थाका सुख नहीं मिला। हम बड़े हतभाग्य हैं जो आपके पास रह भी न सके। पुत्र पूरी सौ वर्षकी आयु पाकर भी माता-पिताके ऋणसे मुक्त नहीं हो सकता। जो पुत्र समर्थ होते हुए भी शरीर अथवा धनसे माता-पिताकी अन्न-वस्त्रादिसे सहायता नहीं करता उसके मरनेपर यमदूत उसीका मांस काटकर उसे खिलाते हैं।

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम्।
गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽविभ्रच्छ्वसन्मृतः ॥ ७ ॥

जो मनुष्य समर्थ होते भी वृद्ध माता-पिता, पतिव्रता स्त्री, पुत्र बालक, गुरु, ब्राह्मण और शरणागतका पालन नहीं करता वह जीवन्मृतक कहा गया है। आपकी सेवाके विना हमारे इतने दिन व्यर्थ बीत गये। कंसके भयसे हम आपके पास आ भी न सके क्योंकि हम परतन्त्र थे। आप हमारा अपराध क्षमा करें। इतना कहकर कृष्ण और बलराम दोनों उनके चरणोंपर गिर पड़े। भगवान्की ऐसी प्रेममयी मधुर वाणी सुनकर माता-पिता विमुग्ध हो गये। उन्होंने उन दोनोंको गोदमें बैठा लिया और हृदयसे लगाकर उनका मुख चूमने लगे। स्नेहवश उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। कण्ठ गद्गद हो गया वे कुछ भी बोल न सके। इस प्रकार माता-पिताको आश्वासन देकर श्रीकृष्णने अपने नाना उग्रसेनको राजगद्दीपर बैठा दिया और कहा आप प्रजाका पालन करें। ययातिके शापसे हम गद्दीके अधिकारी नहीं हैं। आपके यदुवंशी होनेपर भी हमारी आज्ञासे आपको कोई दोष न लगेगा। अनन्तर फिर दोनों भाई नन्द बाबाके समीप जाकर बोले—पिताजी ! अब आप व्रजमें पधारें। हम अपने सुहृत् सम्बन्धियोंके सुख-सुविधाकी उचित व्यवस्था कर पुनः आपके दर्शन करने आयेंगे। इतना कह कर भगवान्ने व्रज-

वासियों सहित नन्दजीका नानाप्रकारके वस्त्र और अलंकारोंसे उचित सत्कार किया। फिर नन्दजी अश्रु पूर्ण नेत्रोंसे दोनों पुत्रोंका प्रेमसे आलिंगन कर व्रज लौट गये। अनन्तर वसुदेवने गर्गाचार्य आदि ब्राह्मणों द्वारा पुत्रोंका विधिवत् उपनयन संस्कार कराया और जन्मके समय जो दस हजार गौओंका संकल्प किया था उनका दान किया तथा और भी नानाप्रकारके दान देकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया। अनन्तर गुरुकुलमें निवास पूर्वक विद्याध्ययनकी इच्छासे भगवान् अवन्तीपुरीमें कश्यपगोत्रके[1] सान्दीपनि गुरुके पास गये। वहाँ शुद्धभावसे गुरुकी सेवाकर उनकी कृपासे उन्होंने ६४ दिनोंमें ६४ कलाएँ सीख लीं। यद्यपि दोनों भाई समस्त विद्याओंके प्रवर्तक थे फिर भी 'आचार्यवान् पुरुषो वेद' इस श्रुतिविहित लोकमर्यादाके रक्षणार्थं गुरुके एक वार उच्चारण मात्रसे प्रतिदिन एक-एक कला ग्रहण कर लेते थे। अनन्तर गुरुदक्षिणाके लिये प्रार्थना की गयी तव गुरुजीने इनकी अद्भुत विलक्षण प्रतिभाको देख पत्नीके परामर्शसे अपने मृत पुत्रको माँगा जो प्रभासक्षेत्रके समुद्रमें शंखासुरके निगलनेसे डूबकर मरा था।

सम्मन्त्र्य पत्न्या न महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयाम्बभूव ह ॥ ३७ ॥

भगवान्ने 'तथास्तु' कहकर उसे स्वीकार किया और गुरु-पुत्रको लानेके निमित्त प्रभासक्षेत्रको प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचनेपर समुद्रने भगवान्का अभिप्राय जन अर्घ्य-पाद्यसे उनका पूजन कर कहा—भगवन्! मैंने गुरुपुत्रका हरण नहीं किया है। मेरे जलके अंन्दर शंखाकार मत्स्यरूप धारणकर पञ्चजन नामका एक असुर रहता है सम्भव है, उसीने बालकको निगला हो। यह सुन भगवान्ने तुरन्त जलमें प्रवेशकर उस दैत्यको मारा किन्तु, उसके उदरमें बालक नहीं मिला, केवल पाँचजन्य शंख ही मिला उसे लेकर भगवान् लौट आये।

बादमें भगवान् अपने भाईके साथ यमराजकी संयमनी पुरीमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने शंख बजाया। शंखध्वनि एवं भगवान्के दर्शनसे नारकीय जीवोंकी यातना बन्द हो गयी और उन्हें अनुपम सुखकी अनुभूति हुई। उस समय यमदूतोंके शस्त्र कुण्ठित हो गये। यातनाप्रद यन्त्र विदीर्ण हो गये। असिपत्रवनके पत्ते टूट-टूटकर गिर गये। रौरव अरौरव भैरव अभैरव तथा कुम्भीपाकका खौलता हुआ तेल शीतल हो गया। कई योजनकी वैतरणी

---

१. यहाँ मूलमें काश्यशब्दका प्रयोग किया गया है, वहाँ एकदेशन्यायसे कश्यप गोत्र अर्थ करना चाहिये। अथवा काश्यां पठितवान् काश्यः— तत्र जातं वा। केचित्तु काशगोत्रजमित्याहुः।

नदी एक हाथकी हो गयी। इस प्रकार भगवान्‌के दर्शनसे सभी पापी जीव नरक-यातनासे मुक्त हो विमानोंपर चढ़कर विष्णुलोक चले गये। सारा नरक खाली हो गया। यह देख यमराज भयभीत हो भगवान्‌की शरणमें आये और अर्घ्य-पाद्यसे उनका विधिवत् पूजन कर अमूल्य रत्नोंकी भेंट की और बोले—हे लीलावतार ! हे भगवन्, क्या आज्ञा है ? भगवान्‌ने कहा—

गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम्।
आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥

महाराज ! अपने कर्मानुसार बन्धनको प्राप्त जो गुरुपुत्र तुम्हारे यहाँ लाया गया है। यद्यपि यहाँसे ले जानेका नियम नहीं है तथापि मेरी आज्ञासे उसे यहाँ ले आओ। यमराजने तत्काल गुरुपुत्रको लाकर भगवान्‌के अर्पण किया। भगवान् उसी रूप-रंग और अवस्था वाले पुत्रको लेकर यहाँ आये और रत्नों सहित गुरुके अर्पण कर पुनः उनसे प्रार्थना की—महाराज ! और भी जो कुछ इच्छा हो निःसंकोच आज्ञा करें।

इसपर गुरुजी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने आशीर्वाद देकर कहा—बेटा ! तुमने पुत्र देकर हमारी गुरुदक्षिणा भली-भाँति चुका दी। मरे हुए प्राणी को यमलोकसे कोई भी आजतक लौटाकर न ला सका। तुमने असंभव को संभव कर दिया। मैं तुम दोनों पर बहुत प्रसन्न हूँ। संसारमें तुम्हारी कीर्तिका विस्तार हो और सब शास्त्र करामलकवत् हों सदा तुम्हें उपस्थित रहें।

छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥ ४८ ॥

रात दिनके किसी भी प्रहरमें इसलोकमें या परलोकमें कभी उनकी विस्मृति न हो। बेटा अब तुम सानन्द घर जाओ। तुम्हारी यात्रा सफल हो। इस प्रकार दोनों भाई गुरुकी आज्ञासे रथपर सवार हो अपने घर लौट आये। जैसे किसीको खोया हुआ धन मिल जाय उसी तरह बहुत दिनों बाद बलराम और श्रीकृष्णको देखकर प्रजा हर्षसे फूली नहीं समाती थी।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त

छियालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका संदेश लेकर उद्धवका व्रजगमन

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! एक समय भगवान् श्रीकृष्ण एकान्तमें अपने प्रिय सखा[1] उद्धवको पास बुला कर हाथसे हाथ पकड़ प्रेम भरी वाणीसे बोले—

गच्छ शीघ्रं व्रजं हे सखे सुन्दरं श्रीलताकुञ्जपुञ्जादिभिर्मण्डितम् ।
शैलकृष्णाप्रभाचारु वृन्दावनं गोपगोपीगणैर्गोकुलं संकुलम् ॥
एकपत्रं तु नन्दाय वै दीयतां वा द्वितीयं यशोदाकरे चैव भोः ।
वा तृतीयं त्विदं राधिकायै सखे तत्र गत्वा हि तन्मन्दिरं सुन्दरम् ॥
वा चतुर्थं सखिभ्यः शिशुभ्यः शुभं कौशलं दीयतां पत्रमेवं पृथक् ।
गोपिकानां शतेभ्यश्च यूथेभ्य उन्मोहितानां च देयानि पत्राणि च ॥

हे सखे ! तुम शीघ्र व्रजमें चले जाओ, वहाँ से पहले वृन्दावन फिर गोकुल चले जाना । वहाँ जाकर एक पत्र बाबा नन्दको देना, एक मैया यशोदाके हाथमें और एक मेरी परम प्रेयसी श्रीराधिकाको उनके सुन्दर निकुञ्जमें जाकर देना । बाद मेरे बालसखाओं एवं वियोगाकुल गोपियोंके पृथक् पृथक् मण्डलमें जाकर मेरे कुशल-समाचारके पत्र देना । हमारे माता-पिता तथा वियोग से व्यथित गोपियोंको मेरा सन्देश देकर प्रसन्न करना । मेरे आनेकी प्रतीक्षामें उन्होंने किसी तरह प्राणधारण कर रखे हैं । इस प्रकार भगवान्ने सैकड़ों पत्र पृथक्-पृथक् लिखकर उद्धवको दिये । उद्धव भगवान्को प्रणाम कर रथपर चढ़ व्रजकी ओर चल पड़े । वहाँ पहुँचनेपर दूरसे व्रजबालकोंने इन्हें आते देखा और कृष्णकी कल्पना करने लगे । बाद, कृष्णकी आकृतिवाले ये कृष्णसखा उद्धव जान पड़ते हैं, ऐसा ये कह ही रहे थे कि उद्धवने रथसे उतरकर श्रीदामाको गले लगा लिया और कहा—श्रीकृष्णने तुम्हें पत्र दिया है, इसे पढ़ो, वे कुशलपूर्वक हैं । वहाँका कार्य सम्पन्न कर वे शीघ्र ही यहाँ आयेंगे । तुम शोक न करो । श्रीदामा पत्र खोलकर बाँचने लगे । उसी समय उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली । वे विकल हो कहने लगे—हा ! कृष्णके बिना हमें सारा जगत् शून्य-सा दीख पड़ता है !

---

१. यह उद्धव बृहस्पतिके प्रधान शिष्य तथा वसुदेवके भ्राता देवभागके पुत्र थे । 'उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्' हरिवंशपुराण ।

क्षणो युगत्वं च घटी महामते प्रयाति मन्वन्तरतां व्रजौकसाम् ।
यामश्च कल्पं च दिनं विना हरिं वियोगदुःखैर्द्विपरार्द्धतांग तम् ।।
(गर्ग० सं० खं० १३।३३)

हम लोगोंके लिये क्षण युगके समान, घड़ी मन्वन्तरके समान, प्रहर कल्पके समान एवं दिन वियोगजन्य दुःखोंसे ब्रह्माकी आयु द्विपरार्द्धके बराबर हो गया है। क्या करें उनकी आशामें प्राण भी नहीं निकलते। इस प्रकार व्याकुल गोपोंको देखकर उद्धवने कहा—आप लोग घबराये नहीं। मैं शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि शीघ्र ही भगवान्‌को यहाँ लेकर आऊँगा। यह कह गोपों सहित उद्धवजी नन्दग्राममें गये। वहाँ सायंकाल हो चुका था। गौएँ घास चरकर व्रजमें लौट रही थीं। गोपियों द्वारा भगवान्‌के मंगलमय चरित्रोंका गान चल रहा था। नन्दजी उद्धवको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने आलिङ्गनकर उनका अर्घ्य-पाद्यसे भगवान्‌की तरह विधिवत् पूजन किया और खीर-पूड़ी आदि नाना प्रकारके दिव्य भोजन करा कर उन्हें एक सुन्दर शय्यापर बैठा दिया। फिर, पैर दवाते समय पूछा—हे महाभाग ! हमारे मित्र वसुदेवजी पुत्रों सहित कुशलपूर्वक तो हैं ? केशी आदि दैत्य तथा भाइयों सहित कंस मारा गया यह तो बड़ा अच्छा हुआ क्योंकि वह धर्मशील यदुवंशियोंसे सदा द्वेष करता था। पर यह तो बतायें कि वे कभी हमलोगों का भी स्मरण किया करते हैं या नहीं ? क्या कभी एक बार भी हमें देखने वे यहाँ आयेंगे ? उन्होंने वायुसे, वर्षासे, दावानलसे तथा बड़े-बड़े दैत्योंसे हमारी और गोकुलकी रक्षा की थी। उनका वियोग अब हमसे सहा नहीं जाता। यदि एक बार भी उनका मुखकमल देखनेको मिल जाता तो हृदयको बड़ी शान्ति मिलती। इस प्रकार नन्द और यशोदा दोनों ही भगवान्‌के मङ्गलमय चरित्रोंका स्मरण कर रोने लगे। भावावेशमें उनका कण्ठ रोते-रोते अवरुद्ध हो गया। उद्धव उन दोनोंका भगवान्‌में ऐसा अगाध प्रेम देख प्रसन्न हो बोले—आप दोनों धन्य है बड़े ही भाग्यवान् हैं जो आपकी भगवान् नारायणमें ऐसी दृढ़ निष्ठा है। वे दोनों भैया तो प्रकृति-पुरुष रूपसे निखिल जगत्‌के कारण हैं, नियन्ता हैं, ज्ञानदाता हैं। उनका महत्त्व मैं क्या वर्णन करूँ।

यस्मिञ्जनः प्राणवियोगकाले क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम् ।
निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ।। ३२ ।।

प्राण निकलते समय मनुष्य एक क्षण भी यदि उनमें अपना अनासक्त, मन स्थिर कर ले तो वह समस्त कर्म-बन्धनसे मुक्त होकर शुद्धचिदानन्दरूपसे सूर्यवत् प्रकाशित होता हुआ ब्रह्मगतिको प्राप्त करता है। आप खेद न करें उन्होंने जो कुछ कहा है वह मिथ्या नहीं होगा। वह अवश्य यहाँ आयेंगे। आप अन्तर्दृष्टिकर उन्हें अपने हृदयमें ही क्यों नहीं देखते ? वे काष्ठमें अग्निके समान सर्वत्र वर्तमान हैं। उनके माता-पिता, भाई-बन्धु कोई भी नहीं और हैं भी। वे तो लीलार्थ ही मानव शरीर धारण कर अभिनय कर रहे हैं उनकी लीलाको कोई समझ नहीं पाता। संसारकी कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो उनसे पृथक् हो। आप सर्वत्र उन्हींको देखें। फिर आपको वियोगजन्य दुःख न सता सकेगा।

एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन्।
गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान् वास्तून् समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थन् ॥४४॥

हे राजन्! इस प्रकार नन्द और उद्धवके परस्पर चर्चा करते हुए सारी रात बीत गयी। गोपियाँ प्रातःकाल उठकर दीपक जला देहली का पूजन कर भगवान्के गुणगान करतीं दधि-मन्थन करने लगीं। इस मन्थन शब्दसे मिश्रित भगवान्के मङ्गलमय गानसे दिशाओंके सारे अमङ्गल दूर भाग जाते थे। सूर्योदय होनेपर नन्दजीके दरवाजेपर खड़े सुवर्णका दिव्य रथ देखकर गोपियाँ आपसमें कहने लगीं—अरी बहन! यह किसका रथ है? क्या फिर क्रूर हृदय अक्रूर आया है? जो हमारे प्रियतमको हमसे छीनकर मथुरा ले गया था। अब क्या हमें ले जाकर हमारे शरीरसे अपने मृत स्वामीके लिये पिण्डदान करेगा? वे ऐसा कह ही रहीं थीं कि उद्धवजी नित्यकर्मसे निवृत्त होकर वहाँ आ पहुँचे।

इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात् कृताह्निकः ॥४६॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका छियालीसवाँ अध्याय समाप्त

सैंतालीसवां अध्याय

उद्धव द्वारा गोपियोंको सान्त्वना और श्रीराधारानीका सुमधुर भ्रमरगीत

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! गोपियाँ श्रीकृष्णके अनुचर सर्वाङ्ग सुन्दर पीताम्बरधारी उद्धवको देखकर आपसमें कहने लगीं—अरी सखियो! देखो

तो सही। भगवान् के समान वेष-भूषा धारण किये ये सुन्दर मूर्ति कौन् हैं? कहाँसे आये हैं? जान पड़ता है ये भगवान् के दूत हैं और कुछ सन्देश लाये हैं। चलो सुना जाय। यह कहकर वे गोपियाँ उद्धवके पास जाकर एकान्तमें उनसे पूछने लगीं—रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने। महाराज! दण्डवत्! कहिये कहाँसे पधारे हैं? क्या आप हमारे मनमोहनके दूत बनकर आये हैं? हो सकता है उन्हें माता-पिताकी कुछ याद आ गयी हो। संभव है उन्हींके सन्तोषार्थ आपका यहाँ शुभागमन हुआ है। अन्यथा इस गोकुलमें उनका स्मरणीय और कौन है। उनकी मैत्री तो उन भ्रमरोंके समान स्वार्थपूर्ण होती है जो रसका आस्वादन कर पुष्पोंको छोड़ देते हैं, जैसे कामीपुरुष स्त्रियोंसे पहले तो अत्यन्त प्रेम करते हैं और कार्य सिद्ध होने पर फिर उन्हें छोड़कर चले जाते हैं। देखा भी जाता है।

निःस्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः।
अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम्॥ ७॥

जिस प्रकार काम निकल जानेपर वेश्या निर्धन पुरुषको, प्रजा राज्यसे च्युत असमर्थ राजाको, शिष्य विद्या पढ़कर गुरुको, ऋत्विक् दक्षिणा लेकर यजमानको, पक्षी फलरहित वृक्षको, अतिथि भोजनकर घरको, मृग दग्धवनको तथा जार पुरुष अतृप्त स्त्रीको छोड़ देते हैं। उसी प्रकार उन्होंने भी हमें छोड़ दिया। इतना कहते-कहते प्रेमावेशमें उनका बाह्य-ज्ञान जाता रहा। वे विह्वल हो भगवान्के बाल्य तथा किशोरावस्थाके चरित्रोंका गान करने लगीं। उनके नेत्रोंसे निरवच्छिन्न अश्रुधारा बह चली। बाद, भगवान्का समाचार पूछनेके लिये वे उद्धवको साथ ले गुप्त कदलीवनमें गयीं जहाँ वृषभानुनन्दिनी निवास करती थीं। यह वन पहले केले आदिके हरे हरे पत्ते, हरी-हरी घास, खस, चन्दन-द्रव यमुनाकी तरंगों एवं चन्द्रमाकी अमृतस्रावी किरणोंसे अत्यन्त शीतल था, किन्तु राधाके वियोगानलकी ज्वालासे मुर्झाकर सूख-सा गया था। केवल अपने अनन्य प्रियतमके आगमनकी आशासे उनका शरीर ही किसी प्रकार बचा था। उद्धवका आगमन सुनकर सखियों सहित राधाने बड़े आदरसे एक सुन्दर सुकोमल आसनपर उन्हें बैठाया। वियोगसे कृश श्रीराधाजीको देख उद्धवने हाथ जोड़कर नतमस्तक हो उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उसी समय मधुर-मधुर गुञ्जार करता हुआ एक भ्रमर वहाँ आ पहुँचा। उसे देख उन्हें श्रीकृष्णके समागमका ध्यान आ गया। वे भावावेशमें उसे ही श्रीकृष्णका दूत समझ कर उससे कहने लगीं—अरे भ्रमर! तू भी तो धूर्त कृष्णका ही

धूर्त साथी है। सौतके कुचंका कुंकुम मूँछोंमें लगाकर यहाँ आया है? उसीसे हमारे चरण छूना चाहता है? खबरदार! भूलकर भी ऐसा मत करना। जिनके दूत वनकर तुम यहाँ आये हो यह प्रसादी उन्हींको जाकर देना, पुष्पोंका रस लेकर जैसे तुम उन्हें छोड़ देते हो, उसी प्रकार उन्होंने भी हमें छोड़ दिया है। आश्चर्य है, लक्ष्मी उनके पास कैसे रहती है? हो सकता है, उनकी मीठी-मीठी वात-चीतसे वह भी फँस गयी हो। देखो, हमारे सामने वारम्बार उनका गान मत करो। उनकी सखियोंके ही पास चले जाओ। वे ही इससे प्रसन्न हो तुम्हें कुछ इनाम दे सकेंगी। हम तो उस कपटीकी स्वार्थभरी चर्चा भी सुनना नहीं चाहतीं। हमारी उनसे अब किसी तरह सन्धि नहीं हो सकती। जाओ, उनसे कह देना कि जिनके कारण हमने पति, पुत्र, भाई, वन्धु, घर-परिवार सब कुछ छोड़ा, फिर भी उन्होंने हमारा त्याग किया ऐसे कृतघ्नके साथ सन्धि कैसी। किन्तु सन्धेयमस्मिन्। पूर्वजन्ममें भी इनका इसी प्रकारका कुकृत्य था। उसे भी जरा सुनो—

वे समदर्शी कहे जाते हैं। उनकी समदर्शिता देखो! रामावतारमें उन्होंने व्याधके समान छिपकर वालीको मार डाला। पति वनाने एक सुन्दरी स्त्री आयी थी, उसके नाक-कान कटवा कर उसे कुरूप वना दिया। छलसे बलिका सर्वस्व हरण कर उसे नागपाशसे वँधवा डाला। इन सब चरित्रोंको देख सुन कर हमने भी शपथ ग्रहण कर ली है कि श्यामवर्णवालोंसे मैत्री नहीं करना। किन्तु, क्या करें, जब उनकी गुप्त मीठी-मीठी बातें याद आती हैं तब मन उधर ही खिंच जाता है. वहाँ से हटता नहीं। उनकी चर्चा बड़ी ही मोहक है। जो एक वार भी उसे सुन लेता है वह घर-वार छोड़ कर दर-दरका भिखारी वन जाता है। उसका चित्त कहीं रमता नहीं और ये महाशय मिलते नहीं। वह तड़प-तड़प कर मर जाता है। प्यारे भ्रमर! तुम तो चले गये थे न? क्या फिर लौटकर आ गये? कहो-कहो, क्या चाहते हो? हमें वहाँ कैसे ले चलोगे? वहाँ तो हमेशा उनके हृदयमें लक्ष्मी बैठी रहती हैं? हम वहाँ कैसे रह सकेंगी? अच्छा कोई चिन्ता नहीं, जब उन्होंने हमें बुलाया है तब अवश्य उसे कहीं न कहीं छिपा लेंगे। अच्छा, यह तो वताओ, हमारे प्रियतम मथुरामें कुशलसे तो हैं न? कभी वे अपने घरवालोंका या गोपोंका स्मरण तो करते हैं? कभी प्रसङ्गवश हम दासियोंकी भी चर्चा किया करते हैं या नहीं? हा, क्या अगरसे भी सुगन्धित चन्दनलिप्त अपनी सुकोमल विशाल वाहु हमारे सिर और कन्धेपर रखकर हमारे मानसिक संतापको दूर करेंगे?

भुजसगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ।

यह भ्रमरगीत दिव्योन्मादमें भरी भगवान्‌की परमप्रियतमा श्रीवृषभानु-नन्दिनी द्वारा गाया गया है। इसमें मालिनी-छन्दके दस श्लोकोंसे अपने प्रियतमको उपालम्भ देकर प्रणयकोप द्वारा उनकी मधुर-मधुर भर्त्सना की गयी है। दसकी संख्यासे विरहकी दसवीं अवस्था भी सूचित की गयी है। उद्धव राधाके इस प्रकारका अलौकिक प्रेमको देखकर चकित रह गये। वे हाथ जोड़कर उनसे बोले—देवि !

गृहाण पत्रं निजनाथदत्तं शोकं परं मा कुरु राधिके त्वम् ।
ह्रस्वेन कालेन विधाय कार्यं तत्रागमिष्यामि तदुक्तवाक्यम् ॥
(गर्ग० सं मथु० खं० १५।४०)

आप भगवान्‌का दिया हुआ यह पत्र पढ़ें। शोक न करें। वे वहाँका कार्य समाप्त कर शीघ्र ही तुम्हारे समीप आयेंगे यह उनका सन्देश है। राधाने पत्र ले अपने सिर, नेत्र और हृदयसे लगाकर उसे बाँचना आरम्भ किया। बाँचते ही उन्हें तुरन्त भगवान्‌का स्मरण हो आया और उनकी अश्रुधारा बह चली। गला रुँध गया। भावावेशमें उद्धवके देखते-देखते-उन्हें मूर्च्छा आ गयी। चन्दन-खस केवडा आदिके रस एवं व्यजन-चामर आदि नानाविध शीतोपचारोंके द्वारा किसी प्रकार उन्हें होश कराया गया। किन्तु अश्रुओंका प्रवाह न रुका। यह देखकर उद्धव एवं गोपियोंके भी नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। उन्हीं अश्रु-विन्दुओंसे वृन्दावनमें लीलासरोवर वन गया। उसीमें उद्धव का ज्ञान भी वहने लगा, उन्हें अपने शरीरकी भी सुध-बुध न रह गयी। वे गये थे आश्वासन देने पर स्वयं ही प्रेमप्रवाहमें गोते लगाने लगे। घण्टोंतक यही दशा रही। फिर उन्हें राधाके अर्द्धांगमें ही मनमोहन श्रीकृष्णकी झाँकीका दर्शन हुआ, उसे देखते ही वे आनन्द-विभोर हो उनकी स्तुति करने लगे—

सदास्ति कृष्णः परिपूर्णदेवो राधे सदा त्वं परिपूर्णदेवी ।
श्रीकृष्णचन्द्रः कृतनित्यलीलो लीलावती त्वं कृतनित्यलीला ॥
कृष्णः स्वयं ब्रह्म परं पुराणो लीला तदिच्छा प्रकृतिस्त्वमेव ।
परस्परं संधितविग्रहाभ्यां नमो युवाभ्यां हरिराधिकाभ्याम् ॥
भूभारहाराय भुवं गताभ्यां मच्छान्तये चात्र समागताभ्याम् ।
परस्परं संधितविग्रहाभ्यां नमो युवाभ्यां हरिराधिकाभ्याम् ॥
(गर्ग० सं० मथु० खं०)

इस प्रकार उद्धवकी लगातार स्तुति चलती रही। लीलाशक्तिने दृश्य बदला। राधाके शरीरसे भगवान्‌की छवि अन्तर्हित हो जाती है। तब उन्हें होश आया, उन्होंने कहा—देवि! तुम शोक न करो। मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं तुम्हारे प्रियतमको साथ लेकर शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊँगा।

अब आप प्रकृतिस्थ हो अपने हाथका एक पत्र तो कम-से-कम उन्हें लिख दें। राधा कलम दावात लेकर पत्र लिखने बैठीं। जब समाचार सोचने लगीं तभी फिर अश्रुधारा बह चली। उससे सारा-का-सारा पत्र गीला हो गया। इस प्रकार उन्होंने जो-जो पत्र उठाये वे सबके सब गीले होते गये, वे कुछ भी लिख न सकीं। उद्धव राधाके इस प्रकारके अलौकिक प्रेमको देखकर बोले—देवि! मत लिखो पत्र, दुःख छोड़ो। मैं तुम्हारे बिना ही लिखे तुम्हारी सारी व्यथा भगवान्‌से कह दूँगा। किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। इस प्रकार राधाजीको सान्त्वना देकर उद्धवने और भी वियोगाकुल अनेक गोपियोंको पृथक्-पृथक् पत्र दिये और उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—गोपियो! आप सब धन्य हैं, कृतार्थ हैं जो भगवान्‌में इस प्रकार आपका मन रमा हुआ है। भगवान्‌में अनुराग अनन्त जन्मोंके पुण्योंसे हुआ करता है। आपने तो सब-कुछ त्यागकर सर्वतोभावेन भगवान्‌का वरण किया है आपके भाग्योंकी तुलना कौन कर सकता है। आपके विरह-प्रसंगमें जो मुझे आपका दर्शन हुआ, यह भी आपका ही अनुग्रह है। अच्छा, अब आप अपने प्रियतमका सन्देश सुनें, जिसे लेकर मैं यहाँ आया हूँ।

भगवान्‌ने कहा है—हे मेरी प्यारी गोपियों! तुम्हारा मुझसे कभी वियोग नहीं हो सकता, क्योंकि मैं सबकी आत्मा हूँ, सर्वत्र रहता हूँ। जैसे चराचर प्राणियोंमें पञ्चतत्त्व रहते हैं वैसे ही मैं तुम्हारे मन-बुद्धिका आश्रय लेकर तुममें स्थित हूँ। मैं अपनेमें अपनेसे अपनेको जगत्‌रूपसे उत्पन्न कर, उसके पालन और संहारद्वारा क्रीड़ा किया करता हूँ। मेरी और तुम्हारी आत्मा एक है, फिर वियोग कैसा? ध्यानमें तो तुम मुझे सदा देखती ही हो। मैं भी तुम्हें देखता हूँ। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि मैं इस समय तुम्हारे प्रत्यक्ष नहीं हूँ। पर यह भी ठीक है कि तुम्हारी मनोवृत्ति सर्वदा इसी-प्रकार मुझमें लगी रहे। तुम घबराओ नहीं। मनसे मेरा ध्यान करती रहो। तुम शीघ्र ही मुझे प्राप्त हो जाओगी। हे राजन्! भगवान्‌का ऐसा महत्त्व पूर्ण संक्षिप्त सन्देश सुनकर गोपियोंका वियोगजन्य ताप कुछ क्षणोंतक शान्त

हुआ किन्तु भगवान्‌की विविध लीलाओंका स्मरण कर वे पुनः विह्वल हो उठीं। उद्धव उनका विलक्षण प्रेम देखकर कृतार्थ हो गये। उनका ज्ञान गोपियोंकी भक्तिसरिताके प्रवाहमें वह चला। वे उन्हें प्रणाम कर भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

हे मेरे इष्टदेव! आप कृपा कर वृन्दावनके गुल्म, लता, ओषधियोंमें मुझे भी कुछ बना दें जिससे इन गोपियोंकी चरणरज मुझपर भी पड़ जाय और मैं कृतार्थ हो जाऊं। विशेष क्या कहूं, जिन आपको श्रुतियाँ आजतक ढूंढ़ ही रही हैं और प्राप्त न कर सकीं, उन्हीं साक्षात् बन्धनमुक्त आपको इन गोपियोंने अपने प्रेमपाशमें बाँध रखा है। धन्य है इन गोपियोंका अद्‌भुत प्रेम। इन्होंने साक्षात् अविनाशी भगवान्‌को परमपति बनाकर व्यभिचारको ही दूषित कर दिया। इनके व्यभिचारकी कल्पना ही क्या? यह तो परम साध्वी हैं। मैं बारम्बार इनकी चरण-रजको प्रणाम करता हूं, जिन्होंने प्रेमका दान देकर संसारको पवित्र कर दिया। अन्तमें उद्धवने श्रीराधाजी एवं अन्य समस्त गोपियोंको प्रणाम कर कहा—आप घबरायें नहीं, मैं शीघ्र ही भगवान्‌को साथ लेकर यहाँ आता हूं। यह कहकर उद्धव रथपर चढ़ मथुरा लौट आये और उन्होंने एकान्तमें अक्षयवटके नीचे बैठे हुए भगवान्‌को प्रणाम कर अश्रुपात करते हुए गोपियोंका सारा समाचार कह सुनाया एवं भगवान्‌को लानेके लिये गोपियोंके समक्ष जो प्रतिज्ञा की थी उसे भी सुना दिया। अन्तमें भगवान्‌से प्रार्थना की—भगवन्! जैसे आपने सर्वदा भक्तोंकी प्रतिज्ञा निभाई है उसी प्रकार मेरी भी यह प्रतिज्ञा पूर्ण करें। यह सुनकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और बलदेवको यहाँका कार्यभार सौंपकर स्वयं रथपर सवार हो नन्दगोकुल चल दिये। वहाँ सबको अनुपम आनन्द देकर सन्तुष्ट किया। इस प्रकार श्रीदामाके शापसे श्रीराधाजीको सौ वर्षका भगवान्‌से वियोग था फिर भी भगवान् उनके सान्त्वनार्थं प्रतिमास उन्हें आकर दर्शन देते थे एवं अपनी मधुमयी दिव्य लीलाओंका रसास्वादन कराकर सबको तृप्त किया करते थे।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त

—:※:—

अड़तालीसवाँ अध्याय

भगवान्‌का अपनी पत्नी कुब्जासे विहार एवं अक्रूरको हस्तिनापुर जानेका आदेश

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।
सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन् गृहं ययौ ॥ १ ॥

बयालीसवें अध्यायमें यह कह चुके हैं कि कुब्जा भगवान्‌की नित्यसिद्ध पत्नी पृथ्वी थी। उसने भी भगवान्‌की लीलाओंमें यथा समय उचित सहयोग दिया था। वह जन्मान्तरीय वासनानुसार अत्यन्त कामासक्त हो गयी थी। यह जान भगवान् श्रीकृष्ण उसका मनोरथ पूर्ण करने उसके घर पधारे थे। साथमें उद्धवजी भी गये थे। कुब्जाका आवास कामशास्त्रोक्त विलासकी सम्पूर्ण दिव्य सामग्रियोंसे परिपूर्ण था। उसमें मोतियोंकी झालरें, पताकाएँ और चाँदनी लगी थीं। कमरोंमें शीशेदार दिव्य पलंग तथा चौकियों पर मखमलके सुन्दर गलीचे बिछे थे। रतिभवनमें कामोद्दीपक रंग-बिरंगे सुन्दर चित्र अंकित थे तथा नानाप्रकारके सुगन्धित पुष्पों, धूप-दीपों एवं इत्रोंकी सुगन्ध चारों ओर गमक रही थी। भगवान्‌को आते देखते ही कुब्जा तुरन्त आसनसे उठ खड़ी हुई और सहेलियों सहित आगे बढ़कर अपने प्रियतमको साथ लिवा लाई। भगवान्‌को एक सुन्दर आसन पर बैठाकर उसने अर्घ्य-पाद्यसे विधिवत् उनका पूजन किया। उद्धवजीका भी उसने आसन-प्रदान द्वारा उचित पूजन सत्कार किया। किन्तु, वे मर्यादारक्षणार्थं आसन का केवल हाथ से स्पर्शकर पृथ्वीपर ही बैठ गये। दोनोंकी आपसमें ज्ञानचर्चा हो रही थी। धीरे-धीरे रात्रि हो गयी। दोनों भोजन कर एक कमरेमें जाकर सो गये। भगवान् लोकाचारकी रक्षा करते हुए रात्रिमें एकरूपसे कुब्जाके रति-भवनमें रत्नजटित अमूल्य नूतन पर्यंकपर जा विराजे।

कृष्णोऽपि नूत्नं[1] शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥४॥

उद्धवजीने रात्रिभर भगवान्‌को वहीं अपने समीप शयन करते देखा। उक्त घटना कोई भी जान न सका। कुब्जा दिव्य शृङ्गारकर भगवान्‌की

---

१. तूर्णमित्यपि पाठः

प्रतीक्षामें बैठी थी। वह अभिनव संगमसे भगवान्के समीप जानेमें कुछ लजा सी रही थी। भगवान्के कर स्पर्शसे उसकी सुन्दरता और सुकुमारता इतनी निखर गयी थी कि स्वयं लक्ष्मी भी उसे देखकर स्तब्धसी रह गयीं। भगवान्ने उसे अपने समीप बुलाया और धीरेसे उसका कोमल करकमल पकड़ कर शय्यापर लिटा लिया और उसके साथ विहार करने लगे। कुब्जाके लिये यह रात्रि देवरात्रि हो गयी थी। उसने अपने पतिदेव भगवान्के साथ यथेच्छ विहार किया। वह भगवान्के सुकोमल चरणोंसे अपने अंगोंका ताप मिटाने लगी। उसने आनन्दमूर्ति भगवान्का हृदयसे गाढ़ आलिंगन कर चिरकालकी कामपीडा शान्त की। जाते समय उसने भगवान्से प्रार्थना की प्रियतम! आप कुछ दिन मेरे साथ और विहार करें। भगवान्ने तथास्तु कह कर उसे कामका यथेच्छ वरदान दिया और पुनः उद्धवके साथ अपने स्थान पर लौट आये।

कुब्जाके प्रसंगमें माथुरहरिवंशकी भी एक कथा है जिससे किसी प्रकारके आक्षेपका अवसर नहीं रहता।

कुब्जाका पूर्वजन्म

कुब्जा पूर्वजन्ममें एक राजाकी कन्या थी। नारद द्वारा भगवान्का गुणानुवाद सुनकर उसका उनमें अनुराग हो गया था। एक दिन राजाने नारदजीसे अपनी कन्याके लिये योग्य वर पूछा। नारदने कहा—राजन्! इसमें कन्याकी भी राय लेलें तो विशेष अच्छा होगा कि वह कैसा वर चाहती है। कन्यासे पूछने पर उसने कहा—भगवन्! आप सर्वोत्तम समझकर नित्य जिनका गान किया करते हैं मैं उन्हींको अपना पति बनाना चाहती हूँ। नारदने कहा—देवि! यह तो असम्भवसा जान पड़ता है। कन्याने कहा--असंभव क्या? मैं उनके लिये तपस्या करूँगी। व्रत करूँगी, करोंड़ों जन्मोंमें कभी तो उनकी कृपा होगी। कन्याका ऐसा गाढ़ अनुराग देखकर नारदजीने उसे भगवान्की प्राप्तिका सुगम साधन बताया। तदनुसार उसने चिरकाल तक कठोर तपस्या की तव एक दिन अचानक आकाशवाणी हुई। उसने कहा—देवि! तुम घबराओ नहीं। दूसरे जन्ममें तुम कुब्जा बनोगी तब जिसके स्पर्शसे तुम्हें दिव्य-सौन्दर्यकी प्राप्ति होगी, वही तुम्हारा पति होगा। वही कन्या कंसके प्रधान मंत्री वैश्यके घर उत्पन्न हुई। कंसने आग्रह पूर्वक इस कन्याको चन्दन आदि घिसनेके कार्योंमें नियुक्त किया था। इसने पति-भावनासे भगवान्को प्राप्त करनेके लिये

कठोर तपस्या कर अपना जन्म बिताया और भगवान्‌ने भी तदनुसार उसे पत्नी बनाकर उसका मनोरथ पूर्ण किया। 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' इसका यह आख्यान विशद परिचायक है। इसमें आक्षेपका अवसर कैसा? गर्गसंहिताके अनुसार यह कुब्जा पूर्वजन्ममें शूपर्णखा थी। पञ्चवटीमें भगवान् श्रीरामके अनुपम सौन्दर्यपर मोहित हो उन्हें अपना पति बनाना चाहती थी। एकपत्नीव्रत भगवान् राम जब इसका मनोरथ पूर्ण न कर सके तब वह क्रोधसे सीताको खाने दौड़ी। लक्ष्मणने तुरन्त खड्गसे उसके नाक-कान काट डाले जिसके कारण राम-रावणका भीषण संग्राम हुआ। अन्तमें वह राक्षसी दुःखित हो पुष्करतीर्थमें चली गयी। वहाँ दस हजार वर्षों तक जलमें खड़ी रहकर शिवका ध्यान करती कठोर तपस्या करने लगी। शिवने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया। देवि! घबराओ नहीं। द्वापरमें तुम भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नी बनोगी तभी वह तेरा मनोरथ पूर्ण करेंगे।

सैव शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी।
अभूच्छ्रीमथुरायां तु कुब्जा नाम महामते।
महादेववरेणापि श्रीकृष्णस्य प्रियाऽभवत्॥

(गर्ग० सं० म० खं० ११।१०.११)

लोमश रामायण तथा सत्योपाख्यानके अनुसार कैकेयीकी दासी मन्थरा कुब्जा हुई। अध्याय ७ से १५ तक। महाभारत वनपर्व अध्याय २७६।९।१० के अनुसार दुन्दुभी गन्धर्वी कुब्जा हुई। आनन्दरामायण, विलास खण्ड ८, ४५–१०० के अनुसार वह पिङ्गला नामकी वेश्या कुब्जा हुई। इन कथाओंका अवलोकन करें।

कल्पभेदसे इन सभी प्रसंगोंका सामञ्जस्य बैठ जाता है। कुब्जाके साथ भगवान्‌के विहारका यही मौलिक तात्पर्य है। इन रहस्योंको समझे बिना भगवान् पर अनर्गल आक्षेप करना अक्षम्य अपराध है। ऐसे प्राणी कालान्तरमें दण्डार्थं होंगे।

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम उद्धवके साथ कुछ कार्य करानेकी इच्छासे तथा अक्रूरके सन्तोषार्थ उनके घर पर गये। अक्रूरजी उन्हें दूरसे देखते ही उठ खड़े हुए। परस्पर आलिङ्गन, प्रणाम आदिके अनन्तर अक्रूरजीने उन्हें आसन पर बैठाकर विधिपूर्वक अर्घ्यपाद्यसे पूजन किया और उनका चरणोदक लेकर सिर पर धारण किया। बादमें भगवान्

के चरणोंको गोदमें रख उनकी सेवा करते हुए अक्रूरजीने ग्यारह श्लोकोंसे भगवान्‌की स्तुति की। उन्होंने कहा—भगवन्! जगत्‌के कारणभूत प्रकृति पुरुष आप ही हैं। आपसे अतिरिक्त कार्य-कारण सत्-असत् कोई भी वस्तु नहीं है। जगत्‌की रचना कर आपही उसमें चित्-रूपसे प्रविष्ट हो नाना-रूपसे भासित होते हैं। आप गुणोंके द्वारा सृष्टि पालन संहार करते हुए भी उन गुण कर्मों से आपका बन्धन नहीं होता, कारण आप ज्ञानस्वरूप है। वहाँ बंधनकी हेतुभूत अविद्या टिक नहीं पाती अतः उलूखलमें आपका बन्धन और उससे मोक्ष ये दोनों लीलामात्र हैं वास्तविक नहीं। हे नाथ!

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदा यदा वेदपथः पुराणः।
बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भिस्तदा भवान् सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥२३॥

जब प्राणीमात्रके कल्याणार्थं आपके द्वारा उपदिष्ट वेदबोधित सनातनधर्म पाखण्डियों द्वारा नष्ट किया जाता है तब आप सत्त्वमूर्ति धारण कर उसकी रक्षा करते हैं। आज मेरा घर एवं कुल दोनों पवित्र हो गये, जो आपके श्रीचरण यहाँ पधारे। अब आप कृपाकर देह तथा स्त्री-पुत्रादिमें अपनी अहन्ता-ममतारूपी माया निवृत्त कर मुझे अपनी शरणमें ले लें। हे राजन्! अक्रूरजीकी इस स्तुतिसे भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और मुस्कराते हुए बोले—तात! आप हमारे चाचा हैं, हितोपदेष्टा हैं, हम तो आपके पोष्य बालक हैं। आप सरीखे सत्पुरुष अपने दर्शनमात्रसे जगत्‌को पवित्र करते हैं। फिर भी आप जो चाहते हैं तदनुसार आपका मनोरथ पूर्ण होगा। अच्छा, अब आप हमारा भी एक कार्य करें। कृपा कर हस्तिनापुर चले जायँ। सुना है, पाण्डुके मर जाने पर, राजा धृतराष्ट्रने कुन्ती सहित पाण्डवोंको अपने यहाँ बुला लिया है। वे उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं कर रहे हैं। आप इसका ठीक-ठीक पता लगाकर हमें बतायें। हम इसकी उचित व्यवस्था करेंगे जिससे उन्हें सुख-शान्ति मिल सके। इस प्रकार अक्रूरको आदेश देकर भगवान् बलराम और उद्धवके सहित अपने स्थान पर लौट आये।

सङ्कर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३६ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त

—:❀:—

उनचासवाँ अध्याय

अक्रूरका हस्तिनापुर गमन और वहाँसे लौटकर धृतराष्ट्रके पक्षपातपूर्ण दुर्व्यवहारका वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् ।
ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥

अक्रूरजी भगवान्‌की आज्ञासे हस्तिनापुर गये। वह नगर पूरुवंशीय राजाओंके यशके प्रतीकभूत देवतायतन तथा नानाप्रकारके दिव्यभवनोंसे सुशोभित था। वहाँ जाकर अक्रूरजी धृतराष्ट्र, विदुर, वाह्लीकपुत्र सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाण्डव, आदि सभी बन्धुओं एवं कुन्तीसे प्रेमपूर्वक मिले। सबने आपसमें कुशल-वार्ता पूछी। अक्रूरजी धृतराष्ट्रका व्यवहार जाननेकी इच्छासे कुछ दिनों तक वहीं रुक गये। उन्होंने देखा कि धृतराष्ट्र अपने राजसम्बन्धी तथा व्यवहारसम्बन्धी सभी कार्य दुष्ट दुर्योधन और कर्ण आदिके परामर्शके बिना नहीं करते हैं। कुन्ती और विदुरने दुर्योधनके द्वारा किये गये विष-मोदकदान लाक्षा-गृहदाह आदि सारे कुकृत्योंका विस्तार पूर्वक वर्णन किया। कुन्ती अपने भाई अक्रूरसे सब बन्धुओंका कुशलक्षेम पूछकर अपने जन्मस्थानका स्मरण करती नेत्रोंमें आँसू भर कहने लगी—भैया ! क्या कमलनयन भगवान् कृष्ण तथा बलराम मुझ दीन बुआको भूल गये ? क्या वे कभी मेरे अनाथ पुत्रोंका भी स्मरण करते हैं ? घातकोंके मध्यमें हरिणीकी तरह शत्रुओंके बीचमें पुत्रों सहित इस प्रकार दुःख भोगती मुझ दीन-दुःखियाका क्या वे उद्धार नहीं करेंगे। उनके बिना तो मेरा कोई भी सहायक नहीं। हे भगवन् ! मैं आपकी शरणमें हूँ, आपको बारम्बार मेरा नमस्कार है। आप मेरी रक्षा करें। हे राजन् ! इस प्रकार आपकी परदादी कुन्ती भगवान् श्रीकृष्णका आर्तभावसे स्मरण कर विकल हो फूट-फूटकर रोने लगी।

प्रारुदद् दुःखिता राजन् भवतां प्रपितामही ॥ १४ ॥

अक्रूरजी कुन्तीके दुःखसे दुःखित हो समझाकर कहने लगे—बहन ! तुम्हारे पुत्र धर्म आदि देवताओंके अंशसे उत्पन्न हैं। उन्हें कोई मार नहीं

सकता। तुम व्यर्थ की चिन्ता न करो। भगवान् शीघ्र ही तुम्हारा दुःख दूर करेंगे। इस प्रकार कुन्तीको सान्त्वना देकर अक्रूरजी मथुरा जाते समय फिर धृतराष्ट्रके समीप गये और उनसे बोले—राजन्! पाण्डुके मर जानेपर राज्यके अधिकारी पुत्रोंके रहते हुए भी उनके बालत्वके कारण आपको राजगद्दीपर बैठाया गया था इसे आप भी जानते हैं। अतः आप धर्मसे प्रजाका पालन करें। पाण्डव और अपने पुत्रोंमें समदृष्टि रखें। ऐसा करनेसे संसारमें आपको श्रेय मिलेगा और आपकी कीर्ति होगी अन्यथा जीवित दशा में ही आपको नरक-यातना तुल्य भीषण दुःख भोगना पड़ेगा।

नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिचित् केनचित् सह।
राजन् स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः॥ २०॥

राजन्! संसारमें कभी भी कोई भी किसीके साथ नित्य नहीं रह सकता। जिस शरीरको खिला-पिलाकर विविध पदार्थोंसे पोषण किया जाता है जब वही धोखा देकर चला जाता है तब स्त्री-पुत्र और परिवारकी बात ही क्या? राजन् ध्यान रक्खें—

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

धन पृथ्वीमें गढ़ा रह जायगा। पशु गोष्ठमें पड़े रहेंगे। स्त्री दरवाजे तक साथ देगी। पारिवारिकजन श्मशान तक जायेंगे। देह चितामें जलता रहेगा। परलोकके मार्गमें आगे चलकर जीवका साथ देनेवाला यदि कोई है तो केवल एक धर्म ही है अन्य नहीं।

इसलिये इस क्षणिक जीवनके लिये पाप कर्म करना उचित नहीं। पापका फल मनुष्यको अकेले ही भोगना पड़ता है। इसमें कोई दूसरा साथ नहीं देता। अतः मनको स्थिर कर सबमें समान दृष्टि रखकर राज्यका पालन करो। किसीके साथ अन्याय मत करो। इसीमें तुम्हारा हित है। धृतराष्ट्रने कहा—अक्रूरजी! आपने बड़ी ही अमृतमयी वाणी सुनायी। इसे सुनते मेरी आत्मा तृप्त नहीं होती। क्या करूँ, मेरी दृष्टि पुत्रके अनुरागसे इतनी विषम हो गयी है, कि उसमें समता आ नहीं सकती। अतएव समत्वरूप आपका अमूल्य उपदेश मेरे हृदयमें टिक नहीं पाता। मुझे अन्याय ही न्याय और विषमता ही समता मालूम पड़ती है। क्या करूँ? यह ईश्वरीय विधान है। इसे कोई टाल नहीं सकता। आप जानते हैं यदुकुलमें

भगवान्‌का अवतार पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही हुआ है और पृथ्वी इस समय भार से अत्यधिक पीड़ित है। मेरेमें समता आनेपर यह भार कैसे उतरेगा। यह महाभारतकी भूमिका बन रही है। उसे मैं या आप कोई भी अन्यथा नहीं कर सकते। जो संसारचक्रका संचालन करता है। जिनकी लीला दुर्ज्ञेय है मैं तो उन्हींको नमस्कार करता हूँ। सब उन्हींकी इच्छासे हो रहा है। इसमें मेरा कुछ भी कर्तृत्व नहीं है। शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! धृतराष्ट्रके इन शब्दोंसे अक्रूरजीने राजाके हृदयका सारा अभिप्राय जान लिया और बन्धुओंकी आज्ञा लेकर वह पुनः मथुरा लौट आये।

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम्।
पाण्डवान् प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम्॥ ३१॥

अनन्तर वहाँ आकर अक्रूरने धृतराष्ट्रका पाण्डवोंके प्रति जो भी दुर्व्यवहार हुआ था वह सब बलराम और श्रीकृष्णको क्रमशः सुना दिया जिसके लिये उन्हें हस्तिनापुर भेजा गया था।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका उनचासवाँ अध्याय समाप्त।

दशम स्कन्ध—पूर्वार्द्ध समाप्त



दशम स्कन्धका उत्तरार्द्ध प्रारम्भ

पचासवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका जरासन्धसे भीषण युद्ध और किलेके रूपमें द्वारका-पुरीका निर्माण

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ।
मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥

अस्ति और प्राप्ति नामक कंसकी दो पटरानियाँ थीं । वे स्वामी कंसके निधन होनेपर दुःखित हो अपने पिता जरासन्धके राजभवनमें चली गयीं । वहाँ जाकर उन्होंने अपने वैधव्यका सारा कारण बताया । उस अप्रिय समाचारको सुनकर जरासन्ध शोक एवं क्रोधसे आग-बबूला हो उठा । उसने तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ चारों ओरसे मथुरापुरीको घेर लिया । वह पृथ्वीको यादवशून्य करनेका उद्योग कर रहा था । भगवान्‌ने देश और कालके अनुरूप अपने अवतारका प्रयोजन सोचकर यह निश्चय किया कि जरासन्धका वध करना तो अभी उचित न होगा । कारण, इसके जीवित रहते यह सेना जुटानेका काम आगे और भी बड़ी तत्परतासे करेगा । ऐसा होनेपर दुष्ट सेनाके संहारसे पृथ्वी का भार हल्का होगा और धर्मकी रक्षा होगी । भगवान् ऐसा विचार कर ही रहे थे कि आकाशसे सूर्यके समान चमचमाते दो रथ उतरे जो सारथि एवं अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थे । भगवान्‌ने अपने भाई बलरामसे कहा—आर्य ! यादवोंके समक्ष महान् संकट उपस्थित है । यह आपका रथ है, ये आयुध हैं, आप इस रथपर चढ़कर शत्रुओंका संहार करें । यह कहकर भगवान् अग्रज सहित कवच धारण कर पृथक्-पृथक् रथपर चढ़ कुछ थोड़ीसी सेना साथ ले युद्धके लिये निकल पड़े । उन्होंने युद्धस्थलमें पहुँचते ही भीषण शंखध्वनि की जिससे शत्रुओंका हृदय काँप उठा । जरासन्धने आगे बढ़कर बड़ी विशाल सेनासे उन दोनों भाइयोंको घेर लिया और अस्त्र-शस्त्रोंकी भीषण वृष्टिसे उन्हें ढक

दिया। भगवान्‌ने शत्रुसेना द्वारा प्रक्षिप्त तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे अपनी सेनाको पीड़ित देख शार्ङ्ग-धनुष चढ़ाया और उससे भयंकर तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगे। जिनसे शत्रुओंके हाथी, रथ, घोड़े और पैदल सेना कट-कटकर पृथ्वीपर गिरने लगी। युद्धभूमिमें उनके रक्तसे एक विशाल नदी बह चली। उनमें कटी भुजाएँ सर्पके समान, खोपड़ियाँ कछुओंके समान, हाथी द्वीपोंके समान एवं घोड़ोंके रुण्ड-मुण्ड घड़ियालोंके समान दीख पड़ते थे।

त्थयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम्॥ २९॥

इस प्रकार दोनों भाइयोंने खेल-खेलमें ही सम्पूर्ण सेनाका संहार कर डाला। जरासन्धका रथ टूट गया। बलरामने आगे बढ़ कर उसे पकड़ा और पाशमें बाँध लिया, किन्तु भगवान्‌ने और भी सेनाके संहारकी इच्छासे उसे छुड़ा दिया। वह लज्जित हो वहाँसे लौट पड़ा। मार्गमें उसने तपस्या करनेका संकल्प किया, किन्तु मानी राजाओंने नीतिवाक्यों द्वारा समझा-बुझाकर उसे रोक दिया। वह दुःखित मनसे अपनी राजधानी मगधमें चला गया। अनन्तर वह पुनः युद्ध करनेके लिये सेना जुटानेमें लग गया। भगवान् भी जरासन्धको जीतकर मथुरा लौटे किन्तु जरासन्धके युद्धका अभी अन्त तो हुआ न था। उसने तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना सहित १७ बार मथुरा पर चढ़ाई की किन्तु भगवान् उसे प्रतिबार परास्त करते गये। अठारहवें संग्राम में युद्धके लिये नारदजीके संकेत पर कालयवन आ पहुँचा। उसने तीन करोड़ म्लेच्छ सेनाके साथ मथुरा पुरीको घेर लिया। भगवान्‌ने बलरामकी सलाहसे विश्वकर्मा द्वारा समुद्रके अन्दर किलाके रूपमें द्वारकापुरीका निर्माण कराया जो समुद्रके अन्दर १२ और बाहर १८ योजनकी थी विश्वकर्माने इसमें अपनी अद्भुत कारीगरीका प्रदर्शन किया था। उसमें गली, चौराहे, वन, उपवन, आराम आदि बड़े सुन्दर बने थे। भवनोंमें नानाप्रकारकी दिव्य-मणियाँ चमचमा रहीं थीं। भगवान् योगमाया द्वारा सोते हुए मथुरा-वासियोंको वहीं ले गये। केवल युद्ध करनेवाली थोड़ी-सी सेना मथुराके तत्तत् मोर्चो पर लगा दी। भगवान्‌ने उसकी रक्षामें अपने भाई बलरामजी-को नियुक्त किया और उनसे कुछ गुप्त परामर्श[1] कर कालयवनसे लड़नेके लिये स्वयं निःशस्त्र ही नगरसे बाहर निकले।

निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुधः॥ ५८॥

---

१. कालयवन यादवोंसे अवध्य है अतः मैं यहाँसे पलायन कर गुफामें मुचुकुन्दके द्वारा इसका वध कराऊँगा।

[कालयवनकी उत्पत्ति]

विष्णुपुराण पञ्चम अंशके तेईसवें अध्यायमें कहा है एक समय यादवोंकी सभामें महर्षि गार्ग्यको उनके सालेने नपुंसक कह दिया। यह सुनकर समस्त यदुवंशी बड़े जोरोंसे हँस पड़े। महर्षि गार्ग्य इसपर क्रुद्ध हो दक्षिण समुद्र के तटपर चले गए। वहाँ उन्होंने यादवोंको भय देने वाले पुत्रकी कामनासे तपस्या करना आरम्भ की। बारहवें वर्षमें भगवान् शिवने प्रसन्न हो उन्हें अभीष्ट वर प्रदान किया। उस समयकी घटना है, एक यवन राजा था। उसके कोई पुत्र न था। उसने पुत्रकी कामनासे महर्षि गार्ग्यको सेवासे सन्तुष्ट किया। महर्षिने योगद्वारा विकराल यवनका काला रूप धारणकर उसकी स्त्रीसे सहवास किया। उससे जो पुत्र पैदा हुआ वही कालयवन कहलाया। वह अपनेसे बढ़कर किसीको वीर नहीं मानता था। एक दिन दैवयोगसे उसकी भेंट नारदजीसे हो गयी। उसने युद्धके लिये उनसे बलवान् राजाओंके नाम पूँछे। नारदजीने यदुवंशियोंकी ओर ही संकेत कर दिया जिसपर वह प्रसन्न हो उनसे ही लड़ने जा धमका।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका पचासवाँ अध्याय समाप्त।



इक्यावनवाँ अध्याय

मुचुकुन्द द्वारा कालयवनका वध और भगवान्की स्तुति

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उदय होते हुए चन्द्रमाके समान देदीप्यमान पीताम्बरधारी निःशस्त्र भगवान्को नगरसे निकलते देख कालयवनने नारदप्रोक्त लक्षणोंसे निश्चित किया कि यही वासुदेव हैं। यह निःशस्त्र तथा पैदल है अतः मैं भी निःशस्त्र हो पैदल ही इनसे युद्ध करूँगा। ऐसा विचार कर वह भगवान्‌की ओर दौड़ा किन्तु भगवान् भी उसे आता देख भाग खड़े हुए। वह भी उनके पीछे पकड़नेकी इच्छा से दौड़ने लगा किन्तु पकड़ न सका। भगवान् पद-पद पर हस्तप्राप्त की तरह अपनेको दिखाते हुए कालयवनको दूर पर्वतकी कन्दरामें ले गये और वहाँ जाकर अदृश्य हो गये। कालयवन वहाँ एक सोते हुए पुरुषको देखकर कहने लगा

अरे इतनी दूर मुझे लाकर यह कैसा निश्चिन्त सो रहा है। इस प्रकार उसने उसे ही कृष्ण समझ कर उसके एक लात मारी। वह सोता हुआ पुरुष घबड़ाकर उठ बैठा। उसने चारों ओर दृष्टि डाली तो समीपमें स्थित कालयवन को देखा। उसपर उस पुरुषकी क्रोधभरी दृष्टि पड़ते ही उसके शरीरमें आग लग गयी और वह तुरन्त पृथ्वीपर गिरकर भस्मकी ढेरी हो गया।

देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत् क्षणात्। १२।

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! कालयवनको भस्म करनेवाला वह कौन था और किसका पुत्र था! गुफामें जाकर क्यों सोया था? शुकदेवजीने कहा—राजन्! वह इक्ष्वाकु-वंशमें उत्पन्न राजा मान्धाताका पुत्र था मुचुकुन्द उसका नाम था। देवताओंकी प्रार्थनापर उसने चिरकालतक असुरोंसे देवताओंकी रक्षा की थी। देवताओंने प्रसन्न हो उसके माँगने पर उसे इच्छानुसार निद्राका वरदान दिया और साथ ही यह भी कहा कि जो मूर्ख बीचमें तुम्हें जगायेगा वह तुरन्त तुम्हारी दृष्टिसे भस्म हो जायगा। उसकी शयन-गुफा मथुरा-मण्डलकी दक्षिण-सीमापर धवलपुरमें थी। वह उसीमें जाकर सो रहा था। कालयवनके भस्म हो जाने पर भगवान्ने मुचुकुन्दको दर्शन दिया। भगवान्की तेजोमयी झाँकीसे मुचुकुन्द अभिभूत हो चकित रह गया। उसने प्रणाम कर अपना परिचय देते हुए भगवान्का परिचय पूछा। भगवान्ने कहा—हे राजन्! मेरे जन्म-कर्म और नाम अनन्त हैं उनका अन्त नहीं। मनुष्य किसी तरह पृथ्वीके रजःकणोंको गिन सकता है किन्तु गुणकर्मानुसार मेरे नामोंकी गणना नहीं कर सकता, फिर भी आधुनिक मेरे जो जन्म-कर्म है उन्हें सुनो। ब्रह्माकी प्रार्थना पर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मैं यदुकुलमें अवतीर्ण हुआ हूँ। वासुदेव कृष्ण आदि मेरे नाम हैं। कंस आदि बड़े-बड़े दैत्यों को मैंने मारा है। इस कालयवनको भी तुमको निमित्त बनाकर मैंने ही मारा है। इस प्रकार अपना परिचय देते हुए भगवान्ने मुचुकुन्दसे कहा - राजन्! पूर्वजन्ममें तुमने मेरी बड़ी आराधना की थी। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे अनुग्रहार्थ ही मैं यहाँ गुफा में आया हूँ। तुम जो इच्छा हो, मुझसे वर माँग लो। भगवान्के इस प्रकार कहने पर मुचुकुन्दने कृष्णको प्रणाम किया और गर्गके वाक्यका स्मरण कर उनको नारायण जान उनकी स्तुति करते हुए कहा—हे भगवन्!

विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित्पुरुषश्च वञ्चितः॥ ४६॥

आपकी मायासे मोहित हो स्त्री-पुरुष दोनों ही सुखकी इच्छासे दुःखोंकी जन्मभूमि (खान) इस गृहस्थाश्रममें ही आसक्त रहते हैं आपकी ओर उनकी दृष्टि नहीं होती । दुःख है सर्वाङ्ग परिपूर्ण दुर्लभ नरशरीर पाकर भी ये आपके चरण-कमलोंका भजन न कर पशुके समान गृहरूपी अन्धकूपमें ही पड़े रहते हैं । हे नाथ ! मेरा भी सारा समय और सारा जीवन स्त्री-पुत्रादिकी चिन्तामें ही नष्ट हो गया । कच्चे घड़े और भित्तिके समान क्षणिक नश्वर इस शरीरमें राजत्वका अभिमान कर मैंने कालरूप आपको भी कुछ नहीं समझा । मैं बड़ा ही उन्मत्त हो गया था । नाना प्रकारकी गृहसम्बन्धी चिन्ताओंमें ग्रस्त विषयासक्त इस जीवको आप सहसा कालरूपसे उसी प्रकार पकड़ते हैं जैसे सर्प भूखसे जीभ लपलपाता हुआ चूहेको पकड़ता है ।

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन् मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ।
स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥ ५० ॥

पहले यह शरीर सुवर्णमण्डित रथ और हाथी पर चढ़कर नरदेव संज्ञाको प्राप्त हुआ था वही शरीर दुरतिक्रम-काल चक्रके द्वारा विष्ठा कृमि और भस्मसंज्ञाको प्राप्त हो जाता है । सृगालादिके खानेपर विष्ठा संज्ञा उसके न खानेपर पड़े रहनेसे कृमि संज्ञा और दग्ध होनेपर भस्म संज्ञा ।

विषयी मनुष्य संसारमें स्त्रियोंका मर्कट बना उनके इशारे पर नाचता फिरता है । उन्हींके निमित नानाप्रकारके सकाम कर्मोंमें उलझ कर उसकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहती है । कभी ऊपरी मनसे भोगोंका परित्यागकर तपस्यामें प्रवृत्त होता है किन्तु भोगकी इच्छासे दान-पुण्य किया करता है । उसकी अन्तर्वासना नष्ट नहीं होती बनी ही रहती है कि मैं दूसरे जन्ममें फिर चक्रवर्ती राजा बनूं । इस प्रकार उसे कभी भी सुख-शान्तिका अनुभव नहीं होता, अतः हे भगवन् ! मुझे बन्धनके हेतुभूत वरोंकी इच्छा नहीं । मैं आपकी शरणमें हूँ । आप मेरी रक्षा करें । इस प्रकार मुचुकुन्दने तेरह श्लोकोंसे भगवान् की स्तुति की । भगवान् ने कहा—महाराज ! तुम्हारी बुद्धि बड़ी निर्मल एवं ज्ञानसम्पन्न है जो वरोंसे प्रलोभित करनेपर भी विषयोंसे आकृष्ट नहीं हुई । अब तुम स्वेच्छासे पृथ्वीमें विचरो । तुम्हें हमारी निश्चलभक्ति प्राप्त होगी जिससे दूसरे जन्ममें तुम ब्राह्मण होकर मुझे प्राप्त कर सकोगे ।

भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६३ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशमस्कन्धका इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त

बावनवाँ अध्याय

भगवान्का लीलार्थ युद्धसे पलायन एवं रुक्मिणीके सन्देशका अनुमोदन

शुकदेवजी बोले--हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्से अनुगृहीत राजा मुचुकुन्द जब भगवान्की परिक्रमा एवं उन्हें प्रणाम कर गुफासे बाहर निकले तब उन्होंने छोटे-छोटे आकारके मनुष्य पशु, वृक्ष तथा लताओंको देखा। उससे कलिके आगमनका निश्चय कर वे उत्तर दिशाको चले गये। वहाँ बदरिकाश्रम में गन्धमादनपर्वत पर वे भगवान् श्रीकृष्णका ध्यानकर कठोर तप करने लगे। भगवान्ने अपनी पुरीमें लौटकर यवन-सेनाका संहार किया और उसके द्वारा लूटी गयी सम्पत्ति द्वारका भेज दी। इसी समय जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर वहाँ आ पहुँचा।

आजगाम जरासन्धस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥

शत्रुसेनाका यह भीषण आक्रमण देख बलराम और श्रीकृष्ण मानव लीला करते हुए बड़े वेगसे भागे[1] और अत्यन्त ऊँचे प्रवर्षण नामक पर्वत पर जा चढ़े। जरासन्धने भी अट्टहास कर बड़े वेगसे उन दोनोंका पीछा किया किन्तु उन्हें पकड़ न सका। अनन्तर उन्हें पर्वतमें छिपे जानकर उसने पर्वतके चारों ओर लकड़ियोंकी टाल लगवाकर उसमें आग लगवा दी। दोनों भाई ग्यारह योजन ऊँचे उस पर्वतसे कूदकर शत्रुसे अलक्षित हो अपनी द्वारकापुरीमें पुनः आ विराजे। जरासन्ध उन्हें दग्ध समझकर सेना सहित अपनी राजधानी को लौट गया।

---

१. युद्धसे भगवान्के भागनेमें एक अवान्तर कथा है। जरासन्धने एक बार ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे कहा--आप लोग कोई ऐसा उपाय करें जिससे हमारी विजय हो, अथवा कृष्ण युद्ध छोड़कर भाग जायँ। ब्राह्मणोंने कहा राजन् ! विजय तो तुम्हारी सम्भव नहीं, किन्तु यह हो सकता है कि हम तुम्हारे सैनिक बनकर युद्धमें चलें। तब भगवान् हम लोगोंको प्रहार के अयोग्य समझकर युद्धसे अवश्य भाग जायेंगे। जरासन्धने यही किया और भगवान् ब्राह्मणोंके वचनके गौरवार्थ संग्रामसे भाग गये। [संहिता]

हे राजन् ! बलरामजीका विवाह रेवतपुत्र ककुद्मीकी कन्या रेवतीसे हुआ था यह नवम स्कन्धके तीसरे अध्यायमें कह चुके हैं। अब तुम भगवान् श्रीकृष्णके विवाहका ललित प्रसंग सुनो। भगवान्ने शिशुपालपक्षीय शाल्व आदि राजाओंको जीतकर रुक्मिणीके साथ विवाह किया। राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! मैंने सुना है कि भगवान्ने राक्षसविधिके द्वारा रुक्मिणीसे विवाह किया ? आप कृपाकर इस प्रसंगको सुनावें। शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! विदर्भदेशके भीष्मक नामके एक प्रतापी राजा थे। उनके पाँच पुत्र और रुक्मिणी नामकी एक कन्या थी। कन्याने नारदजीसे श्रीकृष्णचन्द्रके गुण, रूप, शील और पराक्रम को सुनकर उन्हें हृदयसे अपना पति बना लिया था। श्यामसुन्दर भी उसके रूप, शील और गुणोंपर मुग्ध हो उसे अपनी पत्नी बनाना चाहते थे। राजा भीष्मकने भी उन्हें अपनी कन्या देनेका दृढ़ विचार किया था, किन्तु उसके ज्येष्ठ पुत्र रुक्मीने इसका विरोध किया। वह अपनी बहनका विवाह शिशुपालके साथ करना चाहता था। इस समाचार से रुक्मिणीको बड़ा खेद हुआ। उसने एक गुप्त पत्र लिखकर विश्वस्त ब्राह्मण द्वारा भगवान् के पास द्वारकामें भेजा। ब्राह्मण द्वारकामें पहुँच कर भगवान् के राजभवनमें गया। द्वारपालके सूचना देने पर भगवान् ने उसे बुलाया। ब्राह्मणको आते देख भगवान् सिंहासनसे उठ खड़े हुए और ब्राह्मणको उस पर बैठाकर अर्घ्य-पाद्यसे विधिवत् पूजन कर उन्हें भोजन कराया। बाद विश्रामके समय पैर दबाते हुए श्रीकृष्णने ब्राह्मणदेवतासे प्रेमपूर्वक आगमनका कारण पूछा। विप्रदेवने रुक्मिणीका मुहरबन्द पत्र भगवान् के करकमलोंमें अर्पित कर दिया।

रुक्मिण्याः स्वयमेकान्ते लिखित्वा दत्तपत्रिकाम् ।
मुद्रामुन्मुच्य कृष्णाय प्रेमचिह्नामदर्शयत् ॥
(श्रीधरी)

भगवान् के आदेशसे विप्रदेवने ही उसे खोलकर पढ़ना आरम्भ किया उसमें सात श्लोक लिखे थे, जिनमें पहला श्लोक यह था—

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥३७॥

हे भुवनसुन्दर ! सन्तापको दूर करनेवाले आपके गुण एवं सुन्दर रूपका वर्णन सुनकर मेरा मन लज्जारहित हो आपमें ही सर्वतोभावेन अनुरक्त हो गया है। मुझे आशा है कि अब मेरे अखिल मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे। आपका नाम मुकुन्द है, वह मुक्ति देने वाला है। इसकी सार्थकता तभी है जब आप इस दुःख-समुद्रसे मुझे मुक्त कर दें ? आप ही बतायें, संसार में कौन ऐसी कुलवती कन्या होगी जो आपके रूपपर मोहित न हो और आपको पति बनाना न चाहे। मैंने तो अपना शरीर, मन, प्राण सब कुछ आपको ही अर्पित कर दिया है। अतः अब आप कृपया यहाँ आकर मुझे अपना लें। हे वीर ! मैं आपकी सनातन भोग्यवस्तु हूँ। सिंहकी बलि जैसे शृगाल नहीं छू सकता वैसे ही शिशुपाल मेरा दूरसे भी स्पर्श न कर सके। मैंने पूर्वजन्ममें जो भी जप-तप, दान, व्रत-नियम और ब्राह्मणोंकी सेवा आदि जो सत्कर्म किये हों उनसे प्रसन्न हो आप मेरा शीघ्र ही पाणिग्रहण करें। हे अजित ! कल प्रातःकाल ही मेरा विवाह होगा। इससे पहले ही आप यहाँ आकर युद्ध द्वारा शिशुपालकी सेना ध्वस्त कर मेरा हरण कर लें। आप यदि यह सोचें कि अन्तःपुरसे मैं तुम्हारा हरण कैसे करूँगा तो मैं इसका उपाय बताती हूँ। विवाहके पूर्व कन्या नियमानुसार गिरिजा-पूजन करने बाहर मन्दिरमें जाया करती हैं आप वहींसे मेरा हरण कर लें। स्मरण रहे, यदि मुझे आपकी कृपा न मिली तो मैं निराहारव्रत द्वारा अपना शरीर सुखाकर प्राण त्याग दूँगी। इस प्रकार जन्म-जन्मान्तरोंमें कभी तो आपका प्रसाद सुलभ हो सकेगा।

यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं।
जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥४३॥

हे मेरे अभिन्न प्रियतम ! एक बात और है इसका विशेष ध्यान रक्खें, इस गुप्त समाचारका किसीको किञ्चिन्मात्र भी आभास न मिले। आपको मेरी शपथ है। मुझे यह समाचार देनेमें बड़ी लज्जा-सी हो रही है। फिर भी इस ऐच्छिक विवाहमें धर्मशास्त्रसे कोई दोष नहीं आता। कारण, यदि पिता या भाई कन्याका सम्बन्ध अयोग्य पति से करना चाहें तो कन्या स्वतन्त्र-रूपसे योग्य पति का वरण कर सकती है उसे दोष नहीं लगता। ऐसा धर्मशास्त्रका वचन है।

अयोग्यं दातुमुद्युक्ते पित्रादौ कन्यका स्वयम्।
योग्यं पतिं प्रवृण्वीत न च सा दोषभागिनीं॥

(वारतान्तवी स्मृति)

विप्रदेवने कहा—भगवन् ! यह रुक्मिणीका गुप्त सन्देश है। इस विषयमें आपका जो भी कर्तव्य हो उसे अविलम्ब करने की कृपा करें। क्योंकि समय थोड़ा है।

क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका बावनवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायणका तेईसवाँ विश्राम]



तिरेपनवाँ अध्याय

श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका हरण

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

वैदर्भ्याः स तु सन्देशं निशम्य यदुनन्दनः।
प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥

रुक्मिणीका यह गुप्त सन्देश सुन भगवान्ने उन विप्रदेवका हाथ अपने हाथसे पकड़कर हँसते हुए कहा— विप्रदेव ! जैसे रुक्मिणीका चित्त मुझमें लगा है वैसे ही मेरा भी चित्त उसमें संलग्न है। मुझे पता लगा है कि रुक्मीने द्वेषवश ही मेरे विवाहका विरोध किया है मुझे इसी चिन्तामें रात्रिभर निद्रा नहीं आयी। मैंने निश्चय कर लिया है कि दुष्ट राजाओंका दमन कर रुक्मिणीका अवश्य हरण करूंगा। हे राजन् ! यह कहकर भगवान्ने शुभ-मुहूर्तके अनुसार परसोंके दिन रात्रिमें विवाहका नक्षत्र है ऐसा ब्राह्मणके द्वारा जानकर सारथिको तुरन्त रथ जोतनेका आदेश दिया। सारथिने तत्काल रथ जोतकर भगवान्के सामने उपस्थित कर दिया। भगवान्ने सायंकाल रुक्मिणी-का सन्देश सुना था। उसी समय ब्राह्मण-देवताके साथ रथ पर आरूढ हो कुण्डिनपुरके लिये प्रस्थान कर दिया। प्रातःकाल वे कुण्डिनपुर पहुँच गये। इधर राजा भीष्मकने पुत्रके आग्रहसे शिशुपालको कन्या देनेके लिये विवाहके पूर्वका कृत्य आरम्भ कर दिया। नगरके राजमार्ग, गली, चौराहे सभी सुन्दर ढंगसे सजाये गये। ध्वजा-पताका, वन्दनवार, वेल-बूटे, रंग-विरंगी झण्डियाँ सर्वत्र लगायी गईं। सड़कोंपर सर्वत्र इत्र और केवड़ेके जलका छिड़काव किया गया। नर-नारी सुन्दर वस्त्र-आभूषण पहने सुसज्जित हो अपने-अपने कार्य में संलग्न थे। सुगन्धित पुष्प एवं अगरबत्तियोंकी सुगन्धसे सम्पूर्ण नगर

सुवासित हो रहा था। नगरकी अभूतपूर्व सुषमा देख सबका मन उसकी ओर खिंच जाता था। राजाने वैदिक ब्राह्मणोंको नाना-प्रकारके फलाहारी मिष्टान्नसे तृप्त कर स्वस्तिवाचनपूर्वक विवाहके माङ्गलिक कार्य आरम्भ किये।

भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥ १० ॥

कर्मकाण्डी ब्राह्मणोंने वस्त्र और आभूषणोंसे सुशोभित रुक्मिणीके हाथोंमें मन्त्र पढ़कर मंगल-सूत्र बाँधा। क्रमसे शास्त्रीयविधिके अनुसार सभी वैवाहिक कार्य सम्पन्न होने लगे। ब्राह्मणोंको सोना, चाँदी, वस्त्र-आभूषण गौ, तिल-मोदक तथा और भी नाना प्रकारकी वस्तुएँ दान की गयीं। चेदिदेशके राजा दमघोष अपने पुत्र शिशुपालको लेकर शूर-वीरोंकी सेनाके साथ कुण्डिनपुर आये। भीष्मकने वर योग्य एक नवीन जनवासेमें उन्हें सेना सहित ठहरा दिया। बलरामजी भी शत्रुपक्षीय राजाओंका विशेष उद्योग सुनकर कलहसे शंकित हो अपने भाईके स्नेहवश स्वयं विशाल चतुरंगिणी सेना लेकर कुण्डिनपुर जा पहुँचे। रुक्मिणी बड़ी उत्सुकतासे भगवान् श्रीकृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। विलम्ब होता देख उनके मनमें नानाप्रकारके संकल्प-विकल्प उठने लगे किन्तु, उसी समय उनके शुभ-सूचक शकुनके रूपमें वाम ऊरु, एवं वाम भुजा और वाम नेत्र सहसा फड़कने लगे।

वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥

थोड़े ही देरमें वह भेजा हुआ ब्राह्मण भी अन्तःपुरकी ओर आता दिखायी पड़ा। रुक्मिणीजी बड़ी त्वरासे उससे मिलनेके लिये आगे बढ़ीं। विप्रदेवने भगवान्का आगमन एवं रुक्मिणी-हरणका निश्चयपूर्ण समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। रुक्मिणी यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई और उन्होंने ब्राह्मणको प्रणामके व्याजसे प्रत्यक्ष कुछ न देते हुए भी परोक्षमें सब कुछ दे डाला और आदरपूर्वक उसे विदा किया। भीष्मकने जब यह समाचार सुना कि कन्याका विवाहोत्सव देखने बलराम और श्रीकृष्ण भी पधारे हैं तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने एक अत्यन्त अभिनव सुन्दर सजे हुए जनवासेमें सेना सहित उनके ठहरानेका उत्तम प्रबन्ध किया और सबका यथायोग्य राजोचित आदर-सत्कार कर सन्तुष्ट किया। भगवान्का अनुपम सौन्दर्य देख सब नगरवासी अपने-अपने इष्टदेवसे यही मनाते थे कि—

किञ्चित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत्।
अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ३८ ॥

यदि हमारा कुछ भी जन्मान्तरीय सुकृत हो तो उससे प्रसन्न हो भगवान् हम पर यही अनुग्रह करें कि रुक्मिणीका पाणिग्रहण करलें। कारण, रुक्मिणीके योग्य वर तो यही हैं, दूसरा नहीं।

इस प्रकार सम्पूर्ण नगरवासी आमोद-प्रमोदके साथ आपसमें प्रेमालाप कर रहे थे। उसी समय कन्या मौनव्रत धारण कर श्रीगिरिजादेवीका पूजन करने पैदल ही अन्तःपुरसे निकली। मार्गमें सैनिकोंका चारों ओरसे सुन्दर प्रबन्ध था। नाना प्रकारके बाजोंके साथ माङ्गलिक-गान होता जा रहा था। वृद्ध ब्राह्मणियोंने रुक्मिणीजी को मन्दिरमें ले जाकर उनसे देवीका विधिपूर्वक पूजन कराया और उन्हें प्रसादकी माला अर्पण की। रुक्मिणीजीने देवी एवं ब्राह्मणियोंको प्रणाम किया। पुनः एक दासीका हाथ पकड़े धीरे-धीरे मन्दिरसे बाहर निकलीं। उनका अपूर्व सौन्दर्य देख जो वीर जहाँ थे वहीं मूच्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े। कन्याने अपनी बिखरी अलकें बायें हाथकी अंगुलियोंसे ऊपर उठाकर लज्जापूर्ण चितवनसे सब समागत राजाओंको निहारा तो उसी समय; सामने आते हुए भगवान् श्रीकृष्णको देखा।

उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान् ददृशेऽच्युतं च।

राजकुमारी भगवान्को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। वह ऊपरी मनसे विलम्ब करतीं अपने रथपर चढ़नेकी चेष्टा कर ही रही थी कि तुरंत भगवान्ने राजाओंके देखते-देखते रुक्मिणीको गोदमें उठाकर अपने रथपर चढ़ा लिया। शृङ्गालोंके मध्यसे सिंहके समान अपना भाग लेकर भगवान् निर्भीकता पूर्वक धीरे-धीरे वहाँसे चल दिये।

सृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः। ५५

बलरामजी आगे-आगे हो गये। जरासन्ध आदि बड़े-बड़े वीर यह अपमान सहन न कर सके। वे आपसमें कहने लगे, अरे हमलोगोंको धिक्कार है, इन साधारणसे गोपोंने हम वीर-मानी योद्धाओंके यश को धूलमें मिला दिया। मात खिला दिया। इस प्रकार वे अपनेको धिक्कारते हुए सब आपसमें मिलकर एक साथ श्रीकृष्णसे युद्ध करनेकी तैयारी करने लगे।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका तिरेपनवाँ अध्याय समाप्त।



चौवनवाँ अध्याय

युद्धमें राजाओंकी पराजय एवं द्वारकामें श्रीकृष्णका रुक्मिणीसे सोल्लास विवाह

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! वे सब राजा क्रोधावेशमें वाहनोंपर चढ़, अपनी-अपनी सेना ले, धनुष चढ़ाकर श्रीकृष्णके पीछे दौड़ पड़े। उन्हें आते देख यादवोंके सेनापति भी धनुषकी टङ्कार करते सामने आ डटे। दोनों ओरसे बाणोंकी भीषण वर्षा होने लगी। रुक्मिणी अपने पतिदेवकी सेनाको बाणोंसे आच्छन्न देख घबरा गयीं और लज्जासे संकुचित हो भगवान्के मुखकी ओर निहारने लगीं। भगवान्ने मुसकराकर कहा—प्रिये ! डरो मत। अभी तुम्हारे वीरों द्वारा शत्रुओंकी सेना क्षणमात्रमें नष्ट कर दी जायगी। वीर यदुवंशी शत्रुओंका पराक्रम सह न सके, उन्होंने तीक्ष्णबाणोंसे विपक्षीय वीरोंके हाथी, घोड़े और रथ काट कर गिरा दिये तथा वाहनोंपर चढ़े बड़े-बड़े योद्धाओंके भी मुकुट, कुण्डल और पगड़ी सहित करोड़ों सिर काट-काटकर पृथ्वीपर बिछा दिये। थोड़ी ही देरमें शत्रुओंकी विशाल सेना नष्ट कर दी गयी और जरासन्ध आदि वीर योद्धा संग्राम छोड़ कर भाग खड़े हुए। उन्होंने कान्तिहीन निरुत्साह नीचे मुख किये बैठें शिशुपालके समीप जाकर कहा—राजन् ! आप मनमें दुःख न करें। संसारमें जय-पराजय सुख-दुःखका होना कालके अधीन है। मैं सत्रह बार संग्राममें स्वयं श्रीकृष्णसे हार गया था फिर भी उदास नहीं हुआ। अवसर आनेपर मैंने भी उन्हें एक बार तो रणसे भगा ही दिया था, फिर भी, मैं इन बातोंपर कभी शोक या हर्ष नहीं करता। कारण, ये सब बातें कालके अधीन हैं। अनुकूल समय आनेपर हम भी विजयी होंगे, ऐसी आशा रख, आप उदास न हों। हे राजन् ! इस प्रकार, जरासन्ध आदि वीर योद्धा शिशुपालको समझा-बुझाकर अपने-अपने नगरको चले गये। शिशुपाल भी लज्जित हो अपनी राजधानीको लौट गया.। कृष्णद्वेषी रुक्मी इस प्रकार राक्षस-विधिसे अपनी बहनका विवाह सहन न कर सका। उसने सब राजाओंके बीचमें बाहु उठाकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की—

अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम्।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥ २०।

वीरो ! ध्यान देकर सुन लो, मैं सत्य कहता हूँ। युद्धमें विना कृष्णको मारे और रुक्मिणीको विना लौटाये मैं अपने कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा। यह कहकर रुक्मी एक अक्षौहिणी-सेनाको साथ ले सारथिसे बोला—अरे! जहाँ कृष्ण हों वहीं मेरा रथ ले चल। मेरा उनसे संग्राम होगा। सारथिने बड़े वेगसे रथ आगे बढ़ाया। रुक्मीने कृष्णको ललकारते हुए कहा—अरे! खड़ा रह, खड़ा रह; कहाँ तू मेरी बहनको हरकर ले जा रहा है? मेरे बाणोंसे पृथ्वीपर गिरनेके पूर्व ही मेरी बहनको छोड़ दे। आज मैं तेरे मदको चूर-चूर कर डालूँगा। इतना कह उसने कृष्णको तीन बाण मारे, भगवान्‌ने मुसकराते हुए रुक्मीका धनुष काटकर छः बाणोंसे उसे वेध दिया, फिर आठ बाणोंसे उसके चार घोड़े, दोसे सारथि और तीनसे उसकी ध्वजा काट डाली। पुनः उसने दूसरा धनुष लेकर पाँच बाँण कृष्णपर छोड़े। भगवान्‌ने उन्हें भी काट डाला। तब वह क्रुद्ध हो कृष्णको मारनेके लिये ढाल-तलवार लेकर रथसे कूद पड़ा और भगवान्‌की ओर दौड़ा जैसे पतंगा अग्निकी ओर जाय। भगवान्‌ने तीक्ष्ण बाणोंसे तलवारके टुकड़े-टुकड़े कर पृथ्वीपर गिरा दिये। बादमें भगवान्‌ने रुक्मीको मारनेके लिये हाथमें खड्ग उठाया। यह देख रुक्मिणी भयसे व्याकुल हो भगवान्‌के चरणोंपर गिर पड़ी और बड़ी दीनतासे बोली—नाथ! मेरे भाईको न मारें। शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्!

तया परित्रासविकम्पिताङ्गया शुचावशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया।
कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत॥ ३४

भयके मारे रुक्मिणीका शरीर काँपने लगा। शोकसे मुख सूख गया, कण्ठ अवरुद्ध हो गया और विकलताके कारण उनकी सोनेकी माला भी कण्ठसे गिर पड़ी। रुक्मिणीने घबड़ाकर भगवान्‌के चरण पकड़ लिये। दयालु भगवान्‌ने फिर रुक्मीको नहीं मारा। केवल उसे रस्सीसे बाँध लिया और फिर दाढ़ी मूँछके सहित उसका मुण्डन करा उसे कुरूप बना दिया। तब तक वीर यादवोंने उसकी सारी सेना नष्ट कर डाली जैसे मतवाला हाथी कमलिनीके वनको ध्वस्त कर डालता है। बलरामने रुक्मीको ऐसी बुरी दशामें देखकर छुड़ा दिया और कृष्णसे कहा—भाई! यह तुमने उचित नहीं किया। ऐसा करना शास्त्रमें बन्धुका वध बताया गया है। बधयोग्य भी बन्धुका वध बन्धुद्वारा होना उचित नहीं। वह स्वयं अपने दोषसे मारा जाता है। इतना कह, रुक्मिणीको समझाते हुए बलरामजीने कहा—हे साध्वि! तुम अपने भाईके कुरूप होनेकी चिन्ता न करो और हमें भी दोषी न समझो, कारण सुख-दुःख सब कर्मसे हुआ करते हैं। क्षत्रियका धर्म बड़ा घोर है। युद्धमें भाई-भाईको भी मार

सकता है। इसलिये, तुम व्यर्थका शोक न करो। यह शोक अज्ञानसे होता है, जो मन और बुद्धिको विचलित कर डालता है। आत्मासे इसका कोई सम्बन्ध नहीं। आत्मा एक तथा पद्मपत्रवत् निर्लेप है, उसमें शोक-मोहकी कल्पना ही कैसी ? हे साध्वि ! तुम इस तत्त्वज्ञानसे शोकको दूरकर शान्तचित्त हो जाओ। हे राजन् ! बलरामजीका महत्त्वपूर्ण यह उपदेश सुनकर रुक्मिणी का मानसिक संताप दूर हो गया और उसके चित्तमें बड़ी शान्ति हुई। रुक्मी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार फिर कुण्डिनपुर लौट कर नहीं गया। वहीं भोजकट नामक एक विशाल नगर बनवाकर उसीमें निवास करने लगा। शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन् !

भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान्।
पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥ ५३ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण राजाओंको जीतकर रुक्मिणीको द्वारकामें ले आये और वहीं विधिपूर्वक उनके साथ विवाह किया।

रुक्मिणीका हरण सुनकर राजाओं तथा राजकन्याओंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। द्वारकामें घर-घर आमोद-प्रमोदके साथ नाना प्रकारके महोत्सव होने लगे। नगरकी नर-नारियाँ सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित हो वर-वधूके लिये दहेजके रूपमें नाना प्रकारकी वस्तुएं भेंट करने आ रही थीं। नगरके कोने-कोनेमें चारों ओर मांगलिक गान की ध्वनियाँ गूंज रही थीं। पुरीकी सजावट तो देखते ही बनती थी। प्रत्येक दरवाजे पर दोनों ओर केलेके खम्भे गड़े थे। रंग-बिरंगी झण्डियाँ तथा वन्दनवार बंधे थे। बेल-बूटोंकी निराली छटा छिटक रही थी। देखते ही दर्शकोंका मन हर लेती थी। जलभरे मांगलिक घट तथा प्रज्वलित दीपकोंकी कतारें शोभा बढ़ा रहीं थीं। अगरबत्तियोंकी अनुपम सुगन्ध चारों ओर गमक रही थी। प्रत्येक दरवाजे पर फल-पुष्प लाजा तथा दूर्वांकुर बिखरे हुए थे। भगवान्के राजभवनकी शोभा तो वर्णनातीत थी। उसका वर्णन करते जगज्जननी भगवती शारदा भी सकुचा रही थी, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीके साथ सिंहासन पर विराजमान थे। उनकी दुर्लभ झांकी का दर्शन कर द्वारकावासी आनन्दोद्रेकसे फूले नहीं समाते थे। सब मिलकर एक साथ उच्चस्वरसे लक्ष्मीनारायणकी जय-जयकार मना रहे थे। इस प्रकार भगवान्के प्रथम विवाहका प्रसंग वर्णन किया अब आप आगेका प्रसंग सुनें।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका चौवनवाँ अध्याय समाप्त।

सप्ताहके पञ्चम दिनकी कथा समाप्त (अ० सं० ५१)



श्रीमद्भागवत-कथा (साप्ताहिक)

सप्ताहके षष्ठ दिनकी कथा



[श्रीहंसाख्यानपर्यन्तं षष्ठेऽह्नि वाचयेद् ध्रुवम्]

(दशमस्कन्धके ५५ अध्यायसे ११ स्कन्धके १३वें अध्याय तक)

पचपनवाँ अध्याय

प्रद्युम्नका जन्म उसका हरण और प्रद्युम्न द्वारा शम्बरासुरका वध

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना ।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥

कामदेव भगवान् वासुदेवका अंश कहा जाता है। कारण, यह चित्तमें उत्पन्न होता है और चित्तके अधिष्ठाता वासुदेव हैं। यह सृष्टिका हेतु भी कहा जाता है। कामदेव पूर्वजन्ममें रुद्रके कोपसे भस्म हुआ था। देहप्राप्तिके लिये वह रुक्मिणीके गर्भ से उत्पन्न हो भगवान्‌का पुत्र हुआ। उसका नाम प्रद्युम्न रक्खा गया। शम्बरासुरने उसे अपना शत्रु समझ छठे ही दिन सूतिकागृहसे हरणकर समुद्रमें फेंक दिया था। विष्णुपुराणमें इस सम्बन्धमें कहा है—

षष्ठेऽह्नि जातमात्रं तु प्रद्युम्नं सूतिकागृहात् ।
ममैष हन्तेति मुने हृतवान् कालशम्बरः ॥ (वि० पु०)

वहाँ समुद्रमें भगवान्‌की इच्छासे प्रद्युम्नको एक बलवान् मत्स्य निगल गया। मल्लाहोंने जाल डालकर अन्य मत्स्योंके साथ उस विशाल मत्स्यको भी पकड़ा और उसे ले जाकर शम्बरासुरको भेंट कर दिया। रसोइयोंने पाकशालामें ले जाकर उस मत्स्यको छुरीसे काटा। उसके उदरसे एक सुन्दर बालक

निकला। उन्होंने उसे पाकशालाकी अध्यक्षा मायावतीको दे दिया। वह उसे देखकर चकित रह गयी। नारदजीने पूर्ववृत्तान्त बताकर उससे कहा—यह तुम्हारे पूर्वजन्मके पति हैं और प्रद्युम्नके रूपमें प्रकट हुए हैं।

मत्स्यपुराणका प्रसंग है यह मायावती कामदेवकी पत्नी रति थी। भगवान् शिवके द्वारा कामदेवके भस्म हो जाने पर रतिने पतिकी प्राप्तिके लिये बहुत काल तक उनकी आराधना की। शम्बरासुर भी रतिकी इच्छा कर शिवकी उपासना करने लगा। एक साथ दोनोंकी तपस्या पूर्ण हुई। भगवान् शिव दोनोंको वर देने पहुँचे। शिवजीने रतिसे कहा—तुम्हारे पति कृष्णके पुत्र होकर तुम्हें प्राप्त होंगे। शम्बरासुर रतिको चाहता था शिवने उससे भी तथास्तु कह दिया। इसपर रतिने कहा—भगवन्! ऐसा होना उचित नहीं, शिवने रतिको 'मोहनात्मिका विद्या' का उपदेश देते कहा—तुम इसी विद्याके प्रभावसे इसे मोहित करना। तुम्हारा इससे संयोग न होगा और न व्रतभंग ही होगा। मेरे वचनसे तुम्हें वहीं पतिकी प्राप्ति हो जायगी। अनन्तर शम्बरासुरने रतिरूपा मायावतीको ले जाकर पाकशालाकी अध्यक्षा बना दिया। मायावती बालकको कामदेव समझकर उससे पतिवत् स्नेह करने लगी। उसने बालकको दिव्य रसायन आदिका सेवन कराकर शीघ्र बड़ा कर लिया। उसमें यौवन झलक आया। प्रद्युम्नको देखकर स्त्रियाँ मोहित हो जाती थीं। रति हाव-भाव कटाक्षके द्वारा पतिभावसे प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करने लगी।

प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्ग सौरतैः। १०।

यह देख प्रद्युम्नने एक दिन रतिसे कहा—माता! तुम सुरत सम्बन्धी भावोंसे पत्नीकी तरह मुझसे व्यवहार क्यों करती हो? यह तो उचित नहीं। रतिने कहा–नाथ! क्षमा करें। आप श्रीकृष्णके पुत्र हैं। शम्बरासुरने पूर्वजन्मके वैरवश आपको अपना शत्रु समझकर समुद्रमें फेंक दिया था। वहाँ मत्स्यने आपको निगल लिया, उसके उदरसे आप यहाँ प्राप्त हुए हैं। मैं आपकी रति नामक पूर्वपत्नी हूँ, आप साक्षात् कामदेव हैं। आप अपने इस प्रबलशत्रु शम्बरासुरका संहार करें। इतना कहकर रतिने प्रद्युम्नको मोहिनी नामक महाविद्याका उपदेश दिया। उसे प्राप्तकर प्रद्युम्नने युद्धके लिये शम्बरासुरको ललकारा। दोनोंमें परस्पर घमासान युद्ध छिड़ गया। शम्बरासुरने नाना प्रकारकी आसुरी मायाका प्रयोग किया, किन्तु प्रद्युम्नने महामाया विद्याके प्रभावसे उसकी सारी माया नष्ट कर डाली। अनन्तर तीक्ष्ण-तलवारसे मुकुट कुण्डल सहित उसका सिर काटकर पृथ्वी पर फेंक दिया। यह देख देवगण आकाशसे पुष्पवृष्टि

करने लगे। प्रद्युम्न अपनी पत्नीके द्वारा आकाशमार्गसे अन्तःपुरमें लाये गये। बोल-चाल रूप-रंग तथा आकृतिसे उन्हें साक्षात् श्रीकृष्ण जानकर सब स्त्रियाँ इधर-उधर जा छिपीं, किन्तु धीरे-धीरे कुछ विलक्षणतासे यह कृष्ण नहीं हैं ऐसा जानकर पुनः उनके पास आयीं। उन्हें देखते ही रुक्मिणीको अपने पुत्रका स्मरण हो आया, उसके स्तनोंसे दूध टपकने लगा और सहसा बाँयी भुजा भी फड़कने लगी। इसी समय भगवान् श्रीकृष्ण भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने इस घटनाका सब रहस्य जानते हुए भी इस विषयमें कुछ कहा नहीं। नारदजीने आकर शम्बरासुरद्वारा किये गये हरणकी सारी कथा आदिसे अन्त तक कहकर सुना दी।

नारदोऽकथयत् सर्वं शम्बराहरणादिकम्॥ ३६॥

अनन्तर सारा परिवार पुत्र एवं पुत्रवधूका आलिङ्गन कर आनन्दमग्न हो गया। द्वारकावासी भी प्रद्युम्नको वापस आया सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और घर-घर आनन्दोत्सव मनाने लगे।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका पचपनवाँ अध्याय समाप्त



छप्पनवाँ अध्याय

भगवान्को मिथ्या कलङ्क तथा जाम्बवती और सत्यभामासे विवाह

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः।
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान्॥ १॥

सत्राजित्ने भगवान् श्रीकृष्णका एक अपराध किया था उसकी शान्तिके लिये उसने भगवान्को अपनी कन्या, स्यमन्तकमणिके साथ प्रदान की। राजा परीक्षित्ने पूछा—हे ब्रह्मन्! सत्राजित्ने भगवान्का क्या अपराध किया था तथा उसे स्यमन्तक-मणि कहाँसे प्राप्त हुई एवं उसने अपनी कन्या श्रीकृष्णको किस कारण दी? यह प्रसङ्ग सुनानेकी कृपा करें। शुकदेवजी बोले—राजन्! सत्राजित् सूर्यका परमभक्त था। उसकी तपस्यासे प्रसन्न हो

सूर्यने उसे स्यमन्तकमणि दी थी। एक दिन वह उसे कण्ठमें धारण कर द्वारकामें गया। मणिके तेजसे वह सत्राजित् लक्षित नहीं होता था। साक्षात् दूसरा सूर्य ही जान पड़ता था। उसे देख, यादवोंकी दृष्टि चकाचौंध हो गयी। उन्होंने सभामें, लोकलीलार्थ पाशा खेलते हुए भगवान्के समीप जाकर कहा—भगवन्! आपका दर्शन करने सूर्यदेव आ रहे हैं। यह सुन भगवान् श्रीकृष्ण हंस पड़े और बोले—वह सूर्य नहीं, सत्राजित् है। मणि पहननेसे सूर्यवत् चमक रहा है। सत्राजित्ने घर जाकर अपने इष्टदेव भगवान् सूर्यके मन्दिरमें ब्राह्मणों द्वारा विधिवत् उस मणिकी स्थापना करा दी और प्रतिदिन नियम पूर्वक उसकी पूजा करने लगा। वह मणि प्रतिदिन उसे आठ भार १८० तोला सोना देती थी। पूजित मणिके प्रभावसे वहाँ दुर्भिक्ष, महामारी, अकालमृत्यु आधि-व्याधि और सर्पबाधा आदि किसी प्रकारके अरिष्ट नहीं होते थे। एक समय श्रीकृष्णने राजा उग्रसेनके लिये वह मणि माँगी। कारण, साधारण मनुष्यके धारण करनेपर उसका अनिष्ट हो सकता था। सत्राजित्ने स्वर्णके लोभवश वह मणि भगवान्को नहीं दी। एक दिन उसका छोटा भाई प्रसेन कण्ठमें मणि बाँधकर घोड़ेपर सवार हो शिकार खेलने वनमें गया। वहाँ सिंहने घोड़े सहित प्रसेनको मारकर उससे मणि छीन ली। सिंह मणिको लेकर पर्वतकी कन्दरामें जा ही रहा था कि ऋक्षराज जाम्बवान्ने सिंहको मारकर बलात् उससे मणि ले ली और अपने पुत्रको खिलौनाके रूपमें खेलनेके लिये दे दी। रोते हुए बच्चेको मणिसे खेलाती हुई उसकी धात्री (उपमाता) यह श्लोक पढ़ रही थी—

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥

(हरिवंश पु०)

इस श्लोकके इक्कीस बार पाठ करनेसे भाद्रशुक्ल चतुर्थीके चन्द्रदर्शन-जनित दोषकी शान्ति हो जाती है, ऐसा धर्मशास्त्रके तिथिनिर्णय नामक ग्रन्थ में लिखा है।

सत्राजित् अपने भाईको न देख चिन्तासे व्याकुल हो उठा। उसने लोगोंसे कहा—मेरा भाई गलेमें स्यमन्तक-मणि पहन कर वनमें गया था। जान पड़ता है श्रीकृष्णने उसे मरवा डाला क्योंकि वह ही मुझसे मणि माँग रहे थे। कानों-कान यह बात भगवान् श्रीकृष्ण तक पहुँच गयी। भगवान् अपने इस कलंकको दूर करनेके लिये कुछ लोगोंको साथ ले प्रसेनकी

खोजमें निकले। उन्होंने वनमें सिंह द्वारा घोड़ेके सहित प्रसेनको मरा देखा और आगे पर्वतपर एक गुफाके समीप ऋक्षराज जाम्बवान् द्वारा सिंहको भी मरा पाया। वह गुफा घोर अन्धकारसे व्याप्त थी। अतः नागरिक लोगोंको बाहर ठहराकर भगवान्‌ने उस गुफामें अकेले ही प्रवेश किया और भीतर जाकर देखा तो मणिके साथ एक बालक खेल रहा था। मणि लेनेके विचारसे भगवान् उसके समीप खड़े हो गये। बालककी उपमाता इस अपूर्व पुरुषको देखकर भयभीतकी तरह चिल्ला उठी। धात्री चुक्रोश भीतवत्। जाम्बवान् उसका शब्द सुनते ही क्रोधमें भर बड़ी तेजीसे दौड़कर आया और अपने स्वामीको साधारण पुरुष समझकर उनसे भिड़ गया। शस्त्रोंसे, पत्थरोंसे, वृक्षोंसे और बाहुओंसे उन दोनोंका विराम-रहित द्वन्द्वयुद्ध अट्ठाईस दिनों तक निरन्तर चलता रहा। भगवान्‌के वज्रपातसम मुष्टिकाके प्रहारसे जाम्बवान्‌की सम्पूर्ण नसें ढीली पड़ गयीं। शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया वह सोचने लगा। मुझसे भी अधिक बलवान् यह कौन है जो इस प्रकार लड़ रहा है। वह चकित हो उन्हें अपना स्वामी जान उनके चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा—भगवन्। आप पुराण-पुरुष साक्षात् विष्णु हैं। कारणोंके भी कारण और कालके भी काल हैं। जिन आपके थोड़े क्रोधसे ही भयभीत हो समुद्रने लंकामें जानेका मार्ग दे दिया। उसपर कीर्ति विस्तार करने वाला आपने पुल बाँध दिया। तीक्ष्ण बाणोंसे रावणके सिर काट कर उसे मौतके घाट उतार दिया। आप वही मेरे स्वामी साक्षात् राम है। मैं बड़ा अपराधी हूँ जो अपने स्वामीसे ही लड़ गया। क्षमा करें, क्षमा करें। भगवान्‌ने कोमल हाथोंसे जाम्बवान्‌का स्पर्श कर कहा—ऋक्षराज! राम-रावणके युद्धमें तुम तृप्त नहीं हुए थे यह जान तुमको तृप्त करनेके लिये ही मैंने यह लीला रची थी। इस मणिके कारण ही मुझे मिथ्या कलंक लगा है। उसीका मार्जन करने मैं यहाँ आया हूँ। जाम्बवान्‌ने कहा—भगवन्! आपको कलंक कैसा? भगवान्‌ने कहा—मैंने केवल आकाशमें नहीं केवल गोपद जलमें भाद्रपदशुक्ल चतुर्थी को चन्द्र-दर्शन किया था। इसी कारण मुझे यह मिथ्या कलंक लगा है।

मया भाद्रपदे शुक्लचतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम्।
गोष्पदाम्बुनि वै राजन् कृतं दिवमपश्यता॥ स्क० पु०

भगवान्‌के प्रश्नपर एक समय नारदने भी यही कहा था।

त्वया भाद्रपदे शुक्लचतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम्।
कृतं येनेह भगवन् वृथा शापमवाप्तवान्॥

[उक्त तिथिको चन्द्रदर्शनका पुराणोंमें निषेध किया गया है] कथा इस प्रकार है। एकदिन गणेशजी इसी तिथिको स्वेच्छावश कहीं जा रहे थे, कि दैवयोगसे उनका पैर कीचड़में कहीं फिसल गया। इस घटनापर चन्द्रदेव हँस पड़े। गणेशजीने लीलार्थं क्रुद्ध हो चन्द्रमाको शाप दिया कि जो आजके दिन तुम्हारा दर्शन करेगा उसे मिथ्या कलंक लगेगा। अतः इस दिन चन्द्र दर्शन नहीं करना चाहिये। यदि कदाचिद् देख ले तो उसे ईंटा आदि फेंककर किसीसे गाली सुननी चाहिये। ऐसा करने से उस दोषकी शान्ति हो जाती है, ऐसा पुराणोंमें लिखा है।

तद्दिने इष्टकाप्रक्षेपादिना कस्माच्चिद् गालीग्रहणादि कुर्यात् तेन तद्दोषशान्तिरित्युक्तं पुराणान्तरे, इति (वंशीधरी)

[ध्यान रहे, ईंटा इस प्रकार फेंके जिससे किसीको चोट न लगे, अन्यथा दोषकी दूनी वृद्धि हो जाती है।] यह वृत्तान्त सुनकर जाम्बवान्ने अपनी कन्या जाम्बवती[1]को स्यमन्तक मणिके साथ क्षमायाचना पूर्वक भगवान्को अर्पण कर दी। इधर गुफाके बाहर स्थित मनुष्योंने बारह दिनों तक भगवान्की प्रतीक्षा की और उनके न निकलने पर वे सब निराश हो घर लौट आये। उन्होंने वहाँका सम्पूर्ण समाचार लोगोंको कह सुनाया। देवकी, वसुदेव एवं सभी द्वारकावासी इसे सुनकर बड़े दुःखी हुए। अनन्तर सत्राजित्को कोसते हुए उन्होंने श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये वैदिक ब्राह्मणों द्वारा भगवती दुर्गाके प्रीत्यर्थं शतचण्डीका सम्पुटित विशाल अनुष्ठान आरम्भ कराया।

---

१. ऋक्षकी कन्या होनेपर भी जाम्बवती रीछिनी नहीं थी। जाम्बवान् ऋक्ष होते हुए भी देवपुत्र हैं अतः इनमें नाना रूप धारणकी शक्ति होनेसे और देवकन्यासे उत्पन्न होनेके कारण यह अतीत सुन्दरी देवकन्या थी। जाम्बवतः ऋक्षत्वेऽपि देवपुत्रतया नानारूपधृत्या तत्संभवात्। इति वंशीधरी। पिताके अधिक स्नेहके कारण उनके सदृश ही इसका जाम्बवती नाम रक्खा गया था। माथुर हरिवंशकी कथा है कि यह कन्या रामावतार के समयमें उत्पन्न हुई थी। जाम्बवान् उसी समय यह कन्या रामको देना चाहते थे। किन्तु एकपत्नीव्रत भगवान् राम उसे उस समय ग्रहण न कर सके। उसे तपस्या करनेका आदेश दिया गया। तदनुसार कन्याने गोवर्धन पर्वत पर जाकर चिरकाल तक कठोर तपस्या की। पुनः भगवान्ने कृष्णावतारमें उसका मनोरथ पूर्ण किया।

उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये। ३५।

अनुष्ठानकी समाप्तिके दिन देवीके आशीर्वादसे भगवान् श्रीकृष्ण सपत्नीक वहाँ आ विराजे। यह देख सभीको बड़ा आनन्द हुआ। भगवान्ने सभामें सत्राजित्को बुलाया और राजाके समक्ष ही मणिकी प्राप्तिका सारा विवरण सुनाकर उसे मणि दे दी। इसपर सत्राजित्का मुख लज्जासे नीचा हो गया। वह अपने अपराध निवृत्तिका उपाय सोचने लगा। अन्तमें उसने स्त्रियोंमें-रत्नरूपी सत्यभामा नामकी अपनी कन्या भगवान्को अर्पण की और दहेजके रूपमें स्यमन्तकमणि भी उन्हें समर्पण कर दी। भगवान्ने विधिपूर्वक उस कन्यासे विवाह किया और मणि सत्राजित्को ही लौटा दी। साथ ही कहा भी—

तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः। ४५।

तुम सूर्यके भक्त हो अतः यह मणि तुम्हारे पास ही रहे किन्तु तुम्हारे पुत्र न रहने के कारण अन्तमें इसके फल भागी तो हमको ही होना है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका छप्पनवाँ अध्याय समाप्त।

—:※:—

सत्तावनवाँ अध्याय

मणिके अपहरणसे शतधन्वाका वध एवं अक्रूर द्वारा प्राप्त मणिसे कलङ्कका मार्जन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! लाक्षाभवनमें पाण्डवोंके दाहका मिथ्या समाचार सुनकर एक समय भगवान् श्रीकृष्ण बलराम सहित हस्तिनापुर गये। अवसर पाकर अक्रूर और कृतवर्माने शतधन्वासे कहा—देखो! इस सत्राजित् ने अपनी कन्या हम लोगोंको देनेकी प्रतिज्ञा कर कृष्णको दे दी। इसलिये उसे मारकर उसकी मणि क्यों नहीं छीन लेते? शतधन्वा को यह बात जँच गयी। एक दिन वह अवसर पाकर सत्राजित्के भवनमें घुस गया और सोते हुए उसको कसाईकी तरह मार मणि लेकर भाग गया।

हत्वा पशून् सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥६॥

भगवान्की आज्ञा भंग करनेका यह कुफल उसे इस प्रकार भोगना पड़ा था। यह देख उसकी स्त्रियाँ अनाथकी तरह चिल्लाने लगीं। सत्यभामा भी पिताकी हत्या पर मूर्छित हो धड़ामसे पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसने अपने पिताका मृत शरीर तेल भरी कड़ाहीमें रखकर हस्तिनापुर प्रस्थान किया और वहाँ जाकर भगवान्से सारा समाचार कह सुनाया। ससुरकी मृत्यु सुन भगवान्की आँखोंमें आँसू भर आये और वे भार्या सहित पुनः पुरीमें लौट आये। उन्होंने शतधन्वाको मारकर मणि लेनेका विचार किया। यह जान शतधन्वा भयभीत हो अक्रूर और कृतवर्मासे सहायता माँगने गया। उन दोनोंने कहा—हम तो बलराम और श्रीकृष्णके प्रतिकूल, कोई भी काम नहीं कर सकते। जिन्होंने अकेले ही सपरिवार कंसको मारा, जरासन्धको १७ बार युद्धमें हराया, एक हाथसे गोवर्धन पर्वत उठाया एवं जो लीला-मात्रसे विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, उन्हें तो हम केवल नमस्कार ही करेंगे। उनके विरुद्ध हम एक कदम भी नहीं उठा सकते। यह सुन शतधन्वा निरुत्तर हो अक्रूरके पास मणि रखकर, घोड़ेपर सवार हो भाग खड़ा हुआ। कृष्ण और बलरामने भी रथपर चढ़कर ससुरघाती शतधन्वाका पीछा किया। शतधन्वाका घोड़ा सौ योजन चलकर मिथिलाके उपवनमें जाकर गिर पड़ा। तब वह घोड़ा छोड़कर पैदल ही भागा। भगवान्ने भी पैदल ही दौड़कर उसे पकड़ा और तीक्ष्णचक्रसे उसका सिर काट डाला। बादमें उसके कपड़ोंकी बाहर और भीतरकी जेबोंमें मणिको खोजा—

चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥२१॥

किन्तु वहाँ मणि मिली नहीं। तब भगवान्ने अपने भाईसे यह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। बलरामने कहा—सम्भव है, मणि उसने किसी अन्य पुरुषके पास रख दी हो। उसे जाकर पुरीमें खोजो। मैं तो अपने परम प्रेमी जनकजीको देखने जाता हूँ। यह कहकर बलरामजी मिथिला चले गये। वहाँ मिथिलामें जनकने बलरामका बड़ा आदर-सत्कार किया। वह कुछ वर्षों तक वहाँ रहे भी, उस समय दुर्योधनने उनसे गदाकी शिक्षा प्राप्त की। श्रीकृष्णने द्वारकामें आकर मणि न मिलनेका समाचार सत्यभामा-को सुनाया और अपने ससुरका पारलौकिक संस्कार किया। अक्रूर और कृतवर्मा शतधन्वाका वध सुनते ही द्वारकासे भाग खड़े हुए। कारण मणिके हरणमें ये दोनों ही प्रेरक थे। किन्तु, भगवान्ने अक्रूरको प्रेमसे बुलाकर

कहा— हे दानपते ! शतधन्वाने तुम्हारे पास मणि रखी है। यह हमें पहलेसे मालूम था। किन्तु, मेरे भाई इसपर विश्वास नहीं करते। तुम उसे दिखाकर बन्धुओंमें शान्ति स्थापित करो। यह सुन अक्रूरने रेशमी वस्त्रसे आच्छादित वह मणि लाकर श्रीकृष्णको दे दी। भगवान्‌ने अपने बन्धुओंको मणि दिखाकर अपना मिथ्या कलंक दूर किया और पुनः वह मणि अक्रूरको ही दे दी।

स कृष्णहस्तात् संप्राप्तं मणिरत्नं स्यमन्तकम्।
आबध्य गान्दिनीपुत्रो विचचारांशुमानिव ॥ (हरिवंश पु०)

अक्रूरजी कृष्णसे प्राप्त स्यमन्तकमणिको गलेमें बाँधकर सूर्यके समान सर्वत्र विचरते थे।

जो मनुष्य श्रद्धाभक्तिसे भगवान्‌का मंगलमय पापनाशक यह स्यमन्तक मणिका आख्यान पढ़ता है सुनता है या स्मरण करता है उसे मिथ्या कलंक नहीं लगता, लगा हुआ कलंक तथा पाप मिट जाता है और उसे परम शान्तिका अनुभव होता है।

दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥४२॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त।

अट्ठावनवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका कालिन्दी आदि पाँच कन्याओंसे विवाह

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

एकदा पाण्डवान् द्रष्टुं प्रतीतान् पुरुषोत्तमः।
इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान् युयुधानादिभिर्वृतः ॥१॥

एक समय लाक्षाभवनमें विनष्ट हुए पाण्डवोंको द्रुपदके राजभवनमें प्राप्त सुनकर भगवान् उन्हें देखने सात्यकि आदिके साथ इन्द्रप्रस्थ गये। पाण्डव भगवान्‌को देखते ही सबके सब एक साथ उठ खड़े हुए। उन्होंने प्रणाम

आदि द्वारा भगवान्‌का सत्कारकर उनको एक सुन्दर आसन पर बैठाया। द्रौपदीने भी धीरेसे समीपमें जाकर भगवान्‌को प्रणाम किया। भगवान्‌ने अपनी बुआ कुन्तीको प्रणाम कर उनसे कुशल-समाचार पूछा। बहुत दिनोंके बाद भगवान्‌का दर्शन कर कुन्तीके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक आये। भगवान् इन्द्रप्रस्थवासियोंको आनन्द तथा आश्वासन देते हुए चार महीने वहीं ठहर गये। एक दिन अर्जुन भगवान्‌के साथ भ्रमण करने वनमें गये। वहाँ अर्जुनने बहुतसे यज्ञीय पशुओंका वध किया। थक जानेपर प्याससे व्याकुल हो अर्जुन भगवान्‌के साथ यमुना तटपर गये। वहाँ दोनों जल पीकर इधर-उधर टहल ही रहे थे कि यमुनामें तप करती एक परम सुन्दरी कन्यापर उनकी दृष्टि पड़ी। भगवान् श्रीकृष्णके आदेशसे अर्जुनने उसके निकट जाकर उसका परिचय पूछा। कन्याने कहा—मैं सूर्यकी पुत्री हूँ। मेरा नाम कालिन्दी[1] है। मैं श्रीकृष्णको पति बनानेके हेतु तप कर रही हूँ। दीनदयालु भगवान् मुझपर कृपा करें मुझपर प्रसन्न हों।

तुष्यतां मे स भगवान् मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥२१॥

अर्जुनने भगवान्‌के समीप लौटकर उसका सारा वृत्तान्त बताया। इसपर श्रीकृष्ण उसे रथपर बैठाकर युधिष्ठिरके राजभवनमें ले आये। इसी प्रसंगमें भगवान्‌ने विश्वकर्माके द्वारा पाण्डवोंके लिये नगरका निर्माण, अर्जुनके सारथि बन खाण्डवनका दाह, तथा मय दानवके द्वारा सभाभवनका निर्माण कराया। अनन्तर, भगवान् इन्द्रप्रस्थमें सबसे मिल-जुलकर द्वारकापुरी लौट गये और वहाँ उन्होंने सुन्दर मुहुर्तमें कालिन्दीसे विवाह किया। पाँचवाँ विवाह श्रीकृष्णका मित्रविन्दासे हुआ। बिन्द और अनुविन्द ये दोनों ही उज्जयिनीके राजा थे और दुर्योधनके वशवर्ती बड़े ही आज्ञाकारी थे। मित्रविन्दा उनकी बहन थी। शिबिदेशमें उत्पन्न होनेके कारण इसे शैब्या भी कहते थे। भगवान्‌की बुआ राजाधिदेवीकी वह पुत्री थी। स्वयम्वरमें वह श्रीकृष्णको जयमाला पहनाना चाहती थी। दोनों भाइयोंने उसे रोका। किन्तु, भगवान्‌में उसका अनन्य प्रेम देख सब राजाओंके सामने बलात् उसका हरण कर लिया। छठी पत्नी सत्या थी। उसका दूसरा नाम नाग्नजिती भी था। नग्नजित् अयोध्याका राजा था। उसने अपनी कन्या नाग्नजितीके विवाहमें एक शर्त रखी थी कि जो सात बैलोंको एक

१. कलिन्दात् गिरेरुद्भूता कालिन्दी नदी तस्यां वासात् तन्नाम्नी कन्या कालिन्दी।

साथ ही नाथ सकेगा उसीसे नाग्नजितीका विवाह सम्पन्न होगा। कोई भी राजा सात बैलोंको एक साथ नाथने में समर्थ न हो सका। कारण, वे बैल वीरोंकी गन्ध भी सह नहीं सकते थे और बड़े ही क्रोधी स्वभावके थे। भगवान् राजाकी यह प्रतिज्ञा सुनकर वहाँ पहुँचे और सात रूप धारणकर अनायास ही सातों बैलोंको एक साथ नाथ दिया। राजाने प्रसन्नतापूर्वक अपनी कन्या भगवान्को अर्पण की तथा उसके साथ दस हजार गौएँ और नाना वस्त्र आभूषणोंसे सुसज्जित तीन हजार दासियाँ एवं बहुत-सा दहेज भी दिया।

नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान् रथान्।
रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥ ५१ ।

इसके अनन्तर उन्होंने नौ हजार गज, गजोंसे सौगुने नौ लाख रथ, रथसे सौगुने नौ करोड़ घोड़े; और घोड़ोंसे सौगुने नौ पद्म भृत्योंको भी दहेजमें दिया।

इतिहास और पुराणोंमें शतसे लेकर द्विपरार्द्धपर्यन्त संख्या कहीं स्वार्थपरक मानी गयी है। प्रायः अनेकार्थ वाचक ही है ऐसा आचार्य नीलकण्ठका मत है।

शताद्या द्विपरार्द्धान्ता संख्या स्वार्थपरा क्वचित्।
प्रायोऽनेकार्थिका ज्ञेया इतिहासपुराणयोः ॥
(वंशीधरी स्क० १०।५६।३)

वस्तुतः इस प्रकारकी अधिक संख्यामें प्रायः सभीको सन्देह होता है। जो कथावाचक हैं वे भी सन्दिग्ध रहते हैं और इसका ठीक-ठीक समाधान नहीं कर पाते। कुछ विद्वानोंने जो समाधान किये हैं उनसे भी सबको सन्तोष नहीं होता और न वे व्याससम्मत ही हैं, ऐसी स्थितिमें सर्वसम्मत समाधान क्या होगा यह विचारणीय है। व्यास जी अमोघदृक् तथा अमोघवाक् कहे जाते हैं। उनका ज्ञान तथा उनकी वाणी कभी मिथ्या नहीं हो सकती। नारदके उपदेशानुसार उन्होंने समाधिद्वारा प्रत्यक्ष अनुभव कर भगवान्का प्रत्येक चरित्र लिखा है, उसका कोई भी अंश मिथ्या या अनर्गल नहीं किया जा सकता। व्यासजीको यदि उपर्युक्त संख्या अभिप्रेत न होती अनेक या बहुत अर्थमें तात्पर्य होता तो परिगणन करनेकी आवश्यकता क्या थी? पारिबर्हं ददौ बहु। ऐसा ही कह देते। जैसे तत्तत् स्थलोंपर कहा गया है 'अभ्यनन्दन् बहूनब्दान्' अतः परिगणन करनेसे ध्वनित होता है कि संख्याका संकेत

सत्य है मिथ्या नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि इतनी संख्याका समावेश कहाँ होगा इसमें क्लिष्ट कल्पना करने की आवश्यकता नहीं। इसका सीधा समाधान है उस पर ध्यान दें। भगवान्‌का विग्रह अलौकिक है, अपरिमित है और विभु है, वह भौतिक नहीं। उसका लौकिक वस्तुओं की तरह मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। यशोदाने जंभाई लेते समय भगवान्‌के छोटेसे मुखमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखा यह संभव कैसे? वत्स-वत्स-पालोंके अपहरणके समय भगवान्‌ने ब्रह्माको वृन्दावनके एक प्रदेशमें पञ्चाशत्कोटिपरिमाणके करोड़ों ब्रह्माण्डोंको दिखा दिया यह संभव कैसे? बलि-वामन चरित्र देखें! उसमें भगवान्‌ने दो ही पैरसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको नाप डाला यह संभव कैसे? अतः अगत्या यह मानना पड़ेगा कि भगवान्‌का विग्रह अचिन्त्यप्रभावशाली है, वह तर्कका विषय नहीं। उसका संकोच-विकास लीलाशक्तिके द्वारा यथा समय होता रहता है।

जैसे भगवान्‌का विग्रह अचिन्त्य, अपरिमित तथा विभु है उसी प्रकार उनके प्रिय परिकर, उनके उनका धाम क्रीडास्थल तथा समय सभी अचिन्त्य अपरिमित तथा विभु हैं। उनका भी सङ्कोच-विकास उनकी इच्छा पर निर्भर है। उसमें कुछ भी असंभव नहीं। अतः गज आदि की यथाश्रुत संख्या ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं। इसी प्रकार वत्सचारण प्रसङ्गमें षोडशक्रोशमात्र वृन्दावनके एक प्रदेशमें असंख्यसंख्यात वत्सोंका भी समावेश संभव हो सकता है। इसमें भी कोई विरोध नहीं। इसपर आचार्य वंशीधरजी लिखते हैं—

न च षोडशक्रोशीमात्रस्य वृन्दावनस्य प्रदेशे तावन्तो वत्सा नैव मान्तीति वाच्यं भगवद्विग्रहस्येव धाम्नश्चास्य तथाऽपरिमितत्वेऽप्यचिन्त्यशक्त्या विभुत्वात्। तत्प्रदेशैकदेशेऽपि पञ्चाशत्कोटिपरिमाणब्रह्माण्डार्बुदानां भगवतैव ब्रह्मणे एतदुत्तराध्याये दर्शयिष्यमाणत्वात्। अत एवोक्तं भागवतामृते—

एवं प्रभोः प्रियाणां च धाम्नश्च समयस्य च।
अविचिन्त्यप्रभावत्वादत्र किञ्चिन्न दुर्घटम्॥

इति तोषिणीकारः विश्वनाथचक्रवर्ती च।

(भा० वंशीधरी १०।१२।३)

श्रुतकीर्ति बुआकी भी एक कन्या भद्रा थी जो केकयदेशमें उत्पन्न हुई थी। भगवान्‌ने उसके साथ भी विवाह किया। मद्रदेशके अधिपति

राजा बृहत्सेन थे उनकी कन्या लक्ष्मणाका भी भगवान्‌ने स्वयम्वरसे हरण किया। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी ८ पटरानियाँ थीं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) रुक्मिणी, (२) जाम्बवती, (३) सत्यभामा, (४) कालिन्दी, (५) मित्रविन्दा (शैव्या) (६) नग्निजिती (सत्या) (७) भद्रा और (८) लक्ष्मणा। इन नामोंका संग्रह श्लोक—इसमें क्रम विवक्षित नहीं हैं।

भैष्मी जाम्बवती भामा सत्या भद्रा च लक्ष्मणा।
कालिन्दी मित्रविन्दा चेत्यष्टौ पट्टमहास्त्रियः ॥ (श्रीधरी)

भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार एक सौ पत्नियाँ और भी थीं जिन्हें भगवान् भौमासुरको मार कर उसके अन्तःपुरसे हर लाये थे।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त।

—:❀:—

उनसठवाँ अध्याय

भौमासुरका वध, सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे विवाह और पारिजात-हरण

राजा परीक्षित्‌ने शुकदेवजीसे पूछा—भगवन्!

यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः।
निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जिस प्रकार भौमासुरको मारा था और उसने राजाओंकी कन्याएँ जिस प्रकार छीन-छीनकर एकत्र की थीं यह भगवान्‌का पराक्रमपूर्ण चरित्र मुझसे बतानेकी कृपा करें।

शुकदेवजी बोले—राजन्! एक दिन इन्द्रने द्वारकामें आकर भगवान्‌से कहा—प्रभो! भूमिका पुत्र नरकासुर प्रजाको बड़ा ही कष्ट दे रहा है। उसने सुर-असुर गन्धर्व और राजाओंकी कन्याएं अपहरणकर अपने घरमें

वन्द कर रखी हैं। वरुणका छत्र, अदितिके कुण्डल एवं देवताओंका क्रीडा-स्थल "मणिपर्वत" भी उसने वलपूर्वक छीन लिया है। अब वह मेरे ऐरावत को भी छीनना चाहता है। आप इसका समुचित प्रतीकार करें। इन्द्रके द्वारा भौमासुरका ऐसा अत्याचार सुनते ही भगवान् सत्यभामाके साथ गरुड़ पर आरूढ़ हो तुरंत भौमासुरकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुरमें पहुँचे।

सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥३॥

वह पुर चारों ओरसे पर्वत, शस्त्र, जल-अग्नि और वायुके दुर्गोंसे घिरा था। सेनापति मुर नामक दैत्यने यहाँ हजारों अभेद्य पाश बिछा रखे थे और राजधानीका व्यूहन इतना जटिल किया था कि कोई भी वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता था। भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ पहुँचकर गदासे पर्वत, बाणोंसे शस्त्र और चक्रसे अग्नि, जल तथा वायुके आवरण तोड़ डाले। तलवारसे सारे पाश भी छिन्न-भिन्न कर दिये। अनन्तर, गदासे राजधानीका परकोटा तोड़ अन्दर घुस गये। भगवान्ने राजधानीमें पहुँचकर भीषण शंखध्वनि की। उसे सुन परिखाके जलमें रक्षार्थ सोता हुआ पाँच सिर वाला मुर नामक दैत्य निद्रासे जागा और तुरंत अपना भयंकर त्रिशूल उठा भगवान्की ओर झपटा। उसने पैंतरोंके साथ बड़े वेगसे उनपर त्रिशूल चलाकर पाँचों मुखसे ऐसी भीषण गर्जना की कि सारा ब्रह्मांड गूँज उठा। भगवान्ने दो ही बाणोंमें उसके त्रिशूलके तीन टुकड़ेकर पृथ्वी पर गिरा दिये और उसका मुख भी बाणोंसे भर दिया। इसपर बौखलाकर उस दैत्यने भगवान् पर गदा चलायी। इधर भगवान्ने भी उस पर गदा फेंकी किन्तु भगवान्की गदासे वह टकराकर चूर-चूर हो गयी। तब वह निःशस्त्र हो अपनी भुजा उठाकर भगवान्की ओर दौड़ा। भगवान्ने अपने तीक्ष्ण चक्रसे बाहुओंसहित उसके पाँचों सिर काट डाले। वह प्राणशून्य हो जलमें गिरा और तत्काल मर गया। यह देख ताम्र अन्तरिक्ष श्रवण आदि उसके सातों पुत्र क्रुद्ध हो पीठ नामक सेनापतिको आगे कर, युद्धके लिये निकले। वे सबके सब एक ही साथ मिलकर भगवान्पर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी भीषण वर्षा करने लगे। भगवान्ने अपने शस्त्रोंसे उनके शरजालके तिल-तिल भर टुकड़े कर डाले और सेनापति सहित उसके पुत्रोंको भी मारकर यमलोक पहुँचा दिया। अन्तमें हाथी पर चढ़कर भौमासुर विशाल सेना साथ ले युद्धभूमिमें आ डटा। उसने आते ही भगवान्पर तोपसे वार किया। साथ ही साथ उसकी सेना भी भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगी। भगवान्ने भी तीक्ष्ण बाणोंसे हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सहित उसकी सम्पूर्ण सेना क्षण मात्रमें काट डाली। कुछ योद्धा तो गरुड़के पंखोंसे ही

घायल हो चिल्लाते हुए संग्रामसे भाग खड़े हुए। केवल भौमासुर युद्धमें डटा रहा। उसने भी भगवान्‌को मारनेके लिये त्रिशूल उठाया, किन्तु भगवान्‌ने त्रिशूलके वारके पूर्व ही उसका मुकुट-कुण्डल सहित सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया।

सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं वभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत्।
हाहेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त इडिरे ॥२३॥

इसपर दैत्योंमें चारो ओर हाहाकार मच गया। ऋषि-महर्षि साधु-कृतं साधुकृतं ऐसा कहने लगे। देवतागण पुष्पोंको वर्षाकर भगवान्‌की स्तुति करने लगे। इसी समय, पृथ्वीने रत्नजटित सुवर्णकुण्डल, वरुणका छत्र तथा देवताओंका क्रीडा-स्थान, मणियोंकी खान, मन्दर गिरिका शिखर अर्पण कर भगवान्‌की सात श्लोकोंसे स्तुति की। ४ श्लोकोंसे भगवान्‌को नमस्कार किया। एकसे उन्हें सर्गादिका कारण बताया। एकसे आधार-भूत भगवान्‌में चराचर जगत्‌का भ्रम बताया और एकसे अपने पौत्र भगदत्तको अभय दान करनेकी प्रार्थना की। इतना कह कर भौमासुरके पुत्र भगदत्तको भगवान्‌के चरणोंमें गिरा दिया। हे राजन्! पृथ्वीकी प्रार्थनासे प्रसन्न हो भगवान्‌ने भगदत्तको अभय-दान दिया। और फिर भौमासुरके अन्तः-पुरमें प्रविष्ट हुए। वहाँ नजरबन्द १६ हजार एक सौ कन्याएँ भगवान्‌को देखते ही मोहित हो गयीं। उन सभीने मनसे भगवान्‌को अपना-अपना पति बना लिया।

कन्यापुरे स कन्यानां षोडशातुलविक्रमः।
शताधिकानि ददृशे सहस्राणि महामते॥ (श्रीपराशरः)

भगवान्‌ने अतुल सम्पत्तिके साथ उन सभीको द्वारका भेज दिया और स्वयं स्वर्गमें जाकर इन्द्रको अदितिके कुण्डल दे दिये। वहाँ इन्द्राणी सहित इन्द्रने भगवान्‌का विधिवत् अर्घ्य-पाद्यादिसे षोडशोपचार पूजन किया। अनन्तर, सत्यभामाकी इच्छासे भगवान् श्रीकृष्ण स्वर्गसे पारिजात वृक्षको लेकर लौट रहे थे कि इन्द्रको यह सहन न हुआ। वह विवेकभ्रष्ट हो भगवान्‌से युद्ध करनेके लिये सेना सहित रणभूमिमें उतर पड़ा। भगवान् इन्द्रको पराजित कर उस पारिजातको द्वारकामें ले आये और उसे सत्यभामाके बगीचेमें लगा दिया। एक बार नारदजीने पारिजातका एक पुष्प भगवान्‌को समर्पण किया था। भगवान्‌ने उसे रुक्मिणीको दे दिया। यह सुन सत्यभामा कुपित हो उठीं। सत्यभामाकी प्रसन्नताके लिये भगवान्‌ने

पारिजात वृक्ष ही स्वर्गसे लाकर उनके प्राङ्गणमें लगा दिया। भौमासुर भूमिका पुत्र था। भगवान्ने वाराह रूप धारण कर जब पृथ्वीका उद्धार किया था उसी समय उनके स्पर्शसे भूमि द्वारा उसकी उत्पत्ति हुई थी। विष्णुपुराणमें भूमि का वचन है।

यदाहमुद्धृता नाथ त्वया सूकरमूर्तिना।
त्वत्स्पर्शसंभवः पुत्रस्तदायं मेऽभ्यजायत॥

पृथ्वीके मनमें उस समय असुरका भय व्याप्त था, इसलिये भगवान्का पुत्र होने पर भी वह असुर हुआ। सत्यभामा भूमिकी ही अंशभूता शक्ति थी। अत एव उनकी अनुमतिके विना भौमासुरको मारना उचित नहीं था ऐसा विचार कर भगवान् युद्धमें उन्हें अपने साथ ले गये थे। भगवान्ने द्वारका पहुँचकर एक ही मुहूर्तमें नाना रूप धारण कर उन समस्त कन्याओंके साथ विवाह किया। परमानन्दमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्र लक्ष्मीकी अंशभूता अपनी पत्नियोंसे विहार करते उन्हें निरतिशय सुख प्रदान करते रहे। भगवान्की परम प्रेयसी ये पत्नियाँ राजभवनोंमें सैकड़ों दासियोंके रहने पर भी उनकी सेवा स्वयं अपने ही हाथोंसे किया करती थीं।

दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम्॥ ४६॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका उनसठवाँ अध्याय समाप्त।

—: ❀ :—

साठवाँ अध्याय

परिहाससे कुपित रुक्मिणीको भगवान् द्वारा सान्त्वना-प्रदान

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

कर्हिचित् सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम्।
पतिं पर्यचरद् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः॥ १॥

एक समय भगवान् श्रीकृष्ण अपने दिव्यभवनमें सुन्दर मसहरीदार पलंग-पर तकिया लगाये लेटे थे। सखी पंखा कर रही थी रुक्मिणीजी सखीके

हाथसे पंखा लेकर स्वयं ही भगवान्‌पर डुलाने लगीं। भगवान् अपना सौन्दर्य भुला, रुक्मिणीजीके अंगोंकी अनुपम शोभा निरख, आनन्दविभोर हो, मुसकरा रहे थे। रुक्मिणीजी भी भगवान्‌की ओर देखकर मुसकरा पड़ीं। भगवान्‌ने रुक्मिणीसे परिहास करते कहा—राजपुत्रि! तुम्हें विवाहके समयमें बड़े-बड़े प्रभावशाली राजा चाहते थे। वे ऐश्वर्य और धनमें तुम्हारे समान थे। उन्हें छोड़कर तुमने हमारा वरण कैसे किया यह समझमें नहीं आता? क्योंकि हम तो तुम्हारे समान हैं नहीं। देखो! हम राजाओंके भयसे घर-बार छोड़कर समुद्रमें आ बसे हैं और बलवानोंसे प्रायः हमारा द्वेष रहता है। ययातिके शापसे हम सिंहासन पर भी नहीं बैठ सकते। धनाढ्य लोग प्रायः हमें चाहते भी नहीं। जिसका अपने अनुरूप धन कुल, ऐश्वर्य, रूप और प्रभाव हो उसीसे मैत्री एवं विवाह करना चाहिये ऐसा नियम है। उत्तम-अधमका सम्बन्ध ठीक नहीं होता। हम गुणोंसे हीन हैं। भिक्षुकोंने झूठ-मूठ ही न जाने क्यों हमारी इधर-उधर प्रशंसा कर दी है?

भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा। १६।

जान पड़ता है तुमने विना विचारे ही हमारा वरण किया है। अच्छा अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। तुम अभी अपने अनुरूप किसी दूसरे राजासे सम्बन्ध कर लो तो विशेष अच्छा हो। इससे तुम्हें दोनों लोकके सुख प्राप्त हो सकेंगे। शिशुपाल, जरासन्ध आदि राजा मुझसे द्वेष रखते हैं। यहाँतक कि तुम्हारा भाई रुक्मी भी द्वेष करता है। उन सबका अहंकार चूर करनेके लिये ही मैंने तुम्हारा हरण किया था। हम सबसे उदासीन रहकर सदा अपने स्वरूपानन्दमें ही मग्न रहते हैं। हमें स्त्री-पुत्र धन आदिकी कामना नहीं रहती। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार भगवान् अपनी अभिन्नतम प्रियासे असामयिक, परिहास कर चुप हो गये। रुक्मिणीजी अपने प्रियतमकी ऐसी अश्रुतपूर्व रूखी बातें सुनकर उनका हृदय काँप उठा। वे चिन्तासे नीचे मुख किये अपने कोमल पैरसे पृथ्वी कुरेदने लगीं और उनके नेत्रोंसे अनवरत अश्रु धारा बह चली। उनका सम्पूर्ण शृङ्गार तथा सौन्दर्य जाता रहा। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। बोलनेकी शक्ति भी उनमें नहीं रही। हाथसे उनका व्यजन छूट गया। दुःख और शोकसे उन्हें मूर्छा आ गयी। वायुसे ताडित कदली-स्तम्भके समान उनका सुकोमल शरीर सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देखकर भगवान् घबरा ग । तुरंत पलंगसे उतर कर चार भुजाएँ धारण कर लीं। दो भुजाओंसे प्रियाको उठाकर अपनी छातीसे लगाया। एकसे

उनके केशोंको सँभाला और दूसरेमें उनके आँखोंके आँसू पोंछते हुए उन्होंने कहा—प्रिये ! अरे यह क्या हुआ ? क्या तुम नाराज हो गयीं ? मैं तो हँसी कर रहा था। तुमने क्या इसे सच मान लिया ? मैंने अभी तक तुम्हारा हँसता हुआ ही मुख देखा था। मुझे तुम्हारे प्रणयकोपावेशकी छविसे भरित मुखको देखनेकी सहसा इच्छा हो गयी थी। इसीसे मैंने ऐसी हँसी की। क्षमा करो देवि ! क्षमा करो।

हे भीरु ! हे भामिनि ? सुनो-सुनो, कोप न करो।

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम्।
यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥३१॥

गृहस्थ पुरुषोंको गार्हस्थ्य जीवनमें यही तो एक महान् लाभ है कि वे अपनी प्रियतमाके साथ सोल्लास प्रतिक्षण हँसी-दिल्लगी कर दिनका एक-एक प्रहर बड़े आमोद-प्रमोदके साथ विताया करते हैं। मैंने भी उसीका एक अनुकरण किया था। क्या मैं तुम्हें स्वप्नमें भी कभी छोड़नेका संकल्प कर सकता हूँ ?

हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी प्रेमभरी मधुर सरल वाणी सुनकर रुक्मिणीका प्रणयकोप शान्त हुआ। वे कुछ लज्जापूर्ण कटाक्षसे भगवान्‌की ओर निहारती हुई बोलीं—

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह यद् वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः।
क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा॥३४॥

नाथ ! आपने जो यह कहा कि मैं तुम्हारे सदृश नहीं हूँ सो ठीक ही है। अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले त्रिलोकीके अधिपति कहाँ आप और कहाँ अज्ञजनोंसे आदरणीय, त्रिगुणस्वभाववाली मैं (लक्ष्मी) ? गुणोंके कार्यभूत शब्दादि विषयोंका ही संसारमें राज्य हैं अतः वे ही राजा हैं, उनसे भक्तोंको भय होना ही मानों आपको भय है उससे आप भक्तोंके हृदयमें रहते हैं जो समुद्रके समान अगाध है। इसमें किसीके भयसे समुद्रमें जाकर बसनेकी बात ही क्या ? आपके तो भक्तजन ही राज्यको ठुकरा देते हैं तब यदि आपने राज्य छोड़ दिया तो इसमें आश्चर्य क्या ? सिंहके समान आपने जरासन्धादि शृंगालोंके बीचसे अपना भाग समझ कर मेरा हरण किया यह उचित ही था। इसके विपरीत कल्पना करना क्या आपको शोभा देता है ? आपने जिन राजाओं को पति बनानेका संकेत किया है वे उसी स्त्रीके पति हो सकते हैं जिसने अपने कानोंसे आपकी कथा न सुनी हो। मैं ऐसे अशुचि आचारहीन

पतित स्त्रीलम्पट खर-वृष-कुत्ते और विडालके सदृश पतियोंको कदापि नहीं चाहती। जैसे काशिराजकी अम्बा, अम्बिका अम्बालिका नामकी तीन कन्याओं में अम्बा राजा शाल्वको चाहती थी वैसे ही मेरा-स्वाभाविक प्रेम आपमें है। भगवान्‌ने कहा—प्रिये! ठीक है, ठीक है। यही सब सुननेके लिये तो मैंने तुमसे परिहास किया था। तुमने मेरे वचनोंका जो युक्तियुक्त अनुवाद किया उसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ उसका अनुमोदन करता हूँ। तुम्हारा प्रेम अलौकिक प्रशंसनीय है। तुम सरीखी ऐसी साध्वी पत्नीका मिलना संसारमें कठिन है। तुमने विवाहके समय संदेश देकर दूत भेजा। भाईके विरूप होनेपर पुनः अनिरुद्धके विवाहमें उसके वध किये जानेपर भी तुमने कुछ न कहा। मेरे आनेमें थोड़ा-सा विलम्ब देख शरीर छोड़नेतकका संकल्प किया। प्रिये! इन सभी बातोंसे तुमने मुझे जीत लिया है।

नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥५६॥

मैं सर्वथा तुम्हारे वशवर्ती हूँ। मुझपर कोप करना उचित नहीं। इस प्रकार भगवान् आत्माराम होते हुए भी नरलोकका अनुकरण कर सुरत सम्बन्धी मधुर-मधुर बात चीत करते अपनी अभिन्न प्रियतमाके साथ विहार करने लगे।

श्रीमद्भागवत-कथा-साप्ताहिकके दशम स्कन्धका साठवाँ अध्याय समाप्त।



इकसठवाँ अध्याय

भगवान्‌की आठों पटरानियोंके वंश—वर्णन तथा अनिरुद्धके विवाहमें बलराम द्वारा रुक्मीका वध

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! गृहस्थजीवनमें भी भगवान् श्रीकृष्णका ऐश्वर्य एवं आत्मारामता व्यक्त होती थी। उन्होंने 'दश पुत्रानाधेहि' इति श्रुतिके अनुसार प्रत्येक पत्नी में दस-दस पुत्र उत्पन्न किये, जो सर्वथा उनके अनुरूप थे। प्रत्येक पत्नी हर समय भगवान्‌को अपने समीप ही

देखती थी। वे अन्य पत्नियोंके भवनोंमें भी रहते हैं, ऐसा उन्हें ज्ञात नहीं होता था। सभी पत्नियाँ भगवान्‌के सौन्दर्य एवं बात-चीतसे विमुग्ध हो उनकी सेवामें संलग्न रहतीं थीं, किन्तु वे अपने हाव-भाव हास-विलास एवं कटाक्ष आदिके द्वारा भगवान्‌का मन क्षुभित करनेमें कभी भी समर्थ न हो सकीं।

यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥४॥

सैकड़ों दासियाँ रहने पर भी प्रत्येक पत्नी भगवान्‌की सारी सेवा प्रेमवश अपने ही हाथों किया करती थीं।

हे राजन्! अब भगवान्‌की आठों पटरानियोंके वंशका वर्णन सुनो। सर्वप्रथम विवाहित (१) रुक्मिणीके प्रद्युम्न, चारुदेष्ण आदि दस पुत्र हुए। (२) जाम्बवतीके साम्ब, सुमित्र आदि, दस (३) सत्यभामाके भानु, सुभानु आदि दस (४) कालिन्दीके श्रुत, कवि आदि, दस (५) मित्रविन्दा (शैब्या) के वृक, हर्ष आदि दस (६) नाग्नजिती (सत्या) के वीर, चन्द्र आदि, दस (७) भद्राके संग्रामजित्, बृहत्सेन आदि दस, तथा (८) लक्ष्मणा (माद्री) के प्रघोष, गात्रवान् आदि दस पुत्र हुए। भोजकट नामक पुर के निवासी रुक्मिणीके बड़े भाई रुक्मीकी कन्या रुक्मवतीसे प्रद्युम्नका विवाह हुआ। प्रद्युम्नसे अनिरुद्ध हुए। इस प्रकार श्रीकृष्णके पुत्रके भी पुत्र-पौत्र करोड़ोंकी संख्यामें हुए थे।

राजा परीक्षितने पूछा—हे मुनिवर! रुक्मीने अपने शत्रु श्रीकृष्णके पुत्रको कन्या कैसे ब्याह दी? क्योंकि वह श्रीकृष्णसे पराजित हो सदा उनकी घातमें रहा करता था।

कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते ॥ २० ॥

योगीपुरुष भूत, भविष्य, वर्तमान, दूरस्थ छिपे तथा इन्द्रियातीत सभी पदार्थोंको अच्छी तरह जानते हैं अतः आप कृपया इसे बतानेकी कृपा करें।

शुकदेवजीने कहा—राजन्! रुक्मीकी कन्या रुक्मवतीने स्वयम्बरमें साक्षात् कामरूप प्रद्युम्नका वरण किया। इसपर बलात्कार करनेको उद्यत राजाओंको जीतकर उसने कन्याका हरण किया था। रुक्मीने अपनी बहन के प्रीत्यर्थ इसमें आपत्ति नहीं की। कुछ दिनों बाद उसने बहनके स्नेहवश अपने दौहित्र अनिरुद्धको रोचना नामकी पौत्री भी ब्याह दी थी। यद्यपि यह मातुल पुत्रीका विवाह उचित न था फिर भी देश-कुलका आचाररूप धर्म होनेके कारण इसमें धर्मशास्त्रसे कोई दोष नहीं, ऐसा मनुका वचन है।

दक्षिणे मातुली कन्या ह्युत्तरे मांसभोजनम् ।
चर्मोदकं धन्वनि च न दुष्टं मनुरब्रवीत ॥
समयाचारिको धर्मो जातिदेशकुलोद्भवः ।
ग्रामाचारः परिग्राह्यः सर्वत्रैव यथोदितम् ॥
यद्यपि स्यात्स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्याकर्षणक्षमः ।
तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लङ्घयेत् ॥
स्मृति (वंशीधरी टीका)

इस प्रकार, एक कुलके देवकी-वसुदेवका, कृष्ण-सत्यभामाकी तरह चारुमती और कृतवर्माके पुत्र बलीका विवाह भी कुलधर्म होनेसे दूषित नहीं है । अथवा दूसरा समाधान-हरिवंशमें यादवोंका चन्द्र और सूर्य दोनों वंशोंमें वर्णन मिलता है । अतः भिन्न वंश मानकर परस्पर विवाहमें कोई दोष नहीं । अनिरुद्धके विवाहमें भगवान् श्रीकृष्ण सपरिवार भोजकट नगरमें गये । विवाह सम्पन्न होनेपर कलिङ्ग देशके अभिमानी राजाने रुक्मीसे कहा—आज यह बड़ा अच्छा मौका है । तुम जुएमें बलरामको जीतो । बलरामको जुआ खेलनेका तो बड़ा व्यसन है, किन्तु वे उसके मर्मज्ञ नहीं हैं । यह जान रुक्मीने बलदेवजीको बुलाकर जुआ खेलना आरम्भ किया । बलरामजीने क्रमशः सौ, हजार दस हजार सुवर्णमुद्रा दाँवपर लगाये ।

शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् ॥ २६ ॥

रुक्मीने उन्हें जीत लिया । यह देख कलिङ्गदेशका राजा दाँत खोल बड़े जोरोंसे ठट्ठा-मारकर हँसा । बलरामजीको यह हँसी सहन न हुई उन्हें अन्दरसे कुछ क्रोध हो आया । उन्होंने आवेशमें आकर एक लाखका दाँव लगा दिया और उसे जीत लिया । रुक्मीने छलकर कहा, इसे भी मैंने जीता है । अनन्तर, रामने क्षुब्ध हो, दस करोड़का दाँव लगाया । रामने धर्मपूर्वक उसे भी जीत लिया । रुक्मीने फिर कपट से कहा—यह भी दाँव तो मैंने ही जीता है । उपस्थित इन साक्षीभूत जुआरियोंसे पूछ लो । उसके इतना कहते ही तुरत आकाशवाणी हुई—यह दाँव तो बलरामने जीता है ।

तदाऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ॥ ३२ ॥

रुक्मी झूठ बोलता है ।

इसपर, आकाशवाणीका अनादर कर रुक्मीने बलदेवजीको बहुत कुछ अनुचित शब्द कह डाले साथ ही कलिङ्गदेशका राजा भी उनकी हँसी उड़ाने

लगा। अब बलरामसे न रहा गया। उन्होंने क्रुद्ध हो लौहदण्डसे रुक्मीका वहीं द्यूतसभामें वध कर दिया और भागते हुए कलिङ्ग राजाको वेगसे पकड़कर उसके दाँत ही तोड़ डाले। इस प्रकार रुक्मी (सालेके) मारे जानेपर भगवान्ने रुक्मिणी और बलरामके स्नेहवश अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं कहा। अनन्तर, वर-वधूको रथपर बैठाकर भगवान् बलराम आदिके साथ भोजकट नगरसे द्वारकापुरी लौट आये।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका इकसठवाँ अध्याय समाप्त।

—:※:※:—

बासठवाँ अध्याय

ऊषाके प्रेममें अनिरुद्धका बन्धन और पुनः विवाह

राजा परीक्षित्ने पूछा—हे महायोगिन्!

बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः।
तत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशङ्करयोर्महत्॥ १॥

अनिरुद्धने बाणासुरकी पुत्री ऊषाके साथ भी विवाह किया था। जिसमें श्रीकृष्ण और शङ्करजीका घोर युद्ध हुआ। यह प्रसंग आप विस्तार-पूर्वक कहनेकी कृपा करें। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! राजा बलिके सौ पुत्र थे, जिनमें बाणासुर सबसे ज्येष्ठ था। वह शङ्करजीका अनन्य भक्त तथा गुणवान् एवं दानशील था। शोणितपुर उसकी राजधानी थी। भगवान् शिवके वरदानसे सब देवतागण उसकी आज्ञामें रहा करते थे। उनके ही प्रसादसे उसने एक हजार भुजाएं भी प्राप्त की थीं। एक दिन ताण्डवनृत्य करते समय भगवान् शिव उसके वाद्यकौशलपर प्रसन्न हो गये। उन्होंने बाणसे वर माँगनेको कहा। वह बोला—भगवन्! आप मेरे नगर-रक्षक बन जायँ। शिवने इसे स्वीकार कर लिया। एक दिन वह मदोन्मत्त हो भगवान् शिवसे बोला—भगवन्! आपने मुझे हजार भुजाएँ दी हैं। इनमें खुजली

पड़ा करती है। त्रिलोकीमें आपसे अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा योद्धा नहीं जो मुझसे लड़ सके। एक दिन मैं युद्धकी इच्छासे पर्वतोंको चूर्ण करता दिग्गजोंसे ही लड़ने गया। पर, वे भी मुझसे भयभीय हो भाग खड़े हुए।

भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ६ ॥

शिवजीने कुछ क्रुद्ध हो उससे कहा—मूढ ! घबरा नहीं। तेरे राजभवन पर लगी ध्वजा जब स्वयं अकस्मात् गिर पड़ेगी, तब समझ लेना कि मेरे सदृश किसी वीर योद्धासे तेरा दर्पनाशक युद्ध होगा। यह सुनकर बाण प्रसन्न हो बड़ी उत्सुकतासे ध्वजा गिरनेकी प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन अकस्मात् ध्वजा गिर जाने पर वैशाख शुक्ल द्वादशीकी रात्रिमें ऊषाने स्वप्नमें अनिरुद्धको अपने साथ रमण करते देखा और अतृप्त अवस्थामें ही उसकी निद्रा भंग हो गयी। वह अपनी सहेलियोंके बीच 'कान्त' 'कान्त' कह कर चिल्ला उठी। बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डकी चित्रलेखा नामकी एक कन्या थी जो मायाप्रयोगमें बडी विशारद थी। उसने बड़े कौतूहलसे पूछा—सखि ! तुम किसे 'कान्त' 'कान्त' कहकर खोज रही थीं ? अभी तुम्हारा विवाह तो हुआ नहीं; फिर यह मनोरथ कैसा ? ऊषाने कहा – सखि ! मैंने स्वप्नमें श्यामवर्णका एक अतीव सुन्दर पुरुष देखा था जो मेरा आश्लेष कर मुझे अधरामृतका रसास्वादन करा रहा था। उससे मुझे बड़ा ही अनुपम सुख मिलता था। न जाने वह मुझे इस दशामें छोड़कर कहाँ चला गया। उसके बिना मैं क्षणमात्र भी जीवित नहीं रह सकती। वह जहाँ भी हो तुम उसे शीघ्र ले आओ। चित्रलेखाने कहा—सखि ! घबराओ नहीं। त्रिलोकीके अन्दर कहीं भी यदि तुम्हारा चित्तचोर होगा तो मैं उसे यहाँ सात दिनके अन्दर लाकर अवश्य दिखला दूँगी।

सप्तरात्रेण ते भीरु दर्शयिष्याम्यहं प्रियम्। हरिवंश पु०

तुम केवल हमें उसे बता दो। यह कहकर चित्रलेखाने देव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष-मनुज आदिके नाना चित्र बनाये। अनन्तर, मनुष्योंमें यदुवंशके उनमें भी वसुदेव, बलराम, कृष्ण आदिके चित्र लिखे। फिर प्रद्युम्नका चित्र बनाया। इनका चित्र देखकर ऊषा लज्जासे कुछ सकुचा गयी। जब अनिरुद्धका चित्र बनाया तब तो लज्जासे नीचा मुख किये मुसकराकर बोली—यही हैं—यही हैं। योगिनी चित्रलेखा इन्हें श्रीकृष्णका पौत्र जान तुरन्त आकाश मार्गसे द्वारका गयी। वहाँ सुन्दर पलंगपर सोते हुए अनिरुद्धको शय्या सहित उठाकर शोणितपुर ले आयी और वियोगसे खिन्न अपनी सखी ऊषाको उन्हें दिखा दिया।

तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्निं योगमास्थिता ।
गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥

सुन्दर वरको पाकर प्रसन्न ऊषा उनके साथ एकान्तमें विहार करने लगी। बहुत दिनोंतक इसका किसीको पता न चला। एक दिन दैवात् ऊषाके महलके रक्षकोंने उसे ऊपरसे नीचे झाँकते हुए देखा और दुश्छाद्य रति चिह्नोंसे यह निश्चित किया कि इसका किसी पर पुरुषसे सम्बन्ध हो चुका है। उन्होंने तुरन्त जाकर अपने स्वामीको इसकी सूचना दी। बाणासुर यह दूषण सुनते ही तुरन्त कन्याके अन्तःपुरमें पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि कन्या एक अतिसुन्दर पुरुषके साथ बैठी चौपड़ खेल रही है। यह देख बाणासुर स्तब्ध रह गया। उसने तुरंत सैनिकोंके साथ कमरेमें घुसना चाहा—किन्तु अनिरुद्धने लौहदण्डसे मार-मार कर सबको भगा दिया। अनन्तर, बाणासुरने नागपाश फेंककर उसे बाँध लिया। ऊषा अपने प्रियतमको इस प्रकार बन्धनमें पड़ा देख शोक और विषादसे व्याकुल हो रोने लगी।

ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥ ३५ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका बासठवाँ अध्याय समाप्त।

—:❀:—

तिरेसठवाँ अध्याय

बाणासुरका श्रीकृष्णसे युद्ध, ज्वरस्तुति तथा ऊषाका सोल्लास द्वारका-गमन

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ।
चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥

चित्रलेखा द्वारा द्वारकासे अपहृत अनिरुद्धको नहीं देखते हुए उनके बन्धुओंको वर्षाके चार मास बीत चुके थे। इस घटनासे सभी बन्धु-बान्धव शोकाकुल हो रहे थे। नारदके द्वारा अनिरुद्धका अपहरण तथा बन्धन आदिका समाचार मिलनेपर श्रीकृष्ण बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ बाणकी राजधानी

शोणितपुर गये। सेनाने नगरको चारों ओरसे घेर लिया। बाणासुर भी उतनी ही सेना लेकर युद्धस्थलमें आ पहुँचा। बाणासुरके सहायतार्थं भगवान् शिव भी नन्दीपर सवार हो गणों सहित वहाँ आ डटे। दोनों ओरसे घनघोर रोमाञ्चकारी संग्राम छिड़ गया। श्रीकृष्णका रुद्रसे, प्रद्युम्नका कार्तिकेयसे, कुम्भाण्डका बलरामसे और बाणका सात्यकिसे भीषण युद्ध होने लगा। ब्रह्मा आदि देवता भी इस युद्धको देखनेके लिये विमानोंपर चढ़कर आ गये। श्रीकृष्णने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षाकर रुद्रकी सेना भगा दी उसे मारा नहीं। अनन्तर, श्रीकृष्ण और रुद्र दोनोंने परस्पर एक-दूसरेके मन्त्रपूत अस्त्रोंको काटना आरम्भ किया। ब्रह्मास्त्रका ब्रह्मास्त्रसे, वायव्यका पार्वतास्त्रसे, आग्नेयका पार्जन्यसे एवं नारायणास्त्रका पाशुपतास्त्रसे वारण किया गया। अन्तमें, श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्र (निद्रोत्पादक) अस्त्रसे रुद्रको मोहितकर बाणकी सेनाका मर्दन आरम्भ किया। इससे घबराकर सेना संग्राम छोड़ भाग खड़ी हुई। यह देख बाणासुर सात्यकिको छोड़ श्रीकृष्णसे युद्ध करने आ पहुँचा। उसने पाँचसौ धनुषोंपर एक साथ दो-दो बाण चढ़ाये। भगवान्‌ने एक ही साथ उन सब बाणोंको काट डाला। अनन्तर, रथ सहित उसके सारथि और घोड़ोंको मारकर विजयसूचक शंख बजा दिया। उसी समय बाणकी माता कोटरा[1] खुले बाल नग्न हो युद्धमें आ गयी। उसे देख श्रीकृष्णने मुँह फेर लिया। अवसर पाते ही विरथ बाणासुर नगरमें जा घुसा। इधर भूतगणोंके भाग जानेपर रुद्रका 'माहेश्वर-ज्वर' सभी दिशाओंको जलाता युद्धक्षेत्रमें आ पहुँचा। श्रीकृष्णने उसके वारणार्थं वैष्णव-शीतज्वरका प्रयोग कर दिया। दोनों परस्पर भिड़ गये, अन्तमें वैष्णव-ज्वरके आक्रमणपर पीड़ित हो माहेश्वर-ज्वर चिल्लाने लगा। उसने चार श्लोकोंसे भगवान्‌की स्तुति की। दो से अध्यारोप और अपवादके द्वारा ज्ञेय ब्रह्मस्वरूप भगवान्‌को प्रणाम कर उनके शरणागत हुआ। एकसे भूभारहरणार्थं इस अवतारका प्रयोजन बताया एवं अन्तिम श्लोकसे तापनिवृत्तिके लिये प्रार्थना की। श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर उससे कहा—

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम्।
यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न[2] भवेद्भयम्॥ २६॥

---

१. इयं काचिद् देवी पार्वत्या मूर्तिर्दैत्योपास्या बाणस्य मातृत्वेनोक्ता सैव बाणं ररक्षेति हरिवंशे। विष्णुपुराणे तु मन्त्रमयी कुलदेवतेत्युक्तम्।

२. भवेदिति लिङ् विधिर्दर्शितः। त्वया भयं नोत्पादनीयमित्यर्थः।

तीन सिर वाले हे ज्वर ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। अब हमारे ज्वरसे तुम्हारा भय दूर हो जायगा। जो मनुष्य श्रद्धा भक्तिसे हम तुम दोनोंका यह संवाद स्मरण करेगा अथवा सुनेगा, उसे कभी तुमसे भय न होगा। भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर माहेश्वर-ज्वर उनको प्रणाम कर चला गया। बाणासुर पुनः पूरी तैयारीके साथ युद्धमें आ डटा और क्रोधमें भर अपनी हजार बाहुओंसे भगवान्‌पर नाना-प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा। भगवान्‌ने अपने तीक्ष्ण चक्रसे वाणासुरकी भारभूत भुजाएँ शाखाकी तरह काटना प्रारम्भ कर दिया। यह देख भगवान् शिवने बारह श्लोकों द्वारा श्रीकृष्णके विराट् रूपकी स्तुति की और अन्तमें वाणासुरको अभयदान देनेकी प्रार्थना की।

श्रीकृष्णने कहा—भगवन् ! आपने इसके विषयमें जो निश्चय किया है या जो वरदान दिया है, उसका मैं सहर्ष अनुमोदन करता हूँ। प्रह्लादको दिये गये वरदानके अनुसार यह मुझसे भी अवध्य होगा। इसके दर्पको नष्ट करनेके लिये मैंने इसकी भुजाओंका छेदन किया और इसके बलका भी नाश किया जो पृथ्वीको भारभूत हो रहा था। शेष बची हुई इसकी चार भुजाएं अजर-अमर अर्थात् श्रम रहित और अच्छेद्य हो जायेंगी। यह असुर आपके पार्षदोंमें मुख्य होगा और किसीसे भी इसको भय न होगा। इस प्रकार अभयदान प्राप्त कर वाणासुर भगवान्‌को प्रणाम कर अपने राजभवन चला गया और वहांसे ऊषाके साथ अनिरुद्धको रथपर बैठाकर बड़े आदरसे भगवान्‌के समीप ले आया।

प्राद्युम्निं रथमारोप्य [1]सवध्वा समुपानयत् ॥ ५० ॥

अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण रुद्रकी अनुमतिसे पत्नी सहित अनिरुद्धको द्वारका ले आये। नागरिकोंने आगे आकर गाजा-बाजाके साथ उन सबका बड़ा स्वागत सत्कार किया।

य एवं कृष्णविजयं शङ्करेण च संयुगम्।
संस्मरेत् प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात् पराजयः ॥ ५३ ॥

जो मनुष्य प्रातः-काल उठकर श्रद्धा-भक्तिसे वाणासुरके साथ संग्राममें श्रीकृष्णकी विजय एवं शंकरजीके साथ युद्धके वृत्तान्तका स्मरण कीर्तन या श्रवण करता है उसकी कभी शत्रुसे पराजय नहीं होती।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका तिरेसठवाँ अध्याय समाप्त।



[मासिक पारायणका चौबीसवाँ विश्राम]

१. स-सहेत्यर्थे 'क्वचिदादेशोऽप्यादेशित्वेन गृह्यते' इति वैयाकरणाः।

चौंसठवाँ अध्याय

ब्राह्मणका धन ग्रहण करने पर राजा नृगको गिरगिटकी योनि प्राप्त और पुनः उसका उद्धार

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

एकदोपवनं राजन् जग्मुर्यदुकुमारकाः[1] ।
विहर्तुं साम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥

एक समय यदुवंशी राजकुमार साम्ब, प्रद्युम्नादि क्रीडा करनेकी इच्छासे उपवनमें गये । वहाँ चिरकाल तक खेलते-खेलते उन्हें प्यास लग गयी । वे जलका अन्वेषण करते हुए दैवात् एक कुएँपर जा पहुंचे । उस कूपमें जल तो था नहीं वहाँ पड़ा हुआ एक पर्वताकार गिरगिट देखा । उसे देख वे सभी आश्चर्यसे चकित हो उठे । बालकोंने दयावश उसे चर्म और तन्तु आदि की रस्सियोंसे बाँधकर बाहर निकालनेका बहुत प्रयास किया, किन्तु, वह निकल न सका । तब बालकोंने कुतूहलवश यह समाचार भगवान्से जाकर कहा । भगवान्ने वहाँ आते ही बायें हाथसे पकड़कर उसे तत्काल बाहर निकाल दिया ।

स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ।
सन्तप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालङ्करणाम्बरस्रक् ॥ ६ ॥

वह गिरगिट उत्तमश्लोक भगवान्के करस्पर्शमात्रसे तुरत उस निकृष्ट योनिसे मुक्त हो देवरूपमें प्रकट हो गया । उसका शरीर सुवर्णके समान चमक रहा था । वह दिव्य आभूषण, वस्त्र तथा मालाएँ धारण किया था । सब कुछ जानते हुए भी भगवान्ने अन्य लोगोंकी जानकारीके लिये उससे अनजानकी तरह पूछा—हे महाभाग ! सुन्दररूप वाले तुम कौन हो ? किस कर्मसे तुम्हें यह निन्दित योनि प्राप्त हुई ? तुम तो कोई उत्तम देवतासे, मालूम पड़ते हो । यदि उचित समझो तो हमें भी इसका कारण बता दो ? भगवान्के इस प्रकार पूछनेपर उस दिव्य पुरुषने भगवान्को प्रणाम कर कहा—भगवन् ! मैं इक्ष्वाकुका पुत्र दानियोंमें विख्यात राजा नृग हूँ, सम्भव

---

१. साम्बादीनां यौवनसम्पन्नत्वेऽपि क्रीडासक्तत्वात्कुमारशब्दप्रयोगः । कुमार-प्राचुर्याद्वा । कौमारं पञ्चमाब्दान्तम्' इत्युक्तेः ।

है, दानियोंकी गणना होनेपर मेरा नाम भी आपके कानों तक पहुँचा हो, यद्यपि आप सब जानते हैं; फिर भी आपकी आज्ञाका पालन कर अपनी दुर्गतिका कारण बताता हूँ।

यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः।
यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः ॥ १२ ॥

पृथ्वीमें बालूके जितने कण हैं, आकाशमें जितने तारे हैं और पृथ्वीपर वर्षाकी जितनी बूंदें गिरती हैं, उतनी गौएँ मैंने दान की थीं। ऐसा यथाश्रुत अर्थ करनेसे तो इतनी गौओंका संसारमें समाना असम्भव होगा। अतएव इसका उचित अर्थ आचार्योंने इस प्रकार किया है—'सिकता' शब्द 'द्वीप' का वाचक है जिनकी संख्या सात है। अकार प्रश्लेषकर अदिवि (मर्त्यलोक) भारतवर्षमें तारनेवाली नदियोंकी संख्या ४५ है। 'वर्षधार' शब्द 'पर्वतका वाचक है, जो २७ है। 'अङ्कानां वामतो गतिः' इसके अनुसार यह संख्या २७४५७ सत्ताइस हजार चार सौ सत्तावन होती है। इतनी ही दुधार सवत्सा गौएँ नाना वस्त्र आभूषण और मालाओंसे सुसज्जित कर मैंने दान की थीं। वे गौएं कपिला थीं। वाराह पुराणमें दस प्रकार की कपिला गौओंका उल्लेख पाया जाता है। १ सुवर्णपिङ्गला, २-गौरपिङ्गला, ३-रक्ताक्षी, ४-गूढपिङ्गला, ५-बहुवर्णा, ६-श्वेतपिङ्गला, ७-श्वेतपिङ्गाक्षी, ८-कृष्णपिङ्गला, ९-पाटला और १०-पुच्छपिङ्गला। ये सभी गौएँ संसारसागरसे मनुष्यको पारकर देती हैं।

स्वलङ्कृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः।
तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥१३॥

जो तिलकचन्दनादिसे अलङ्कृत हैं, शून्यमस्तक नहीं हैं। गुण (सन्तोष) तथा शील सच्चरित्रसे सम्पन्न हैं। अर्थाभावसे जिनके कुटुम्बको क्लेश है अर्थात् गृहस्थ हैं, सत्य जिनका व्रत है, तपस्यासे विख्यात तथा अध्यापनशील हैं, ऐसे युवा अवस्थाके सत्पात्र ब्राह्मणोंको मैंने गौएँ प्रदान की थीं। इससे यह सूचित होता है कि कटुभाषी, सत्यशौचादिसे हीन, धनी, अगृहस्थ, दाम्भिक, जप-तप अध्यापनसे हीन, वृद्ध ब्राह्मण, तथा ब्राह्मणेतर, ये सभी गोदानके पात्र नहीं हैं।

हे भगवन् ! केवल गौएं ही नहीं, साथमें मैंने वृष, पृथ्वी, सोना, चाँदी, गृह, हाथी, घोड़ा, वस्त्र-आभूषण, कन्या, दासियां और शय्या आदि नाना प्रकारकी

सामग्री भी प्रदान की थी। किन्तु, एक दिन दैवयोगसे किसी एक प्रतिग्रह-शून्य ब्राह्मणकी गौ घूमते हुए मेरे गोधनमें आ मिली। मुझे इसका ज्ञान न था मैंने अपनी समझ कर उसे एक ब्राह्मणको दान कर दिया। मया दत्ता द्विजातये। वह उसे ले ही जा रहा था कि गौका वास्तविक स्वामी अपनी गौ खोजते आ निकला। मार्गमें दोनोंकी भेंट हो गयी। वास्तविक स्वामीने प्रतिग्रहीसे कहा—यह तो गौ मेरी है। प्रतिग्रही ब्राह्मणने कहा मुझे तो राजा नृगने अभी दानमें दी है। दोनों ब्राह्मण विवाद करते मेरे पास पहुँचे। एकने मुझे दाता कहा और दूसरेने 'अपहर्ता'। यह सुनकर मेरा चित्त भ्रान्त हो गया।

भवान् दाताऽपहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद् भ्रमः ॥ १८ ॥

मैंने दोनों ब्राह्मणोंके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना की और फिर वास्तविक स्वामीसे कहा—भगवन्! मैं आपको इस गौ के बदले इससे भी अधिक दुधार सुन्दर एक लाख गौएँ देता हूँ, आप कृपाकर इसे छोड़ दें। किन्तु उसने यह स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वह राजप्रतिग्रह लेना नहीं चाहता था और राजा आग्रह करता था अतः वह प्रतिग्रहके भयसे अपनी गौको छोड़ कर चला गया। प्रतिग्रही ब्राह्मण भी उसे छोड़ दूसरी गौ लेना नहीं चाहता था। मेरे द्वारा गौ छुड़ानेका आग्रह देख वह भी अपनी दानकी गौ छोड़कर चल दिया। दैवात् इसी बीच मेरी मृत्यु हो गयी। मैं यमदूतोंद्वारा यमलोक पहुँचाया गया। वहाँ धर्मराजने मुझसे पूछा—राजन्! तुम्हारे दान और धर्मका अन्त नहीं है। पाप बहुत थोड़ा-सा है। बतलाओ, पहले किसका फल भोगना चाहते हो? मैंने कहा- धर्मराज! पापका! इसपर, मैं तत्काल वहाँसे गिरा और गिरगिट की योनिमें आ गया। आपकी कृपासे मेरी वह स्मृति आजतक नष्ट नहीं हुई।

हे राजन्! अन्तमें, राजा नृगने एक श्लोकसे भगवान्के दर्शनकी दुर्लभता बताकर तीन श्लोकोंसे भगवान्को प्रणाम किया। पुनः परिक्रमा कर उनकी आज्ञासे विमानपर आरूढ़ हो वह भगवद्धामको चला गया। अनन्तर भगवान्ने राजाओंको शिक्षा देते हुए अपने परिवारके लोगोंसे कहा—बन्धुओ! ब्राह्मणका अपहरण किया गया थोड़ा भी धन तेजस्वी पुरुष भी नहीं पचा सकता तो साधारणकी बात ही क्या? मैं हालाहल (अमोघविष) को विष नहीं मानता जिसकी संसारमें प्रतिक्रिया हो सकती है। असली विष तो ब्रह्मस्व कहा गया है जिसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं। भौतिक विष केवल भोक्ताका नाश करता है

और ब्रह्मस्वरूपी विष समूल कुलका नाश कर डालता है। भूलकर भी कभी मेरे पास ब्रह्मस्व न रह जाय, जिसकी इच्छामात्रसे मनुष्य अल्पायु हो जाता है, शत्रुसे पराजित होता है, राज्यसे च्युत होता है, और मरनेके बाद वह दूसरेको उद्विग्न करनेवाली सर्पयोनिमें जाता है।

कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः। ३८।

अधिक क्या कहें, ब्रह्मस्वका अपहरण करनेवाले कुम्भीपाक नरकमें डालकर पकाये जाते हैं। विना अनुज्ञाके लेनेपर ब्रह्मस्व तीन पीढ़ी और बलात्कारसे लेनेपर दस पीढ़ी पूर्वकी और दस पीढ़ी बादकी भी नष्ट कर डालता है।

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥ ३९॥

अपने या दूसरेके द्वारा दी गयी ब्राह्मणोंकी वृत्तिका जो मनुष्य हरण करता है वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है। यदि ब्राह्मण अपराधी हो तो भी तुम उससे द्रोह न करना। वह तुम्हें गाली दे, मारे, शाप दे, तो भी तुम लोग उन्हें नमस्कार ही करना; जैसे मैं त्रिकालमें किया करता हूँ, जो इससे विपरीत करेगा, उसे मैं स्वयं दण्ड दूँगा। देखो, भूलमें ब्राह्मणका धन लेनेसे राजा नृगकी कैसी दुर्गति हुई। इस प्रकार भगवान् द्वारकावासियोंको यह अमूल्य उपदेश देकर अपने राजभवनमें चले गये।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका चौंसठवाँ अध्याय समाप्त

—: ❀ :—

पैंसठवां अध्याय

बलरामजीका गोकुलमें विहार तथा मदावेशमें क्रीडार्थं यमुनाका आकर्षण

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्!

बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः।
सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम्॥ १॥

एक दिन बलरामजी भगवान्‌की अनुमतिसे अपने सुहृद् बन्धुओंको देखने नन्दजीके गोकुलमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने पिता-माता नन्द-

यशोदाको प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए बलरामजीको गोदमें बैठाकर प्रेमाश्रुओंसे उनका चिरकाल तक अभिषेक किया और अपने बन्धु-बान्धवोंका कुशल समाचार पूछा। बाद उनके आनेका समाचार सुनकर व्रजके गोप एवं गोपियाँ उनसे मिलने आयीं। बलरामजी सबसे प्रेमपूर्वक मिले। इसी प्रसंगमें गोपियोंने हँसकर पूछा—महाराज! बताओ तो सही, इस समय नागरिक स्त्रियोंके प्रेमपात्र बने श्रीकृष्ण सुखसे तो हैं न? क्या कभी अपने माता-पिता या हमारी भी सेवाओंका स्मरण करते हैं? क्या कभी एक बार भी हम लोगोंको देखने यहाँ आ सकेंगे? क्या कहें वे तो बड़े कठोर निकले। जिनके कारण हमने अपने माता-पिता भाई-बन्धु सारा परिवार छोड़ा। फिर भी वे हमें छोड़कर चले गये। इनकी निष्ठुरताको हम क्या कहें। आश्चर्य है। चतुर नागरिक स्त्रियाँ उनका कैसे विश्वास करती होगीं। इस प्रकार गोपियाँ भगवान्‌का मधुर हास, प्रेम-निरीक्षण मीठी-मीठी बातचीत तथा प्रेमालिङ्गनका स्मरण कर बिकल हो रोने लगीं। मनानेमें चतुर बलरामजीने बड़े चातुर्यसे हृदयस्पर्शी गुह्यसंदेशों द्वारा उन्हें सान्त्वना दी और कहा तुम चिन्ता न करो। प्रेमसे भगवान्‌का अनवरत स्मरण करती रहो। वे सर्वत्र विद्यमान हैं। तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करेंगे। इसमें सन्देह नहीं। यह सुन गोपियोंको बड़ी सान्त्वना मिली। उन्हें प्रेमावेशमें या स्वप्नमें कभी-कभी भगवत्सान्निध्यका अनुभव हुआ करता था। बलरामजी चैत्र और वैशाख दो मास व्रजमें रहे। रात्रिमें चन्द्रमाकी दिव्य कान्तिसे धवल यमुनाके सावरण-कुञ्जोंमें अपनी पत्नियोंके साथ उनका मनोरम विहार चलता रहा।

यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः। १८।

इस अवसरपर वरुणदेवने वारुणी अप्राकृत (मदिरा) देवीको आदेश दिया। उसने वृक्ष-कोटरोंसे प्रवाहित होकर संपूर्ण वनको मदिराकी दिव्य सुगन्धसे सुवासित कर दिया। उस सौरभसे मदमत्त हो बलरामजीने अपनी पत्नियोंके साथ जलक्रीडा करनेके हेतु यमुनाजीका आवाहन किया। पर, वे उन्हें मत्त जानकर आयीं नहीं। इसपर क्रुद्ध हो बलरामजीने हलके अग्रभागसे उन्हें खींचा। इस आकर्षणसे यमुनाजी कुछ घबरा-सी गयीं और उन्होंने उनके चरणोंमें गिरकर उनसे क्षमा-याचना की, अनन्तर बलरामने स्त्रियों सहित यमुनामें उतरकर यथेच्छ जल-विहार आरम्भ किया। दो मासतक रात्रिमें लगातार इसी प्रकार दिव्य-लीलाएँ होती रहीं, किन्तु स्त्रियोंको यही ज्ञात हुआ कि अभी एक ही रात बीती है। कारण उन्हें प्रत्येक रात्रिमें नवनवायमान

अनुपम सुरतसम्बन्धी सुख का अनुभव हुआ करता था। हे राजन्! हलद्वारा खींची जानेके कारण उस मार्गसे बहती हुई यमुना बलरामका अपार बल सूचित करती हुई आज भी कुछ टेढ़ी-सी प्रतीत हो रही है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका पैंसठवाँ अध्याय समाप्त।

—: ❀ :—

छियासठवाँ अध्याय

राजा पौण्ड्रकका वध, कृत्यासे सुदक्षिणाका नाश तथा सुदर्शन चक्रसे काशीपुरीका दाह

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्!

नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप।
वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत्॥ १॥

बलरामजीके गोकुल जानेपर एक दिन करूषदेश (मीरजापुर) के अधिपति विवेकहीन राजा पौण्ड्रकने श्रीकृष्णके पास एक दूत भेजा। वह मूर्खोंके बहकावेमें आकर अपनेको ही वासुदेव मानने लगा था। दूतने द्वारकामें जाकर सभामें सिंहासनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णसे निवेदन किया—महाराज! राजा पौण्ड्रककी सूचना है कि प्राणियोंपर दयाकर केवल एक मैंने ही वासुदेव रूपमें अवतार लिया है। आप अपना मिथ्या कल्पित वासुदेव नाम छोड़ दें और अभिमान वश जो आपने मेरे शंखचक्रादि चिह्न धारण किये हैं उन्हें त्यागकर शीघ्र मेरी शरणमें आ जायँ, अन्यथा मुझसे युद्ध करें।

हे राजन्! अल्पबुद्धि महामूर्ख पौण्ड्रकका ऐसा असम्बद्ध अनुचित सन्देश सुनकर उग्रसेन आदि सभी सभासद् एक साथ जोरोंसे हँस पड़े। भगवान्ने हास-परिहासके बाद दूतसे कहा—जाओ! तुम उस मूर्खसे जाकर कह देना। कि जिन मूर्खोंकी सलाहसे वह मुझे मिथ्या चिह्न धारण करनेवाला समझ बैठा है, मैं उन चिह्नोंको शीघ्र ही उसपर एवं उसके अनुयायी साथियोंपर छोड़ूँगा। वह मरकर उल्टे मुख युद्ध-भूमिमें गिरेगा और चील, गिद्ध कौए बटेर आदि मांसभोजी पक्षी उसका मांस नोच-नोचकर खायेंगे। तब उसे कुत्तोंकी शरण मिलेगी।

भवित शारणं शुनाम् ॥ ६ ॥

तुम उससे जाकर स्पष्ट कह देना कि वह मरनेकी तैयारी कर ले। दूतने वहाँ जाकर अपने स्वामीसे आक्षेपपूर्ण यह सारा समाचार कह सुनाया। भगवान् श्रीकृष्ण रथपर चढ़कर तुरन्त काशीके समीपस्थ मीरजापुर जा पहुँचे। पौण्ड्रक भी श्रीकृष्णका यह उद्योग देख तत्काल दो अक्षौहिणी सेना लेकर युद्धके लिये निकल पड़ा। उसकी सहायता करने काशिराज भी तीन अक्षौहिणी सेना सहित युद्धके मैदानमें आ डटे। भगवान् श्रीकृष्ण पौण्ड्रकका वनावटी अपने सदृश वेष देखकर बड़े जोरसे हँसे। उसी समय शत्रुओंने भगवान्पर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। भगवान्ने चक्र द्वारा बड़े लाघवसे क्षणमात्रमें शत्रुओंकी सेना काट-काट कर पृथ्वीपर बिछा दी। अनन्तर तीक्ष्ण वाणोंसे पौण्ड्रकको भी विरथ कर चक्रसे उसका सिर काट डाला। साथ ही काशिराजका भी सिर काटा गया। वह राज-दरवाजेपर जा गिरा। रणभूमिमें भयङ्कर श्मशानका दृश्य उपस्थित हो गया। यह दुःखद समाचार सुन रानियाँ सिर धुन-धुनकर तथा छाती पीट-पीटकर रोने लगीं। काशिराजके पुत्र सुदक्षिणने शिवकी उपासनासे वरदान प्राप्त कर दक्षिणाग्निमें श्रीकृष्णके निमित्त मारण-प्रयोग कराया। उससे तत्काल अग्निकुण्डसे मूर्तिमान् अग्नि कृत्याके रूपमें प्रकट हो गयी। वह हाथमें त्रिशूल लिये नेत्रोंसे अंगारे उगलती द्वारकाकी ओर बड़े वेगसे चल पड़ी। उसे देख द्वारकावासी भयभीत हो त्राहि-त्राहि करते भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें पहुँचे। भगवान्ने उसे महेश्वरकी कृत्या जान उसके विनाशार्थ चक्रको आदेश दिया। चक्रने जाकर कृत्याके मुखको भग्न कर दिया। वह वहाँसे लौट पड़ी और काशीमें आकर उसने मारण-प्रयोग कराने वाले यजमान सुदक्षिणको ऋत्विजोंसहित भस्म कर डाला। अनन्तर, चक्रने मारण-प्रयोगसे दूषित वाराणसीको भी जलाकर शुद्ध किया और फिर वह भगवान् श्रीकृष्णके समीप लौट आया।

भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत् कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४२ ॥

जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर श्रद्धाभक्तिसे भगवान्के इस पराक्रम जनित संवादको सुनता है या सुनाता है वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका छियासठवाँ अध्याय समाप्त

●

सड़सठवाँ अध्याय

बलरामकी मनोरम क्रीडामें विघ्नकारी महाबली द्विविद बानरका वध

राजा परीक्षित्‌ने कहा—हे मुने! अनन्त बलशाली बलरामजीने और भी जो विलक्षण चरित्र किये हैं उन्हें सुननेकी मुझे प्रबल इच्छा हो रही है, कृपया आप उनका वर्णन करें। इसपर शुकदेवजीने कहा—हे राजन्!

नरकस्य सखा कश्चिद् द्विविदो नाम वानरः।
सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान्॥ २॥

द्विविद नामका वानर भौमासुरका एक अभिन्न सखा था। रामावतारमें वह सुग्रीवका मन्त्री एवं मैन्दका पराक्रमी भाई था। वह लङ्कामें गुप्तरूपसे रात्रिके समय जाकर राक्षसियोंसे दुर्व्यवहार करता था। यह जान श्रीरामने उसे अपनी सेनासे निकाल दिया था। प्रार्थना करनेपर भगवान्‌ने उससे कहा—द्वापरमें बलरामजी द्वारा तू मृत्यु प्राप्तकर पुनः स्वर्गलोक चला जायगा। वही द्विविध वानर अपने मित्र भौमासुरका बदला चुकानेकी इच्छासे द्वारकाके समीपवर्ती प्रदेशोंको नष्ट करनेके हेतु उनमें आग लगा देता। नगरोंपर बड़ी बड़ी चट्टानें डालकर उन्हें चूर्ण कर देता। एक दिन वह समुद्रके बीचमें खड़ा हो गया और अपनी विशाल भुजाओंसे उसका जल उछाल कर किनारेकी बस्तियाँ डुबाने लगा। उसमें दस हजार हाथियोंका बल था। कभी-कभी वह ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर उनके वृक्ष भी ढहा देता। कुण्डोंकी अग्निको प्रायः मल-मूत्रसे दूषित करता। स्त्री-पुरुषोंको पर्वतकी कन्दराओंमें बन्द कर देता। ऐसे ही और भी नाना प्रकारके वह उपद्रव किया करता था। एक दिन वह मधुर गानकी ध्वनि सुन कर रैवतक पर्वतपर जा पहुंचा। वहाँ उसने स्त्रियोंके बीच मन्दोन्मत्त बलरामजीको बैठे देखा। स्त्रियोंका समूह देखकर द्विविद वानर किलकारियाँ मार स्त्रियोंको घुड़की देता हुआ वृक्षोंको हिलाने लगा तथा अपनी जातिका 'खों-खों' शब्द कर भृकुटी चलाने लगा। स्त्रियाँ उसकी इन क्रियाओंसे हँस पड़ीं। बलरामजीने यह देख उसे एक पत्थरसे मारा। वह पत्थरका वार बचाकर

उनके मदिराका कलश हीं उठा कर ले गया और उसे फोड़कर स्त्रियोंके वस्त्र फाड़ने लगा। इस प्रकार द्विविदने धृष्टतापूर्वक वलरामका तिरस्कार किया।

निर्भिद्य कलशं दुष्टो वासांस्यास्फालयद् वलम्।
कदर्थीकृत्य वलवान् विप्रचक्रे मदोद्धतः ॥१५॥

यह देख वलरामजीको उसपर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने उसे मारनेके लिये हल और मूसल उठाये। द्विविदने भी एक विशाल शालका वृक्ष उखाड़ कर बड़े वेगसे उनके मस्तकपर फेंका। बलरामने उसे आते ही हाथसे पकड़ मूसलसे चूर-चूर कर डाला। फिर उसने दूसरे वृक्षसे प्रहार किया, फिर तीसरेसे किया फिर चौथे से इस प्रकार वृक्षोंको उखाड़-उखाड़ उनसे युद्ध करते-करते उसने वह सम्पूर्ण वन ही वृक्षशून्य कर दिया।

निर्वृक्षमकरोद् वनम् ॥२२॥

अनन्तर वलरामजीने उसके मस्तकपर मूसलका प्रहार किया जिससे रक्तकी धारा बह चली। द्विविदने भी क्रुद्ध हो बलरामकी छातीपर घूँसोंसे प्रहार किया। वलरामजीने उसे पकड़ उसके गलेके अगल-वगलकी हड्डियाँ ही तोड़ डालीं। वह व्यथित हो मुखसे रक्त उगलता हुआ धड़ामसे पर्वतपर गिर पड़ा और तत्काल मर गया। उसके गिरनेसे वृक्ष एवं झरनोंसहित सम्पूर्ण पर्वत कम्पित हो उठा। देवतागण इससे प्रसन्न हो जय-जयकारकी ध्वनि कर आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे। शुकदेवजी कहते हैं, हे राजन्! इस प्रकार, बलरामजी जगत्का विनाश करनेवाले महाबली द्विविद वानरका वधकर अपने नगरको लौट गये।

संस्तूयमानो भगवान् स्वजनैः पुरमाविशत् ॥२८॥

यद्यपि यह वलरामजीका चरित्र यमुनाकर्षणके बाद ही प्रसङ्गतः कहना उचित था किन्तु पौण्ड्रकवध द्विविधके पूर्व हुआ था अतः उसे बीचमें कहना पड़ा।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका सड़सठवाँ अध्याय समाप्त।

—:※:—

अड़सठवाँ अध्याय

साम्बके बन्धनमें बलरामजी द्वारा हस्तिनापुरका आकर्षण

शुकदेवजी वोले—हे राजन् !

दुर्योधनसुतां राजन् लक्ष्मणां समितिञ्जयः ।
स्वयंवरस्थामहरत् साम्बो जाम्बवतीसुतः ।। १ ।।

एक समय जाम्बवतीके पुत्र साम्वने दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाका स्वयम्वरके वीचसे हरण किया। यह देख, कौरवगण कुपित हो उठे और वोले—अरे ! यह लड़का तो बड़ा ही उद्दण्ड प्रतीत होता है। इसने हम लोगोंको नगण्य समझ कर वलपूर्वक इच्छारहित कन्या का हरण किया। इसे पकड़ कर वाँध लो। यादवगण हमारा क्या कर सकेंगे। वे तो हमारे प्रसादसे ही प्राप्त पृथ्वीका उपभोग कर रहे हैं। यदि पुत्रका वन्धन सुनकर वे युद्ध करने आयेंगे भी तो हम उनका मद चूर-चूर कर डालेंगे। ऐसा निश्चय कर भीष्म, कर्ण, दुर्योधन आदि छः महारथियोंने मिलकर उस बालकका पीछा किया। साम्ब उन्हें पीछे आते देख अकेला ही सिंहके समान उनके सामने डट गया तस्थौ सिंह इवैकलः[1]। कौरवगण उसपर वाणोंकी वर्षा करने लगे। वाणोंसे ताडित साम्वने भी उन्हें क्षुद्र मृगके समान समझ कर पृथक्-पृथक् एक ही साथ सबको वाणोंसे वींध डाला। साम्वके इस अद्भुत पराक्रमकी सभी वीर प्रशंसा करने लगे। अनन्तर चार महारथियोंने उसके ४ घोड़े, एकने सारथि और एकने साम्वका धनुष काट डाला। इस प्रकार कौरवोंने वड़ी कठिनाईसे उसे विरथ कर बाँध लिया और अन्यायसे विजयी वन लक्ष्मणासहित पुरमें आ गये। नारद द्वारा साम्वके वन्धन का यह समाचार सुनकर यदुवंशी वड़े कुपित हुए और उग्रसेनके आदेशसे युद्धकी तैयारी करने लगे। यह स्थिति देख वलरामजी सबको सान्त्वना देते हुए समझौतेके लिये कुछ ब्राह्मणोंको साथ ले हस्तिनापुर गये। वहाँ जाकर नगरके बाहर ही एक वगीचेमें ठहर गये। बाद कौरवोंका अभिप्राय जाननेकी इच्छासे उद्धवको धृतराष्ट्रके समीप भेजा, उन्होंने वहाँ जाकर वलरामके आगमनका समाचार सुनाया। उसे सुनते ही वे सब वड़े प्रसन्न हुए और नाना प्रकारकी भेंट तथा पूजा-सामग्री साथ लेकर उनके समीप मिलने गये। वहाँ पहुंचकरव लरामजीको प्रणाम कर उनका विधिवत्

---

१. एक एव एकल । स्वार्थे लः । यद्वा—एकान् प्रधानानपि लुनाति छिनत्तीति एकलः लुनातेर्दः । शूरतम इत्यर्थः ।

पञ्चोपचारसे पूजन किया और परस्पर कुशल-मंगल पूछकर पासमें बैठ गये। बलरामने कहा—देखो, आजकल तुम लोगोंके प्रशासक महाराजा उग्रसेन हैं। वे जो कुछ भी आज्ञा करें, उसका तुम सब एकमतसे पालन करो। इसमें अन्यथा न हो। तुम सब लोगोंने मिलकर अधर्मसे जो अकेले लड़केको पकड़ रखा है, यह बहुत ही अनुचित किया है। बन्धुओंमें परस्पर एकता बनी रहे, किसी प्रकारका विघटन न हो, इसी भावनासे मैंने तुम्हारा यह अन्याय पूर्ण व्यवहार सह लिया। तुम बालकको अविलम्ब छोड़ दो, अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं। यह सुनते ही कौरव कुपित हो उठे और बोले—

अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया[१]।
आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥ २४ ॥

अहो! बड़ा आश्चर्य है! कालकी गति जानी नहीं जाती। वह बड़ा दुरतिक्रमणीय है, देखो तो सही, आज पैरका जूता मुकुटमण्डित सिरपर चढ़ना चाहता है। कुन्तीसे विवाह कराकर हमने इन्हें अपना सम्बन्धी बनाया, राजसिंहासन दिलाया, अपनी समानता दी, नाना प्रकारके राजोचित भोगोंसे सम्पन्न किया और आज ये निर्लज्ज हमपर ही आज्ञा चलाने लगे? हमारी इच्छाके बिना तो इन्द्र भी किसी एक वस्तुका भी उपभोग नहीं कर सकते फिर यादवोंकी तो गिनती ही क्या? अब तो इनसे राज्यचिह्न भी छीन लेना उचित होगा। हे राजन्! इस प्रकार कौरवगण असभ्यतापूर्ण कटुवचन बलरामको सुनाकर पुरमें लौट गये।

आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥ २६ ॥

बलरामजी कौरवोंका ऐसा नीचतापूर्ण व्यवहार देख कुपित हो उठे और कहने लगे, अरे ये नाना प्रकारके मदोंसे उन्मत्त दुष्ट शान्तिसे माननेवाले नहीं हैं। इन्हें तो पशुओंकी तरह दण्ड देना ही उचित होगा।

नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्तिं नेच्छन्त्यसाधवः।
तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ॥ ३१ ॥

---

१. दुरत्यया दुरतिक्रमणीया कालगत्या कालगतिः प्रथमान्तम्। 'सुपां सुलुक्' इति सोर्डचादेशः। तृतीयान्तपक्षे तु दुरत्यययेति स्यात्। यद्वा। अत्युपसर्गादिण् धातोः अत्येतीति अत्यो नाशः, दुर्गतोऽत्यो यस्याः सा दुरत्या तया। वस्तुतस्तु एतत्क्लिष्टकल्पनापेक्षया दुरन्तया इत्येव पाठः सम्यक् इति वंशीधरी।

आश्चर्य है! इनकी दी हुई पृथ्वीका हम लोग उपभोग करते हैं। हम पैरके जूता और ये सिर हैं। कौन समर्थ शासक ऐसे नीच अहंकारियों की असम्बद्ध रूक्ष वाणी सुन सकेगा? आज मैं पृथ्वीको कौरवोंसे शून्य कर डालूंगा। ऐसा कह वे क्रुद्ध हो हल उठाकर खड़े हो गये और उससे हस्तिनापुरको खींचकर गंगामें ढहानेके लिये उद्यत हुए। इस क्रियासे सारा नगर नौकाके समान डगमगाने लगा। यह देख कौरव भयभीत हो घबरा उठे और वर-वधू साम्ब तथा लक्ष्मणाको आगे कर बालबच्चों सहित सकुटुम्ब उनके चरणोंपर आ गिरे और त्राहि-त्राहिकी पुकार करने लगे। परम दयालु बलरामजीने प्रसन्न हो उन्हें अभय दान देकर छोड़ दिया। अनन्तर दुर्योधनने वरवधूके सम्मानार्थ हाथी, घोड़े, रथ, दास-दासियाँ आभूषण आदि बहुत-सा अनुपम दहेज दिया वे वर-वधू सहित उसे लेकर द्वारका लौट आये। वहाँ उन्होंने यादवोंकी सभामें कौरवों का सारा समाचार आदिसे अन्ततक कह सुनाया। हे राजन्! यही कारण है कि आज भी हस्तिनापुर बलरामका पराक्रम सूचित करता हुआ लाक्षागिरि ग्रामके पास गङ्गामें झुका हुआ-सा जान पड़ता है।

श्रीमद्भागवतकथा साप्ताहिकके दशमस्कन्धका अड़सठवाँ अध्याय समाप्त



उनहत्तरवाँ अध्याय

नारदको भगवान्की गार्हस्थ्य-लीलाका नानारूपोंमें दर्शन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान्ने भौमासुरको मारकर अकेले ही १६ हजार १ सौ कन्याओंके साथ विवाह किया, यह समाचार सुनकर देवर्षि नारद एक दिन बड़ी उत्कण्ठासे इसे देखने द्वारका पहुँचे। द्वारकापुरीकी अद्भुत रचना तथा सुषमा देख उनका मन आनन्दसे विभोर हो उठा। उसमें भगवान्की पत्नियोंके लिये अतीव सुन्दर पृथक् पृथक् नौ लाख बँगले बने थे। इनमें भी भगवान्के अन्तःपुरकी रचना तो वर्णनातीत थी। वाग्देवी भी उसका वर्णन करते सकुचाती थी। विश्वकर्माने अपना सम्पूर्ण कला-कौशल उसमें दिखा दिया था। जगह-जगहपर वन, उपवन और आराम बने थे। नानाप्रकारकी इन्द्रनील आदि मणियोंसे रचित

भूमि तथा रत्नखचित भित्तियोंकी अपूर्व शोभा हो रही थी। भोगकी सम्पूर्ण सामग्रियाँ वहाँ वर्तमान थीं। सर्वप्रथम देवर्षि नारद श्रीरुक्मिणीजीके राजभवनमें प्रविष्ट हुए। वहाँ भगवान् दिव्य पर्यङ्कपर तकिया लगाये लेटे थे। रुक्मिणीजी दासीके हाथसे व्यजन लेकर स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रपर डुला रही थीं। नारदजीको आते देखते ही भगवान् तुरन्त शय्यासे नीचे उतर आये और सिर झुकाकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें अपने दिव्य आसनपर आसीन किया। अनन्तर उनके चरण-प्रक्षालनकर उस परमपावन जलको अपने सिरपर धारण करते हुए मधुर वाणीमें कहा—ब्रह्मन्! आपका स्वागत है, स्वागत है, कहिये, क्या आज्ञा है? नारदजीने कहा—भगवन्! आज आपके चरणकमलके दर्शनोंसे मैं कृतार्थ हो गया। आप मुझपर ऐसी कृपा करें जिससे मैं इनका ध्यान करता हुआ सर्वत्र विचरूँ, मुझे इनका कभी विस्मरण न हो। हे राजन्! इतना कह नारदजी भगवान्की अन्य गार्हस्थ्यलीला देखने सत्यभामाजीके भवनमें पधारे। वहाँ देखा, तो भगवान् अपनी प्रिया तथा उद्धवजीके साथ बैठे हँस-हँस चौपड़ खेल रहे हैं। नारदजीको देखते ही भगवान्ने अभ्युत्थान द्वारा उनका सत्कार कर विधिवत् पूजन किया और अनजानकी तरह पूछा—महाराज! आप कब पधारे? हम गृहस्थ तो अपूर्ण हैं आप विरक्त होनेके कारण सर्वथा परिपूर्ण हैं। फिर भी कहिये हम आपकी क्या सेवा करें।

पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदाऽऽयातो भवानिति।
क्रियते किन्तु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः॥ २१॥

देवर्षे! कुछ तो आदेश कीजिये, हमारे इस जन्मको अपने आदेशसे सफल बनाइये। नारदजी भगवान्की इस व्यामोहक लीलापर आश्चर्यसे चकित हो चुपचाप वहाँसे उठकर दूसरे भवनकी ओर चल दिये। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् गोदमें लिये बच्चोंको खिला रहे हैं। इसी प्रकार नारदजीने भिन्न-भिन्न भवनोंमें जाकर कहीं भगवान्को स्नानकी तैयारी करते, कहीं पञ्चयज्ञ करते, कहीं भोजन कराते, कहीं सन्ध्या करते, कहीं ढाल तलवारके पैंतरे काटते, कहीं हाथी घोड़े और रथपर चढ़कर भाईके साथ भ्रमण करते, कहीं पर्यङ्कपर शयन करते, कहीं मन्त्रियोंसे परामर्श करते, कहीं व्यासद्वारा पुराणोंकी माङ्गलिक कथा सुनते, कहीं पुत्र-पुत्रियोंका सोल्लास विवाह करते, कहीं उसके उपलक्षमें गोदान करते और कहीं अपनी प्रेयसी पत्नियोंके साथ जलक्रीडामें प्रवृत्त हुए भगवान् को देखा।

जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याबलावृतम् ॥ २७ ॥

यहाँ कुछ अनभिज्ञ लोग विना समझे बूझे वारमुख्या शब्दका वेश्या अर्थ करते हैं जो सर्वथा अनुचित है। जहाँ कुलीन पुरुषों के यहाँ भी वेश्याओंका प्रवेश कठिन होता है, वहाँ भगवान्के दुर्गम अन्तःपुरमें वेश्याओं-का प्रवेश हो यह कैसे संभव हो सकता है। यद्यपि 'वारमुख्या' शब्द वेश्याका भी वाचक होता है किन्तु लक्ष्यके अनुसार ही व्याख्या करनी चाहिये। हम इस शब्दकी उभयपक्षमें योजना करते हैं, इसपर ध्यान दें।

'वारो द्वारे हरे कुब्जवृक्षे सूर्यादिवासरे'

इस वारतान्त्रिके अनुसार 'वार' शब्द द्वार का वाचक है। मुख शब्दसे स्वार्थमें यत् प्रत्यय हुआ। मुखमेव मुख्यम्। अतः वारे द्वारे मुखं गतागतपुरुषनिरीक्षणार्थं यासां ता वारमुख्याः ताश्च ता अबलाश्चेति वारमुख्याबलास्ताभिरावृतम्। यह अर्थ वेश्या पक्षका है, किन्तु यह अर्थ दोष-ग्रस्त होनेसे यहाँ अभिप्रेत नहीं है। उपर्युक्त वारमुख्या शब्दका अर्थ भगवान् की पत्नियोंमें भी संगत हो जाता है। प्रियतमके बाहर जानेपर भगवान्की पत्नियाँ भी उनके विरहमें दरवाजेपर दृष्टि लगाकर उनके आने की प्रतीक्षा किया करती थीं। रहा अबला शब्द। उसका अर्थ है ओ वासुदेवः स एव बलं यासां ता अबलाः। अतः ऐसा अर्थ करनेसे किसी प्रकारका दोष नहीं रहता। इसी प्रकार

चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम्।
घ्नन्तं ततः पशून् मेध्यान् परीतं यदुपुङ्गवैः॥ ३५ ॥

इस श्लोकका भी सिन्धुदेशके अश्वपर चढ़कर शिकार खेलते हुए भगवान्को यदुवंशियोंके साथ यज्ञीय पशु मारते देखा ऐसा असम्बद्ध अर्थ करते हैं।

वस्तुतः 'ग्राम्यवदीशचेष्टितः' इसके अनुसार यहाँ लुप्तोपमा है। मृगयामुद्दिश्य चरन्तं विचरन्तमिव पशून् घ्नन्तमिव न वस्तुतः चरन्तं न वस्तुतः घ्नन्तम्। लोकलीलार्थं केवल लोगोंको प्रतीतिमात्र होती थी, पशुओंको मारते नहीं थे। इस प्रकार भगवान्की लीलाओंमें जहाँ भी कहीं विरोध या असंबद्ध सा प्रतीत हो तो उसका समाधान इसी प्रकार करना चाहिये। इस प्रकार नारदजी भगवान्की अद्भुत गार्हस्थ्यलीलाका दर्शन कर चकित रह गये। वे पुनः एक स्थानपर जाकर भगवान्से बोले—प्रभो! आज मैंने आपकी अनिर्वचनीय मायाका अद्भुत प्रभाव देखा। आपका वास्तविक

स्वरूप जानना मेरी बुद्धिके परे है। अच्छा, अब मैं जाना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे जानेकी अनुमति प्रदान करें। भगवान्ने कहा—

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता।
तच्छिक्षयंल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥

ब्रह्मन्! मैं धर्मका उपदेश करता हूँ। स्वयं उसका आचरण करता हूँ और पूछनेपर उसका अनुमोदन करता हूँ। लोकमें इसीकी शिक्षा देनेके लिये मैंने इस गार्हस्थ्यधर्मका आश्रय लिया है। तुम मुझे पुत्रके समान अत्यन्त प्रिय हो अतः अपने मनमें किसी प्रकारका मोह या भ्रम उत्पन्न न करो। इतना कह भगवान्ने नारद पर अनुग्रह किया। जिससे नारदने सब भवनोंमें एक ही भगवान्को देखा। अनन्तर भगवान्ने बड़े आदर-सत्कारसे नारदजीको विदा किया। नारदजी चकित हो भगवान्की सुमधुर लीलाओंका गान करते वहाँसे चल दिये। हे राजन्! जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे भगवान्की इन लीलाओंका गान करता है, सुनता है या अनुमोदन करता है, उसे मुक्तिप्रद भगवान्में निश्चल भक्ति प्राप्त होती है।

भक्तिर्भवेद् भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

—:❀:—

सत्तरवाँ अध्याय

भगवान्की दैनिकचर्यामें राजदूत तथा नारदके प्रस्तावोंपर गम्भीर विचार

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

अथोपस्युपवृत्तायां कुक्कुटान् कूजतोऽशपन्।
गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

प्रातःकालके आसन्न होने पर भगवान्के कण्ठसे लिपटी हुई पत्नियाँ मुर्गोंका शब्द सुनते ही वियोगसे व्याकुल हो उनको कोसने लगीं। वे कहती थीं—

रे रे कुक्कुटाः प्रियविच्छेदकप्रातर्बोधका यूयं शीघ्रमेव कथं न म्रियध्वम्।

अरे मुर्गो! तुम सब शीघ्र ही मर क्यों नहीं जाते? तुमने हमारे प्रियतम प्राणधनका वियोग करानेवाले इस प्रातःकालका बोध करा दिया। धीरे-धीरे पक्षी भी कूजने लगे। दो घड़ीतक रुक्मिणीजीको यह समय अच्छा प्रतीत न हुआ। वे अपने प्रियतमके वक्षःस्थलसे लिपटी अनुपम सुखका अनुभव कर रहीं थी। प्रियाको प्रेमसे उठा कर भगवान् स्वयं ब्राह्ममुहूर्तमें उठे और आचमन कर प्रकृतिसे परे अपने निर्गुण स्वरूपका ध्यान करने लगे। ब्राह्ममुहूर्तमें शयन करनेसे प्राणीके पुण्यका क्षय एवं उसे पापका भागी होना पड़ता है और फिर प्रायश्चित्तसे उसकी शुद्धि होती है।

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी।
तां कुर्वाणो द्विजो मोहात् पादकृच्छ्रेण शुद्ध्यति॥

अनन्तर भगवान्ने निर्मल जलसे स्नान कर सन्ध्योपासन किया और गायत्रीका जपकर विधिपूर्वक अग्निहोत्र किया। उदय होते सूर्यका उपस्थान कर देव, ऋषि और पितरोंका तर्पण किया। फिर, ब्राह्मणोंका पूजनकर उन्हें वस्त्र तथा अलङ्कारोंसे भूषितकर नाना पदार्थोंके साथ तेरह हजार चौरासी प्रशस्त गौएँ दान कीं। बद्वं बद्वं[1] दिने दिने। अन्य अपने परिकरों तथा अभ्यागतोंका भी यथोचित सत्कार किया। अनन्तर स्वयं भगवान् भोजन आदिसे निवृत्त हो ताम्बूलका सेवनकर सानन्द बैठे हुए थे। उसी समय सारथि दिव्य रथ लेकर उपस्थित हुआ और प्रणामकर उनके सामने खड़ा हो गया। भगवान् उसका हाथ पकड़ सात्यकि एवं उद्धवके साथ रथपर बैठकर सुधर्मा नामकी सभामें गये। वहाँ जाकर भगवान् एक दिव्य सिंहासनपर विराजमान हुए। वहाँ विद्वान् ब्राह्मण उन्हें उपनिषद् तथा पुराणोंकी मधुर-मधुर कथाएँ सुना रहे थे। एक ओर नट-नटियोंका नाना वाद्यों सहित सुन्दर गान भी चल रहा था। इसी समय एक राजदूत कुछ संदेश लेकर आया और वह द्वारपालद्वारा सभामें प्रविष्ट हुआ। उसने सभामें पहुँच भगवान्को प्रणाम कर जरासन्धके वन्दीगृहमें नजरबन्द राजाओंका दुःख निवेदन किया। उन राजाओंने छः श्लोकोंद्वारा भगवान्से प्रार्थना की है, उनमें एकसे शरणागति, तीनसे भयका प्रदर्शन और दोसे मुक्त होनेकी याचना की गयी है। दूत इस प्रकार कह ही रहा था कि देवर्षि नारद भी अकस्मात् वहाँ आ पहुंचे। उन्हें देखते ही भगवान् सभासदों सहित आसनसे झट उठ खड़े हुए और प्रणाम कर उन्हें एक आसनपर बैठाया। अनन्तर उनका

१, बद्वं चतुरशीत्यग्रसहस्राणि त्रयोदश (श्रीधरी)

विधिवत् पूजन-सत्कारकर मधुर वाणीसे पूछा—हे मुनिराज! कहिये तीनों लोकों में कुशल तो है न। किसी प्रकारका भय तो नहीं है। आपमें यह महान् गुण है कि आपके द्वारा सम्पूर्ण लोकोंका समाचार समय-समयपर मिलता रहता है। कहिये, पाण्डव लोग इस समय क्या कर रहे हैं और क्या करना चाहते हैं? उनका कुछ समाचार सुनाएँ। नारदजीने कहा—भगवन्! आपकी लीला तो बड़ी ही अद्भुत है, जिसे जानना अत्यन्त कठिन है। आप सर्वज्ञ होते हुए भी कैसे अनजानकी तरह पूंछ रहे हैं? फिर भी आपकी आज्ञाका पालन कर, कहता हूँ। आपके सेवक राजा युधिष्ठिर जो करना चाहते हैं उसे सुनिये।

यक्ष्यति त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः।
पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवाननुमोदताम् ॥ ४१ ॥

महाराज युधिष्ठिर सब राजाओंके अधिपति होनेकी इच्छासे राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। आप इसका सहर्ष अनुमोदन करें और कृपाकर वहाँ पधारें, यही उनकी करबद्ध प्रार्थना है। युद्धके प्रेमी यादवोंको नारदजीका यह प्रस्ताव नहीं जँचा। वे आपसमें कानाफूसी करने लगे, कारण, वे पहले जरासन्धको परास्त करना चाहते थे। इसपर भगवान्ने मुस्कराते हुए बड़े चातुर्यसे उद्धवजीसे राय ली। उद्धवजी भगवान्की आज्ञा शिरोधार्य कर नीतिसम्मत अपना अभिमत बतलानेके लिये उद्यत हुए।

निदेशं शिरसाधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥ ४७ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशमस्कन्धका सत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

इकहत्तरवाँ अध्याय

उद्धवजीकी सर्वसम्मत मन्त्रणासे भगवान्का इन्द्रप्रस्थ-गमन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! श्रीकृष्ण, नारद एवं अन्य नीतिवेत्ता सभासदोंका अभिप्राय जान लेनेके बाद उद्धवजीने कहा—भगवन्! यज्ञमें युधिष्ठिरकी सहायता और बन्धनसे राजाओंकी विमुक्ति ये दोनों ही कार्य अत्यन्त आवश्यक हैं।

यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो।
अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥ ३ ॥

राजसूययज्ञ तो दिङ्मण्डलके सम्पूर्ण राजाओंके जीते विना हो नहीं सकता। इसमें जरासन्धपर विजय भी अपेक्षित होगी। इसलिये युधिष्ठिरके यहाँ जाने पर ये दोनों कार्य बड़ी सरलतासे सिद्ध हो जायेंगे, ऐसा मेरा विचार है। राजाओंको वन्धन मुक्त करनेसे लोकमें आपका सुयश भी फैलेगा। जरासन्ध बहुत बलवान है। उसमें दस हजार हाथियोंका वल है। उसका सामना भीमके सिवा अन्य कोई भी योद्धा न कर सकेगा। वह द्वन्द्वयुद्धमें ही मारा जा सकेगा, सौ अक्षौहिणी सेनासे भी उसका वध सम्भव नहीं। मैं एक अचूक उपाय बताता हूँ उसे सुनें। भीम ब्राह्मणका वेश धारण कर जरासन्धसे युद्धकी भिक्षा माँगे। ब्रह्मण्य होनेके कारण जरासन्ध कभी उसका निषेध न करेगा। तब आपकी सन्निधिमें भीम उसे अवश्य मार डालेंगे, इसमें सन्देह नहीं। वस्तुतः मारनेवाले तो आप ही हैं। पर निमित्त भीम वन जायेंगे। राजाओंके पुण्यसे उनकी वन्धनसे मुक्ति और जरासन्धके पापसे उसका वध होना स्वाभाविक है। राजाओंका पुण्य एवं जरासन्धका पाप इस यज्ञमें हेतु है, अतः यह यज्ञ आपको भी पूर्णतया अभिप्रेत है। इसलिये अच्छा है कि आप वहीं पधारें। आपके जाने पर ये सभी कार्य अनायास ही सिद्ध हो जायेंगे इसमें सन्देह नहीं। हे राजन्! इस प्रकार उद्धवके युक्तियुक्त अकाट्य वचन सुनकर सभीने साधु-साधु कह गगनभेदी ध्वनि द्वारा हृदयसे उनका समर्थन किया। भगवान्ने उद्धवके निश्चय पर पहले पुत्रों सहित रानियोंको इन्द्रप्रस्थ भेज दिया और फिर चतुरङ्गिणी सेनाके साथ रथपर आरूढ़ हो स्वयं प्रस्थान किया। नारदजी भी भगवान्को प्रस्थानमें उद्यत देख आकाश मार्गसे चले गये। अनन्तर, भगवान्ने मधुर वाणीमें राजदूतसे कहा—हे दूत! राजाओंसे जाकर कह देना कि वे आनन्दसे रहें, डरें नहीं। मैं शीघ्र ही जरासन्धका वध कराकर उन्हें वन्धनसे मुक्त कर दूँगा।

मा भैष्ट दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम् ॥ १६ ॥

भगवान्के आदेश पर दूतने जाकर राजाओंको यह सारा समाचार कह सुनाया। वे भगवान्के आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। भगवान् बहुतसे देशों, नदी तथा पर्वतोंको पार करते इन्द्रप्रस्थ जा पहुँचे। राजा युधिष्ठिर भगवान्को देखते ही झट उठ खड़े हुए और हृदयसे उनका आलिङ्गन कर आनन्दमग्न हो गये। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। वे बड़े धूम-धामके साथ भगवान्को

अपने दिव्य राज-भवनमें ले आये। मार्गमें नागरिक जनताने स्थान-स्थान पर रोककर उनका भव्य स्वागत किया और गन्ध-पुष्पादिसे पूजन किया। भीम आदि चारों भाइयोंने भी अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उनका आलिङ्गन किया। कुन्ती, द्रौपदी तथा सुभद्रा आदि भी भगवान्के दर्शनोंसे तृप्त नहीं हो रही थीं। राजा युधिष्ठिर तो आनन्दमें इतने विभोर हो गये कि उन्हें पूजाका क्रम भी विस्मृत हो गया। कुन्तीकी प्रेरणासे द्रौपदीने रुक्मिणी आदि भगवान्की आठों पटरानियोंका विधिवत् पूजन किया और उन्हें नाना-प्रकारकी वस्तुएं भेंट की। भगवान्ने राजा युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिये कुछ मास तक वहीं निवास किया।

उवास कतिचिन्मासान् राज्ञः प्रियचिकीर्षया ॥ ४७ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

—: ❀ :—

बहत्तरवाँ अध्याय

पाण्डवोंके दिग्विजयमें भीम द्वारा जरासन्धका वध

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक दिन राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कुलवृद्ध आचार्य, अपने भाई तथा ज्ञातिसम्बन्धी बान्धवोंके साथ सभामें सिंहासन पर विराजमान थे। उन्होंने सभीके समक्ष भगवान्को सप्रेम सम्बोधित करके कहा—हे गोविन्द ? हे भक्तवत्सल ?

क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः।
यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्सम्पादय नः प्रभो ॥ ३ ॥

राजसूययज्ञद्वारा मैं आपकी पावन-विभूतियोंका यजन करना चाहता हूं। कृपया आप मेरा यह मनोरथ पूर्ण करें। इस यज्ञके द्वारा मुझे कोई विशेष अभीष्ट प्राप्त करना नहीं है। केवल एक ही शल्य मेरे हृदयमें निरन्तर चुभा करता है। वह यह है कि कुछ लोग आपको परमेश्वर या देवता मानकर आपका भजन करते हैं और कुछ लोग आपको देवता न मानकर निन्दा करते हैं। उन दोनोंका फल सद्गति या दुर्गति क्या होगी,

इसका सबके समक्ष स्पष्टीकरण हो जाय, अतः मेरा विचार है कि इस यज्ञके व्याजसे एक विशाल सभाका आयोजन किया जाय। जिसमें चतुर्दश लोकोंके निवासी जन सादर बुलाये जाँय। उस समय सब लोग मिलकर ऐकमत्यसे जिसकी अग्रपूजा निश्चित करेंगे वही परमेश्वर माना जायगा। इस तथ्यके निर्णयका सुअवसर उपस्थित कर मेरे हृदयका यह शल्य दूर करें। भगवान्‌ने मुसकराकर कहा—राजन्! विचार तो तुम्हारा सुन्दर है। इससे तुम्हारी मंगलमयी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैल जायगी। देवता, ऋषि, पितर और बन्धु-बान्धव इन सभीको यह यज्ञ अभीष्ट है। अतः तुम सर्वप्रथम पृथ्वीके समस्त राजाओंको जीतनेका प्रयत्न करो। अनन्तर सम्पूर्ण यज्ञीय सामग्री जुटाकर राजसूययज्ञका आरम्भ कर दो। तुम्हारे ये भाई वायु, इन्द्र आदि लोकपालोंके अंशसे उत्पन्न हैं और मैं तुम्हारे वशवर्ती हूँ ही फिर तुम्हें चिन्ता किस बात की? साधारण राजाओं की तो बात ही क्या किसी देवताकी भी सामर्थ्य नहीं जो मेरे भक्तका पराभव कर सके।

हे राजन्! भगवान्‌के ऐसे प्रेमसिक्त मधुर वचन सुनकर युधिष्ठिरका हृदय गद्गद हो गया। उन्होंने दिग्विजय करनेके लिये भगवत्तेजसे सम्पन्न अपने महाबली भाइयोंको नियुक्त किया।

भ्रातॄन् दिग्विजयेऽयुङ्क्त विष्णुतेजोपबृंहितान्॥ १२॥

दक्षिणदिशामें सहदेव, पश्चिममें नकुल, उत्तरमें अर्जुन तथा पूर्व दिशामें भीम सेना सहित भेजे गये। इनमें तीन वीरोंने तीन दिशाओंको जीतकर प्राप्त हुई बहुत-सी धनराशि युधिष्ठिरको समर्पित की। पूर्व दिशाकी विजय न होनेके कारण चिन्ताग्रस्त युधिष्ठिरको देख भगवान्‌ने उद्धव द्वारा बताये गये उपायका संकेत किया। तदनुसार भीम, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण तीनों ही ब्राह्मणका वेष धारण कर जरासन्धकी प्रधान राजधानी 'गिरिव्रजमें' जा पहुँचे। वहाँ वे अतिथिवेलामें जरासन्धके राजभवनमें गये और उससे बोले—राजन्! हम बहुत दूरसे आपके अतिथि होकर आये हैं, अतिथियोंके अभिप्रेत कोईभी वस्तु आपके लिये अदेय नहीं है। हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव आदि राजाओंने इस दानके प्रभावसे ही कैसा यश और कैसी दिव्य-गति प्राप्त की थी। अतः हम जो भी चाहते हैं उसे आप दिल खोलकर दें आपका कल्याण हो। हे राजन्! जरासन्ध इनके स्वर एवं आकृतियोंसे इन्हें क्षत्रिय जानकर विचार करने लगा कि कहीं मैंने इनको देखा है, ये

क्षत्रिय प्रतीत होते हैं और न जाने किस कार्यवश ये ब्राह्मणवेष धारण कर आये हैं। अतः ये जो कुछ भी मागेंगे मैं उसे अवश्य दूँगा। ऐसा निश्चय कर बड़ी उदारतापूर्वक जरासन्धने कहा—हे ब्राह्मणों! आपकी जो इच्छा हो मुझसे निःसंकोच माँग लो। आप चाहें तो मैं आप लोगोंको अपना सिर तक दे सकता हूँ। ददाम्यात्मशिरोऽपि वः। यह सुन भगवान्ने कहा—

युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशो यदि मन्यसे।
युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकाङ्क्षिणः ॥ २८॥
असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययम्।
अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥ २९॥

राजेन्द्र! यदि ऐसा है तो हम आपके साथ द्वन्द्वयुद्ध करना चाहते हैं, उसे दो, हम अन्नकाङ्क्षी ब्राह्मण नहीं हैं। हम तीनों क्षत्रिय हैं। देखो, ये तुम्हारे सामने खड़े हुए कुन्तीनन्दन भीम हैं और यह इनके छोटे भाई अर्जुन हैं। इन दोनोंका मातुलेय और तुम्हारा प्रधान शत्रु मैं कृष्ण हूँ। यह सुनकर जरासन्ध बड़े जोरसे हँसा और बोला—कृष्ण मैं तुमसे तो नहीं लड़ूँगा। कारण, तुम डरपोक हो। युद्धसे भागकर तुम समुद्रमें जा बसे। अर्जुन मेरी बराबरीका नहीं, और न इसमें मेरे समान बल ही है। हाँ, केवल यह भीम है जो मेरे समान बलवाला है। मैं इससे युद्ध कर सकता हूँ। इतना कह, जरासन्धने भीमको एक विशाल गदा दी और दूसरी गदा स्वयं लेकर नगरके बाहर समतल युद्धकी भूमिमें युद्धार्थ निकल पड़ा। वहाँ नाना प्रकारके बायें-दायें, सीधे उल्टे तिरछे पैंतरोंके साथ दोनोंका घमासान युद्ध छिड़ गया। उस समय दोनोंकी गदाओंके परस्पर टकरानेसे वज्रपातके समान घोर चटचटा शब्द होने लगा। एक बार पुनः उन दोनोंने बड़े वेगसे अपनी-अपनी गदा फेंकी वे दोनों ही परस्पर एक-दूसरेके वज्रसदृश अंगोंका मर्दन करती हुई स्वयं चकनाचूर हो गयीं। तब दोनोंने हाथ मिला कर कुश्ती लड़ना आरम्भ किया और परस्पर लौहसदृश मुष्टिकाका तीव्र प्रहार कर एक-दूसरेके अंगोंका मर्दन करने लगे। हे राजन्! इस प्रकार सत्ताईस दिनोंतक दोनोंका घमासान युद्ध चलता रहा। रात्रिमें दोनों ही मित्रके समान एक ही साथ रह कर खाना-पीना सोना आदि सभी क्रियाएँ किया करते थे।

सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥ ४०॥

एक दिन भीमने जरासन्धके पराक्रमसे घबराकर श्रीकृष्णसे कहा—माधव! मैं तो अब जरासन्धको जीत नहीं सकूँगा।

न शक्तोऽहं जरासन्धं निर्जेतुं युधि माधव ॥ ४१ ॥

मेरा शरीर चूर-चूर हो गया है। मुझमें युद्ध करनेकी बिल्कुल भी सामर्थ्यं नहीं रही। यह सुन भगवान्ने भीमके शरीर पर अपना सुकोमल कर-कमल फेरकर उन्हें दिव्य-तेज एवं बलसे सम्पन्न किया। दूसरे दिन युद्धस्थलमें पुनः दोनोंका मल्ल युद्ध आरम्भ हुआ। जब भीम थक गया तब तुरत भगवान्ने वृक्षकी एक शाखा तोड़कर शत्रुके वधका उपाय बताया और साथ ही भीमको संकेत किया कि इसी प्रकार इसको चीर डालो जैसे इस शाखाको मैं चीर रहा हूँ।

दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥ ४३ ॥

बिना दो खण्ड किये इसकी मृत्यु न हो सकेगी। भीम तुरंत ही संकेत समझ गये, उन्होंने बलपूर्वक जरासन्धको पृथ्वीपर पटक दिया और उसका एक पैर अपने पैरसे दबाकर, तथा दूसरा पैर दोनों हाथोंसे पकड़ कर उसे बीचसे चीर डाला। जरासन्धके शरीरके पृथक्-पृथक् दो खण्ड हो गये। उसके मरते ही सारी प्रजामें चारों ओर हाहाकार मच गया। श्रीकृष्ण तथा अर्जुनने दौड़कर भीमको अपनी छातीसे लगा लिया और वे उनके बलकी भूरि-भूरि सराहना करने लगे। अनन्तर, भगवान् श्रीकृष्णने जरासन्धके पुत्र सहदेवका राज्याभिषेक कर समस्त बन्दी राजाओंको जेलसे मुक्त कर दिया।

मोचयामास राजन्यान् संरुद्धा मागधेन ये।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।



तिहत्तरवाँ अध्याय

जरासन्धकी जेलसे मुक्त राजाओंकी ससम्मान विदाई

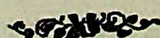
शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः।
ते निर्गता गिरिद्रोण्या मलिना मलवाससः ॥ १ ॥

जरासन्धने बीस हजार आठ सौ राजाओंको युद्धमें पराजित कर गिरिव्रज जेलमें बन्दी बनाकर रखा था। उनके शरीरकी कान्ति और वस्त्र मलिन हो गये थे। मुख सूख गये थे। शरीर भी दुर्बल हो गये थे। राजाओंने वन्दीगृहसे मुक्त होते ही भगवान्‌के दुर्लभ दर्शन किये और उनके चरणोंपर गिर कर नौ श्लोकोंसे गुणानुवाद करते उनकी स्तुति की। श्लोकोंमें बतलाया, भगवन्! हम जरासन्धको अपराधी नहीं मानते। क्योंकि इसके कारण ही आज आपका हमलोगों पर अनुग्रह हो सका। हम सभी श्रीमदसे उन्मत्त हो गये थे। जगन्नियन्ता आपको भी तुच्छ समझकर हम प्रजाके साथ निरन्तर अन्याय किया करते थे। राज्यलक्ष्मीसे च्युत होनेपर आज हमारा मद नष्ट हो गया। अब आप ऐसी कृपा करें जिससे हमें आपके श्रीचरणोंका निरन्तर स्मरण बना रहे। हम सिर झुकाकर आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं। हे राजन्! राजाओंकी ऐसी दीनतापूर्ण स्तुति सुनकर भगवान्‌ने तथास्तु कहकर उन्हें भक्तिका वर दिया और उनके उबटनपूर्वक राजोचित स्नान आदि की व्यवस्थाके लिये दास-दासियाँ नियुक्त कीं। राजोचित सुन्दर वस्त्र, आभूषण, नाना प्रकारके सुस्वादु भोजन तथा ताम्बूलादिसे तृप्तकर उन्हें रत्नजटित रथोंपर बैठाया और मधुरवचनोंसे हर्षित कर ससम्मान उनके राज्यमें भिजवा दिया। राजा लोग भगवान्‌के उपकारोंका स्मरण करते अपने-अपने देश चले गये। वहाँ पहुंच कर उन्होंने अपनी प्रजाके समक्ष भगवान्‌के बुद्धि कौशलसे होने वाले जरासंधवधादिके अद्‌भुत-अद्‌भुत चरित्र सुनाये। जिन्हें सुनकर प्रजा चकित रह गयी। अनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने भीम और अर्जुनके साथ जरासन्धकी राजधानीसे इन्द्रप्रस्थके लिये प्रस्थान किया और वहाँ पहुंच कर उन्होंने विजयसूचक शंखध्वनि की। उसे सुनकर प्रजाने जरासन्धको अस्त समझा और इस कार्यसे राजाका भी मनोरथ पूर्ण हो गया। श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको प्रणामकर वहाँका सारा वृत्तान्त ज्योंका त्यों कह सुनाया। उसे सुनते ही राजाके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे भगवान्‌की अहैतुकी कृपाका अनुभव कर प्रेमवश कुछ बोल न सके मौन रह गये।

आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन् प्रेम्णा नोवाच किञ्चन ॥ ३५ ॥

श्रीमद्भागवतकथा साप्ताहिकके दशमस्कन्धका तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।



चौहत्तरवाँ अध्याय

ऋषियों द्वारा राजसूययज्ञका आरम्भ, अग्रपूजाके प्रसंगमें निन्दक शिशुपालका श्रीकृष्णद्वारा वध

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! राजा युधिष्ठिर जरासन्धका वध एवं भगवान्का विलक्षण प्रभाव सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने भगवान्की अनुमतिसे यज्ञमें पराशर व्यास, वसिष्ठ, गौतम, विश्वामित्र, गर्ग, वैशम्पायन आदि बड़े-बड़े वेदज्ञ महर्षियोंको ससम्मान बुलाया और उनका ऋत्विक्के रूपमें वरण किया। द्रोण, भीष्म, कृपाचार्य, पुत्र सहित धृतराष्ट्र, विदुर आदि सभी बन्धु-बान्धव भी बुलाये गये। सभी देशोंसे आहूत राजा एवं उनकी प्रजा भी यज्ञका दर्शन करने आयी। इन्द्र आदि देवता तथा सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर भी वहां उपस्थित हुए। ब्राह्मणोंने सुवर्णके हलसे भूमिका संशोधन कर यज्ञका कार्य आरम्भ किया। वरुणके राजसूय यज्ञके समान इस यज्ञमें भी सब पात्र आदि सुवर्णके ही थे। राजा युधिष्ठिरने ऋषियों द्वारा यज्ञकी दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर यज्ञमें अग्रपूजाका विचार आरम्भ हुआ। योग्यपुरुषोंकी अधिकताके कारण बहुत देरतक जब इसका कुछ उचित निर्णय न हो सका तब भगवान्के प्रभावसे पूर्णतया सुपरिचित जरासन्धका पुत्र सहदेव बोल उठा—आप लोग इस शुभ कार्यमें व्यर्थका विलम्ब क्यों कर रहें हैं? अग्रपूजाके योग्य भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् विराजमान हैं। इनके विग्रहमें देवता, ऋषि-मुनि देश-काल धर्म यहांतक कि सम्पूर्ण जगत् निवास करता है। यह विश्व भी इन्हींका स्वरूप कहा गया है। यज्ञ आदि कर्मोंका फल भी इन्हींकी प्रेरणासे जीवको प्राप्त होता है। अतः साक्षात् यज्ञमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णके उपस्थित रहते अन्य और कौन अग्रपूजनके योग्य हो सकता है। इनका पूजन करनेसे प्राणिमात्रका एवं आत्माका भी पूजन हो जाता है ऐसा शास्त्रोंका निर्णय है अतः मेरे विचारसे सर्वप्रथम इन्हींका पूजन होना चाहिये।

तस्मात् कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम्।
एवं चेत् सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत्॥ २४॥

इतना युक्ति-युक्त कहकर सहदेव चुप हो गया। सभी सभासदोंने मुक्त-कण्ठसे साधु-साधु कहकर उसके प्रस्तावका पूर्णतया समर्थन किया। यह निर्णय सुन राजा युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे गद्गद हो भगवान् श्रीकृष्णका वैदिकमन्त्रोंद्वारा

षोडशोपचारसे पूजन आरम्भ किया। उन्होंने सर्वप्रथम भगवान्‌के श्रीचरणोंका लोकपावन जल परिवार सहित अपने सिरपर धारण किया और वस्त्र-आभूषण आदि नाना सामग्रियोंसे उनका विधिवत् पूजन कर वे आनन्दविभोर हो गये। सभी लोग भगवान्‌को प्रणाम कर जय-जयकारकी ध्वनि करने लगे। सिद्ध विद्याधरों द्वारा आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी।

इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः।
उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी संश्रावयन् भगवते परुषाण्यभीतः ॥३१॥

किन्तु शिशुपालसे भगवान्‌का यह सम्मान देखा न गया। उसका शरीर श्रीकृष्णका गुणानुवाद सुनते ही मारे क्रोधके जलने लगा। वह अपने आसनसे झट उठ खड़ा हुआ और ऊपर भुजा उठाकर बीच सभामें निर्भीक हो भगवान्‌को कटुवचन सुनानेके लिये उद्यत हुआ—वाह रे काल! क्या बात है? तू सब कुछ करा सकता है। तेरी महिमा अपार है। कोई भी तेरा अतिक्रमण नहीं कर सकता। आश्चर्य है कि इस मूर्ख सहदेवके वचनोंसे वृद्धोंतककी बुद्धि यहाँ मारी गयी। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओंके यहाँ उपस्थित रहते इस कृष्णका पूजन! जो गौओंका चरवाहा, कुलकलंकी, धर्म-कर्म और कुलसे भी हीन, स्वेच्छाचारी और अवगुणोंकी खान है। भला यह किस प्रकार अग्रपूजाके योग्य हो सकता है।

स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति॥ २६॥

क्या कभी कौवेको यज्ञका पुरोडाश मिला है? ययातिने इन्हीं कारणोंसे इसके कुलको शाप दे डाला और तभीसे कुलीन सत्पुरुषोंने इसका जातिसे बहिष्कार किया है। यह डरपोक युद्धसे भागकर समुद्रमें जा बसा। वास्तवमें यह डाँकू है और प्रजाको व्यर्थ कष्ट तथा धोखा दिया करता है। यह कथमपि पूजाके योग्य नहीं, धिक्कार है इसको और इसके अनुयायियोंको।

हे राजन्! पापी शिशुपालने इसी प्रकार और भी बहुतसे कटुवचन कह डाले, पर सिंह जैसे सृगालके शब्दों पर ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध भगवान् श्रीकृष्ण चुपचाप बैठे सुनते रहे। उन्होंने इसके प्रतिवादमें एक शब्द भी नहीं कहा। किन्तु पाण्डवोंसे यह अपमान सहा न गया। वे शस्त्र उठाकर शिशुपालको मारने दौड़ पड़े। शिशुपाल भी निर्भीकता पूर्वक कृष्णपक्षीय राजाओंको डांटता हुआ सभाके बीच ढाल-तलवार लेकर युद्धके लिये खड़ा हो गया। यह देख भगवान्‌ने स्वयं उठकर पाण्डवोंको रोका और तत्क्षण क्रोधसे अपना तीक्ष्णचक्र उसपर चला दिया जिससे शिशुपालका सिर धड़से

पृथक् हो तुरंत पृथ्वी पर गिर पड़ा। शिशुपालके मारे जानेपर प्रजामें चारो ओर हाहाकार मच गया और शिशुपालके अनुयायी राजा भयभीत हो प्राण लेकर भाग खड़े हुए। शिशुपालकी देहसे निकली जीवात्मक ज्योति सबके देखते-देखते भगवान् वासुदेवमें प्रविष्ट हो गयी।

चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ॥ ४६ ॥

हे राजन्! सनकादिक ऋषियोंके शापसे भगवान्के पार्षद ही जय-विजय दैत्ययोनिमें अवतीर्ण हुए थे। वे तीन जन्मोंमें शापसे मुक्त हो 'पुनः' पार्षद-भावको प्राप्त हो गये। राजा युधिष्ठिरने ऋत्विजोंको विपुल दक्षिणा देकर यज्ञान्तस्नान किया। यज्ञकी अलौकिक विभूति तथा श्रीकृष्णका दर्शन कर सभी राजा उसकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने देश चले गये। राजाओंको इस यज्ञसे अनुपम आनन्द मिला था। केवल एक दुर्योधन ही ऐसा था जिसे वह ऐश्वर्य सहन न हो सका था। जो मनुष्य भगवच्चरित्रसे सम्बन्धित यह शिशुपालका वध, राजाओंका मोक्ष एवं यज्ञमहोत्सवका कीर्तन या श्रवण करता है वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।

सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक-पारायणका पच्चीसवाँ विश्राम]

पचहत्तरवाँ अध्याय

युधिष्ठिरका यज्ञान्तस्नान तथा सभामें दृष्टिभ्रमसे दुर्योधनका मानभंग

राजा परीक्षित्ने पूछा—हे ब्रह्मन्! राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें जो भी राजा आये थे वे सभी बड़े प्रसन्न हुए। केवल एक दुर्योधन ही प्रसन्न नहीं हुआ, इसका कारण क्या है?

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! दुर्योधनकी अप्रसन्नताका मुख्य कारण यही था कि भरी सभामें उसका घोर अपमान हुआ था। वह कैसे हुआ, यह

प्रसंग मैं तुम्हें सुनाता हूँ। तुम्हारे पितामह युधिष्ठिरके यज्ञमें सभी बान्धव-लोग तत्तत्प्रबन्धसम्बन्धी कार्योंमें नियुक्त थे। भीम पाकशालाके अध्यक्ष तथा दुर्योधन कोशाध्यक्ष थे। दुर्योधनके हाथमें धनवर्धिनी एक रेखा थी, इस कारण उसके करस्पर्शसे धन 'अक्षय' बना रहता था। इसी दृष्टिको रख वह भगवान्की आज्ञासे इस कार्यमें नियुक्त किया गया था। सहदेव पूजामें, नकुल द्रव्योंके सम्पादनमें, अर्जुन गुरुजनोंकी शुश्रूषा, चन्दन आदिके लेपनमें और भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके पादप्रक्षालनरूपी महत्त्वपूर्ण कार्यमें स्वयं प्रवृत्त थे।

कृष्णः पादावनेजने ॥ ५ ॥

भोजन परोसनेमें द्रौपदी और दान करनेमें कर्ण संलग्न थे। सात्यकि, विदुर आदि अपने घनिष्ठ सम्बन्धी लोग यज्ञके नानाविध कार्योंकी व्यवस्थामें व्यस्त थे। यज्ञमें जब ऋत्विज प्रभृति विद्वानोंका पूजन हो चुका और शिशुपालकी भी ज्योति भगवान्में प्रविष्ट हो गयी, तब सब मिलकर एक साथ गंगामें यज्ञान्त-स्नान करनेको चल दिये। मार्गमें नाना-प्रकारके सुरीले बाजे मधुर-मधुर बजते जा रहे थे। नट-नर्तकियोंका नृत्यगान, हावभावपूर्वक चल रहा था। वैदिक ब्राह्मण चौकियोंपर आसीन हो पद-क्रम-घन-जटापूर्वक वेदध्वनि करते जा रहे थे। यजमानको आगेकर यदुवंशी आदि राजाओंकी विशाल सेना तोपोंको दागती सज धजकर साथमें जा रही थी। नर-नारियों-का विशाल समुदाय भी सुन्दर वस्त्र-आभूषण धारण किये आमोद-प्रमोदके साथ मंगल-गान करते चल रहा था। भावज आदि देवियाँ अपने देवरोंपर रंगभरी पिचकारियाँ हँस-हँसकर छोड़ परस्पर कामरसका आनन्द लूट रहीं थीं। साड़ियोंके भींग जानेसे स्त्रियोंके अंगोंका अनुपम सौन्दर्य झलक कर कामी पुरुषोंका मन अपनी ओर खींच रहा था। आकाशमें विमानोंपर स्थित देवांगनाएँ भी इस महोत्सवका आनन्द ले रही थीं। पत्नीसहित रथपर बैठे राजा युधिष्ठिरकी अपूर्व शोभा हो रही थी। ऐसा जान पड़ता था मानो राजसूययज्ञ ही मूर्तिमान् होकर अपनी क्रियारूप पत्नियोंके साथ आगे बढ़ राजा-रानीका स्वागत कर रहा हो। गंगातट पर पहुँचकर ऋत्विजोंने राजा युधिष्ठिरको द्रौपदीके साथ गंगामें विधिपूर्वक आचमन कराकर स्नान कराया।

आचान्तं स्नापयाञ्चक्रुर्गङ्गायां सह कृष्णया ॥ १९ ॥

उसी समय प्रसन्नतासे आकाशमें देवताओंके नगाड़े बजने लगे और पुष्पोंकी निरवच्छिन्न वर्षा होने लगी। अनन्तर, सभी वर्णके लोगोंने क्रमसे गंगामें

स्नान किया। राजा युधिष्ठिरने नूतन सुन्दर रेशमी वस्त्र तथा आभूषण धारण कर ऋत्विज आदि सभी आगन्तुकोंका यथाविधि द्रव्य-दक्षिणासे पूजन किया। अनन्तर वे सब प्रसन्न हो राजासे विदा लेकर अपने-अपने स्थानोंपर चले गये। राजाके यज्ञ, शील तथा आचारकी प्रशंसा करते वे अघाते न थे। राजा युधिष्ठिरके विशेष आग्रहसे आजकल करते-करते भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने घर जा नहीं पाते थे। फिर भी उन्होंने अपना कुछ परिवार द्वारकाको भेज दिया था। राजा युधिष्ठिरके अन्तःपुरकी शोभा वर्णनातीत थी। वहाँ नरेन्द्र सुरेन्द्र तथा असुरेन्द्र आदि की सभी भोग्यविभूतियाँ साक्षात् मूर्तिमती होकर विराजमान थीं। एक दिन मयदानव द्वारा निर्मित सभामें राजा युधिष्ठिर सुवर्णसिंहासनपर आसीन थे। वन्दीगण नाना प्रकारकी विरुदावलियाँ गा रहे थे। इसी समय महा अभिमानी दुर्योधन हाथमें तलवार लिये द्वारपालोंको डाँटता-फटकारता हुआ सभामें प्रविष्ट हुआ। वह वहाँ दृष्टिभ्रमसे स्थलको जल और जलको स्थल समझ कर एक स्थानपर गिर पड़ा। यह देख भीम बड़े जोरोंसे अट्टहासकर हँस पड़े और बोले—'आखिर यह है तो अन्धेकी सन्तान ही' यह देख वहाँ उपस्थित स्त्रियाँ भी उसकी इस दशापर हँस पड़ीं। युधिष्ठिरने इस व्यंग परिहासको बहुत रोकना चाहा, किन्तु कृष्णके अनुमोदनवश किसीने युधिष्ठिरकी ओर ध्यान नहीं दिया। सब हँसते ही रहे, बस इसी उपहासने महाभारतकी भूमिका का बीजारोपण कर दिया था।

स व्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन् निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम्।
हाहेति शब्दः सुमहानभूत् सतामजातशत्रुर्विमना इवाभवत्॥३९॥

दुर्योधन इस परिहाससे अत्यन्त लज्जित हो मुख नीचा किये क्रोधमें भरा चुपचाप सभासे बाहर निकला और दुःखित मनसे सीधे हस्तिनापुर चला गया। यह देख भद्र पुरुष हाहाकार कर दुःख प्रकट करने लगे। युधिष्ठिरका प्रसन्न मन इस भावी घटनासे कुछ उदास-सा हो गया किन्तु पृथ्वीका भार उतारनेके लिये कटिबद्ध भगवान् श्रीकृष्ण कलहका यह बीज वपनकर मौन ही रह गये। उन्होंने हास्यसे न भीमको रोका और न दुर्योधनको सान्त्वना ही दी। शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें दुर्योधनकी अप्रसन्नताका कारण जो तुमने पूछा था वह यही सबके समक्ष उसके घोर अपमानकी घटना थी।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

छिहत्तरवाँ अध्याय

शिशुपालके-सखा शाल्वका यादवोंसे महायुद्ध

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! इसी प्रसंगमें क्रीडार्थ नर-शरीर धारण किये भगवान् श्रीकृष्णका और भी पराक्रमपूर्ण अद्भुत चरित्र सुनो, जिस प्रकार उन्होंने सौभपति शाल्वको मारा था। शाल्व शिशुपालका अभिन्न सखा था। वह रुक्मिणीके विवाहमें आया था। युद्धमें यदुवंशियों से पराजित होनेपर उसने वहीं सब राजाओंके समक्ष प्रतिज्ञा की और कहा। मैं पृथ्वीको यादवोंसे शून्य कर डालूंगा। आप लोग मेरा पुरुषार्थ देखें।

अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥ ३ ॥

इस प्रकार शाल्व प्रतिज्ञा कर भगवान् शिवकी कठोर आराधनामें लग गया। भूख लगनेपर वह केवल एकबार एक मुट्ठी धूल फांककर रह जाता था। एक वर्ष तक उसका यही क्रम लगातार चलता रहा। उसकी इस कठोर तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान् शङ्करने प्रकट होकर उससे वर माँगनेको कहा। इस पर शाल्वने एक ऐसा नगराकार स्वेच्छागामी विशाल विमान माँगा जो यादवोंको भय देनेवाला एवं सुर-असुर सबसे अभेद्य हो।

अभेद्यं[1] कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥ ६ ॥

शंकरने 'तथास्तु' कहकर उसे वह अभीष्ट वर दे दिया। मयदानवने शिवकी आज्ञासे लोहेका एक ऐसा विशाल विमान बनाकर उसे दिया जो शाल्वकी इच्छाके अनुसार चलता था। एक दिन शाल्व अपने पूर्व वैरका स्मरण कर उसी विमान पर चढ़ द्वारकापुरी पहुँचा। उसने विशाल सेनाके द्वारा चारों ओरसे पुरीको घेर लिया और उसके सारे वन-उपवन उजाड़ डाले, तथा नगरके बड़े-बड़े दरवाजे, प्रासाद, अँटारियाँ तथा आरामगृह तोड़ दिये। विमानसे पुरीके ऊपर अस्त्र, शस्त्र, शिला वृक्ष, वज्र, सर्प एवं धूलिकी भीषण वृष्टि होने लगी। उससे सम्पूर्ण दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। पुनः झन्झावातके साथ भयंकर आँधी भी चलने लगी। सारी प्रजा त्राहि-त्राहि कर चिल्ला उठी। प्रद्युम्न इस प्रकार अपनी पीडित प्रजाको आश्वासन देते हुए बड़े वेगसे रथपर चढ़कर दौड़ पड़े। उनके पीछे यादवोंकी

---

१. अकारो वासुदेवः तेन भेद्यम्, अतः 'तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा' इत्यग्रिमग्रन्थेन न विरोधः।

विशाल चतुरङ्गिणी सेना भी चल पड़ी। उभयपक्षकी सेनाओंका रोमाञ्चकारी घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। प्रद्युम्नने अपने दिव्य अस्त्रोंसे शाल्वकी सारी माया नष्ट कर दी। अनन्तर पच्चीस बाणोंसे शाल्वके सेनापतिको, सौ बाणोंसे शाल्वको, एक-एक बाणसे सैनिकोंको, दस दस बाणोंसे सारथियोंको एवं तीन-तीन बाणोंसे वाहनोंको घायल कर डाला। प्रद्युम्नके इस अद्भुत पराक्रमकी स्वीय-परकीय सभी सैनिकोंने मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की। शाल्व विमानसे चारों ओर घूम-घूमकर यादवोंपर अस्त्र-शस्त्रोंकी भीषण वर्षा कर रहा था। यादवसेना भी जहाँ-तहाँ उसका लक्ष्य कर बड़ी तत्परता के साथ उसे बाणोंसे बींध रही थी। पर, दोनों सेनाओंके वीरोंमें कोई भी वीर संग्राम छोड़कर पीछे हटता न था। प्रद्युम्नने गदाके प्रहारसे शाल्वके मंत्री द्युमान्को मूर्च्छित कर दिया। किन्तु, जब उसे कुछ चेतना आयी तब उसने भी गदाके प्रहारसे प्रद्युम्नकी छातीको विदीर्ण कर डाला जिससे वे भी मूर्च्छित हो रथ पर गिर पड़े। यह देख सारथि अपने धर्मके अनुसार तुरंत प्रद्युम्नको संग्रामसे हटा ले गया। किन्तु, क्षणमात्रमें जब प्रद्युम्नको होश आया तब वे सारथिसे बोले—तुमने यह बड़ा अनुचित कार्य किया जो मुझे रणभूमिसे हटा लाये। सारथिने कहा—प्रभो! मैंने तो धर्म समझ कर ही ऐसा किया था। आपत्ति आनेपर सारथि रथीकी और रथी सारथिकी रक्षा करे। ऐसा धर्मशास्त्रका नियम है।

सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद् रथिनं सारथिं रथी ॥ ३२ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।



सतहत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण द्वारा माहामायावी शाल्वका वध

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! होश आ जानेपर प्रद्युम्नने आचमनकर हाथमें धनुष उठाया और सारथिसे कहा—मुझे शीघ्र ही द्युमान्के निकट ले चलो।

प्रद्युम्नने युद्धस्थलमें पहुँचते ही अपनी सेनाका नाश करते हुए शाल्वके मन्त्री द्युमान्पर आठ बाण छोड़े। चारसे चार घोड़ोंको, एकसे सारथिको, दो से

धनुषको एकसे ध्वजाको तथा एक दूसरे शरसे उसका सिर भी काट डाला। इधर साम्ब, सात्यकि आदि वीर यादव उसकी सेनाका संहार कर रहे थे। उनके तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे सिरकटे सैनिक विमानसे समुद्रमें गिर पड़े। इस प्रकार, यादवोंका शाल्वसे सत्ताइस दिनों तक रातदिन लगातार भीषण युद्ध होता रहा।

युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत् तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें इन्द्रप्रस्थ गये थे। वहाँ उन्हें नाना प्रकारके अपशकुन होने लगे। यह देख वे सबसे विदा लेकर वहाँसे द्वारका लौट पड़े। यहाँ आने पर शाल्व द्वारा अपनी सेनाका विनाश होते देख भगवान् ने अपने सारथि दारुकको आदेश दिया कि मेरा रथ शीघ्र ही शाल्वके समीप ले चलो। यह बड़ा मायावी है। सारथिने तत्काल रथ हाँक दिया। शाल्वने संग्रामभूमिमें श्रीकृष्णका रथ आते देखा। उसे देखते ही उसका उत्साह और बल नष्ट हो गया। उसने तुरन्त ही घोर शब्द करती एक भीषण शक्तिसे भगवान् श्रीकृष्ण पर प्रहार किया। भगवान्ने बाणोंसे अग्नि-ज्वालाके समान लपलपाती आकाशसे आती हुई उस शक्तिके सैकड़ों टुकड़े कर डाले और सोलह बाणोंसे शाल्वको भी बींध डाला पुनः उसके विमानको भी सैकड़ों बाणोंसे भर दिया। मौका देख शाल्वने भी श्रीकृष्णकी वाम भुजापर एक ऐसा बाण मारा जिससे उनका धनुष हाथसे गिर पड़ा। यह देख, सेनामें चारों ओर हाहाकर मच गया। अनन्तर शाल्वने कृष्णके निकट जाकर कहा रे मूढ! तूने मेरे मित्र शिशुपालकी स्त्रीका अपहरण किया और सभाके बीच धोखा देकर उन्हें मार डाला। यदि तू मेरे सामने खड़ा रहा भागा नहीं, तो मैं आज ही तुझे यमलोक पहुँचा दूँगा। भगवान् ने कहा— रे नीच! तू व्यर्थ क्या बकता है। शूर अपना पराक्रम दिखाया करते हैं, व्यर्थ बड़बड़ाते नहीं।

पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥ १६ ॥

जान पड़ता है तेरे सिरपर मृत्यु नाच रही है, उसे तू नहीं देखता। इतना कहकर भगवान्ने शाल्वके जत्रु (गलेके नीचेकी हड्डी) पर गदासे ऐसा कठोर प्रहार किया जिससे वह काँप उठा और मुँहसे रक्त उगलता हुआ तुरत अन्तर्धान हो गया। दो घड़ी बाद युद्धभूमिमें एक पुरुष आया और उसने सिर झुका कर श्रीकृष्णको प्रणाम कर रोते हुए कहा—भगवन् मुझे देवकीने भेजा है। शाल्व बलात्कारसे आपके पिताको बाँधकर ले गया।

यह समाचार सुनकर भगवान् कुछ देर तो मानवप्रकृतिके अनुसार कुछ उदाससे रहे फिर स्वस्थ हो कहने लगे—आश्चर्य है कि सुर-असुरोंसे अजेय बलरामके रहते शाल्व मेरे पिताको कैसे ले गया ? अहो दैव बड़ा बलवान् है। यह कह ही रहे थे कि तबतक शाल्व वसुदेवको लिये युद्धभूमिमें प्रकट हो गया और श्रीकृष्णसे बोला—देख लो, यही हैं न तुम्हारे जन्मदाता बाबू जी ? तुम्हारे देखते-देखते ही इन्हें आज ही मृत्युके घाट उतारता हूँ। यदि तुममें कुछ शक्ति हो तो आकर इन्हें बचाओ। इतना कहते ही शाल्वने तलवारसे वसुदेवका सिर काट डाला और झट विमानपर चढ़ गया। दो घड़ी तक तो भगवान् श्रीकृष्ण मानवलीलाके अभिनयमें कुछ दुःखका अनुभव करते रहे, किन्तु, उन्हें तत्क्षण यह समझनेमें विलम्ब न लगा कि यह सब शाल्वकी माया है।

न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः।
स्वाप्नं यथा चाम्बरचारिणं रिपुं सौभस्थमालोक्य निहन्तुमुद्यतः ॥२६॥

भगवान्ने क्षणमात्रमें स्वस्थ हो जब देखा तो युद्धस्थलमें न तो देवकीका वह दूत था और न पिताका शरीर ही। वह सारा दृश्य स्वप्नके समान ही क्षणमात्रमें विलीन हो गया। अनन्तर भगवान् आकाशमें विमानपर चढ़े शाल्वको मारनेके लिये उद्यत हुए। उन्होंने तीक्ष्णबाणोंसे उसका धनुष एवं कवच काट डाला और गदाके प्रहारसे उसका विमान भी चूर्ण-चूर्ण कर दिया। वह समुद्रमें जा गिरा। शाल्व तुरन्त विमानसे भूमिपर कूद पड़ा और श्रीकृष्णकी ओर बड़ी तेजीसे गदा लेकर झपटा। भगवान्ने भालेसे उसकी बाहु काटकर चक्रसे किरीट-कुण्डल सहित उसका सिर भी काट डाला। यह देख शत्रु-दलके वीर हाहाकार कर चिल्ला उठे। देवतागण दुन्दुभि बजाकर आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे। शाल्वके मारे जानेपर अपने मित्रका बदला चुकानेके लिये क्रोधमें भरा दन्तवक्त्र युद्धभूमिमें आ पहुँचा।

सखीनामपचितिं कुर्वन् दन्तवक्त्रो रुषाऽभ्यगात् ॥ ३७ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त



अठहत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्णद्वारा दन्तवक्त्र और विदूरथका वध तथा बलरामद्वारा सूतजीका वध

शुकदेवजी बोले—हे राजेन्द्र ! युद्धमें मारे गये शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रककी मित्रता निभानेके लिये दन्तवक्त्र क्रुद्ध हो अकेला ही पैदल गदा लिये भगवान्की ओर दौड़ पड़ा। यह देख भगवान्ने तुरन्त रथसे उतर कर उसे रोका। दन्तवक्त्रने गदा उठाकर भगवान्से कहा—कृष्ण ! अच्छा हुआ जो आज तुम मेरे सामने आ गये।

दिष्ट्या दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥

मामाके लड़के होनेके नाते तुम हमारे 'बन्धु' कहलाते हो और हमारे मित्रोंको धोखेसे मारते हो ? ठहरो, मैं आज ही गदासे तुम्हें मारकर अपने मित्रोंका ऋण चुकाता हूँ। इतना कहते ही उसने गदासे भगवान्के सिरपर प्रहार किया और सिंहके समान एक भीषण गर्जना की। श्रीकृष्णने भी उसकी छातीपर गदासे एक ऐसा भयङ्कर प्रहार किया, जिससे उसका कलेजा फट गया। वह मुँहसे रक्त उगलता हुआ वहीं पृथ्वीमें गिर पड़ा और तत्काल मर गया। उसकी जीवात्मक सूक्ष्म-ज्योति शरीरसे निकल कर सबके देखते-देखते भगवान् श्रीकृष्णमें विलीन हो गयी। उसका भाई विदूरथ भी शोकसे व्याकुल हो बदला लेनेकी भावनासे ढाल-तलवार लिये भगवान्को मारने दौड़ा। भगवान्ने मुकुटकुण्डल सहित उसका भी सिर चक्रसे काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। इसपर देव, गन्धर्व, सिद्ध-चारण विद्याधर आदि प्रसन्न हो आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे। इस प्रकार, भगवान् श्रीकृष्ण पूतनासे लेकर विदूरथ पर्यन्त दैत्यकुलका संहार कर पुनः उससे उपरत हो द्वारकापुरी लौट आये। अनन्तर बलरामजीने सूत एवं बल्वल नामक दैत्यका वध किया।

विदूरथान्तमामध्य पूतनादि दनोः कुलम्।
कृष्णस्तूपारमन्माराद् रामोऽहन् सूतवल्वलौ ॥ (श्रीधरी)

इधर कौरव और पाण्डवोंमें युद्धकी तैयारी सुन बलरामजी उदासीन हो तीर्थाटन करने चल दिये। वे प्रभासक्षेत्र आदि तीर्थस्थानोंमें पितरोंका

तर्पण करते तथा गङ्गा-यमुनाके तटवर्ती पुण्यस्थानोंमें पर्यटन करते नैमिषारण्य जा पहुँचे। वहाँ ऋषियोंका मण्डल एकत्र हो यज्ञानुष्ठान कर रहा था। बलरामजीको आया देख सभीने उठकर बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे प्रणाम कर विधि पूर्वक उनका पूजन किया। किन्तु, व्यासजीके शिष्य केवल रोमहर्षण ही वहाँ बैठे रह गये, वे न उठे ही और न उन्होंने प्रणाम आदि द्वारा उनका सत्कार ही किया। यह देख बलरामजी कुपित से हो गये। भावीकी प्रबलतावश उन्होंने हाथके एक कुशाको बाणसे अभिमन्त्रितकर उनपर फेंक दिया जिससे उनकी तत्काल मृत्यु हो गयी।

भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत् प्रभुः ॥ २८ ॥

इस दुर्घटनापर सब ऋषि-मुनि हाहाकार कर चिल्ला उठे और दुःखित चित्तसे बोले—हे देव! यह तो आपके द्वारा इस अनुचित कर्मके साथ बड़ा अधर्म हो गया। हम सबने इन्हें यज्ञसमाप्तिपर्यन्त पूर्ण आयु एवं आरोग्यता प्रदानकी थी वह हमारी वाणी आपने मिथ्या कर दी। जान पड़ता है आपने अनजानमें इस ब्राह्मणका वध कर डाला। यद्यपि 'ब्राह्मणो न हन्तव्यः' यह वेदवाक्य भी आपका नियामक नहीं हो सकता फिर भी आप यदि इसका प्रायश्चित्त न करेंगे तो लोकमर्यादा नष्ट हो जायगी और फिर कोई भी प्रायश्चित्त न करेगा। यह सुन बलरामजीने कहा मुनियो! ठीक है आप जो कहें मैं वही करनेको तैयार हूँ। आप चाहें तो मैं इन्हें जीवित भी कर सकता हूँ और नियमानुसार लोकसंग्रहार्थ प्रायश्चित्त भी करूँगा। ऋषियोंने कहा—भगवन्!

अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च।
यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥ ३४ ॥

आपका अस्त्र, पराक्रम इनकी मृत्यु तथा हमारा वचन जिस प्रकार ये चारों बातें सत्य रहें कृपया वही आप करें। बलरामजीने कहा—मुनियो! पुत्र साक्षात् पिताकी आत्मा है। इसलिये, इनके पुत्र उग्रश्रवा ही आजसे पुराणवक्ता होंगे तथा आपके कथनानुसार यह आयुरादि सर्वगुणोंसे सम्पन्न भी होंगे। इस प्रकार रोमहर्षणके साक्षात् जीवित न होनेसे अस्त्र वीर्य और मृत्युकी सत्यता तथा आयुरादि सम्पन्न होनेके कारण आपके वचनकी भी सत्यता हो गई। आजसे आप सब लोग उन्हींसे कथाका श्रवण करें और हमें भी इसका उचित प्रायश्चित्त बताने की कृपा करें। ऋषियोंने कहा—प्रभो! यहाँ इल्वलका पुत्र बल्वल नामका एक दानव रहता है। वह प्रति अमावास्या तथा पूर्णिमाको यहाँ आकर मल-मूत्र,

रक्त आदिकी वृष्टिकर यज्ञको दूषित कर देता है। उसे मारकर आप यज्ञ-कार्यकी निर्विघ्नता सम्पादन करें एवं एक वर्ष में पूरे भारतवर्षकी प्रदक्षिणा कर तीर्थोंमें स्नान करें। ऐसा करनेसे आप निश्चित ही ब्रह्महत्याजनित पातकसे मुक्त हो जायेंगे इसमें सन्देह नहीं।

चरित्वा द्वादश मासान् तीर्थस्नायी विशुद्ध्यसे ॥ ३६ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

उनासीवाँ अध्याय

ब्रह्महत्या-निवारणार्थ प्रायश्चित्तके रूपमें बलरामजीका तीर्थाटन

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांसुवर्षणः।
भीमो वायुरभूद् राजन् पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥ १ ॥

पर्व प्राप्त होनेपर बल्वल नामका दैत्य यज्ञभूमिमें उत्पात करने आ पहुँचा। उसके आते ही यज्ञस्थलमें भयंकर आँधीके साथ धूलिकी वर्षा होने लगी, उस धूलिमें पीवकी दुर्गन्ध आ रही थी। यज्ञशालाके चारों ओर मल-मूत्र और रक्तकी निरवच्छिन्न धाराएँ भी गिरने लगीं। सामने बल्वल दैत्य भी हाथमें त्रिशूल लिये दिखायी पड़ा। कज्जलगिरिके सदृश विशालकाय उस दैत्यको देखकर बलरामजीने अपने अमोघ अस्त्र हल और मूसलका स्मरण किया वे तुरन्त वहाँ उपस्थित हुए। बलरामजीने ब्रह्मद्रोही आकाशचारी उस दैत्यको हलसे खींचकर उसके सिरपर मूसलका एक ऐसा प्रहार किया जिससे उसका सिर फट गया और उससे रक्तकी धारा बह चली। पीड़ासे कराहता हुआ वह दैत्य पृथ्वीपर धड़ामसे गिरा और तुरंत मर गया। यह देख ऋषिगण साधु-साधु कहते बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बलरामजीका अभिषेक कर उनकी स्तुति की और नाना आशीर्वाद दिये। अनन्तर सुन्दर-सुन्दर नूतनवस्त्र आभूषण तथा वैजयन्ती माला पहनायी। पुनः बलरामजी मुनियोंकी आज्ञा लेकर ब्राह्मणोंसहित कौशिकी नदीके तटपर गये। वहाँ

स्नान और तर्पण कर मानसरोवरके लिये प्रस्थान किया। बादमें सरयू, प्रयाग, पुलहाश्रम, गण्डकी, गोमती, विपाशा एवं शोणनदमें स्नान कर गयाजी गए। वहाँ पितरोंका यजन किया। यद्यपि—

अमाश्राद्धं गयाश्राद्धं न कुर्यात् सपिता पुमान्।

इस स्मृतिके अनुसार पिताके रहते पुत्रको गयाश्राद्ध करनेका विधान नहीं, तथापि वहाँ गयाश्राद्धके उद्धेश्यसे जाना निषिद्ध बताया गया है। प्रसंगतः मार्गमें गया प्राप्त हो जानेपर उसका निषेध नहीं, ऐसा धर्मशास्त्रका वचन है। अनन्तर, बलराम गंगासागर, सप्त गोदावरी, पम्पा, वेंकटाद्रि, काञ्ची, कावेरी, श्रीरंगम्, दक्षिण-मथुरा होते ब्रह्महत्यानाशक तीर्थ केदार तथा सेतुबन्ध रामेश्वर पहुंचे।

केदारं रामसेतुं च दृष्ट्वा भारतसंहिताम्।
श्रुत्वा कोटिश्च गायत्र्या ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ (पुराणान्तर)

केदार और रामेश्वरका दर्शन महाभारतका श्रवण तथा एक करोड़ गायत्रीका जप ये सब साधन ब्रह्महत्या का नाश करनेवाले बताये गये हैं।

इस प्रकार बलरामजी भारतवर्षके प्रायः सभी तीर्थोंकी यात्रा सम्पन्न कर पुनः प्रभासक्षेत्र लौट आये। यहाँ कौरव-पाण्डवयुद्धमें समस्त राजाओंका निधन सुनकर उन्होंने निश्चित किया कि अब पृथ्वीका भार उतर गया है। भीम और दुर्योधनका उस समय भी गदा-युद्ध चल रहा था। बलराम उन्हें समझानेके लिये कुरुक्षेत्र गये, किन्तु उन्होंने माना नहीं। तब वह पुनः नैमिषारण्य चले गये। वहाँ ऋषियोंने उनसे विधिपूर्वक यज्ञ कराया। बाद बलरामजीने ऋषियोंको विशुद्ध ज्ञानका उपदेश दिया, जिससे उन्हें अपने स्वरूपका बड़ी सरलतासे ज्ञान हो गया। कुछ दिनोंके अनन्तर वे पुनः अपने स्थानपर लौट आये। जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे बलरामजीके इन निर्मल-चरित्रोंका सायं-प्रातः स्मरण करता है या गान करता है वह भगवान्का कृपाभाजन बन जाता है।

विष्णोः स दयितो भवेत्

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशमस्कन्धका उनासीवाँ अध्याय समाप्त।

अस्सीवाँ अध्याय

भक्त सुदामाका चरित्र दो अध्यायोंमें

पत्नीकी प्रेरणासे भगवान्के दर्शनार्थ सुदामाका द्वारकागमन

राजा परीक्षित्ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अनन्त बलशाली भगवान् श्रीकृष्णके मैं अन्य और भी चरित्र सुनना चाहता हूँ। उनसे मेरी तृप्ति नहीं होती। संसारमें कौन ऐसा विवेकी पुरुष होगा जो भगवान्की मंगलमयी कथासे निवृत्त होना चाहे।

सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ।
स्मरेद् वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥३॥

वाणी वही है जो भगवान्का गुणानुवाद करे। हाथ वही हैं जो उनकी सेवामें संल्लग्न रहें। मन वही हैं जो स्थावरजंगम प्राणियोंमें स्थित भगवान्का चिन्तन करे। कर्ण वही है जो उनकी पुण्यकथाका श्रवण करे। सिर वही है जो भक्त और भगवान्को नमन करें। चक्षु वही है जो दोनोंका दर्शन करते रहें। अंग वही हैं जो भक्त और भगवान्के चरणोदक को धारण करते रहें।

इसलिये, आप कृपा कर भगवान्के अन्यान्य मंगलमय चरित्रोंका वर्णन करें। सूतजीने शौनक आदि ऋषियोंको सम्बोधित करते कहा—हे ऋषिगण, राजा परीक्षित्के इस प्रश्न पर शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! सुदामा नामका एक ब्राह्मण श्रीकृष्णका बालसखा था। वह बड़ा ही ज्ञानसम्पन्न था। विषयोंसे विरक्त जितेन्द्रिय वह बड़े कष्टसे अपना गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करता था। उसके वस्त्र फटे-पुराने और मैले-कुचैले रहते थे। दैवेच्छासे जो कुछ मिल जाता उसीसे वह संतोष करता था। उसकी पतिव्रता पत्नी भी वैसे ही दीन, दुःखी और विपन्न अवस्थामें दिन गुजारती थी। भूखमें भी वह सहिष्णुता पूर्वक पतिके साथ दिन बिताती सूखकर काँटा हो गयी थी। एक दिन वह काँपती-काँपती बड़े संकोचसे पतिदेवके समीप जाकर बोली—नाथ ! आपके सखा तो साक्षात् लक्ष्मीके पति भगवान् हैं। आप एक दिन उनके पास क्यों नहीं चले जाते ? वे

आपको दीन दुःखी कुटुम्बी समझकर अवश्य अनुग्रह करेंगे, किन्तु सन्तोष, संयम, और सहिष्णुताका अनन्य पुजारी निष्काम भक्त सुदामा इससे कब डिगनेवाला था? उसने पत्नीकी प्रार्थना सुनकर भी अनसुनी कर दी, किन्तु जब पत्नीने इसी प्रकार, दीन भावसे अनेक बार प्रार्थना की तब सुदामाने विचार किया—चलो, इसी बहाने भगवान्का दर्शन तो हो जायगा। ऐसा मनमें निश्चय कर सुदामाने पत्नीसे कहा—देवि! भगवान्को भेंटके लिये घरमें कुछ हो तो ला दो। घरमें था ही क्या जो वह बेचारी ला देती, फिर भी वह तुरन्त अपने पड़ोसिनसे चार मुट्ठी चिउड़ा माँग लायी। उन्हें एक फटे-पुराने चिथड़ेमें बाँधकर ऊपर चीरसे लपेटकर एक पोटली बना ली और अपने पतिदेवको दे दी।

स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल।
कृष्णसंदर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिन्तयन्॥१५॥

वह निस्पृह ब्राह्मण चिउड़ाकी पोटरी लेकर धीरे-धीरे द्वारकाकी ओर चल पड़ा। मार्गमें उसके मनमें यही चिन्ता रह-रह कर उठा करती थी कि मुझ जैसे अकिंचन दरिद्रको भगवान्के दर्शनका सौभाग्य कहाँ प्राप्त हो सकेगा? धीरे-धीरे चलते हुए सुदामा थक जानेके कारण एक उपवनमें जाकर सो गये। भगवान्की प्रेरणासे लीलाशक्तिने क्षणमात्रमें उन्हें द्वारका पहुँचा दिया। जागनेके बाद पूछने पर यही द्वारका है यह जानकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ भगवान्की रानियोंके सुन्दर १६ हजार १ सौ ८ बँगले बने थे। इनमेंसे वे सर्व प्रथम श्रीरुक्मिणीजीके राजभवनमें प्रविष्ट हुए। तीन ड्योढ़ी तथा तीन कक्षा (रक्षार्थ सैनिकस्थान) लाँघकर जब वे अन्तःपुर पहुँचे तब इन्हें ब्रह्मानन्द जैसा अनुपम सुख प्राप्त हुआ। भगवान् दूरसे ही इन्हें आते देख तुरंत शय्या-से उठकर दौड़ पड़े और उन्होंने दोनों भुजाओंसे सुदामाको पकड़कर अपने हृदयसे लगा लिया। मित्रके आलिंगनसे भगवान्को बड़ा ही आनन्द मिला। उनके नेत्रकमलोंसे प्रेमाश्रु झरने लगे। सुदामाकी भी ठीक वैसी ही दशा हो गयी। भगवान्ने सुदामाको शय्या पर बैठाकर अर्घ्य-पाद्यसे विधिपूर्वक उनका पूजन किया और उनके पादप्रक्षालनका जल अपने मस्तक पर धारण किया। फिर उनसे कुशल-समाचार पूछा। रुक्मिणीजी खड़ी होकर उनपर चमर डुलाने लगी। अन्तःपुरकी अन्य समस्त स्त्रियाँ दरिद्र अवधूतका इस प्रकार आदर-सत्कार देख चकित रह गयीं। भगवान् अपने मित्र सुदामाका हाथ पकड़कर गुरुकुल निवासकी कुछ मनोरम चर्चा करने लगे। भगवान्ने पूछा—मित्रवर! गुरुकुलसे लौटनेपर तुमको गार्हस्थ्यके अनुरूप भार्या प्राप्त हुई या नहीं? गृहस्थीमें तथा धन आदिके उपार्जनमें तुम्हारा चित्त तो प्रायः

लगता न होगा ? अच्छा मित्र ! यह तो बताओ कि गुरुकुलकी कुछ बातें तुमको स्मरण आतीं हैं या नहीं ? जिस समय माताजीकी आज्ञासे हम लोग वनमें समिधाएँ लाने गये थे, उस समय कितनी भयंकर वृष्टि हुई थी। सम्पूर्ण वन जलसे आप्लावित हो गया था। हम लोग परस्पर एक-दूसरेका हाथ पकड़े इधर-उधर आतुर दशामें घूम रहे थे। दिशाओंका भी हमें कुछ ज्ञान न रहा था।

दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥३८॥

उस समय कोई रक्षक भी उपलब्ध नहीं था। हम लोग रात्रिभर इसी विपन्न दशामें पड़े रहे। प्रातःकाल सूर्योदय होने पर हमलोगोंको ढूंढते हुए जब गुरुदेव वहाँ पधारे तब हमारी उस दयनीय दशा पर उनका हृदय करुणासे भर गया। उन्होंने कहा—बेटा ! तुम लोगोंने मेरे लिये बड़ा कष्ट सहा। गुरुसेवाका यह अनूठा आदर्श उपस्थित कर दिया। अपने प्रिय शरीरकी भी चिन्ता नहीं की। गुरुसेवासे बढ़कर छात्रोंका कोई उत्तम धर्म नहीं, इसे स्वयं करके दिखा दिया।

गुरुसेवा कृता येन तेन सर्वं कृतं शुभम्।

जिसने श्रद्धा-भक्तिसे गुरुसेवाकी है उसने सब कुछ कर लिया। उसका श्रेय कर्म कोई भी शेष न रहा। मैं तुमपर बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम्हारे सभी मनोरथ सफल होंगे तथा सम्पूर्ण शास्त्र तुम्हें करामलकवत् हो जायंगे। उनका कभी भी किसी प्रहरमें विस्मरण न होगा। हे मित्र ! इस प्रकार हम लोगोंके बहुतसे चरित्र हैं उनका कभी स्मरण करते हो, यह निश्चित है कि गुरुकी कृपासे मनुष्य ऐहिक कामनाओंसे पूर्ण हो पारलौकिक मोक्षका भी अधिकारी हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। सुदामाने कहा— भगवन् ! आप स्वयं जगत्-के गुरु हैं। आपका विग्रह वेदमय है। आपने तो केवल लोकशिक्षार्थं ही यह गुरुकुलकी लीला सम्पन्न की थी। विशेष क्या कहूँ। अनन्त जन्मोंके पुण्यफलके स्वरूप ही हमारा बाल्यकालमें आपके साथ निवास हुआ इससे ही हमने सब कुछ प्राप्त कर लिया अब कुछ प्राप्तव्य शेष न रहा।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका अस्सीवाँ अध्याय समाप्त।



इक्यासीवाँ अध्याय

एक मुट्ठी चिउड़ाके भेंटसे सुदामाको त्रैलोक्यकी सम्पत्ति-प्रदान

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन् हरिः ।
सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ।। १ ।।

इस प्रकार प्राणीमात्रकी मनोवृत्ति जाननेवाले भगवान् अपने अभिन्न मित्र सुदामाके साथ प्रेमालाप करते कुछ मुस्कराते हुए बोले—मित्र ! हमारे लिये तुम अपने घरसे भाभीद्वारा प्रदत्त कुछ भेंट तो लाये होगे। भक्तके द्वारा प्रेमसे दी गयी अणुमात्र भी वस्तु मेरे लिये वहुत प्रीतिदायक होती है और प्रेमसे हीन अभक्तद्वारा दी गयी वस्तुराशि भी मेरी तृप्तिके लिये नहीं होती ? प्रेमसे समर्पित पत्र, पुष्प, फल और जल भी मैं बड़े प्रेमसे स्वीकार करता हूँ। यह सुन सुदामाने लज्जासे मुख नीचा कर चिउड़ोंकी पोटली और भी काँखमें छिपा ली। लक्ष्मीपति भगवान्को देनेका उसे साहस न हुआ। भगवान्ने मन ही मन उनके आनेका कारण जानकर यह निश्चय किया कि मैं इन्हें देवदुर्लभ सम्पत्ति प्रदान करूँगा। वाद उन्होंने काँखमें दवी हुई वह पोटली स्वयं ही खींच ली और कहा—वाह मित्र ! यह क्या है ! तुम मेरी भेंटके लिये ये चिउड़े लाये हो फिर देना क्यों नहीं चाहते ? अहा, ये तो विश्वको तृप्त करनेवाले हैं। इतना कहकर भगवान्ने एक मुट्ठी चिउड़ा मुखमें डाल लिया। जव दूसरी मुट्ठी फिर खानेको उद्यत हुए तव प्रेमसे रुक्मिणीने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—

तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ।। १० ।।

नाथ ! आपने एक मुट्ठीमें ही इन्हें विश्वकी संपूर्ण सम्पत्ति प्रदान कर दी। अव दूसरी मुट्ठी खाकर मुझे तो इन ब्राह्मण देवताके अधीन न करें। इतना सुनते ही भगवान् रुक गये। सुदामाने भक्ष्य-भोज्य चोष्य लेह्य नाना प्रकारके रुचिकर भोजन तथा ताम्बूल एला लवंग आदिसे तृप्त हो रात भर भगवान्के वहीं दिव्य-भवनमें निवास किया। प्रातःकाल वड़े आदर-सत्कारके साथ भगवान्ने स्वयं कुछ दूरतक साथ जाकर उन्हें सप्रेम विदा किया। मार्गमें, सुदामा भगवान्के गुण और शीलपर मुग्ध हो उन्हींका चिन्तन करते हुए लौट रहे थे। वे सोचते थे कि मुझ दरिद्रका भगवान्ने कैसा स्वागत-सत्कार किया। मुझे शय्यापर लिटा कर मेरे पैर दवाये। साक्षात् महालक्ष्मी रुक्मिणीजी पंखा डुलाती रहीं। धन्य है भगवान् श्रीकृष्णकी

यह भक्तवत्सलता। निर्धन सुदामा धन पाकर कहीं उन्मत्त हो मुझे भूल न जाय, इसी विचारसे दयावश भगवान्‌ने मुझे थोड़ा भी धन नहीं दिया। यह बहुत ही अच्छा हुआ। इस प्रकार सुदामा भगवान्‌का चिन्तन करते अपनी कुटियाके निकट जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक गगनचुम्बी दिव्य-महल खड़ा है जो चन्द्र और सूर्य के समान चमचमा रहा है। वन-उपवन और वापियोंसे उसकी विलक्षण शोभा हो रही है। रंग-बिरंगे पक्षी, कोकिल मोर चातक आदि मधुर-मधुर गुञ्जार कर रहे हैं। सैकड़ों दास-दासियाँ सुन्दर वेश-भूषा धारण कर वहाँ घूम-घूमकर देख-रेख कर रही हैं। सुदामा यह सोच ही रहे थे कि 'यह किसका स्थान है' मेरी कुटिया क्या हुई ? तबतक दास-दासियोंका समूह गाजे-बाजेके साथ उन्हें लेने आ पहुँचा। पतिदेवके आगमनका समाचार पाते ही ब्राह्मणी भी प्रसन्न मुद्रामें लक्ष्मीके समान वेष-भूषा धारण कर उनके स्वागतार्थ घरसे निकली। उसका दिव्यरूप देख कर सुदामा स्तब्ध रह गये। पत्नी सहित भवनमें प्रविष्ट हो सुदामाने देखा कि मणियोंके सैकड़ों खम्भे बने हैं। कमरोंमें दुग्धफेनके समान धवल दिव्यकोमल शय्याएँ बिछी हैं। चाँदी और सोनेकी चौकियों पर मखमलकी गद्दियाँ लगी हैं तथा चमचमाती हुईं चाँदनियोंमें मोतियोंकी दिव्य झालरें लटक रही हैं। भवनमें विहारकी सम्पूर्ण सामग्रियाँ वर्तमान थीं। इनसे चकित हो सुदामाने कहा—

नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः।
महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य ॥ ३३ ॥

मुझ भाग्यहीन दरिद्रके इस अलौकिक सम्पत्तिका एकमात्र कारण भगवान् श्रीकृष्णकी कृपादृष्टि ही हो सकती है दूसरा नहीं। बिना मांगे ही उन्होंने मुझे सब कुछ दे दिया। जन्म-जन्मान्तरमें मेरा सख्य, मैत्री एवं दास्यभाव उन्हींके साथ सदा बना रहे। ऐसा संकल्प कर सुदामा पत्नी सहित विषयोंका त्याग कर, भगवान्‌के ही चिन्तनमें लग गए। कुछ काल बाद, पति-पत्नी दोनों ही अनवरत भगवान्‌का गुणानुवाद करते उनके दिव्यधाममें जा विराजे। जो मनुष्य श्रद्धा और भक्तिसे भक्त सुदामाके इस पावन चरित्रका श्रवण-मनन तथा चिन्तन करता है वह संसारके सभी बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।

कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त

बयासीवाँ अध्याय

सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्रमें सम्बन्धियोंका परस्पर मिलन तथा मनोरम भगवच्चर्चा

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ।
सूर्योपरागः सुमहानासीत् कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥

एक समय, बलराम और श्रीकृष्णके द्वारकामें निवास करते प्रलयकालके सदृश खग्रास सूर्य-ग्रहण पड़ा। भारतीय प्रजा ज्योतिषियों द्वारा पहलेसे ही इसे जानकर स्नान-दानादि करनेके निमित्त [1]समन्तपञ्चक क्षेत्रमें जा डटी। जहाँ परशुरामजीने ब्रह्मद्रोही क्षत्रियोंको मारकर उनके रक्तसे पांच तालाब भर दिये थे।

लोकसंग्रहार्थ इस पापके प्रायश्चित्तके लिये उन्होंने यहाँ भगवान्‌का यजन किया था। सूर्य-ग्रहण पर स्नानके लिये वृष्णिवंशी, अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन, गद, प्रद्युम्न, साम्ब, आदि सभी वीर सुन्दर रथोंपर आरूढ हो स्नान करने कुरुक्षेत्र गये। अनिरुद्ध और सेनापति कृतवर्मा ये दोनों द्वारकापुरीकी रक्षामें नियुक्त किये गये। कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर सब लोगोंने स्नान कर उपवास किया और भगवान् श्रीकृष्णमें हमारी भक्ति हो ऐसा संकल्प कर ब्राह्मणोंको नाना प्रकारका भोजन कराकर उन्हें सोना, चाँदी, वस्त्र, आभूषणोंका दान किया तथा इनसे सुसज्जित गौओंका भी दान किया। अनन्तर, उनकी आज्ञासे वृक्षोंकी छायामें बैठकर सब यदुवंशियोंने यथेच्छ सानन्द भोजन किया। इस शुभ अवसरपर यहाँ बहुतसे अपने सुहृद्-सम्बन्धी राजा लोग भी आये जो मत्स्य, उशीनर, विदर्भ, कुरु, काम्बोज, केकय, कुन्ती, आनर्त, केरल आदि देशोंके रहनेवाले थे। पांडव तथा दुर्योधनके पक्षके भी बहुतसे राजा लोग आये। नन्द आदि गोप तथा उनके साथ व्रज की गोपियाँ भी वहाँ आयीं। सबलोग परस्पर आपसमें प्रेमसे मिले और स्वागतपूर्वक कुशल-मंगल पूछकर भगवान् श्रीकृष्णकी चर्चा करने लगे। बलराम और श्रीकृष्णका दर्शनकर सबको बड़ा आनन्द हुआ। भगवान्‌ने भी सबका यथोचित आदर-सत्कार

---

१. समन्तपञ्चक शब्दका अर्थ इस प्रकार है—
'परशुरामकृतह्रदपञ्चकस्य समन्ते समीपे वर्तमानो देशः समन्तपञ्चकः'

किया। बाबा नन्द यदुवंशियोंका आना सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और स्वयं उनसे जाकर मिले। बलराम और श्रीकृष्ण मैया यशोदा तथा नन्दको प्रणाम कर उनके गलेसे लिपट गये। बहुत देरतक इसी प्रकारका आमोद-प्रमोद चलता रहा। एकान्तमें भगवान् गोपियोंसे भी जाकर मिले और उन्हें ज्ञानोपदेशद्वारा सान्त्वना देकर उनका वियोगजन्य ताप दूर किया। हे राजन्। अन्तमें सब गोपियोंने भगवान्से प्रार्थना की—हे नाथ! हमारा मन सदा आपके श्रीचरणोंमें लगा रहे ऐसा अनुग्रह करें। भगवान्ने तथास्तु कह कर उनका मनोरथ पूर्ण किया। वे सब गोपियाँ भगवान्का ध्यान करती हुई अन्तमें लिङ्गशरीरसे मुक्त हो उनके स्वरूपको प्राप्त हो गयीं।

तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन्॥ ४७॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका बयासीवाँ अध्याय समाप्त।

●

तिरासीवाँ अध्याय

श्रीकृष्णकी पत्नियों द्वारा द्रौपदीसे अपने-अपने विवाहकी सुमधुर घटनाका वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

तथानुगृह्य भगवान् गोपीनां स गुरुर्गतिः।
युधिष्ठिरमथापृच्छत् सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम्॥ १॥

भगवान्ने इस प्रकार गोपियोंपर अनुग्रह कर, युधिष्ठिर एवं अपने समस्त सम्बन्धियोंसे कुशल-समाचार पूछा। सभीने प्रसन्न होकर भगवान्से कहा—नाथ! आपके चरण-कमलोंका सुमधुर मकरन्द पीने वाले हमलोगोंके लिये भला अमङ्गलकी संभावना कैसी? आपके अनुग्रहमात्रसे जीवोंका अज्ञान सदाके लिये निवृत्त हो जाता है। आप आनन्दनिधि हैं। धर्म-मर्यादाके रक्षार्थ दयावश ही आप मनुष्य-विग्रहमें अवतीर्ण हुए हैं, हम आपके श्रीचरणोंमें बारम्बार सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।

इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः ।
समेत्य गोविन्दकथा मिथोऽगृणंस्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ।।५।।

हे राजन् ! जब सभी लोग इस प्रकार परस्पर भगवान् श्रीकृष्णका गुणानुवाद कर रहे थे, उसी समय अंधक और कुरुवंशकी स्त्रियाँ भी आपसमें मिलकर भगवान् श्रीकृष्णकी कुछ मधुर-मधुर चर्चाएँ करने लगीं । ये तीनों लोकमें प्रसिद्ध हैं । मैं उनका वर्णन करता हूँ । तुम ध्यान पूर्वक सुनो । द्रौपदीने भगवान्‌की पत्नियोंसे पूछा—अच्छा आप यह तो बतायें कि भगवान्‌ने आप सभीके साथ कैसे-कैसे विवाह किया ? रुक्मिणीने कहा–द्रौपदी जी ! मुझे तो शिशुपालके पल्ले डालनेके लिये राजाओंकी विशाल सेना धनुष चढ़ाये कटिवद्ध खड़ी थी । सबके सिरपर पैर रख कर बकरी-भेड़ोंके झुण्डसे सिंहके समान, भगवान्‌ने मेरा अपहरण किया, उनके श्रीचरण सदा मुझे पूजनके लिये प्राप्त होते रहें । सत्यभामाने कहा—प्रसेन भैयाके वधसे शोकाकुल मेरे पिता सत्राजित्‌ने भगवान्‌को मणि-चोरीका मिथ्या कलङ्क लगाया था । वह मणि जाम्बवान्‌के पास थी, भगवान्‌ने उसे जीतकर वह मणि उन्हें लाकर दे दी । इसपर लज्जित हो मेरे पिताने मुझे भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दिया । जाम्बवतीने कहा—मेरे पिता जाम्बवान्‌ने भगवान्‌से सत्ताईस दिनों तक भीषण युद्ध किया । मेरे पिताको यह ज्ञात न हो सका कि ये सीतापति राम हैं । ज्ञात होनेपर उन्होंने इनके श्रीचरणोंमें नत-मस्तक हो मणिसहित मुझे अर्पित कर दिया । आप मुझे ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं सदा इनके चरणोंकी दासी बनी रहूँ ।

ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हयं मां पादौ प्रगृह्य मणिनाऽहममुष्य दासी ।१०।

कालिन्दीने कहा—भगवान्‌के चरणोंकी प्राप्तिकी इच्छासे मैं यमुनामें खड़ी हो कर तप कर रही थी । अर्जुनके साथ भ्रमण करते भगवान् वहाँ पहुँचे । उन्होंने मेरा अभिप्राय जान मुझे पत्नीके रूपमें ग्रहण किया । मैं इनकी सेवामें आकर इनके घरका सम्मार्जन करने लगी, मेरा अहोभाग्य । मित्रविन्दा[1] (शैब्या) ने कहा—भगवान् स्वयम्वरमें मेरे भाइयों सहित सभी राजाओंको पराजित कर मुझे अपनी द्वारकापुरीमें लाये और वहाँ उन्होंने विधिवत् मुझसे विवाह किया । मैं जन्म-जन्मान्तर इन्हींके पाद-प्रक्षालनमें अपना सौभाग्य मानती हूँ । सत्या (नाग्निजिती) ने कहा—मेरे पिता नग्नजित्‌ने मेरे विवाहमें सात बैलोंको एक साथ नाथनेकी शर्त रखी थी । यह शर्त

१ शिविदेशमें उत्पन्न होनेके कारण इसका नाम शैब्या भी था ।

कोई भी राजा पूरी न कर सका। तब, भगवान्‌ने बकरीके बच्चोंके समान एक साथ सब बैलोंको नाथ कर मुझे अपनी दासी बना लिया। मार्गमें इनको अनेक राजाओंने मिलकर घेरा। पर उन सबको परास्त कर वे मुझे अपने घर ले आये और मुझसे विधिवत् विवाह किया। भद्राने कहा—मेरे पिता धृष्टकेतुने मामा वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्णको स्वयं आदरसे बुलाकर मुझे अर्पण किया था। मुझे जन्म-जन्मान्तरमें भगवान्‌के चरण-स्पर्शका सौभाग्य प्राप्त होता रहे। लक्ष्मणाने कहा—हे देवि! नारदजी द्वारा भगवान्‌का अनुपम गुणानुवाद सुनकर मैंने हृदयसे उनका ही वरण कर लिया था। यह बात जान कर मेरे पिता बृहत्सेनने एक उपाय रचा। जैसे आपके स्वयम्वरमें अर्जुनको प्राप्त करनेकी इच्छासे मछली टाँगी गयी थी। वैसे ही मेरे स्वयम्बरमें भी टाँगी गयी थी, किन्तु उससे इसमें कुछ विशेषता थी। आपके स्वयम्बरकी मछली बाहर काँचकी हँडियासे ढकी थी, अन्दरसे नहीं, वह खम्भेसे सटकर ऊपर देखनेमें स्पष्ट दिखायी पड़ती थी। मेरे स्वयम्बरमें ऐसी व्यवस्था थी कि खम्भेके मूलमें रखे घड़ेके जलमें ही लक्ष्य दिखायी पड़ता था और नीचे दृष्टि कर ऊपर लक्ष्यका भेदन करना था। श्रीकृष्णके अतिरिक्त इसे कोई भी राजा न कर सका। भगवान्‌ने अपने अद्भुत पराक्रमसे लक्ष्य वेध कर मुझे प्राप्त किया और द्वारकामें लाकर मेरे साथ सोल्लास विवाह किया। १६ हजार १ सौ रानियोंने कहा—देवि! भूमिके पुत्र भौमासुरने सुर, असुर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर तथा राजाओंको जीतकर उनकी कन्याओंको एकत्र कर रखा था। हम सब हृदयसे भगवान् श्रीकृष्णको ही पति बनाना चाहती थीं। भगवान्‌ने संग्राममें भौमासुरको मार कर हमारे साथ विधिपूर्वक विवाह किया। हम सभी भगवान्‌के चरणकमलके अतिरिक्त साम्राज्य स्वाराज्य, वैराज्य यहाँतक कि सायुज्य मुक्ति भी नहीं चाहतीं केवल भगवान्‌की चरणरज चाहती हैं। आप हमें ऐसा आशीर्वाद दें जिससे हमारा कभी भगवान्‌से वियोग न हो। हम सभी उन आत्मारामके चरणोंकी दासियाँ बन कर सेवा करती रहें।

आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः ॥ ३९ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका तिरासीवाँ अध्याय समाप्त।



चौरासीवाँ अध्याय

वसुदेवके यज्ञमहोत्सवमें बन्धु-बान्धवोंका आगमन और पुनः उनका प्रस्थान

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, अन्यान्य राजाओंकी स्त्रियाँ एवं समागत ब्रजकी गोपियाँ श्रीकृष्णकी पत्नियोंका भगवान्‌के प्रति ऐसा प्रगाढ अनुराग देखकर आनन्दविभोर हो उठीं और नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहाती हुई उनके प्रेमकी भूरि-भूरि सराहना करने लगीं। स्त्री-पुरुषोंमें ऐसी मनोरम चर्चाएँ चल ही रही थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामजीके दर्शनार्थ व्यास, नारद, विश्वामित्र, गौतम आदि उच्चकोटिके बहुतसे महात्मा भी वहाँ आकर उपस्थित हुए। भगवान्‌ने उठकर सपरिवार उन्हें सिर झुका कर प्रणाम किया और अर्घ्य-पाद्यसे विधिवत् पूजन कर महात्माओंसे कहा—मुनीश्वरो ! आज आपके दुर्लभ दर्शनोंसे हमारा जन्म सफल हो गया। स्वल्प तपस्यावाले मनुष्योंको आपलोगोंका दर्शन होना कठिन है।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ११ ॥

जलमय तीर्थं क्या नहीं है ? हैं ही, तथा मिट्टी या पत्थरके बने देवता क्या नहीं हैं ? हैं ही, किन्तु वे गुरूपदिष्ट ज्ञान द्वारा ही बहुत कालमें पवित्र करते हैं, साधनसम्पन्न महात्मा तो अपने दर्शन मात्रसे अज्ञान निवृत्त कर जीवोंका अन्तःकरण शुद्ध कर देते हैं, यही उनकी विशेषता है।

यहाँ 'उरु-काल' शब्दका अर्थ गूढ है। उरु और 'गुरु' शब्द पर्याय-वाचक हैं। कल 'गतौ' इस धातुसे निष्पन्न 'काल' शब्द 'ज्ञान' का वाचक है। 'कलनं कालः ज्ञानम्,' 'गत्यर्थकानां ज्ञानार्थतापीति वामनादयः' इस नियमसे उरुणा गुरुणा दत्तः कालः उरुकालः इस मध्यमपदलोपी समाससे गुरुदत्त ज्ञान अर्थ होता है। इससे तत्तन्मन्त्र द्वारा, तत्तत्स्वरूपकी उपासनासे पापका क्षय होनेपर अन्तः- करणकी शुद्धि होती है इसका संकेत किया गया है। इसमें प्रधान कारण 'गुरुका उपदेश' ही है। संशयबुद्धिवाले पुरुषको चन्द्र, सूर्य, आदि देवता भी उपासनासे पवित्र नहीं कर सकते, यह लक्षित कराया गया है। यहाँ विधेयगत महात्माओंकी प्रशंसामें तात्पर्य है तीर्थं आदि की निन्दामें नहीं।

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३॥

जिसकी शवतुल्य जड़ शरीरमें अहंबुद्धि, स्त्री पुत्रादिमें आत्मीयबुद्धि, मिट्टी या पत्थरके बने देवताओंमें पूज्यबुद्धि और जलमें तीर्थबुद्धि रहती है, किन्तु ज्ञानी, महात्माओंमें ऐसी बुद्धि नहीं रहती उसे विद्वानोंने पशुओंमें खर भारवाही बताया है। हे राजन् ! मुनि लोग भगवान्का ऐसा गूढ़ वचन सुनकर चकित रह गये। वे कुछ भी समझ न सके। उनकी बुद्धि चकरा गयी। उन्होंने बहुत देरतक सोच-विचार कर ग्यारह श्लोकों द्वारा भगवान्का स्तवन कर अन्तमें यह निश्चय किया कि भगवान्ने लोकसंग्रहार्थ ही हमारा महत्त्व बढ़ाया है। हे राजन् ! इतना कहकर मुनि लोग भगवान्की आज्ञा ले अपने-अपने आश्रममें जानेका विचार कर ही रहे थे कि वसुदेवजी ने मुनियोंके चरणोंमें गिर कर एक प्रश्न पूछा—

नमो वः सर्वदेवेभ्य[1] ऋषयः श्रोतुमर्हथ ।
कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥ २६ ॥

हे महर्षिवृन्द ! आपमें समस्त देवता निवास करते हैं अतः आप सभी सर्व-देवस्वरूप हैं आप लोगोंको हमारा नमस्कार है। मेरा एक प्रश्न है कृपया उसे सुनें। कर्म करनेसे मनुष्योंको कर्मजन्य बन्धन होता है। उसका निरास अर्थात् उसकी निवृत्ति जिस प्रकार हो कृपया उसका उपाय बतायें ? इसपर नारदजीने कहा—महर्षियों ! इनका जिज्ञासाके रूपमें यह प्रश्न ठीक ही है। इसमें आश्चर्य क्या ? वसुदेवजी ज्ञानके आकर श्रीकृष्णको बालक समझ कर आत्म-सम्बन्धी कल्याणका प्रश्न हमसे पूछ रहे हैं। मनुष्योंका निरन्तर सान्निध्य ही इनके अनादरका कारण हो रहा है। जैसे गङ्गातीरवासी आत्मशुद्धिके लिये अन्य जलाशय या तीर्थोंमें दौड़ते फिरते हैं।

गाङ्गं हित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥३१॥

मुनियोंने कहा—हे वसुदेवजी ! गृहस्थ पुरुषके लिये कल्याणकारी मार्ग शास्त्रोंमें यही बताया है कि वह श्रद्धा और भक्तिसे यज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन करे, निष्काम होकर सम्पूर्ण कर्म भगवान्को समर्पित करे। किसी कर्मके फलकी इच्छा न रखें। ऐसा करनेसे कर्मोंका नाश मूलच्छेद स्वतः हो जाता है फिर वे कर्म-बन्धनके हेतु नहीं होते। द्विजातियोंको जन्मसे देव, ऋषि और पितरोंके तीन ऋण रहते हैं। उनकी निवृत्ति क्रमसे यज्ञ,

---

१. 'यावंतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे निवसन्ति ।' श्रुतिः।

अध्ययन और पुत्रोत्पत्तिके द्वारा होती है। आप दो ऋणोंसे तो मुक्त हो ही चुके। अब यज्ञ द्वारा देवऋणसे भी मुक्त होनेका उपाय करें। ये साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण आपके पुत्र हैं। आप इन्हींका श्रद्धा-भक्तिसे विधिपूर्वक पूजन करें। ऐसा करनेसे आपके सब मनोरथ सिद्ध हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं। शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन् ! महर्षियोंके इस उपदेशसे वसुदेवजीने तुरन्त उन्हीं महात्माओंको अपने यज्ञमें ऋत्विज रूपसे ससम्मान वरण कर लिया। उन्होंने वसुदेवको यज्ञकी दीक्षा देकर उनका विधिपूर्वक यज्ञ आरम्भ कराकर उसे सम्पन्न किया। बाद वसुदेवने यज्ञमें सब बान्धवोंका उचित सत्कार कर ऋत्विजोंको विपुल दक्षिणा दी और फिर सबके साथ यज्ञान्त-स्नान किया। अनन्तर मुनिवृन्द वसुदेवजीको आशीर्वाद देकर अपने-अपने आश्रमपर चले गये। उनके बाद सभी बन्धु-बान्धव एवं सम्बन्धी राजा लोग भी बड़े आदरके साथ विदा किये गये। नन्द आदि गोप और गोपियोंका मन भगवान्‌के चरणोंसे अलग नहीं हो रहा था फिर भी विवश हो उन्होंने वहाँसे मथुराको प्रस्थान किया। सबके चले जानेपर वर्षाऋतुको सन्निहित देख, यदुवंशी भी भगवान् श्रीकृष्णके साथ द्वारका चले गये।

वीक्ष्य प्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥ ७० ॥

वहाँ पहुंचने पर यादवोंने सभी नागरिकोंके समक्ष तीर्थयात्रामें बन्धु-बान्धवोंका आदर्श मिलन तथा वसुदेवके भव्य यज्ञ-महोत्सवका विशद विवरण कह सुनाया।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका चौरासीवाँ अध्याय समाप्त



पचासीवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण द्वारा पिताको आत्म-सम्बन्धी ज्ञान एवं माताको मृतपुत्र प्रदान

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

अथैकदाऽऽत्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ ।
वसुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या सङ्कर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥

कुरुक्षेत्रमें समागत मुनियोंके मुखसे अपने पुत्रोंका विलक्षण प्रभाव सुनकर वसुदेवजीकी उनमें ईश्वरबुद्धि हो गई। एक दिन जब दोनों भाई प्रतिदिनके अनुसार अपने पिता वसुदेवको प्रणाम करने आये तब उन्होंने उनका अभिनन्दन कर कहा—हे बलराम हे कृष्ण ! जगत्के कारण जो प्रकृति और पुरुष कहे जाते हैं, उनके परमकारण आप हैं। कर्त्ता, कर्म, करण सम्प्रदान आदि छः कारकों द्वारा जो क्रियाकलाप सम्पन्न होता हैं वह सब आप हैं। हे भगवन् ! आप ही विश्वकी रचना कर इसका धारण और पोषण करते हैं। महदादि तत्त्वोंकी जो शक्ति है, वह भी आप ही हैं। चन्द्रकी कान्ति, अग्निका तेज, सूर्यकी प्रभा और बिजलीका स्फुरण आपसे ही होता है। पृथ्वीमें गन्ध, जलमें रस, अग्निमें तेज, वायुमें स्पर्श और आकाशमें शब्द आपका ही रूप हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी चारों वाणियाँ वैयाकरणोंके अभिमत आठ स्फोट, त्रिविध अहंकार और तीनों गुण ये सब आपमें ही कल्पित हैं। आपकी विलक्षणता अनिर्वचनीय है। जगत् आपसे पृथक् नहीं, किन्तु, आप इससे पृथक् हैं। आपके स्वरूपका ज्ञान न होने पर ही मनुष्य नानायोनियोंमें भ्रमण करते दुःख भोगते हैं। मेरी भी यही दशा है। मनुष्यजन्म पाकर भी मेरी सारी आयु व्यर्थ चली गई। मैं कुछ भी कर न सका। अहन्ता-ममतारूपी स्नेहपाशसे सम्पूर्ण जगत्को आपने बाँध रखा है।

स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान् सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥

मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मृत्युभय दूरकर संसारसे मेरा उद्धार करें। आपकी माया कोई जान नहीं सकता। जो आपके शरणागत हुआ वही इसका कुछ मर्म जान सकता है दूसरा नहीं। हे राजन् ! पिताके ऐसे ज्ञानगर्भित वचन सुनकर भगवान्ने हँसकर कहा—पिताजी ! आपने, तो सब शास्त्रोंका गम्भीरतासे समन्वय कर हम बच्चोंके सामने 'सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञान' ही मूर्तिमान् खड़ा कर दिया। इससे अधिक और हम क्या कह सकेंगे ? केवल इतना ही कहना शेष है कि हम-आप भाई-बन्धु तथा पारिवारिक सम्बन्धी, चर-अचर आदि जितना भी जगत् दृष्टिगोचर होता हैं उसे आप 'ब्रह्मरूपमें' ही देखें। इसमें भेदबुद्धि न करें। स्वयं प्रकाशमान अविनाशी एक ही आत्मा व्यापकरूपसे सर्वत्र भासित हो रहा है। उपाधि-भेदसे ही उसके नाना रूप प्रतीत होते हैं। उसका आविर्भाव और तिरोभाव ही जन्म-मरण कहा जाता है। वस्तुतः वह इन दोनोंसे रहित है। आप प्रतिक्षण उसीका अनुसन्धान करें, फिर आपके सामने संसारकी सत्ता भासित न होगी। हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्ने

कृपाकर सरल शब्दोंसे वसुदेवको समझाया और अपनी ज्ञानशक्तिके द्वारा उनका अज्ञान क्षणमात्रमें दूर कर दिया। वे सर्वत्र भगवान् की सत्ताका अवलोकन कर मन-ही-मन उस आनन्द-निधिका अनुभव करने लगे। इसी प्रसंगमें देवकीने भी बड़ी दीनता पूर्वक बलराम और श्रीकृष्णका सम्बोधनकर उनसे कहा—मेरे बेटा! मेरे लाल! मैंने सुना था कि तुम दोनों दक्षिणाके रूपमें गुरुदेवका मृत पुत्र ले आये थे। मैं भी कंस द्वारा मारे गये अपने पुत्रोंको देखना चाहती हूँ। क्या तुम उन्हें ला सकोगे? इतना कहते ही देवकीकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। हे राजन्! माताकी ऐसी ममतामयी वाणी सुनकर भगवान्ने कहा—माँ तुम शोक न करो। मैं पुत्रोंको अवश्य ले आऊँगा। इतना कह बलराम और श्रीकृष्ण तुरन्त सुतललोकको चल दिये। वहाँ बलिने भगवान्को आया देख तुरन्त उठ कर उन्हें प्रणाम किया और अर्घ्य-पाद्यसे विधिवत् पूजन कर उनका चरणोदक सपरिवार अपने सिरपर धारण किया। अनन्तर सात श्लोकोंसे भगवान्की स्तुति करते हुए कहा—भगवन्! आपका आगमन कैसे हुआ। इस सेवकको क्या आज्ञा है कहिये? इसपर भगवान्ने बलिसे कहा—दैत्येन्द्र! मैं माता देवकीके उन छहों पुत्रोंको जिनके नाम स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतंग, क्षुद्रभृद और घृणी हैं उन्हें लेने आया हूँ, जिन्हें कंसने मारा था और जो तुम्हारे समीप बैठे हैं। माता उनका स्मरण कर विलख रही हैं। उनकी शोकनिवृत्तिके लिये मैं इन्हें लेने आया हूँ। फिर ये छहों मेरे प्रसादसे शापमुक्त हो देवलोक चले जायँगे।

स्मरोद्गीथः परिष्वङ्गः पतङ्गः क्षुद्रभृद् घृणी।
षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति सद्गतिम्॥ ५१॥

बलिने वे छहों पुत्र लाकर तुरन्त भगवान्को सौंप दिये। स्मरका ही पूर्वमें कीर्तिमान् नाम था।

[इस प्रसंगमें हरिवंशकी एक कथा है कि स्वायंभुव मन्वन्तरमें मरीचि ऋषिके उर्णा नामक पत्नीसे छः पुत्र उत्पन्न हुए थे। दैवात् इन छहोंकी दृष्टि अपनी पुत्रीपर आसक्त ब्रह्माजीपर पड़ी। इसपर, उन छहोंको कुछ हँसी आ गई जिससे क्षुब्ध हो ब्रह्माने उन्हें राक्षस हो जानेका शाप दे दिया। वे छहों हिरण्यकशिपुके पुत्र कालनेमिके घर उत्पन्न हुए। वहाँ उन्होंने अमरत्वकी प्राप्तिके लिये ब्रह्माजीकी तपस्या की। ब्रह्माजीने उनकी तपस्यासे प्रसन्न हो उन्हें अमरत्वका वरदान दिया। यह बात जब हिरण्यकशिपुने सुनी तब वह

क्षुब्ध हो उठा। उसने कहा—मुझ सर्वेश्वरके रहते मेरे इन पौत्रोंने ब्रह्माकी तपस्या क्यों की ? अतः इन्हें मेरे शाप द्वारा अपने पिताके ही हाथसे मरना पड़ेगा। इस दशामें ब्रह्माजीके वरदानकी सत्यताके लिये, भगवान्‌ने उन छहोंकी जीवात्मा खींच कर योगमायाको सौंप दी। योगमायाने उन्हें कुछ दिन निद्रित रखा। जब कालनेमि कंसके रूपमें अवतीर्ण हुआ तब वे छहों क्रमशः देवकीके गर्भमें आते गये और कंसद्वारा मारे गये। अमरत्वकी प्राप्तिके लिये वे बलिके समीप निवास करते रहे।]

बलराम और श्रीकृष्ण उन छहों पुत्रोंको लेकर द्वारका लौट आये और उन्हें माताको समर्पित कर दिया। माता इन बालकोंको देखते ही आनन्दमग्न हो गयी। प्रेमवश उसके स्तनोंसे स्वयं दूध टपकने लगा। उन्होंने सबका यथेच्छ आलिङ्गन कर उन्हें दूध पिलाया। अनन्तर, छहों पुत्र माता-पिता एवं भगवान्‌को प्रणाम कर शापमुक्त हो देवलोक चले गये। देवकी भी अपने पुत्र श्रीकृष्णका ऐसा अद्भुत ऐश्वर्य देख चकित रह गयीं। सूतजीने शौनकादि ऋषियोंसे कहा—हे मुनियो ! इस प्रकार अनन्त पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्णके अनन्त चरित्र हैं। जो मनुष्य श्रद्धाभक्तिसे भगवान्‌में चित्त लगाकर इस परम पावन चरित्रका श्रवण करता है या सुनाता है वह प्रभुके मंगलमय निर्भय धामको प्राप्त करता है।

भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा-साप्ताहिकके दशम स्कन्धका पचासीवाँ अध्याय समाप्त।

—:※:—

[मासिक पारायणका छब्बीसवाँ विश्राम]

छियासीवाँ अध्याय

अर्जुन द्वारा सुभद्राका-हरण तथा बहुलाश्व और श्रुतदेवपर भगवत्कृपा

ब्रह्मन् वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः।
यथोपयेमे विजयो या ममासीत् पितामही ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने शुकदेवजीसे प्रश्न किया—हे ब्रह्मन्! बलराम और श्रीकृष्णकी बहन सुभद्रा, जो मेरी पितामही थीं, उनसे अर्जुनने जिस प्रकार विवाह किया यह प्रसङ्ग जाननेकी मेरी बड़ी अभिलाषा है कृपया वर्णन करें। शुकदेवजीने कहा—राजन्! इस विषयपर महाभारतका एक प्रसङ्ग है—जिस समय द्रौपदी पञ्च-पाण्डवोंमेंसे किसी एकके पास रहती थीं उस समय दूसरा पाण्डव उस घरमें जा नहीं सकता था। यदि कदाचित् कोई किसी कार्यवश चला जाता तो दण्डके रूपमें उसे बारह वर्षतक तीर्थयात्रा करनी पड़ती थी ऐसा नियम था! दैवयोगसे अर्जुन एक ब्राह्मणके धनरक्षार्थ अपना धनुष लेने युधिष्ठिरके भवनमें चले गये। द्रौपदी उस समय वहीं रहती थीं। इसलिये प्रतिज्ञाके अनुसार अर्जुनको तीर्थयात्रामें जाना आवश्यक हो गया था। वे तीर्थयात्रा करते प्रभास-क्षेत्र पहुँचे। वहाँ उन्हें पता चला कि बलरामजी अपनी बहन सुभद्राका विवाह दुर्योधनसे करना चाहते हैं, किन्तु वसुदेव एवं श्रीकृष्णकी इसमें सम्मति नहीं है। अर्जुन सुभद्राको स्वयं भी चाहते थे। उन्होंने श्रीकृष्णके परामर्शसे संन्यासीका वेष धारण कर द्वारकामें प्रवेश किया और अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये वहीं चातुर्मास्य करने लगे। द्वारका-वासियोंने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। अनजानमें बलरामजीने भी कई बार उन संन्यासी महाराजका स्वागत-सत्कार किया। एक दिन बलरामजीने भोजनका निमन्त्रण दे दण्डी महाराजको अपने घर बुलाया और बड़ी श्रद्धाभक्तिसे उन्हें भोजन कराया। दण्डीजीने वहाँ अत्यन्त सुन्दर कन्या सुभद्राको रतिक्षुब्ध मनसे देखा। कन्याने भी मुसकराकर लजाते हुए भावपूर्ण तिरछी चितवनसे उन्हें देखा। अर्जुन तो उसके अपहरणका अवसर देख ही रहे थे कि एक दिन सुभद्रा देवयात्राके निमित्त रथपर चढ़ कर अपने अन्तःपुरसे निकली। उसी समय, देवकी, वसुदेव एवं श्रीकृष्णकी अनुमतिसे अर्जुन ने उसका हरण कर लिया।

महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम्।
जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ६ ॥

यह देख कन्याके रक्षक योद्धाओंने अर्जुनको घेरा। किन्तु, वे अर्जुनके सामने टिक न सके। यह सुनकर बलराम जी बड़े कुपित हुए। श्रीकृष्णने तुरंत आकर उनके पैर पकड़ लिये तथा और भी सुहृद्-सम्बन्धी लोगोंने बलरामजीको समझा-बुझाकर उनका क्रोध शान्त किया। बलरामजी इस कार्यमें श्रीकृष्णकी सम्मति जानकर भाईके प्रेमवश कुछ बोल न सके और

शान्तचित्त हो उन्होंने वर-वधूको बहुत-सा दहेज देकर विदा किया। यह सुभद्रा देवकीकी कन्या थी।

वसुदेवाच्च देवक्यामादौ जातः सुसेनकः।
कीर्तिमान् भद्रसेनश्च जारुख्यो विष्णुदासकः॥
भद्रदेहः कंस एतान् षड्गर्भान् निजघान ह।
ततो बलस्ततः कृष्णः सुभद्रा भद्रभाषिणी॥

(अग्निपुराण अ० २७५)

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्? कल्पभेदसे कहीं-कहीं इन नामों में अन्तर भी पाया जाता है। इसी अवसरपर भगवान्‌ने अपने दो भक्तोंपर जो अनुपम कृपाकी थी उसका भी मनोरम प्रसङ्ग सुनो। श्रुतदेव नामका एक गृहस्थ ब्राह्मण भगवान्‌का अनन्य भक्त था। वह मिथिला नगरीमें निवास करता था। दैवेच्छासे जो कुछ मिल जाता उसीमें सन्तुष्ट रहकर वह अपनी नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंका अनुष्ठान किया करता था। उस नगरीका एक राजा बहुलाश्व था। वह भी भगवान्‌का प्रिय भक्त था। उन दोनोंके प्रीत्यर्थं एक दिन भगवान् मिथिला पधारे। उनके साथ नारद, वामदेव, अत्रि, व्यास आदि बहुत-से महात्मा गये और साथमें मैं भी गया था। मार्गमें जगह-जगहपर जनता अर्घ्य-पाद्यसे भगवान्‌का विधिवत् पूजन कर उनका गुणगान कर रही थी। नर-नारियाँ अपलक नेत्रोंसे भगवान्‌के सौन्दर्य सुधारसका पान कर रही थीं और भगवान् अपनी कृपादृष्टि से ही सबको तत्त्वज्ञानका उपदेश करते धीरे-धीरे मिथिलाकी ओर बढ़ते जा रहे थे। मिथिलाकी भावुक जनताने मुनियों सहित भगवान्‌का बड़े धूमधामसे स्वागत-सत्कार तथा पूजन किया। भगवान्‌का मिथिलामें शुभागमन सुनकर बहुलाश्व और श्रुतदेव भी एक साथ वहाँ पहुँचे। इन दोनोंने हाथ जोड़कर मुनियों सहित भगवान्‌से आतिथ्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। भगवान् एक-दूसरेसे अलक्षित हो पृथक्-पृथक् दोनोंके घर पहुँचे। बहुलाश्वने मुनियों-सहित भगवान्‌का यथोचित पूजन-सत्कार कर उनका चरणप्रक्षालितजल सकुटुम्ब अपने मस्तक पर धारण किया और कुछ दिन मिथिलामें निवास करनेकी प्रार्थना की। श्रुतदेव भी भगवान्‌को महात्माओं सहित घर पर आया देख प्रसन्नतासे नाचने लगा। अनन्तर, फल, पुष्प, तुलसी, जल आदिसे विधिवत् पूजन कर उसने उन्हें सुस्वादु भोजन कराया एवं सबके चरण दबाने

लगा। भगवान्‌ने कहा—विप्रदेव ! हम तो तुमपर अनुग्रह करने ही यहाँ आये हैं। ये महात्मागण सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र करनेवाले देवस्वरूप हैं। मुझे अपना रूप भी ब्राह्मणोंसे अधिक प्रिय नहीं है। तुम इन्हीं महात्माओं में मेरी दृष्टि रख श्रद्धा-भक्तिसे इनका पूजन करो। इसीमें मेरी प्रसन्नता है अधिक सामग्री से नहीं। हे राजन्‌ ! इस प्रकार भगवान्‌के आदेशसे श्रुतदेव और राजा बहुलाश्व भगवद्बुद्धिसे ब्राह्मण-महात्माओंकी श्रद्धापूर्वक सेवा करने लगे। उसके प्रभावसे वे दोनों सद्‌गति, मोक्षको प्राप्त हुए।

एवं स्वभक्तयो राजन् भगवान् भक्तभक्तिमान्।
उषित्वाऽऽदिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात्॥ ५९॥

इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान्‌ अपने भक्तोंको सन्मार्गका उपदेश कर अर्थात् वेद निर्गुण-सगुण उभयविध ब्रह्मका प्रतिपादन करते हैं ऐसा बता कर पुनः अपनी द्वारका पुरीको चले गये।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका छियासीवाँ अध्याय समाप्त।

—:❀:❀:—

सतासीवाँ अध्याय

वेद-स्तुति

श्रुतियों द्वारा परब्रह्म श्रीकृष्णका महत्त्वपूर्ण स्तवन और राजाके प्रश्नका उत्तर

राजा परीक्षित्‌ने शुकदेवजीने पूछा—

ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः।
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे॥ १॥

हे ब्रह्मन् ! आपने पहले बताया है कि वेद ब्रह्मपरक हैं। इसमें मुझे कुछ सन्देह है। कारण श्रुतियाँ शब्दात्मक हैं और ब्रह्म शब्दातीत है। ऐसी दशामें शब्दात्मक श्रुतियाँ शब्दातीत अनिर्देश्य निर्गुण ब्रह्मका प्रतिपादन कैसे कर सकती हैं।

शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! प्रश्न तो तुमने ठीक ही किया। अब इसका उत्तर सुनो। भगवान्ने सगुण-विग्रह धारण कर जीवोंके अर्थ, धर्म, काम और मोक्षके लिये क्रमसे बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणकी रचना की है। यह उत्तर सुनकर राजा परीक्षित् चकित रह गये। उन्होंने कहा—महाराज ! यह उत्तर तो वैसा ही हुआ जैसे किसीके यह पूछनेपर तुम कहाँ जाते हो' तो उत्तर मिला कि 'मैंने आज खीर खायी' है अतः आप कृपया इस प्रश्नका सुगमतासे उत्तर देकर मेरा सन्देह निवृत्त करें। तब शुकदेवजीने हँसकर कहा—राजन् ! मन, बुद्धि आदिकी रचना भगवान्ने सगुण-मूर्ति धारण कर की है। इसलिये श्रुतियाँ उसी सगुणब्रह्मका साक्षात् प्रतिपादन करती हैं, किन्तु तात्पर्यवृत्तिसे निर्गुण ब्रह्मका भी प्रतिपादन हो जाता है। दोनोंमें अभेद होनेके कारण यह प्रतिपादन असंगत नहीं कहा जा सकता।

भगवान्की स्तुतिमें श्रुतियों द्वारा कहे गये २८ श्लोक 'ब्राह्मी उपनिषद्के' नामसे विख्यात हैं। वे परब्रह्म श्रीकृष्णका ही पूर्णरूपसे प्रतिपादन करते हैं। यह उपनिषद् अनादिशिष्टपरम्परासे शिष्यप्रशिष्यों द्वारा अविकलरूपमें चली आ रही है। नारदादि ऋषियोंके पूर्वज सनकादिक महर्षियोंने श्रवण-मनन, और निदिध्यासनद्वारा इसे अन्तःकरणमें धारणकर आत्मतत्त्वकी अनुभूति की थी। अतः इसमें सन्देह करना उचित नहीं। जो मनुष्य श्रद्धा भक्तिसे इसका श्रवण या मनन करेगा वह देहाभिमानसे रहित हो आत्मस्वरूपका साक्षात्कार कर सकेगा यह ध्रुव है। इस विषयमें मैं तुमसे नारद और नारायणका संवाद रूप एक इतिहासका वर्णन करता हूँ। उसके श्रवणसे तुम्हारा सन्देह निवृत्त हो जायगा। एक समय देवर्षि नारद लोकोंमें भ्रमण करते-करते बदरिकाश्रममें नर-नारायणका दर्शन करने जा पहुँचे। वहाँ भगवान् कलापग्रामवासी मुनियोंके बीच बैठे थे। नारदजीने उन्हें प्रणाम कर उनसे यही प्रश्न पूछा था जो तुमने मुझसे पूछा है। भगवान्ने ऋषियोंकी भरी सभामें कहा—हे देवर्षे ! जनलोकमें पहले सनकादि मुनियोंका एक ब्रह्मसत्र (ब्रह्मविषयकविचार) हुआ था। तुम उस समय अनिरुद्ध भगवान्का दर्शन करने श्वेतद्वीप गये हुए थे। उस ज्ञानसत्रमें भी यही प्रश्न उठा था। यद्यपि शास्त्र-ज्ञान शील तथा तपस्यामें चारों भाई समान थे तथापि सनन्दनको वक्ता बनाकर शेष तीनों भाई श्रोता बन गये थे। उस ज्ञानचर्चामें ब्रह्मविषयक प्रश्नोंपर सनन्दनने कहा था—प्रलयकालमें भगवान् स्वरचित इस विश्वको अपनेमें लीन कर शयन करते हैं। सृष्टिका समय आनेपर भगवान्की निःश्वासभूत

श्रुतियाँ अपने स्तवनसे उन्हें जगाती हैं, ठीक वैसे ही जैसे सोते हुए राजाको प्रभातमें वन्दीगण स्तुतियों द्वारा जगाया करते है। भगवान्‌के स्तवनविषयकी उन २८ श्रुतियोंद्वारा वेदोंकी ब्रह्मपरकता सिद्ध की गयी है। श्रुतियाँ नर्कुटक[1] छन्द से भगवान्‌का स्तवन करती हुईं कहती हैं—

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः॥ १॥

१—हे भगवन्! आप स्वयं समस्त ऐश्वर्यसे परिपूर्ण हैं। जीवोंकी प्रसुप्त शक्तियोंको उद्‌बुद्ध करनेवाले भी आप ही हैं। जीवोंकी अविद्या नाश कर आप अपना उत्कर्ष व्यक्त करें। वेद सृष्टिके आदि और अन्तमें आपका ही प्रतिपादन करते हैं। आपकी जय हो। जय हो। इस श्रुतिसे वेदोंकी भगवत्परकता सिद्ध की गई।

२—महर्षिगण सम्पूर्ण जगत्‌को आपका ही स्वरूप मानते हैं। इसमें इन्द्रादि देवताओंकी पृथक् सत्ता न मानकर अभेदरूपसे भगवान्‌की ही उपासना करना कर्तव्य है ऐसा बताया गया है।

३—जगत्‌के विकार राग-द्वेषादिसे बचनेके लिये आपकी उपासना शिष्ट-परम्परागत कर्तव्य है। कथा-श्रवण तथा भगवत्स्वरूपका चिन्तन ये दो मार्ग मुख्यरूपसे उसके बताये गये हैं।

४—जो प्राणी इन उभयमार्गोंसे रहित हैं उनका जीवनरूप श्वास-प्रश्वास लोहारकी भाथीके समान व्यर्थ है। वह प्राणी संसारके लिये भार-भूत कहा गया है।

५—सूक्ष्मदर्शी योगीजन प्राणायामकी पद्धतिसे नाभिचक्र और हृदयचक्र द्वारा 'उदरब्रह्म' और 'दहरब्रह्म'की उपासना कर सुषुम्ना मार्गसे षट्‌चक्रोंका भेदन कर मुक्त हो जाते हैं फिर उनका संसारमें आवागमन नहीं होता।

६—आप उपाधिपरिच्छेदशून्य विम्बरूपसे नित्यमुक्त हैं और जीव अन्तःकरण आदि उपाधियोंसे परिच्छिन्न प्रतिविम्बरूपसे नित्यबद्ध हैं। इसलिये

---

१. 'हयदशभिर्नजौ भजजला गुरु नर्कुटकम्' इति तल्लक्षणात्। सप्तभि-र्दशभिश्चात्र यतिः।

'प्रतिविम्व' द्वारा 'विम्बकी' उपासना करनी चाहिये यही उचित है। आप सब योनियोंमें रहते हुए भी एक रस हैं यही आपकी विशेषता है।

७—जब जीवतककी शरीर आदि उपाधियाँ मिथ्या हैं तब ब्रह्मस्वरूप आपके लिये उपाधियोंका प्रश्न ही नहीं उठता ?

८—भक्ति ही आपकी प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन है, उससे सम्पन्न भक्तजन मुक्तिको भी ठुकरा देते हैं।

९—भगवत्सेवामें उपयोगी नरतन पाकर भी यदि मनुष्यका आपमें अनुराग न हुआ तो इससे वढ़कर और दूसरा अनर्थ क्या हो सकता है। वे आत्मघाती कहे जाते हैं और कूकर-शूकर आदि नीच योनियोंमें जाकर भारी दुःख उठाते हैं।

१०—प्रेमलक्षणा भक्ति होनेसे आपका ध्यान और स्मरण सदा बना रहता है। इसीसे कितने शत्रु भी आपको प्राप्त हो गये अतः आप हम पर भी कृपा करें।

११—सृष्टि और प्रलय दोनों ही कालोंमें आपका ज्ञान दुर्ज्ञेय है। भक्तिसे ही आपका ज्ञान सुलभ होता है। इसलिये हे प्रभो! भक्तिकी महिमा अपार बतायी गयी है।

१२—काणाद, पातञ्जल, नैयायिक, सांख्य, मीमांसक इन पाँचों वादियों को भी भ्रम है। इन उपदेष्टाओंके शिष्योंकी भी ठीक वैसी ही दशा होती है जैसी कि अन्धेका सहारा लेकर चलनेवाले अन्धेकी होती है। इसलिये इनके चक्करमें न पड़कर श्रवणादि भक्तिका ही सहारा लेना चाहिये। यही सरल मार्ग है ज्ञानका मार्ग अत्यन्त दुरूह है।

१३—सत्स्वरूप आपके ही आश्रयसे यह असत् जगत् भी सत्तुल्य भासता है जैसे सुवर्णमें कुण्डल, मृत्तिकामें घट और सूतमें वस्त्रकी प्रतीति सत्य भाषित होती है।

१४—श्रुतियोंमें वताया गया है कि आपके भक्त मृत्युके सिरपर पैर रखकर परमपदके अधिकारी होते हैं और आपसे विमुख दार्शनिक विद्वान् भी पशुतुल्य संसार-जालमें फँसे रहते हैं मुक्त नहीं होते।

१५—सब जीवोंमें निवास करनेपर भी आप इन्द्रियोंके सम्बन्ध तथा कर्तृत्व-भोक्तृत्वके अभिमानसे रहित हैं और नियन्ता रूपसे वायु, सूर्य, इन्द्र, अग्नि और मृत्यु आदि सबका शासन करते हैं।

१६—प्रकृतिका निरीक्षण करनेपर आपसे नाना जीव उत्पन्न होते हैं। आप जनक और जीव जन्य हैं। इस प्रकार सर्वत्र साम्यभावसे स्थित आप जीवोंके सदा उपास्य कहे जाते हैं।

१७—जीवोंके प्रति 'नानात्व' और 'विभुत्व'की कल्पनाको गलत बताकर यह सिद्ध किया कि ईश्वर ही सबका नियन्ता है।

१८—जीवोंका जन्म औपाधिक है, वास्तविक नहीं! इसलिये जन्म होनेपर भी उनमें अनित्यता नहीं आती।

१९—वादियोंने नाना प्रकारके मतोंकी कल्पना कर संसारमें भ्रम फैला रखा है, इसलिये विवेकी पुरुष उनके पचड़ेमें न पड़कर आपकी भक्ति करते हैं, उनका मृत्युभय छूट जाता है। जो अहंकारवश आपकी शरणमें नहीं आते वे जन्म-मरणके चक्रमें घूमते फिरते हैं। इसलिये भगवान्‌से प्रतिक्षण ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये।

श्रीधरस्वामीने कहा है—

संसारचक्रक्रकचैर्विदीर्णमुदीर्णनानाभवतापतप्तम्।
कथञ्चिदापन्नमिह प्रपन्नं त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकम्॥

हे नरसिंह! संसारचक्ररूपी आरोंसे हम संसारी जीव कट रहे हैं, दारुण आध्यात्मिकादि नाना तापोंसे परितप्त हैं; किसी प्रकार आपकी शरणमें आ गये हैं; हम आपद्ग्रस्त हैं. हे दीनबन्धो! अब तो आप हमारा उद्धार करें।

२०—आपकी भक्तिके लिये मनका निग्रह आवश्यक है जो 'सद्‌गुरुके उपदेश'से संभव है। अतः इस भक्तिके कर्णधार 'सद्‌गुरु' कहे जाते हैं।

२१—आपकी भक्ति प्राप्त होनेपर संसारसे निवृत्त करनेवाला वैराग्य भी सहज ही प्राप्त हो जाता है। फिर उसे स्त्री, पुत्र, धन आदिकी कामना भी नहीं रहती।

२२—आपकी भक्तिके लिये सद्‌गुरुसे भागवतधर्मोंका श्रवणकर उनका मनन करना चाहिये। तीर्थवास तथा सत्संग आदि मार्ग भी इसके लिये प्रशस्त बताये गये हैं।

२३—यह निश्चित है कि सत्‌से उत्पन्न होनेपर भी यह जगत् सत् नहीं हो सकता। यदि सत् ही समझना है तो इसे भगवद्रूपमें देखो।

२४—जगत्‌की सत्ता जब आदि और अन्तमें नहीं, तब मध्यमें कैसे? रज्जुमें सर्पप्रतीतिके समान यह मिथ्या ही है। जैसे कंकण-कुण्डलादि रूपसे

परिणत सुवर्ण हीं हैं, ठीक वैसे ही नामरूपसे परिणत यह जगत् भी ब्रह्म ही है। यही बात श्रीधरस्वामीने कही है—

मुकुटकुण्डलकङ्कणकिङ्किणीपरिणतं कनकं परमार्थतः।
महदहंकृतिखप्रमुखं तथा नरहरेर्न परं परमार्थतः॥

२५—हे भगवन्! जीव मायाके आश्रयसे बन्धनको प्राप्त होता है और ईश्वर मायाका त्यागकर अपने स्वरूपानन्दका अनुभव करता है यही जीवसे ईश्वरकी विशेषता है।

२६—आपकी कृपाके बिना संन्यास लेनेपर भी यह अविद्या मिट नहीं पाती। मान, प्रतिष्ठा और भोग-विलासकी कामनाएँ उसके मनमें बनी ही रहती हैं, जिससे उसका उभय लोकसे पतन हो जाता है।

२७—आपकी अनन्य भक्ति निश्चय ही लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके सुख प्रदान करती है।

२८—हे अनन्त! इस नश्वर जगत्का नेति-नेति द्वारा खण्डन कर, हम सब श्रुतियाँ अनन्तरूप आपके प्रतिपादनमें अपनेको सफल मनोरथ मानती हैं।

इस प्रकार २८ श्रुतियों द्वारा वेदोंकी ब्रह्मपरकता सिद्ध की गयी।

नारायणने कहा—हे नारद! इस प्रकार ब्रह्मविषयक श्रुतियोंका उपदेश सुनकर सनकादि महर्षि कृतार्थ हो गये और उन्होंने सनन्दनका विधिवत् पूजन किया। यह वेदस्तुति समस्त वेद, पुराण और उपनिषदोंका सार है। तुम भी इसे हृदयमें धारण कर स्वच्छन्द लोकोंमें पर्यटन करो। यह समस्त कर्मवासनाओंको भूँजकर आत्मस्वरूपका बोध करानेवाली है।

शुकदेवने राजा परीक्षित्से कहा—हे राजन्! श्रीनारायणके मुख कमलसे यह आत्मोपदेश सुनकर देवर्षि नारद मेरे पिता व्यासजीके आश्रमपर गये वहाँ उन्होंने नारायणके मुखसे निःसृत श्रुतियोंका यह अमूल्य उपदेश मेरे पिताजीको सुनाया। हे राजन्! तुमने जो प्रश्न किया था कि श्रुतियाँ-निर्गुण ब्रह्मका प्रतिपादन कैसे करती हैं, उसका समाधान पहले संक्षेपसे पुनः नारद संवाद रूप आख्यायिका द्वारा विस्तारसे मैंने तुम्हें बता दिया। तुम साररूपमें यह निश्चित समझो—

तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वतादटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान्।
यजन्त यागैर्विवदन्तु वादैर्हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति॥ (श्रीधरी)

चाहे पञ्चाग्निमें तप करें, चाहे भृगुतुङ्ग पर्वतसे नीचे गिर पड़ें, चाहे तीर्थाटन करें, चाहे वेदान्तग्रन्थोंका निरन्तर अभ्यास करें, चाहे यज्ञ करें, चाहे शास्त्रार्थ करें, किन्तु भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये बिना प्राणी मृत्युरूप संसारसमुद्रसे पार नहीं हो सकता। इसलिये चलते, फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते सर्वदा भगवान् श्रीकृष्णका ही ध्यान करते रहो और उन्हींका नाम जपते रहो बस यही सब शास्त्रोंका सार हैं और इसीमें कल्याण है।

ध्यायेदजस्रं हरिम्।

श्रुतियोंकी अन्तिम प्रार्थना

जय जय सदा परिपूर्ण देव दयानिधे माया हरो
ये जीव हैं असमर्थ इनमें शक्ति संचारित करो।
हम आदि मध्य तथान्तमें यश आपका ही गा रहीं
करती सदैव नमो नमः पर नाथ पार न पा रहीं॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका सतासीवाँ अध्याय समाप्त।

—:※:—

अठासीवाँ अध्याय

लीलार्थ शिव-विष्णुके स्वभावभेदमें वृक (भस्मासुरकी) कथा

राजा परीक्षित्‌ने शुकदेवजीने पूछा—हे मुनिवर!

देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम्।
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम्॥ १॥

आपने पूर्व अध्यायमें बताया कि भगवान् हरि मुक्ति देनेवाले हैं, उन्हींका भजन निरन्तर करना चाहिये। मुझे इसमें यह सन्देह है कि देव, असुर और मनुष्योंमें जो भोगोंसे रहित अमङ्गलवेष श्मशानवासी भगवान् शिवका भजन करते हैं वे प्रायः धनी एवं भोग सम्पन्न देखे जाते हैं लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका भजन करनेवाले प्रायः न धनी होते हैं और न

भोग सम्पन्न ही, ऐसी विषमता क्यों ? इस प्रश्न पर शुकदेवजीने कहा— राजन् ! यद्यपि शिव और विष्णु दोनों ही निगु'ण एवं सगुण हैं, इसमें सन्देह नहीं तथापि उन दोनोंने लीलार्थं एक व्यवस्था बना ली है। शिव सम्पत्ति देनेवाले और विष्णु उसका हरण करनेवाले बन गये। इसीसे बन्ध और मोक्षकी व्यवस्था चलती है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि शिव मोक्ष नहीं दे सकते अथवा विष्णु भोग नहीं दे सकते। यह तो भक्तकी इच्छापर निर्भर है वह क्या चाहता है ? वह जैसा माँगेगा वे वैसा ही उसे दे देंगे। शिव और विष्णुमें परस्पर न्यूनाधिककी कल्पना करना घोर अज्ञान है। उन दोनोंकी मूर्ति अभिन्न है—एक विग्रहमें ही दोनोंकी स्थिति है।

स्कन्दपुराणका वचन है उस पर ध्यान दें।

हरश्चैवार्द्धदेहेन विष्णुरर्द्धेन चाभवत्।
एकतो विष्णुचिह्नानि हरचिह्नानि चैकतः॥
एकतो वैनतेयश्च वृषभश्चान्यतोऽभवत्।
वामतो मेघवर्णाभो देहोऽश्मनिचयोपमः॥
कर्पूरगौरोऽसव्ये तु समजायत वै तदा।
द्वयोरैक्यसमं विश्वं विश्वमैक्यमवर्तत॥

(स्कन्द० पु० ब्रा० चा० मा० १५।११-१३)

दूसरी बात यह है कि शिव परम वैष्णव हैं और विष्णु परम शैव हैं। इसलिये पुराणोंमें इन दोनोंका परस्पर उपास्य-उपासक भाव भी मिलता है। तदनुसार वे एक-दूसरेको वर प्रदान भी किया करते हैं। अब अपने प्रश्नका उत्तर सुनो। शिव अहंकाररूपा शक्तिसे युक्त अहङ्कारके अधिष्ठातृदेवता हैं। इस अहंकारसे १६ विकार (मन सहित दस इन्द्रियाँ और पञ्चमहाभूत) उत्पन्न होते हैं। सांसारिक सारी सम्पत्तियाँ पाञ्चभौतिक ही हैं, जिनका भोग मन सहित इन्द्रियोंसे होता है। शिव और सम्पत्तियाँ दोनों ही त्रिगुणात्मक हैं, अतः शिव अपने भक्तोंको सम्पत्ति प्रदान करते हैं। भगवान् हरि निर्गुण हैं, उनका भजन करनेवाले निर्गुण हो जाते हैं। वे सम्पत्ति चाहते ही नहीं, जो चाहते भी हैं उन्हें वे देकर पुनः हर लेते हैं। तुम्हारे पितामह महाराज युधिष्ठिरका जब अश्वमेधयज्ञ समाप्त हो गया था, तब उन्होंने श्रीकृष्णसे यही प्रश्न किया था जो तुमने मुझसे पूछा है। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे कहा था—

यस्तु मां भजते नित्यं वित्तं तस्य हराम्यहम्।
करोमि बन्धुविच्छेदं स तु दुःखेन जीवति॥
सन्तापेष्वेषु कौन्तेय यदि मां न परित्यजेत्।
ददामि स्वपदं चापि देवानामपि दुर्लभम्॥

हे राजन्! जो मेरा नित्य भजन करता है, उसकी सम्पत्ति मैं हर लेता हूँ और उसका बन्धनभूत परिवारसे भी वियोग करा देता हूँ। उसका जीवन बड़े दुःखसे व्यतीत होता है। इतने कष्टोंपर भी यदि वह मेरा भजन नहीं छोड़ता तो मैं स्वयं उसके हाथों बिक जाता हूँ और अपना पद जो देवताओंको भी दुर्लभ है उसे दे डालता हूँ। इसीलिये मनुष्य विष्णुकी आराधना कठिन समझ कर अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं। उन आशुतोष देवताओंसे राज्य और लक्ष्मी प्राप्त कर वे उन्मत्त हो अपने वरदाताओंको भी भूल जाते हैं एवं उन्हींका अपमान कर बैठते हैं। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है जिसमें भगवान् शिव वृकासुरको वर-प्रदान कर स्वयं सङ्कटमें फँस गये थे।

वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाऽऽप सङ्कटम्।

शकुनिके पुत्र दुर्मति वृक नामक असुरने एक दिन मार्गमें देवर्षि नारदको देखकर उनसे पूछा—भगवन्! त्रिदेवोंमें शीघ्र प्रसन्न होने वाला देवता कौन है? नारदजीने कहा—भगवान् शिव हैं, तुम उन्हींकी आराधना करो। देखो न, रावण और बाणासुरको उन्होंने कैसा अनुपम ऐश्वर्य दिया था। उनका नाम ही आशुतोष है। नारदजीके इस उपदेशपर वृकासुर केदारक्षेत्रमें जाकर भगवान् शिवके प्रीत्यर्थं आसुरी प्रकृतिके अनुसार अपने अंग काट-काट कर मांससे अग्निमें हवन करने लगा। लगातार छः दिनों तक उसका यही क्रम चलता रहा, किन्तु उसे भगवान् शिवका दर्शन न हो सका तब वह दुःखित हो सातवें दिन तलवारसे अपना सिर काटनेको उद्यत हो गया। यह देख परम दयालु भगवान् शिव अग्निकुण्डसे प्रकट हो गये और उन्होंने वृकासुरका हाथ पकड़ लिया। शिवके स्पर्शमात्रसे उसके सब अंग पूर्ववत् पूर्ण हो गये। शिवजीने कहा—अरे दानवेन्द्र? तुमने अपनी आत्माको व्यर्थ ही इतना कष्ट दिया। मैं तो भक्तों द्वारा दिये गये केवल जलमात्रसे ही प्रसन्न हो जाता हूँ।

प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयात्मा भृशमर्द्यते वृथा॥ २०॥

अच्छा बोलो, तुम चाहते क्या हो ? वृकासुरने कहा—भगवन् ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यही वर दें कि मैं जिसके सिरपर हाथ रख दूँ वह तुरंत भस्म हो जाय।

यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति ॥ २१ ॥

भगवान् शिवने हँसकर तथास्तु कह कुछ दुःखित मनसे उसे यह वर दे दिया और तभीसे उसका काल्पनिक नाम भस्मासुर पड़ गया। वर पाते ही वह दुर्मति असुर पार्वतीजीको ग्रहण करनेकी इच्छासे वरके परीक्षार्थ शिवके ही मस्तकपर अपना हाथ रखने चला। यह देख सर्वसमर्थ होते हुए भी भगवान् शिव लीलार्थ भयभीत हो भाग चले। ब्रह्मा आदि देवता इसका उपाय न जान चुप-चाप खड़े-खड़े देखते रहे। शिवजी दिशा-विदिशाओंमें दौड़ते-दौड़ते उत्तर दिशामें श्वेतद्वीप जा पहुंचे। भगवान् विष्णुने शिवजीको ऐसे संकटमें फँसा देख तुरंत ब्रह्मचारीका वेष धारण किया और वृकासुरके सामने जाकर उससे प्रेमपूर्वक कहा—अहो शकुनिके साहसी पुत्र ! तुम कहाँ इतनी दूर आ गये ? बहुत थकेसे जान पड़ते हो ? थोड़ा विश्राम तो कर लो। यह मानव शरीर समस्त पुरुषार्थका हेतु है इसे इतना कष्ट देना उचित नहीं। हमें सुनाओ तो सही' तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? इतनी व्यग्रता क्यों ? हे राजन् ! वटुरूप भगवान्के ऐसे अमृततुल्य वचन सुनकर वृकासुरको बड़ी शान्ति मिली। उसने स्वस्थ हो शिवजीके वरदानकी सम्पूर्ण घटना ज्योंकी-त्यों सुना दी। भगवान्ने कहा—ओह, ऐसी बात है तब तो भूलकर भी शिवके वचनपर विश्वास नहीं करना। कारण, दक्षके शापसे वह पिशाचभावको प्राप्त हो गया है। भूत-प्रेतोंका राजा बनकर उन्हींके साथ श्मशानमें रहता है। ऐसे औघड़दानीके वरदानका क्या विश्वास? यदि तुम्हें विश्वास है तो तुम स्वयं ही अपने सिरपर हाथ रखकर उसके वरदानकी परीक्षा क्यों नहीं कर लेते ? व्यर्थ इधर-उधर क्यों दौड़ते फिरते हो ? यदि कथञ्चित् उसका वचन मिथ्या निकले तो तुरंत उसे दण्ड देना जिससे वह कभी इस प्रकार झूठ न बोल सके। हे राजन् ! भगवान्के ऐसे मोहक और भ्रामक मधुर वचनोंसे वृकासुरका चित्त भ्रान्त हो गया उसे अपने हिताहितका भी कुछ ज्ञान न रहा और उसने झट अपने मस्तक पर हाथ रख लिया। हाथ रखते ही उसके शरीरमें तुरत आग लग गई और वह क्षणमात्रमें भस्मकी ढेरी हो गया। यह देख देवतागण प्रसन्न हो जय-जयकार करते भगवान् विष्णुपर आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। बाद भगवान् विष्णुने शिवसे कहा— हे देवेश्वर ! यह पापात्मा अपने

ही पापोंसे मारा गया। जगद्गुरुके साथ अपराध करनेका यही फल होता है। शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! जो मनुष्य प्रेमपूर्वक श्रद्धाभक्तिसे शिवके संकटमोक्षणरूप इस हरिचरित्रका वर्णन करता है या श्रवण करता है वह शत्रुओं के संकट एवं संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है।

विमुच्यते संसृतिभिस्तथारिभिः ॥६०॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका अठासीवाँ अध्याय समाप्त।



नवासीवाँ अध्याय

त्रिदेवोंमें भगवान् विष्णुकी श्रेष्ठतापर एक इतिहास तथा ब्राह्मणके मृत-पुत्रोंका आनयन।

शुकदेवजीने आगे कहा—हे राजन्!

सरस्वत्यास्तटे राजन् ऋषयः सत्रमासत।
वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥१॥

एक समय सरस्वती नदीके तटपर ऋषियोंका ज्ञानसत्र चल रहा था। उनके हृदयमें एकदिन अकस्मात् यह संशय उत्पन्न हुआ कि त्रिदेवोंमें श्रेष्ठ देवता कौन है? इस संशयके निवारणार्थ ऋषियोंने भृगुजीको नियुक्त किया 'महर्षीणां भृगुरहं' इसके अनुसार भृगु भगवान्‌की एक विभूति हैं अतः उन्हें ही इस कार्यके लिये उपयुक्त समझा गया। वे सर्वप्रथम ब्रह्माकी सभामें गये। वहाँ जाकर भृगु उनके महत्त्वकी परीक्षाके लिये स्तुति-प्रणाम आदि किये विना ही चुपचाप बैठ गये। यह देख ब्रह्माको पुत्रकी इस अशिष्टतापर बड़ा क्रोध आया। किन्तु विवेकद्वारा उन्होंने उसे शान्त किया। भृगु ब्रह्माजीकी क्रोधभरी मुखमुद्रासे उनके महत्त्वकी परीक्षा ले वहाँसे कैलास चले गये। भगवान् शिव अपने भाईको आते देख बड़े प्रेमसे उनका आलिङ्गन करने उठे। भृगुने कहा—तुम तो श्मशानवासी तथा चिताकी भस्म धारण करनेसे बड़े कुमार्गगामी तथा अशुचि हो' मेरा स्पर्श न करो। यह सुनते ही भगवान्

शिव क्रोधमें भर अपना त्रिशूल उठाकर उन्हें मारने दौड़े, पर, पार्वतीजीने चरणोंमें गिरकर उन्हें शान्त किया। अनन्तर भृगुजी वैकुण्ठ गये। वहाँ लक्ष्मीजीकी गोदमें चरण रखे भगवान् विष्णु शयन कर रहे थे। भृगुने जाकर उनके हृदयमें एक लात मार दी।

शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्यताडयत्[1]।

यह देख भगवान् तुरंत लक्ष्मीसहित उठ खड़े हुए और उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया और बोले—भगवन् ? आपका स्वागत है, हमने आपका आगमन जाना नहीं। बड़ा अपराध हुआ क्षमा करें। कृपया बैठ जायँ। मेरे कठोर हृदयके आघातसे सम्भव है आपके सुकोमल चरणोंमें चोट आ गयी हो। ऐसा कहकर भगवान् विष्णु उनके चरण अपने हाथोंसे धीरे-धीरे सुहलाने लगे और बोले—बड़े भाग्यसे आज आपका दर्शन हुआ, थोड़ा सा चरणोदक देकर मुझे लोकसहित पवित्र-कर दें। आज मैं लक्ष्मीका मुख्य-भाजन बन गया। लक्ष्मी अब नित्य आपके इसी चरणचिह्नमें निवास करेगी, इसी कारण आजसे इसका दूसरा नाम श्रीवत्सल होगा इसपर लक्ष्मीने कहा—

नित्यं मे वसतिर्देव विप्रपादाङ्कितस्थले।

अपराधके सदृश यहाँ शान्ति तथा सहनशीलता की भी पराकाष्ठा दिखायी गयी।

हे राजन्! इस प्रकार भगवान्‌के अमृतस्रावी मधुर वचन सुनकर भृगुका हृदय गद्गद हो गया, नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली, कण्ठ रुँध गया, भावोद्रेकसे वे कुछभी बोल न सके। चुपचाप भगवान् विष्णुको प्रणाम कर उनके सहनशीलताकी सराहना करते वे वहाँसे चल दिये और सत्रमें जाकर उन्होंने ऋषियोंके समक्ष स्वानुभूत इस सारी घटनाका ज्योंका-त्यों वर्णन किया। ऋषिगण भगवान्‌की ऐसी सहनशीलता सुनकर चकित रह गये और संशय-रहित हो उन्होंने सबसे उत्कृष्ट भगवान् विष्णुको ही निश्चित किया जिनमें सर्वदा शान्ति क्रोधादिका अभाव तथा जिनसे मृत्युभय भी निवृत्त हो जाता है।

भृगुके इस अनुचित कर्मसे उन्हें अपराधी समझना उचित नहीं, कारण भगवान्‌की लीला-शक्तिकी प्रेरणासे ही ऋषियोंके मनमें ऐसा प्रश्न उठा और उसका यह निष्कर्ष निकला। इससे ब्रह्मा एवं शिवका अपकर्ष भी नहीं

---

१. अत्र शयानं तत्रापि श्रिय उत्संगे तत्रापि वक्षसि मर्मस्थाने तत्रापि पदा न तु हस्तादिनेत्यपराधस्य पराकाष्ठा दर्शिता।

समझना। कारण एकका उत्कर्ष सिद्ध करनेमें दूसरेका अपकर्ष होना लीलाके सौन्दर्यका द्योतक है। शिव तो 'वैष्णवानां यथा शम्भुः' इसके अनुसार उच्च-कोटिके परम वैष्णव हैं, जिनकी सैकड़ों जन्मकी आराधनाके फलस्वरूप ही मनुष्य यथार्थरूपसे वैष्णवत्वको प्राप्त करता है। शिवपर आक्षेप या उनकी निन्दा करनेवाले नरकगामी होते हैं। वे वैष्णव कहलाने योग्य नहीं। वाराह-पुराणका वचन है उसका मनन करें।

जन्मान्तरशतेनापि समाराध्य वृषध्वजम्।
वैष्णवत्वं लभेद्धीमान् सर्वपापक्षये सति॥

यो मां समर्चयेन्नित्यमेकान्तं भावमाश्रितः।
विनिन्दन् देवमीशानं स याति नरकं ध्रुवम्॥

जैसे शिव परम वैष्णव हैं वैसे विष्णु भी परम शैव हैं। दोनोंका परस्पर उपास्य-उपासकभाव रहता है।

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! भगवान् श्रीहरिके उत्कर्षका एक आख्यान तुमने सुना अब दूसरा भी आख्यान सुनो। एक समय द्वारकामें एक ब्राह्मणपत्नीका बालक उत्पन्न होते ही मर गया। ब्राह्मण उस मृत-बालकको राजाके दरवाजे पर रख आया और विलाप करता लोगोंसे कहने लगा—ब्रह्मद्रोही, लोभी और विषयी इस राजाके दोषसे ही मेरा बालक मरा है। इस तरह उस ब्राह्मणके ८ बालक मर गये। जब नवाँ बालक भी मर गया तब एक दिन अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके समीप कर्णपरम्परासे यह चर्चा सुनी और एकान्तमें उस ब्राह्मणसे कहा—विप्रदेव! क्या यहाँ कोई धनुर्धारी वीर योद्धा नहीं है जो तुम्हारे बालककी रक्षा कर सके? अच्छा तुम चिन्ता न करो मैं तुम्हारे बालककी रक्षा करूँगा। यदि कदाचित् इसमें सफल न हो सका तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अग्निमें जलकर भस्म हो जाऊँगा। ब्राह्मण देवता अर्जुनके वचनपर विश्वासकर घर लौट गये। जब दसवें प्रसवका समय आया तब ब्राह्मणने बालककी रक्षाके लिये बड़े आर्तभावसे अर्जुनको पुकारा रक्षा करो, रक्षा करो। अर्जुनने आचमनपूर्वक महेश्वरको नमस्कार किया और दिव्यअस्त्रोंका स्मरण कर गाण्डीव उठाया तथा बाणों द्वारा सम्पूर्ण सूतिकागृहको ढंककर पिंजरा सदृश बना दिया। जिससे बालकको कोई ले न जा सके। किन्तु इस बारकी घटना और विलक्षण हुई, उत्पन्न होते ही वह बालक सशरीर गायब हो गया। यह देख ब्राह्मणने अर्जुनको धिक्कारते

हुए बहुतसे उल्टे-सीधे अपमानजनक शब्द कह सुनाये। अर्जुन लज्जित हो बालकका पता लगानेके लिये यमपुरी गये। वहाँ बालकको न देख इन्द्र, वरुण, कुवेर आदि सभी देवताओंकी पुरियोंमें गये किन्तु बालकका जब कहीं भी पता न चला तब अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अग्निमें कूदकर जलनेका विचार कर ही रहे थे कि भगवान् श्रीकृष्णने आकर उन्हें रोका और कहा—घबराओ नहीं चलो, हम तुम्हें वे बालक दिखाते हैं। यह कहकर भगवान् अर्जुनके साथ दिव्यरथ पर सवार हो पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये।

दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ।।४७।।

वहाँ वे सात द्वीप, सात समुद्र, सात पर्वत एवं लोकालोकपर्वतको पार कर एक महान् घोर अन्धकारमें प्रविष्ट हुए। वहाँ अश्वोंकी गति रुक गयी, तब भगवान् तेजोमय चक्र द्वारा अन्धकारको विदीर्ण करते एक दिव्य-प्रकाशमय स्थानमें जा पहुँचे। पुनः जलके भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने दिव्य-भवनमें शेष-शय्यापर लेटे हुए अष्टभुजाधारी आदिपुरुष भगवान्‌को देखा। भगवान्‌ने अर्जुन सहित अपने उस अनादिरूपको प्रणाम किया। महाविष्णुने कहा आओ—बहुत दिन हो गये थे। आप दोनोंको देखनेकी बड़ी इच्छा हो रही थी इसीसे मैंने बालकोंका आकर्षण किया था। अब आप दोनों शीघ्र ही असुरोंका संहार कर मेरे पास चले आना। महाविष्णुके आदेश से भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणके सभी बालकोंको लेकर द्वारका लौट आये। इस घटनासे सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। भगवान् श्रीकृष्णने उस ब्राह्मणको बुलाकर उसके सभी पुत्र उसको दे दिये। अर्जुन भी भगवान् श्रीकृष्णका यह अद्‌भुत वैभव देख चकित रह गये। उस दिनसे वह मनुष्योंका जो भी पुरुषार्थ है वह सब भगवान्‌की कृपा पर ही अवलम्बित है ऐसा मानने लगे। शुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके वैभवशाली अनन्त चरित्र हैं जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे इन चरित्रोंका श्रवण-मनन या उनका वर्णन करता है उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और उसका कुत्सित जीवन बदल जाता है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका नवासीवाँ अध्याय समाप्त।

●

नब्बेवाँ अध्याय

द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णका अप्राकृत लीलाविहार

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

सुखं स्वपुर्यां निवसन् द्वारकायां श्रियः पतिः ।
सर्वसम्पत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥
रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण ऋद्धि-सिद्धि तथा वीर यादवोंसे परिपूर्ण द्वारकामें सुखपूर्वक निवास करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सोलह हजार पत्नियोंके साथ नाना-रूप धारण कर निरन्तर अप्राकृत विहार किया करते थे। पत्नियोंको भगवान्का श्रीविग्रह प्रतिक्षण नवनवायमान सा प्रतीत होता था। वे अपने सुकोमल अङ्गोंसे भगवान्के दिव्य अङ्गोंका आलिङ्गन कर अपनेको कृतार्थ मानती थीं। एक दिन भगवान् सुन्दर सरोवरमें जल-क्रीड़ाके लिये उतरे। वहाँ पत्नियोंके साथ जल-विहार करने लगे। स्त्रियाँ कटाक्ष पात करती भगवान्पर सुगन्धित रंगभरी पिचकारियाँ छोड़तीं तथा भगवान् भी उनपर पिचकारी चलाते थे। वस्त्रोंके भीग जानेसे पत्नियोंके अङ्गोंका स्वाभाविक सौन्दर्य झलक रहा था। कुछ स्त्रियाँ कामोन्मादमें भगवान्की पिचकारी छीननेका साहस कर उनके समीप तो चली जातीं किन्तु, अङ्गस्पर्श होते ही कामाकुल हो निश्चेष्ट सी रह जातीं। उनमें पिचकारी छीननेकी क्षमता नहीं रहती। भगवान् धीरे-धीरे प्रेमपूर्वक अपने करस्पर्शसे पुनः उन्हें सचेष्ट किया करते थे। कभी-कभी भावावेशमें भगवान्के समीप रहनेपर भी उन पत्नियोंको वियोगावस्था-सी हो जाती और वे उन्मत्तकी तरह कहने लगतीं—अरी कुररि ! तुझे निद्रा नहीं आती ? भगवान् श्यामसुन्दर सो रहे हैं और तू चिल्ला-चिल्ला कर उनकी निद्रा भंग करना चाहती है ? तू यह नहीं जानती कि निद्रा-भंग, कथामें विघ्न, दम्पतिके प्रेममें भेदन तथा शिशुका मातासे पृथक्करण, ये सब ब्रह्महत्याके समान महापाप बताये गये हैं।

निद्राभङ्गः कथोच्छेदो दम्पत्योः प्रीतिभेदनम् ।
शिशुमातृविभेदश्च ब्रह्महत्यासमः स्मृतः ॥

क्या कमलनयन भगवान् के कटाक्षरूपी बाणोंसे तेरा भी हृदय विदीर्ण हो गया है? अरी चक्रवाकि! तू क्यों इतनी दीनतासे विलाप कर रही है? क्या तू भी भगवान्‌की दासी बन गयी है? अरे समुद्र? तुम भी सोते नहीं? क्यों उछल-उछलकर चिल्ला रहे हो? क्या भगवान् ने तुम्हारा भी कुछ छीन लिया है? ओ मेघ! तुम तो भगवान्‌के बड़े प्रिय हो। तुम्हारा रूप-रंग भी उन्हींके समान बड़ा मोहक है। क्या वे तुम्हें भी छोड़ कर चले गये जो तुम गर्ज-गर्जकर अश्रुधाराएँ बहा रहे हो? रोओ नहीं। क्या कहें, उनका संग करनेमें ऐसे ही दुःख झेलने पड़ते हैं। अच्छा, घबराओ नहीं, आशा है अब जल्दी ही उनका दर्शन हो जायगा।

हे राजन्! भगवान् के समीप रहते हुए भी पत्नियोंको कभी-कभी ऐसे प्रेमोन्मादमें बड़ा ही अनुपम सुख मिलता था। भगवान् को पति बनाकर जो उनकी चरणसेवामें निरत थीं उनकी तपस्याका वर्णन भला कौन कर सकता है? इस प्रकार, भगवान् ने वेदविहित-धर्मका आचरण कर गार्हस्थ्यमें ही चतुर्वर्गकी प्राप्ति दिखा दी थी। बाद भगवान् ने अपने सत्य-संकल्प द्वारा 'दश पुत्रानाधेहि' इति श्रुति को चरितार्थ कर प्रत्येक पत्नीमें दस-दस पुत्र उत्पन्न किये थे। उनके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र रूप यादवोंकी गणना कौन कर सकता है? जिनके पढ़ानेवाले केवल आचार्य ही ३ करोड़ एक सौ अठासी थे।

तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च।
आसन् यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥ ४१ ॥

यदुवंशियोंमें बद्ध मुकुट राजाओंकी संख्या ५६ करोड़ थी। इस श्लोकमें 'सहस्राणां कुमाराणाम्' इसका तात्पर्य यह है कि सहस्र-सहस्र कुमार एक-एक आचार्यके शिष्य थे, अतः आचार्यों की संख्या जो श्लोकमें बतायी गयी है उसीको सहस्रगुणित करनेसे जो संख्या आती है वही संख्या कुमारोंकी जाननी चाहिये, ऐसा तोषिणीकार लिखते हैं। राजा उग्रसेनकी सभामें अयुत लक्ष तीन शंख यादव रहा करते थे। 'अयुतानाम्' यहाँ पर बहुत्व संख्या 'कपिञ्जलालम्भवाक्ये त्रित्वं न्यायाद्यथोच्यते' इस कारिकाके अनुसार त्रित्वपर पर्यवसित होती है। अतः 'अयुतानामयुतलक्षेण' इसका अर्थ शंखत्रयेण ऐसा करना चाहिये। तीन अंक पर तेरह विन्दु लगानेसे तीन शंख संख्या हो जाती है। जैसे ३०००००००००००००।

तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं
विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः।

यन्नामामङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः
कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥ ४७ ॥

हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णने यदुकुलमें जन्म लेकर जिस निर्मल कीर्तिका विस्तार किया उस कीर्तिरूपी तीर्थने देवनदी गंगारूपी तीर्थको न्यून कर दिया। यह पहला आश्चर्य ! जिनकी कृपासे शत्रु-मित्र तथा भक्तजन सभी समानभावसे मुक्तिको प्राप्त हो गये यह दूसरा आश्चर्य ! जिस लक्ष्मीके कृपाकटाक्षके लिये ब्रह्मा आदि देवता कठोर तप करते हैं वह अस्थिर लक्ष्मी स्थिररूपसे जिनकी सेवामें तत्पर रहती है यह तीसरा आश्चर्य ! जिनके मंगलमय सर्वोत्कृष्ट केवल दो अक्षरवाले कृष्ण नामका श्रवण तथा उच्चारण जीवोंके अविद्याजनित इस संसारका समूल नाश कर डालता है यह चौथा आश्चर्य ! तथा जिन्होंने तत्तद्गोत्रके ऋषियोंके वंशमें धर्मका प्रचार तथा प्रसारकर त्रिपादहीन धर्मको चतुष्पाद कर उसे सुस्थिर कर दिया यह पाँचवाँ आश्चर्य ! ऐसे सर्वसंहारक सुदर्शनचक्रधारी साक्षात् कालमूर्ति भगवान् द्वारा पृथ्वीके भारका हरण कौन बड़ा कार्य था। यह तो अत्यन्त तुच्छ था इसमें आश्चर्य क्या है। भगवान् श्रीकृष्णका सर्वातिशायी यह अद्भुत वैभव है। इसका वर्णन शेष-शारदा भी नहीं कर सकती। महाभारत का वचन है—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

श्रद्धा-भक्तिसे श्रीकृष्णको किया गया एक भी प्रणाम दस अश्वमेधके बराबर होता है। दस अश्वमेध करनेवाला प्राणी जन्म धारण कर सकता है किन्तु श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला मनुष्य फिर जन्म नहीं लेता वह आवागमनसे रहित हो मुक्त हो जाता है। इसलिए मनुष्यको चाहिए कि वह थोड़ा सा समय निकालकर प्रतिदिन नियमपूर्वक नामकीर्तन तथा भगवत्कथा-श्रवण करनेका अभ्यास करे। इससे वह निश्चित भगवान्के नित्य-धामको प्राप्त कर लेता है, जहाँ पहुंचनेपर फिर कालका भय नहीं रह जाता। इसी विचारसे परम्परागत बड़े-बड़े राजा महाराजा भी वृद्धावस्थामें राज्यका परित्याग कर भगवत्प्राप्तिके लिये वनमें चले जाते थे।

ग्रामाद् वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥

श्रीमद्भागवतकथा साप्ताहिकके दशम स्कन्धका नब्बेवाँ अध्याय समाप्त।



एकादश स्कन्ध प्रारम्भ



निपततामतिभीमभवार्णवे विवसितुं[1] तदुपायमजानताम् ।
भगवता समभुद्धववादतः सदसतामिह[2] मुक्तिरुदीर्यते ।।

इस स्कन्धमें ३१ अध्याय हैं और पुराणके नवम लक्षण 'मुक्ति'का वर्णन है ।

पहला अध्याय

बड़ोंसे हंसी करनेका दुष्परिणाम, यादवोंको ऋषियोंका कठोर शाप

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ।
भुवोऽवतारयद् भारं जविष्ठं जनयन् कलिम् ।। १ ।।

बलराम एवं यदुवंशियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णने दैत्योंका संहार कर भीषण हिंसाकारी कलहका बीज वपन करते हुए पृथ्वीका भार उतारा । बादमें कौरव और पाण्डवोंके युद्धकी भूमिका रची । जब दुष्ट दुर्योधनने कपटपूर्ण जुए, अपमान, द्रौपदीके केशाकर्षण आदि कुकृत्योंसे पाण्डवोंको बहुतबार क्रोधित किया तब भगवान्ने उन्हींको परस्पर निमित्त बनाकर महाभारत द्वारा पृथ्वीका बहुत बड़ा भार उतार दिया । बची-खुची अत्याचारी राजाओंकी शेष सेनाका यादवों द्वारा संहार करा डाला । इतना होनेपर भी भगवान्ने यही सोचा कि अभी तक पूर्णरूपसे पृथ्वीका भार उतरा नहीं । कारण, अभी यादवोंका दुःसह विशालकुल वर्तमान है जिसका पराभव देवता भी नहीं कर सकते । साधारण मानवकी तो बात ही क्या ? अतः इसमें आपसी कलह उत्पन्न कर उसीके द्वारा ही उसका संहार कराके मैं अपने नित्य धाममें जाऊंगा । ऐसा निश्चित कर भगवान्ने ऋषियों द्वारा अपने कुलको शाप दिलानेका उपक्रम किया ।

---

१. विवसितुं निर्गन्तुम् । २. यद्वा सत्सु ये असन्तस्तेषामपीत्यर्थः ।

राजा परीक्षित्ने पूछा—हे मुनिवर! यदुवंशी तो ब्राह्मणभक्त एवं भगवान्के कृपापात्र थे। उन्हें ऋषियोंका शाप कैसे हुआ और क्यों हुआ? कृपया इसका कारण बतायें।

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्!

विभ्रद् वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशं कर्माचरन् भुवि सुमङ्गलमाप्तकामः।
आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः॥

पूर्णकाम भगवान् सर्वाङ्गसुन्दर दिव्यविग्रह धारण कर अपने अभिनव-मंगलमय चरित्रोंसे नित्य द्वारिकावासियोंके आनन्दका संवर्द्धन कर रहे थे। एकदिन उन्होंने स्वाभाविक अपने इस कुलके संहारकी इच्छा की जो उनके इस अवतारका अन्तिम प्रयोजन था। यह भगवान्की ही एक प्रेरणा थी कि वसिष्ठ, विश्वामित्र, दुर्वासा, अङ्गिरा, नारद आदि बहुतसे बड़े-बड़े महर्षि द्वारकाके समीपवर्ती पिण्डारक क्षेत्रमें आ पहुँचे थे। दैवकी इच्छाका यह भी एक उन्मेष था कि क्रीडाप्रिय यदुवंशी बालकोंको पूजनीय वृद्ध महर्षियोंसे उपहास करना सूझा। वे जाम्बवतीके पुत्र साम्ब नामक एक कुमारको सुन्दर स्त्रीका वेष बना कर मुनियोंके समीप ले गये और उनके चरण-स्पर्श कर अविनीत होते हुए भी बड़े विनीत भावसे बोले—हे मुनियों! यह स्त्री गर्भवती है। इसका प्रसव शीघ्र ही होनेवाला है। देखिये न, इसका पेट कितना बढ़ गया है। यह स्वयं प्रश्न करनेमें कुछ लजा रही है। आप सभी पहुँचे हुए त्रिकालदर्शी महात्मा हैं। कृपया यह बतानेका कष्ट करें कि इसके गर्भसे कन्या होगी या पुत्र? मुनि लोग लड़कोंके ऐसे व्यंगपूर्ण उपहास पर कुपित हो उठे और उन्होंने आवेशमें आकर कहा—अरे मूर्खों! यह तुम्हारे कुलका नाश करनेवाला मूसल पैदा करेगी।

जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम्॥ १५॥

यह सुनकर सब लड़के किंकर्तव्य विमूढ़ हो घबरा गये। उन्होंने तुरत साम्बका पेट खोला तो उसमेंसे लोहेका एक भयंकर मूसल निकल पड़ा। उसे देख सब लड़के पश्चात्तापसे सिर नीचा किये वह मूसल उग्रसेनकी सभामें ले गये और वहाँ जाकर उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सभी यादवगण ब्राह्मणोंका ऐसा अमोघ शाप सुनकर भयसे कम्पित हो उठे। राजा उग्रसेनने अपने बौद्ध-बलसे बड़ी तत्परताके साथ उस मूसलका चूर्ण कराकर समुद्रमें फंकवा दिया किन्तु घिसते-घिसते फिर भी उसका एक छोटा सा लोहेका टुकड़ा बच ही गया वह घिसा

न जा सका अतः उसे भी अकिञ्चित्कर समझ समुद्र में ही फेंकवा दिया। दैवात् एक मछली उस लौह-खंडको निगल गयी और घिसा हुआ चूर्ण तरङ्गोंसे बहता हुआ किनारे पर ही जम गया। उससे सरकण्डेके समान तीक्ष्ण धारवाले लम्बे-लम्बे पटेरा नामक तृण उत्पन्न हो गये जो खड्गका काम करते थे। मल्लाहोंने अन्य मत्स्योंके साथ उस मत्स्यको भी जालमें फँसाकर जब उसका पेट चीरा तो उससे लोहेका वही टुकड़ा निकला। जरानामक व्याधने लोहेके इस टुकड़ेसे अपने बाणका अग्रभाग बनाया था और शिकार खेलते समय उसने यही बाण धोखेसे अनजानमें भगवान् श्रीकृष्णके सुकोमल चरणमें मारा था। यदुवंशी कुमारोंने लज्जा और भयसे यह समाचार कृष्णतक नहीं पहुँचाया फिर भी सर्वज्ञ भगवान् ने इसे जान ही लिया और सर्वसमर्थ होते हुए भी कालरूपी बनकर महर्षियोंके इस शापको अन्यथा नहीं किया हृदयसे उसका सहर्ष अनुमोदन किया।

कालरूप्यन्वमोदत ॥ २३ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका पहला अध्याय समाप्त।



दूसरा अध्याय

निमि-सिद्धेश्वर संवाद द्वारा देवर्षि नारदका वसुदेवको महत्त्वपूर्ण भागवतधर्मका उपदेश

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह।
अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥

देवर्षि नारद भगवान् श्रीकृष्णकी उपासनाकी लालसासे अधिकतर द्वारका में ही रहा करते थे। यद्यपि दक्षके शापसे उनका एक स्थानपर निवास होना कठिन था, फिर भी यह शाप द्वारकामें उनपर अपना प्रभाव नहीं कर सका था। एक दिन देवर्षि नारद वसुदेवके राजभवनमें पधारे। वसुदेवने अर्घ्य-पाद्यादिसे विधिवत् उनका पूजन-सत्कार कर उनसे विनीतभावमें पूछा—हे देवर्षे ! जैसे माता-पिताकी यात्रा पुत्रोंके हितार्थ, भगवान्के पथ प्रदर्शक

महात्माओंकी यात्रा दीन गृहस्थोंके हितार्थं होती है उसी प्रकार आपका आगमन प्राणीमात्रके कल्याणार्थं ही हुआ करता है। अतः मैं आपसे भागवत धर्मके विषयमें कुछ पूछना चाहता हूँ। जिस धर्मका श्रद्धासे श्रवणकर मनुष्य सुखपूर्वक संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। नारदजीने कहा—वसुदेव ? प्रश्न तो आपका बड़ा ही उत्तम है। इस प्रश्न पर मुझे भगवान् श्रीनारायणका स्मरण हो आया ? इस धर्मका श्रवण, मनन, कीर्तन, चिन्तन और अनुमोदन विश्वद्रोहीको भी पवित्र कर देता है। साधारणकी तो बात ही क्या ? इस विषयमें बड़ा ही मनोरम एक प्राचीन इतिहास है जिसमें राजा निमि और नौ सिद्धेश्वरोंका संवाद है, उसे हम कहते हैं ध्यानसे सुनो। ये सिद्धेश्वर राजा प्रियव्रतके वंशमें हुए थे। उसकी परम्परा यह है—स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत प्रियव्रतके आग्नीध्र, आग्नीध्रके नाभि और नाभिके पुत्र ऋषभदेव हुए। ये भगवान्के अंशसे अवतीर्ण हुए थे। ऋषभदेवजीके सौ पुत्र थे, जिनमें नौ द्वीपोंके पति ८१ कर्मकाण्डके प्रवर्तक तथा नौ सिद्धेश्वर परमज्ञानी एवं भगवद्भक्त थे। तुम पहले इनके मङ्गलमय नामोंका श्रवण करो।

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः॥ २१॥

ये नौ सिद्धेश्वर सम्पूर्ण विश्वको अपनी अभेद दृष्टिसे भगवद्रूपमें देखते हुए सर्वत्र अनासक्त भावसे विचरते थे। एक दिन दैवयोगसे लोकोंमें भ्रमण करते ये राजा निमिके यज्ञमें जा पहुंचे। सूर्यके समान तेजस्वी इन नौ सिद्धेश्वरोंको आते देख सभी सभासद राजा सहित आसनसे उठ खड़े हुए। यहाँतक कि अग्निदेवने भी प्रकट हो उनका स्वागत किया। राजाने आसन पर आसीन मुनियोंका विधिवत् पूजन कर नम्रतापूर्वक उनसे पूछा—हे महर्षियों ! आप साक्षात् भगवान्के पार्षद हैं। लोकोंको पवित्र करनेके लिये इतस्ततः विचरते हैं। यह मनुष्यशरीर दुर्लभ एवं क्षणभंगुर है। उसमें भी आप महानुभावोंका दर्शन तो अत्यन्त दुर्लभ है। संसारमें आधे क्षणका भी सत्संग मनुष्योंकी अमूल्य निधि है। बड़ी कृपा हो यदि आप यह बतायें कि संसारमें आत्यन्तिक क्षेम (बद्ध जीवके मोक्षका साधन) क्या है और इसके लिये उपयोगी भागवतधर्म क्या-क्या है ? नारदजीने कहा—हे वसुदेव ! राजा निमिके इस प्रश्नपर कविने[1] कहा—हे राजन् निमे ! संसारमें मोक्षका

---

१. कविर्विद्वान् वैदुष्यं च तावदेतदेव यद्भागवतधर्मवर्णनेनात्यन्तिकक्षेमापादनम् अतस्तादृक्सामर्थ्यवत्वात् कविरुवाचेत्युक्तम्।

मुख्य साधन भगवान् के चरणकमलोंकी उपासना ही है इससे सर्वात्मना बन्धनके साथ ही साथ मृत्युभय भी निवृत्त हो जाता है जिससे जीवात्माको बड़ी शान्ति मिलती है। भगवान्‌ने आत्म-प्राप्तिके जो भी उपाय या साधन बताये हैं, वे सभी भागवतधर्म कहे जाते हैं। उनमें से मैं कुछ धर्मों का संक्षेपमें वर्णन करता हूँ।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥३६॥

शरीरसे, वाणीसे, मनसे, इन्द्रियोंसे, बुद्धिसे, अहंकारसे और अपने-अपने अनुगत स्वभाव-वश मनुष्य जो भी कर्म करे वह सब भगवान्‌को अर्पण करता जाय, ऐसा करनेसे सम्पूर्ण कर्म भागवतधर्म हो जाते हैं फिर वे बन्धनके हेतु नहीं होते। भगवद्विमुख प्राणीपर विशेष रूपसे मायाका आक्रमण होता है उससे आत्म-स्वरूपकी विस्मृति हो जाती है जिससे देहमें अहंकार होनेसे, द्वितीय वस्तुकी कल्पना द्वारा, मृत्युभय उपस्थित हो जाता है। इसलिये मायाकी निवृत्तिके लिये गुरुमें 'देवताबुद्धि' रख प्रेमसे भगवान्‌का नियमपूर्वक भजन करे। द्वैत प्रपञ्चको स्वप्न तुल्य नश्वर समझ कर विषयोंसे मनका निग्रह करे। इस निग्रहका सरल उपाय यही है कि प्रतिदिन भगवान्‌के मङ्गलमय चरित्रोंका श्रद्धापूर्वक श्रवण तथा कीर्तन करे। ऐसा करनेसे मन शीघ्र ही विषयोंसे विरत हो जाता है और धीरे-धीरे साधकका चित्त इतना द्रवीभूत होने लगता है कि वह भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण कर कभी रोता है, कभी गाता है तो कभी पागलकी भाँति नाचता है। वह लोकलज्जासे रहित हो, सभी चर-अचर प्राणियोंको भगवद्रूप समझकर अनन्य भावसे प्रणाम करता है।

इत्यच्युतांघ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः।
भवन्ति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रद्धा-भक्तिसे भगवान्‌के चरण-कमलका भजन करनेवाले भगवद्भक्तको भक्ति, विरक्ति और ईश्वरकी अनुभूति एक साथ हो जाती है तथा वह परम शान्तिका अनुभव इसी शरीरमें करने लगता है, जैसे भोजन करने वाले प्राणीको प्रत्येक ग्रासमें तुष्टि पुष्टि और क्षुन्निवृत्ति होती है।

हे राजन्! हमने संक्षेपसे तुम्हें इस भागवतधर्मका निरूपण किया। अनन्तर, राजा निमिने 'भक्त' का स्वरूप पूछा। साथ ही उसका धर्म स्वभाव,

आचरण, व्यवहार तथा लक्षण भी पूछे। इसपर हरिने[1] कहा—हे राजन् ? जो सभी प्राणियोंमें आत्मभाव भगवद्दृष्टि रखता है, और ऐश्वर्यपूर्ण परमात्मामें समस्त प्राणियोंको देखता है वह उत्तम भक्त कहलाता है। ईश्वर, भक्त, मूर्ख तथा शत्रु इन चारोंके प्रति जो क्रमशः प्रेम, मैत्री, कृपा और उपेक्षाकी भावना करता है वह भेददर्शी भक्त मध्यम कोटिका है। जो केवल प्रतिमाओंमें ही ईश्वर-बुद्धि रख उनका पूजन करता है, भक्त तथा अन्य गौ ब्राह्मण आदि प्राणियोंको नहीं, वह भक्त आरम्भ श्रेणीका है। जिसका वर्ण, आश्रम तथा जातिसे इस शरीरमें कभी अहंभाव न हो, काम्य-कर्मोंके प्रति वासना न हो, इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण करता हुआ भी विश्वको भगवान्‌की माया समझ कर जो रागद्वेषसे रहित हो एवं जिसके हृदयसे भगवान्‌का ध्यान कभी न हटे वही 'उत्तम कोटिका भक्त कहलाता है।

स भवति भागवतप्रधान उक्तः।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय

माया, उसकी निवृत्तिके उपाय, ब्रह्म और कर्म इन चार प्रश्नोंके उत्तर

राजा निमिने पूछा—हे मुनिवरो !

परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम्।
मायां वेदितुमिच्छामो भगवन्तो ब्रुवन्तु नः॥ १॥

पूर्व अध्यायमें आपने बताया कि विश्व भगवान् विष्णुकी माया है। इसलिये मेरी जिज्ञासा हुई कि इस मायाका स्वरूप क्या है ? इस पर

---

१. अत्र 'हरिर्हरति पापानि' इति स्मृतेर्हरिशब्दस्य मुख्यावृत्तिर्भगवत्येव पर्यवस्यतीति भक्तलक्षणं भगवतैव वाच्यं न तु स्वमुखेन स्वलक्षणमन्यथाऽऽत्मसंभावनाप्रसङ्ग इति नवनामराशित्वात् हरिरेवोवाचेति ज्ञेयमत्र।

महर्षि [1]अन्तरिक्षने कहा—राजन् ! माया रूपहीन पदार्थ है। उसका परिचय तो सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय आदिके द्वारा ही किया जाता है, स्वरूपतः नहीं। जिस माया से उत्पन्न पञ्चभूतों द्वारा भगवान् देव मनुष्य-तिर्यंगादि नाना प्रकार की सृष्टि करते हैं, जिसमें आसक्त हो यह जीव कर्मानुसार नाना योनियोंमें भ्रमण करता हुआ सुख-दुःखका अनुभव करता है और प्रलयपर्यन्त विवश हो जन्म-मरणके चक्करमें घूमता-फिरता है मुक्त नहीं हो पाता वही भगवान्‌की माया है। और भी सुनो—प्रलयकाल आसन्न होने पर इसके द्वारा ही सौ वर्षों तक भीषण अनावृष्टि होती है। उस समय बारह सूर्यों का उदय होता है जिनकी तीव्र ऊष्मासे तीनों लोक तपा करते हैं। फिर पातालसे शेषजी के मुखद्वारा भयंकर अग्नि निकलती है, जिसकी भीषण ज्वालाएँ चारों ओर से ऊपर उठकर विश्वको भस्म कर डालती है उस समय यह ब्रह्माण्ड दग्ध गोमय पिण्डके समान दीख पड़ता है। बाद प्रलयकालीन मेघ सौ वर्ष तक हाथीके सूँड़के समान निरवच्छिन्न मूसलाधार वर्षा करते हैं। तब यह विराट् (ब्रह्माण्ड) जलमें लीन हो जाता है अर्थात् डूब जाता है। तब विराट् पुरुष अपने इस ब्रह्माण्ड शरीरका त्यागकर सूक्ष्मरूप अव्यक्त प्रधानमें लीन हो जाता है। अनन्तर महदादि-पृथिवीपर्यन्त इसके कारणतत्त्वोंका प्रतिलोमसे लय हो जाता है। उसका प्रकार सुनो—पृथ्वी जलमें, जल तेजमें, तेज वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश अहङ्कारमें। अहङ्कार सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है। यहाँ यह जानना आवश्यक है—जो कार्य जिससे उत्पन्न होते हैं वे अपने कारणमें लय होते हैं जैसे तामस अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्रा और पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। इनका लय तामस अहङ्कारमें। राजस अहङ्कारसे १० इन्द्रियाँ और बुद्धि की उत्पत्ति होती हैं इनका लय राजस अहङ्कारमें। सात्त्विक अहङ्कारसे इन्द्रियाधिष्ठातृदेवता और मनकी उत्पत्ति होती है इनका लय सात्त्विक अहङ्कारमें। इस प्रकार त्रिविध अहङ्कार अपने-अपने कार्यों सहित अपने कारण महत्तत्त्वमें लीन हो जाता है। महत्तत्त्व प्रकृतिमें और प्रकृति ब्रह्ममें लीन हो जाती है। इसी अनुलोम-विलोमके द्वारा सृष्टि और प्रलय होता है। हे राजन् ! जिसके द्वारा जगत्‌का सृष्टि-पालन और संहार

---

१. अन्तरिक्षशब्दस्योर्ध्वाधोलोकमध्यवर्तिस्थानवाचित्वान्मायान्तःपतितस्य नीरूपत्वेन तद्वर्णनासंभवात् सिद्धस्यापि ब्रह्मानुभवकर्तृत्वेन तदसंभवात् मध्यस्थस्यैव तन्निरूपणकर्तृत्वमुचितमित्यभिप्रायेणान्तरिक्ष उवाचेत्युक्तम्।

होता है। जो संभवको असंभव और असंभवको संभव कर सकती है वही अघटनघटनापटीयसी ब्रह्मके समान ही अनिर्वचनीय त्रिगुणात्मिका भगवान्की शक्ति माया है। उसका वर्णन किया गया, अब और क्या सुनना चाहते हो।

एपा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी।
त्रिवर्णा वर्णिताऽस्माभिः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥

अन्तमें कहा—राजन्! उपर्युक्त इन्हीं कार्यों से मायाका स्वरूप जाना जाता है। यदि तुम साक्षात् मायाका दर्शन करना चाहते हो तो इस मायाके गुणानुसार तीन रूप हैं महाकाली-महालक्ष्मी और महासरस्वती, तुम श्रद्धा-भक्तिसे इनमें किसी एक रूपकी उपासना करो यथासमय तीनोंका साक्षात्कार हो सकेगा।

इस प्रकार मायाका विलक्षण स्वरूप सुनकर राजा निमिने पूछा—महर्षियो! स्थूल बुद्धिवाले भी मनुष्य जिस प्रकार सरलतासे इस दुस्तर मायाका पार पा सकें, ऐसा कोई सरल उपाय हो तो बतानेकी कृपा करें।

इस पर [1]प्रबुद्धने कहा—राजन्! मायासे पार जानेवाले मनुष्यको सर्वप्रथम अपने मनमें प्रतिक्षण ऐसा विचार करते रहना चाहिये कि सुखप्राप्तिके लिये किये गये कर्मोंका फल विपरीत दुःखरूप हो जाता है ऐसा क्यों? एक धनको ही ले लो। धन सुखका साधन माना जाता है किन्तु उससे भी सुख नहीं मिल पाता। उसके उपार्जन, संरक्षण तथा व्ययमें दुःख ही दुःख है। इसके द्वारा सम्पादित स्त्री, पुत्र, गृह, पशु, भृत्य आदि भी नाशवान् तथा प्रतिकूल हो जानेके कारण ये भी दुःखप्रद हैं। यही धन अधिकमात्रामें हो जानेसे मृत्युका कारण भी बन जाता है। इसलिये इस लोकमें किसी वस्तु से सुख संभव नहीं सभी दुःखप्रद ही है। इसी प्रकार परलोकमें भी राग-द्वेष ईर्ष्या आदि भाव बने रहते हैं। भोग समाप्त होनेपर वहांसे पतन होना निश्चित है जो और भी दुःखका कारण बन जाता है। अन्तमें इस लोकके समान उस लोकका भी नाश हो जाता है। अतः जिज्ञासु पुरुष उत्तम श्रेयकी इच्छाकर गुरुदेवकी शरणमें जाय जो शब्दब्रह्म और परब्रह्ममें निष्णात हों। वहाँ उनकी निष्कपटभावसे सेवाकर यम-नियमादि साधनोंके साथ-साथ भागवतधर्मोंको सीखे। ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करे। मन, वाणी और शरीरसे किसीको न सताये। शीत-

१. मायाशयनादुद्बुद्धो हि प्रबुद्ध इत्युच्यते स एव सम्यक्तया मायातरणोपायं वक्तुमर्हति नान्य इत्यभिप्रेत्य मूले प्रबुद्ध उवाचेत्युक्तम्।

उष्ण आदि द्वन्द्वोंके प्रति सहनशील हो। दैवेच्छासे जो कुछ प्राप्त हो उसीसे सन्तोष करे। स्त्री, पुत्र, धन आदि सब वस्तुएँ नाशवान् हैं ऐसा समझ कर उनमें अधिक प्रीति न करे। इस लोकके समान ही परलोक भी नश्वर है— ऐसा मानकर निरन्तर भगवान्के मंगलमय चरित्रोंका ही श्रवण, मनन, कीर्तन तथा ध्यान करता रहे। ऐसे साधन करनेसे शीघ्र ही भक्तके हृदयमें प्रेमलक्षणा भक्तिका संचार हो जाता है, जिसे प्राप्तकर भगवान्की चिन्तासे व्यग्र हो भक्त लोकलज्जा त्यागकर कभी रोते हैं, कभी हँसते हैं, कभी आनन्द लेते हैं, कभी कुछ अटपट बकते हैं, कभी नाचते हैं, कभी गाते हैं और कभी भगवान्का अनुशीलन साक्षात्कार कर आनन्दसे विह्वल हो मौन हो जाते हैं।

क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृत्ताः ॥३२॥

हे राजन्! इस प्रकार गुरुदेवकी कृपासे भागवतधर्मोंको सीखता हुआ नारायणपरायण भक्त उन धर्मोंसे उत्पन्न प्रेमलक्षणा भक्तिके द्वारा सुख पूर्वक मायाको जीत लेता है। उस पर फिर मायाका आक्रमण नहीं होता।

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥

इस अमृतमय उपदेशका श्रवण कर राजा निमिने फिर पूछा, हे ब्रह्मवेत्ताओ! आपने बताया कि नारायणपरायण भक्त मायापर विजय प्राप्त करते हैं अतः नारायणका स्वरूप क्या है? कृपया बतायें।

[1]पिप्पलायनने कहा—हे नरेन्द्र! सृष्टि-पालन और संहारका कारण होते हुए भी जो स्वयं कारणरहित हैं, तथा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें रहते हुए भी जो तुरीयमें स्थित हैं, जिनकी प्रेरणासे देह, इन्द्रिय, मन और प्राण सब सक्रिय होकर अपने-अपने कार्यमें निरत रहते हैं, मन, वाणी और बुद्धिकी भी पहुंच जहाँ नहीं होती। वही नारायण हैं और उन्हें ही ब्रह्म कहते हैं। शब्दात्मक वेद भी मन[2] वाक् आदि बोधकोंका नेति-नेति

---

१. पिप्पलं भगवद्विभूतिरयनमाश्रयो यस्य तथाभूतस्यैव तत्स्वरूपवर्णन-मुचितमतः स एवोवाचेत्युक्तम्।

२. 'यतो वाचो निवर्तन्ते'—'यन्मनो न मनुते' 'न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनं' 'तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि' इत्यादिश्रुतेः।

द्वारा निषेध करता हुआ अपनेमें मूल प्रमाणभूत ब्रह्मको अर्थतः कहता है 'यस्य बोधकं किमपि नास्ति तद् ब्रह्म, शब्दतः इदं तत्' इस निर्देशके द्वारा साक्षात् नहीं कहता। कारण 'ब्रह्म' के विना निषेधकी सिद्धि नहीं बन सकती। यदि ब्रह्म है ही नहीं तब निषेध किसका किया ? अतः इस निषेधसे ही यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मकी सत्ता जागरूक है।

शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थोक्तमाह यद्दते न निषेधसिद्धिः।

कार्य और कारणरूपसे यहाँ जगत्में जो कुछ भी भासित हो रहा है, वह सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। उससे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं। वह 'जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति इन षड्-विकारोंसे रहित, सबका साक्षीभूत, ज्ञानघन, अविनाशी, चेतन आत्मा एक ही है। जैसे एक ही ज्ञान नील, पीत आदि भेदसे अनेक प्रतीत होता है वैसे ही वह भी नामरूपात्मिका मायाके द्वारा अनन्त प्रतीत हो रहा है। जब सुषुप्तिमें इन्द्रियाँ अहंकारसहित लीन हो जाती हैं तब उपाधिके विना उस कूटस्थ आत्माका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। जागनेपर हमें उस आत्माकी स्मृति होती है। आज हम खूब सुखपूर्वक सोये हमें कुछ भी ज्ञान न रहा था।

सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिषम्।

अतः अननुभूत वस्तुकी स्मृति नहीं हो सकती। इससे स्पष्ट है कि सुषुप्तिमें आत्माका अनुभव होता है। जब सकाम-निष्कामकर्मों द्वारा भगवान्के चरणोंमें तीव्र भक्ति हो जानेसे चित्तकी वासनाएँ समूल नष्ट हो जाती हैं, तब शुद्ध चित्तमें उस चेतन आत्माकी साक्षात् उपलब्धि होती है। जैसे सूर्यका प्रकाश नेत्रोंके निर्विकार होनेपर ही उपलब्ध होता है अन्धेको नहीं, उसी प्रकार निर्मल चित्तमें आत्माकी उपलब्धि होती है, विषयवासनासे कलुषितचित्तमें नहीं।

इसका उत्तर सुन राजा निमिने पुनः पूछा—हे ब्रह्मन्! आपने कर्मयोगके अधीन भक्तिको बताया। अतः कृपया कर्मयोगका स्वरूप भी बतायें जिससे चित्त शुद्ध हो और मनुष्य कामनाओंका परित्याग कर निष्कामभावसे भक्तिद्वारा ज्ञान प्राप्त कर सके। एक समय मैंने यही प्रश्न अपने पिता इक्ष्वाकुके समक्ष सनकादि महर्षियोंसे किया था। उन्होंने मुझे इसका उत्तर नहीं दिया। इसका कारण क्या है? इसपर आविर्होत्रने[1] कहा—हे राजन्!

---

१. आविः प्रकटं सुज्ञातं होत्रम् अग्निहोत्रोपलक्षणं कर्म यस्येति निरुक्त्या तद्वर्णने तस्यैव योग्यत्वात् स एवोवाचेत्युक्तम्।

कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात् तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ४३ ॥

वेदमें कर्मके तीन भेद बताये गये हैं। कर्म, अकर्म और विकर्म। कर्म वेद-विहित सन्ध्यावन्दनादि है। अकर्म[1] तद्विपरीत निषिद्ध कर्म सुरापान कलञ्ज तथा पशु-पक्षियोंके मांस आदिका भक्षण। विकर्म विगत कर्म विहिताकरण विहित सन्ध्या आदि का न करना। यह वेदका सिद्धान्त है; लौकिक नहीं। पुरुषके वाक्यका अभिप्राय किसी प्रकार जाना जा सकता है किन्तु अपौरुषेय वेदका तात्पर्य पूर्वापर वाक्यों द्वारा ही निर्णीत किया जाता है और इसका ज्ञान अत्यन्त कठिन है। इसलिये कर्मादिके विषयमें विद्वानोंको भी भ्रम हो जाता है अज्ञानीकी तो बात ही क्या? तुम उस समय अबोध बालक थे, इसलिये, सर्वज्ञ होनेपर भी सनकादिकने तुम्हें उसका उत्तर नहीं दिया। वेद परोक्ष आत्म-तत्त्वका प्रतिपादन करते हैं। उसका ज्ञान कर्मके विना नहीं हो सकता। इसलिये, वेदने कर्मका विधान किया। किन्तु यह विधान कर्मजन्य बन्धनोंकी निवृत्तिके लिए है, बन्धनके लिये नहीं। 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्य-याजिनः सुकृतं भवति' इस प्रकार स्वर्गादिका प्रलोभन देकर जो कर्मोंका विधान किया गया है, वह अज्ञानी पुरुषोंको कर्ममें प्रवृत्त करानेके लिये है। जैसे रोगनिवृत्यर्थं औषध देनेका विधान है' पर जब बालक नहीं पीता तब उसे लड्डूका प्रलोभन देकर औषध पिलाते हैं। गुडूचीं पिब वत्स! खण्डलड्डु-कान् ते दास्यामि। उसी प्रकार अज्ञानी पुरुषोंको स्वर्गादिका प्रलोभन देकर उन्हें सकाम कर्ममें प्रवृत्त किया जाता है। जब इन कर्मोंसे उत्पन्न बन्धन उन्हें नाना प्रकारका कष्ट देते हैं, तब वे भगवान्‌की शरणमें जाकर उनके प्रीत्यर्थं निष्कामकर्म करने लगते हैं जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो उन्हें शीघ्र आत्मज्ञान हो जाता है और फिर उनके कर्म स्वतः छूट जाते हैं इसलिये साधकको चाहिये कि वह सर्वप्रथम गुरुदेवकी कृपासे मन्त्रदीक्षापूर्वक भगवान्‌के पूजनका समुचित विधान जानकर अपने मनोनुकूल किसी भी अभिलषित मूर्तिका पूजन करना आरम्भ कर दे।

एवमभ्यर्चतोयादावतिथौ हृदये च यः।
यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥ ५५ ॥

---

१. अकर्मेत्यत्र विरोधे नञ् असुराधर्मवत्। 'अप्राशस्त्यं विरोधश्च' इत्युक्तेः।

इस प्रकार जो अग्नि, सूर्य, जल, अतिथि अथवा अपने हृदयमें सर्वेश्वर जगन्नियन्ता परमात्माका पञ्चोपचार अथवा षोडशोपचारसे पूजन करता है वह भक्तिसंवलित ज्ञानको प्राप्तकर शीघ्र ही संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका तीसरा अध्याय समाप्त॥



चौथा अध्याय

भगवान्के कतिपय मनोरम अवतारोंका वर्णन

राजा निमिने पूछा—हे मुनीश्वरो!

यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः।
चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः॥ १॥

आपने पूर्व अध्यायमें बताया कि अपने मनोनुकूल किसी भी अभिलषित मूर्तिका पूजन करें। इसमें अवतारसम्बन्धी ज्ञान अपेक्षित हो जाता है। अतः भगवान्ने समय-समयपर भक्तोंकी इच्छासे अवतार ग्रहण कर जो नानाप्रकारके कर्म किये हैं, करते हैं और भविष्यमें भी करेंगे इन तीनों कालीन भगवान्के अवतार सम्बन्धी चरित्रोंका आप वर्णन करनेकी कृपा करें।

इस पर महर्षि द्रुमिलने कहा[1]—राजन्! मनुष्य किसी प्रकार अपने बुद्धिकौशलसे गणितके द्वारा पृथ्वीके रजःकण परमाणुओंकी गणना भले ही कर ले, किन्तु भगवान्के अनन्त अवतार-सम्बन्धी गुण और कर्मोंकी गणना करना संभव नहीं। इसलिये मैं संक्षेपमें ही अवतारोंकी कुछ मनोरम चर्चा तुम्हें सुनाता हूं। भगवान्ने सर्वप्रथम पञ्चमहाभूतोंसे ब्रह्माण्डकी रचना कर उसमें

---

१. द्रु द्रुतमवतारैः स्मृतिप्राप्तैः मिलतीति द्रुमिलः। झटिति त्रैकालिकावताराणां सम्यग्ज्ञानवत्वात्स एवोवाचेत्युक्तम्।

अपनी चेतनशक्तिके साथ अन्तर्यामी रूपसे लीलार्थं प्रवेश किया। यही नारायणका प्रथम पुरुषावतार कहा जाता है। उनके शरीरमें ही तीनों लोकोंकी रचना है। उन्हींसे गुणानुसार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पन्न होकर जगत्का सृजन, पालन और संहार करते हैं। उन्हीं आदिपुरुषने धर्मकी पत्नी मूर्तिमें नर-नारायणरूपसे अवतार लेकर ज्ञानमार्गका उपदेश दिया और बदरिकाश्रममें कठोर तपकर स्वयं उसका आचरण भी किया! उनके तप करनेपर इन्द्रको यह शंका हुई कि ये दोनों मेरा इन्द्रासन लेनेकी इच्छासे तप कर रहे हैं। ऐसा विचार कर एक दिन इन्द्रने उनकी तपस्या भंग करनेके निमित्त उनके आश्रमपर अप्सराओं सहित कामदेवको भेजा। कामने बदरिका-श्रम पहुंच कर वसन्त ऋतुका आवाहन किया और भगवान्को क्षुभित करनेके लिये अपनी सारी सेना द्वारा उनपर आक्रमण कर दिया। किन्तु इससे भगवान्को किसी प्रकारका विकार या क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ। उनका यह अद्भुत प्रभाव देख कामदेव भयसे कांप उठा। भगवान्ने इन्द्रका अपराध जानकर भयसे कम्पित कामादिसे देवोंसे मुस्कराते हुए मधुरवाणीमें कहा—

मा भैष्ट भो मदन मारुत देववध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥

हे मदन! हे मलयानिल! हे अप्सराओं! तुम डरो नहीं। आप लोग मेरे आश्रमको इसी तरह सपरिवार पूर्ण रख कर मेरा आतिथ्य ग्रहण करते रहो। भगवान्के ऐसे मधुर वचन सुनकर कामका सिर नीचा हो गया। उसने हाथ जोड़कर कहा—नाथ! धन्य हैं, अपराधियों पर भी यह अनुग्रह। आप क्षमाकी साक्षात् मूर्ति हैं। आपमें क्षोभ न होना कोई आश्चर्य नहीं। कारण, आप मायासे परे सर्व-शक्तिमान् पूर्ण ब्रह्म हैं। आपके भक्तोंकी तपस्यामें इसी प्रकार देवताओं द्वारा नाना विघ्न उपस्थित हुआ करते हैं। किन्तु जब आप उनके रक्षक हैं तब ऐसे विघ्नोंसे उन्हें क्या हो सकता है? भक्तिहीन पुरुष शम-दम आदि साधन करनेपर भी क्रोधके वशीभूत हो अपने मार्गसे जैसे च्युत हो जाते हैं वैसे भक्त नहीं होते। हमने अज्ञानता वश आपका बड़ा अपराध किया—आप हमें क्षमा करें क्षमा करें। इस प्रकार स्तुति करते हुए कामदेव तथा उनके अनुचरोंको भगवान्ने अपने आश्रमकी सेवामें सर्वदा निरत रहनेवाली लक्ष्मीके समान अतीव रूपवती सुन्दर स्त्रियां दिखायीं। उनके अंगोंकी दिव्य सुगन्ध तथा सौन्दर्यसे सारी कामसेना मोहित हो गयी और उसकी कान्ति फीकी पड़ गयी। तब भगवान्ने स्वयं उसे उदबुद्ध कर कहा—देखो! हमारे यहांसे इन्द्रके लिये भी कुछ प्रसाद लेते जाओ। यह कह, भगवान्ने उनकी इच्छाके अनुसार उन्हें अतीव

सुन्दरी उर्वशी नामक अप्सरा भेंटमें दी जो स्वर्गकी आभूषण बन गयी। कामदेवके अनुचर उसे आगे कर स्वर्गको चले गये।

उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने इन्द्रके समक्ष नर-नारायणका अद्भुत प्रभाव बताया, जिसे सुनकर इन्द्र चकित रह गये। और भी बहुतसे अवतार इसी प्रकार भगवान्के हैं, उन्हें भी सुनो? भगवान् विष्णुने हंस, दत्तात्रेय, सनकादि तथा ऋषभदेवके रूपमें अवतीर्ण हो ज्ञानमार्गका उपदेश किया। हयग्रीव-रूपसे मधुनामक दैत्यको मारकर वेदोंकी रक्षा की। मत्स्यावतार द्वारा सत्यव्रत मनुकी रक्षा की। वाराह अवतारद्वारा पृथ्वीका उद्धार, कूर्म अवतारद्वारा अमृतके निमित्त मन्दराचलधारण एवं हरिरूपसे गजेन्द्रका उद्धार किया। वामनरूपसे बलिपर कृपा, परशुरामरूपसे ब्रह्मद्रोही क्षत्रियोंका तथा रामरूपसे महाबली रावणका संहार किया। कृष्णावतारमें बड़े-बड़े दैत्योंका वध कर पृथ्वीका भार उतारा। बुद्धावतारमें भगवान्ने वेदविरुद्धतर्कों द्वारा अनधिकारी दैत्योंको मोहित कर यज्ञानुष्ठानसे च्युत किया। हे राजन्! कलियुगमें सभी राजा प्रायः शूद्र हो जायँगे और वे अपनी प्रजाको भी अपनी ही तरह शूद्र बनानेकी चेष्टा करेंगे। उस समय प्रजाका कर्तव्य है कि वह भगवान्का सहारा लेकर अपने-अपने धर्मपर अटल रहे, दूसरेके धर्मका कदापि ग्रहण न करे। जब ये अनाचारी राजा नाना प्रकारके कानून बनाकर प्रजाको सतायेंगे तब भगवान् भक्तोंका कष्ट देख न सकेंगे और कल्किरूप धारण कर ऐसे राजचिह्नधारी धर्मकर्महीन शूद्र राजाओंका करोड़ोंकी संख्यामें संहार करेंगे।

नृपलिङ्गधरान् शूद्रान् कोटिशो निहनिष्यति।

तब शेष बचे हुए राजाओंकी बुद्धि स्वयं शुद्ध हो जायगी और उनकी धर्ममें प्रवृत्ति होगी।

हे राजन्! इस प्रकार जगत्पति भगवान्के परमपावन जन्म और कर्म अनन्त हैं उनका संक्षेपमें यहाँ वर्णन किया गया।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका चौथा अध्याय समाप्त।

पाचवाँ अध्याय

अभक्तोंकी दुर्गति और युगानुसार पूजाके कुछ विधान

राजा निमिने पूछा—हे आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ मुनिवरो !

भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ।
तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥ १ ॥

संसारमें जो प्राणी निरन्तर विषयवासनामें आसक्त हैं। मनका निग्रह नहीं कर पाते चञ्चल प्रकृति के हैं, वे प्रायः भगवान् का भजन-पूजन नहीं करते ऐसे पुरुषोंकी अन्तमें क्या गति होती है ? कृपया बतानेका कष्ट करें। इसपर श्रीचमसने[1] कहा—राजन् ! आश्रमोंसहित ये चारों वर्ण भगवान् के द्वारा उत्पन्न हुए हैं। जो लोग परमपिता परमात्माका भजन नहीं करते वे वर्ण और आश्रमसे भ्रष्ट होकर नीच योनियोंमें चले जाते हैं और नरकतुल्य कष्ट भोगते हैं। जो कुसंगवश भगवान्‌की कथा तथा नाम-कीर्तनसे विमुख हैं उन अज्ञानियोंको तो राजाओंकी ओरसे शिक्षा मिलनी चाहिये। वे दण्डके भागी होते हैं। कुछ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ऐसे हैं जो संस्कारद्वारा भगवद्भजनका अधिकार प्राप्त कर लेनेपर भी वेदके अर्थवादसे मोहित हो, कर्मकाण्डके चक्करमें फंसे रहते हैं। उन्हें भगवत्कथा सुहाती ही नहीं, वे भक्तोंको देख कर उनकी हंसी उड़ाते हैं और आवेशमें आकर उनके सर्वस्व भगवान्‌को भी अण्ट-सण्ट भला बुरा बका करते हैं। ये मूर्ख कर्मका वास्तविक स्वरूप न जानकर भी भारी कर्मकाण्डी बनते हैं और गृहस्थाश्रममें स्त्रियोंकी उपासना कर उनके दास बने नाना प्रकारके झूठे मनोरथ बांधते हैं। ये अज्ञानी अन्न और दक्षिणासे रहित यज्ञोंका अनुष्ठान कर अपनी जीविकाके लिये यज्ञमें पशुओंका वध करते हैं और उसे वेदविहित बताते हैं। वेदके वास्तविक रहस्यसे उनकास्पर्श भी नहीं होता।

यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशूनतद्विदः ॥ ८ ॥

वेद, उपनिषद और पुराण डिंडिमघोष कर कह रहा है कि आकाशके समान व्यापक आत्मा सभी प्राणियोंमें जीवरूपसे सर्वत्र स्थित है।

---

१. चमसशब्दस्य यज्ञीयपात्रवाचकत्वात् कुपात्राणां गतिनिरूपणं सुपात्रेणैव कर्तुं शक्यमित्यभिप्रेत्य चमस उवाचेत्युक्तम् ।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "आत्मैवेदं जगत् सर्वम् ।"
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥

फिर भी, ये मूर्ख उसे नहीं सुनते और जीवोंका वध करते जाते हैं। विषय-भोगके कीड़े ये निवृत्तिपरक वेदको प्रवृत्तिपरक बताते हैं। संसारमें मद्य, मांस तथा मैथुनका सेवन तो रागतः स्वतःप्राप्त है इसमें विधिकी बात ही क्या ? कारण, विधि तो अत्यन्त अप्राप्तिमें होती है—

विधिरत्यन्तमप्राप्तौ ।

मद्य, मांस, मैथुन आदिमें सहज प्रवृत्तिवश लोग उनमें बह न जायँ यों इन उच्छृङ्खलताओंको रोकनेके लिये ही, नियन्त्रणके उद्देश्यसे, शास्त्रने नियम या परिसंख्या द्वारा इनमें कुछ संकोच कर दिया है कि मैथुन करना हो तो विवाहिता पत्नीमें ही करे। यदि मांस खाना हो तो 'हुतशेषं भक्षयेत्' इसके अनुसार यज्ञीय मांस खावे और मदिरापान करना हो तो सौत्रामणी यज्ञद्वारा करे। यह विधि नहीं है। इसका तात्पर्य निवृत्तिमें ही है, प्रवृत्तिमें नहीं। शरीर नाशवान् है। एक दिन मरना निश्चित है ऐसा विचार कर मनुष्य घृणित वस्तुओंका सेवन कर पाप कर्मका उपार्जन न करे। धनद्वारा धर्मोपार्जन करे तभी उसे ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति हो सकेगी और तभी वह इन व्यामोहक वैदिक वाक्यों तथा कुत्सित कर्मोंसे निवृत्त होकर पूर्णशान्तिका लाभ कर सकेगा। मद्य-मांस अण्डे आदि ये सत्पुरुषोंके भोजन नहीं। यह तामसी भोजन राक्षसोंका है। इसका सेवन अपना तथा दूसरेका नाश कर डालता है और ऐसे ही प्राणी राजद्रोही तथा देशद्रोही हुआ करते हैं। अन्तमें वह पापात्मा घोर नरकयातनाका शिकार होता है। वेदमें जहाँ मद्य मांस आदिका विधान मिलता है उसका भी तात्पर्य दूसरा है उसे समझने की चेष्टा करें।

यद् घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा ।
एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥१३॥

वहाँ 'सौत्रामण्यां सुराग्रहान् गृह्णाति' इस वाक्यसे मदिराका 'घ्राण' से भक्षणमें तात्पर्य है, मुखसे पानमें नहीं। ऐसे ही "वायव्यं श्वेतमालभेत" इस वाक्यसे पशुका स्पर्शमात्र विहित है, हिंसा करना नहीं। 'प्राणवियोगानुकूलव्यापार' तो शास्त्र तथा व्यवहारकी दृष्टिमें साक्षात् 'हिंसा' ही है। ऐसा करनेपर भी जो उसे हिंसा नहीं मानते ऐसे मूर्खोंको क्या कहा जाय ? बकरेका गला घोंटकर उसे जानसे मार डालते हैं फिर भी हिंसा नहीं हुई ऐसी है विपरीत बुद्धि। इसी प्रकार मैथुन भी सन्तानके निमित्त ही बताया गया है 'ऋतौ

भार्यामुपेयात्' न कि इन्द्रियसुखके लिये। जो अज्ञानी इस वेदविहित विशुद्ध धर्मको नहीं समझते। समझाने पर भी मानते नहीं और उन्मत्त हो यज्ञमें पशुओंका वध करते हैं, ध्यान रहे, वे ही पशु मरनेपर परलोकमें उनका माँस नोच-नोचकर खाया करते हैं और वे पड़े-पड़े तड़पते रहते हैं। थोड़े ही दिनोंके यहाँके मिथ्या सुखके उन्मादमें अन्ततः उन्हें भगवान्से विमुख होनेके कारण घोर नरक यातना भोगनी पड़ती है और उनके सारे मनोरथ काल द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

कालध्वस्तमनोरथाः।

राजा निमिने पुनः पूछा—हे मुनिगण! चारों युगोंमें भगवान्का स्वरूप, वर्ण, नाम तथा आकार कैसा रहता है एवं किस विधिसे मनुष्य उनकी पूजा करते हैं? इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीकरभाजनने[1] कहा—राजन! चारों युगोंमें भगवान् नानावर्ण, नाना नाम तथा नाना आकार धारण कर व्यक्त होते हैं और विविधमार्गों द्वारा उनका पूजन होता है। जैसे सत्ययुगमें भगवान्का शुक्लवर्ण, शुक्ल नाम तथा दण्ड-कमण्डलु लिये ब्रह्मचारी वेष रहता है। उस समय शान्तप्रकृतिके मनुष्य मनसहित इन्द्रियोंका निग्रह कर ध्यान द्वारा उनका पूजन करते हैं। त्रेतामें भगवान्का रक्तवर्ण रहता है विष्णु यज्ञ आदि उनके नाम होते हैं और मनुष्य यज्ञों द्वारा उनका पूजन करते हैं। द्वापरमें भगवान्का वर्ण श्याम होता है, वासुदेव आदि नाम रहते हैं। उस समय मनुष्य वैदिक एवं तान्त्रिक विधियोंसे उनका पूजन करते हैं। कलियुगमें भगवान् कृष्णरूपसे भक्तोंके हृदयमें अभिव्यक्त होते हैं। उस समय मनुष्य संकीर्तनप्रधान यज्ञों द्वारा उनका यजन करते हैं। हे राजन्! कलियुगसे बढ़कर उत्तम दूसरा युग नहीं है। गुणी मनुष्य इसकी प्रशंसा करते हैं, कारण इसमें सत्संग तथा कीर्तनद्वारा मनुष्योंके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं और वे गङ्गा आदि पुण्य नदियोंके सेवनमात्रसे प्रायः वासुदेवके भक्त हो जाते हैं। इसीलिये सत्ययुग आदि युगोंकी प्रजा कलियुगमें अपना जन्म चाहती है। जो मनुष्य सभी प्राणियोंमें वासुदेवदृष्टि रखता हुआ अहंकारका त्याग कर अनन्यभावसे भगवान्की शरणमें चला जाता है, वह देवता ऋषि पितर आप्त (कुटुम्बी) आदि किसीका भी ऋणी नहीं रहता और न उससे

१. तत्तत्कालीनयुगावतारवर्णपूजादिज्ञानं संग्रहकर्तुंर्भवितुं नार्हति। करभाजनस्तु करावेव भाजनं यस्येति व्युत्पत्तेर्नायं संग्रहकर्ता अतोऽधिकारित्वात्स एवोवाचेत्युक्तम्।

कोई निषिद्ध कर्म ही होता है। यदि कदाचित् हो भी गया तो भगवान् उसका समूल नाश कर डालते हैं। यहाँ देवादिसे पञ्चयज्ञीय देवताओंका निर्देश है।

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्[1] ॥ ४१ ॥

इसलिये हे राजन्! तुम सर्वथा भगवान्‌की शरण-ग्रहण करो। फिर तुम्हें किसी प्रकारका न भय होगा और न कोई कर्त्तव्य ही शेष रहेगा। यह महत्त्वपूर्ण प्रकरण सुनकर देवर्षि नारदने कहा—हे वसुदेव! राजा निमिने इस प्रकार भागवतधर्मोंका श्रवणकर नौ सिद्धेश्वरोंका विधिवत् पूजन किया और वे राजाको आशीर्वाद देकर सबके देखते-देखते तुरतं अन्तर्धान हो गये। वसुदेव! तुम यह निश्चित समझो कि पृथ्वीका भार उतारनेके लिये तुम्हारे घर साक्षात् भगवान् ही पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए हैं। अब तुम्हें चिन्ता किस बातकी? ये साक्षात् परब्रह्म हैं तुम इन्हींकी सेवा करते रहो। तुमने इनमें पुत्र स्नेहकर अपनी आत्माको पवित्र कर लिया। धन्य हैं तुम्हारा प्रेम।

शुकदेवजीने कहा—हे राजन! यह रहस्य सुनकर देवकी-वसुदेवको बड़ा आश्चर्य हुआ और उनका मोह (आत्मसम्बन्धी) अज्ञान नष्ट हो गया। जो मनुष्य प्रेमसे इन नौ सिद्धेश्वरोंका यह पुण्यजनक इतिहास सुनकर हृदयमें धारण कर उसका मनन करता है वह भी शनैः-शनैः वासनाओंसे रहित हो जीवन्मुक्त हो जाता है।

इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद् यः समाहितः।
स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका पाँचवाँ अध्याय समाप्त।

छठा अध्याय

श्रीकृष्ण और उद्धवके संवादका उपक्रम

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात्।
भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥

---

१. 'कृती छेदने' घञ् णिजन्तादच् कर्तयतीति कर्ता भेदोऽहङ्कारो वा।

देवर्षि नारदके चले जानेपर, एक दिन ब्रह्माजी, अपने पुत्र सनकादिक तथा प्रजापति दक्षादिके साथ, प्राणिमात्रका कल्याण करनेवाले भगवान् शिव भूतगणोंके साथ तथा इन्द्र मरुद्गणोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करने द्वारकामें गये ।

द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ।

साथमें और भी सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर आदि थे ।

वहाँ नाना प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धिसे सर्वथा परिपूर्ण द्वारकापुरीमें क्षण-क्षणमें नवनवायमान भगवान्‌के श्रीविग्रहका दर्शन पाकर भी उनके नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे । देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णपर नन्दनवनीय पुष्पोंकी वृष्टि करते हुए श्रृंखलाबद्ध १३ पद्योंसे भावपूर्ण स्तुति की । स्तवनमें सर्वप्रथम उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा—हे प्रभो ! आप मायाद्वारा सृष्टि आदि करते हुए भी उन कर्मोंसे लिप्त नहीं होते । कारण आप अपने स्वरूपमें विराजमान रहते हैं ।

आपके मंगलमय चरित्रोंके श्रवणसे मनुष्यके अन्तःकरणकी जैसी शुद्धि होती है वैसी तप-दान आदिसे नहीं होती । हम यही प्रार्थना करते हैं कि आपका चरणकमल सदा हमारी समस्त अशुभवासनाओंको धूमकेतु अग्नि बन कर भस्म कर दे ।

स्यान्नस्तवांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ।

याज्ञिकगण यज्ञाग्निमें और योगी तथा ज्ञानीजन हृदयमें जिन आपका ध्यान करते हैं एवं जिन आपके चरणोंसे निकली पतितपावनी गंगा तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं वे आपके चरण हमारे पातकोंका नाश करें ।

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति
ब्रह्मादयस्तनुभृतो [1]मिथुरर्द्यमानाः ।
कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य
शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥

लीलार्थ परस्पर संघर्ष करनेवाले शरीरधारी ब्रह्मा आदि देवता भी नथे बैलके समान जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं, एवं जो कालरूप से सारे विश्वका संचालन करते हैं जो प्रकृति-पुरुषसे परे कहे जाते हैं उन पुरुषोत्तम भगवान्‌का श्रीचरण हमारी समस्त कल्याण सम्बन्धी सुख-सुविधाओंका

१. मिथुरित्यव्ययं मिथोऽर्थे ।

विस्तार करें। हे प्रभो! आप ही कालरूपसे जगत्‌का संहार करते हैं। प्रकृतिके अधिष्ठाता पुरुष आपकी ही शक्तिसे इस ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं। स्थावर-जङ्गम जीवोंके एकमात्र नियन्ता भी आप ही हैं। आप आत्माराम हैं, लीलार्थ विषयोंका सेवन करनेपर भी आप सदा निर्लिप्त रहते हैं। आपकी अमृतमयी कथा एवं आपके चरणकमलसे निःसृत भगवती श्रीगङ्गा त्रिलोकीके पापपुञ्जको नाश करनेमें समर्थ है, जो प्रेमसे इन दोनोंका सेवन करते हैं वे बड़े पुण्यात्मा है उनका अहोभाग्य? शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! ब्रह्माने रुद्र आदि देवताओंके साथ भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति कर उनसे कहा—हे प्रभो! मेरी प्रार्थना पर आपने पृथ्वीका भार उतारा और धर्मकी स्थापना कर लोक में कीर्तिका विस्तार किया। अब यहाँ का कोई कार्य शेष नहीं रहा। आपको अवतीर्ण हुए १२५ वर्ष बीत चुके हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो अब अपने धामको पधारें और लोकपालों सहित हमको तथा हमारे लोकको पवित्र करें।

शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो।

यहाँ श्रीविजयध्वजतीर्थने पुराणान्तरका वचन देकर २५ से २५ ऋतुओंका ग्रहण किया है।

"वत्सराणां शतं चैव ऋतूनां पञ्चविंशकम्।"

भगवान्‌ने कहा—हे ब्रह्मन्! तुम्हारा कहना ठीक है। मैंने तुम्हारा अभिप्राय जान लिया है। मैं यादवकुलका संहार हो जानेपर ही तुम्हारे लोकमें आ सकूंगा। यह यादवोंका कुल बड़ा ही उच्छृङ्खल है। यदि यह शेष रहा तो इसके द्वारा सारे संसारका नाश हो जायगा। हे राजन्! भगवान्‌के इस कथनपर ब्रह्मा आदि देवता अपने-अपने लोक चले गये। इधर कुछ ही दिनों बाद, भगवान्‌की इच्छासे द्वारकामें धूमकेतुका उदय हुआ और १३ दिनका पक्ष भी हुआ। जिसके कारण भूकम्प, उल्कापात दिग्दाह आदि नाना प्रकारके भीषण उत्पात होने लग। यह देख भगवान्‌ने वृद्ध यदुवंशियोंको बुलाकर उनसे कहा—देखो, ये बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं। यदुकुलके लिये ब्राह्मणोंका शाप हो चुका है उसका निवारण होना कठिन है। इसलिये अब हम लोगोंको यहाँ रहना उचित नहीं। चलो आज ही प्रभास क्षेत्र चलें। वहीं जाकर हमलोग स्नान-तर्पण तथा देवपूजन करें और विद्वान् ब्राह्मणोंको नाना प्रकारका भोजन तथा दान देकर इस महान् संकटसे पार

हों। हे राजन् ! भगवान्की ऐसी आज्ञा पाकर सभी यादव रथोंपर चढ़ प्रभासक्षेत्र जानेके लिये तैयार हो गये। यह देख, उद्धव एकान्तमें भगवान्के समीप जाकर उनके चरणोंपर जा गिरे और हाथ जोड़ कर बोले—भगवन् ! मैं तो आधे क्षण भी आपके चरणकमलको छोड़ नहीं सकता। कृपाकर आप मुझे भी अपने धाम लेते चलें।

स्वधाम नय मामपि ॥ ४३ ॥

आपका वियोग मैं सहन न कर सकूँगा। हे राजन् ! उद्धवने जब इस प्रकार भगवान्से प्रार्थना की तब भगवान्ने अपने प्रिय अनन्य भक्त उद्धवको ज्ञानोपदेश देना आरम्भ किया।

एवं विज्ञापितो राजन् भगवान् देवकीसुतः।
एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका छठा अध्याय समाप्त।

[मासिक-पारायणका सत्ताईसवाँ विश्राम]



सातवाँ अध्याय

अवधूतके इतिहास द्वारा श्रीकृष्णका उद्धवको ज्ञानोपदेश

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव ! तुमने जो कहा वह ठीक है। मैं भी वही करना चाहता हूँ, ब्रह्मा आदि सभी देवता अब मुझे परम धाममें देखनेकी इच्छा कर रहे हैं। मैंने जिस कारण अवतार लिया था वह कार्य सम्पन्न हो चुका। मेरा कुल भी ब्राह्मणोंके शापसे दग्धप्राय हो रहा है। वह परस्परके संघर्षसे स्वयं ही नष्ट हो जायगा। सातवें दिन समुद्र भी इस पुरीको डुबा देगा। मेरे छोड़ते ही इस लोकपर कलिका आक्रमण हो जायगा। उससे मनुष्योंकी अधर्ममें रुचि होने लगेगी। तुम तो अपने बन्धु-बान्धवोंका स्नेह त्याग मुझमें चित्त लगाकर सर्वत्र समदृष्टि रखते हुए पृथ्वीपर विचरना। मन, वाणी, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियसे जो कुछ देखा

सुना या कहा जाता है वह सब मायाका प्रपञ्च है और स्वप्नतुल्य होनेसे वह मिथ्या है। अतः तुम इसे मेरा ही स्वरूप समझ कर ध्यान करो, फिर तुम्हें सांसारिक विपत्तियाँ तथा मेरे वियोगका कष्ट न सता सकेगा—

पश्यन् मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! भगवान्के ऐसे मधुर युक्तियुक्त वचन सुनकर उद्धवजीने तत्त्वकी जिज्ञासासे पूछा—हे योगेश्वर! आपने जैसे त्यागका वर्णन किया है उसका पालन तो विषयी पुरुषोंके लिये अत्यन्त कठिन है। मैं सांसारिक पदार्थ स्त्री, पुत्र तथा देहादिमें आसक्त हूँ। मुझे तो आप कोई ऐसा उत्तम साधन बतायें जिसका पालन मैं सरलतासे कर सकूँ। मेरी दृष्टिमें आपसे अतिरिक्त देवताओंमें भी कोई तत्त्वका उपदेष्टा नहीं दीखता। कारण, सभी तो आपके मायाजालसे मोहित हो उसमें फँसे हुए हैं। आप सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् और अविनाशी परब्रह्म हैं। मैं आपकी शरणमें हूँ, आपका चरण सेवक हूँ, मुझे सुगमतासे उपदेश करें।

भगवान्ने कहा—हे उद्धव! संसारमें प्रायः विवेकी पुरुष विषयवासनासे अपनी आत्माका स्वयं साधनद्वारा उद्धार करते हैं। पशु-पक्षी कीट-पतंग आदिके शरीरमें भी आत्मा गुरुके समान हित-अहितका ज्ञान कराती है। यद्यपि आत्माके निवासकी बहुत सी पुरियाँ बनी हैं, किन्तु उनमें मनुष्यशरीर सर्वोत्तम बताया गया है। गुरुकृपासे साधनसम्पन्न प्राणी साधन द्वारा इसी शरीरमें उस आत्माका प्रत्यक्ष बोध कर लेते हैं। कुछ शाब्दिक विद्वान् अनुमान और अर्थापत्तिसे भी उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं किन्तु वह वाचिक ज्ञान हैं, उससे भ्रमकी निवृत्ति नहीं हो सकती। इस विषयमें, मैं तुम्हें एक सुन्दर प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ, जिसमें योगी दत्तात्रेय एवं राजा यदुका महत्त्वपूर्ण संवाद है उसे ध्यानपूर्वक सुनो। एक समय ययातिके धर्मात्मा पुत्र राजा यदुने निर्भय विचरते हुए एक विलक्षण अवधूतको देखा और प्रणामकर उससे पूछा ब्रह्मन्! आपने कर्तृत्वभावनासे रहित यह सुबुद्धि कहाँसे प्राप्त की, जिसके बलपर आप ज्ञानी होते हुए भी संसारमें अज्ञानीकी भाँति विचरते हैं। प्रायः देखा जाता है कि मनुष्यकी संसारमें किसी न किसी कामनासे ही प्रवृत्ति हुआ करती है। आप कोई प्रयत्न नहीं करते; स्त्री-पुत्रादिसे भी रहित हैं फिर भी, आपकी आत्मा आनन्दसे परिपूर्ण है, इसका कारण क्या है? दत्तात्रेयने कहा—राजन्! मैंने जिनकी कृपासे यह अनुपम ज्ञान प्राप्त किया है वे मेरे २४ गुरु हैं। उनके नामोंका पहले आप श्रवण करें।

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ।
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद् गजः ॥ ३३ ॥
मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः ।
कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत्[1] ॥ ३४ ॥

(१) पृथिवी, (२) वायु, (३) आकाश, (४) जल, (५) अग्नि, (६) चन्द्रमा, (७) सूर्य, (८) कबूतर, (९) अजगर, (१०) समुद्र, (११) पतिङ्गा, (१२) भ्रमर (मधुमक्षिका), (१३) हाथी, (१४) मधुहर्ता, (१५) हरिण, (१६) मीन, (१७) पिङ्गला वेश्या, (१८) कुरर, (१९) बालक, (२०) कुमारी, (२१) शरकृत, (२२) सर्प, (२३) ऊर्णनाभि मकड़ी और (२४) भृङ्गी। ये ही मेरे उपदेष्टा २४ गुरु हैं। मैंने इनसे जो शिक्षा ग्रहण की है उसे सुनो। पृथ्वीसे (पर्वत और वृक्षरूप पृथ्वीसे) मैंने सहनशीलता और परोपकारिता ये दो बातें सीखीं। वायुसे (प्राणवायुसे) केवल प्राणरक्षार्थं आहार करना, इन्द्रियतृप्त्यर्थं नहीं, यह सीखा और बाह्यवायुसे निर्लिप्तता अर्थात् सर्वत्र अनासक्ति सीखी। आकाशसे असङ्गता, जलसे शुद्धता और अग्निसे सर्वभक्षी होकर भी किसीके गुण-दोषको ग्रहण न करना यह सीखा। चन्द्रमासे आत्माका अविनाशी और शरीरका विनाशी भाव सीखा। जैसे चन्द्रमाकी कलाओंका नाश होता है स्वतः चन्द्रमाका नहीं वैसे ही इस देहका नाश होता है, आत्माका नहीं। आत्माका भेद देह आदि उपाधियोंसे होता है, स्वतः नहीं, यह मैंने सूर्यसे सीखा। जैसे सूर्य एक ही है किन्तु जलमें प्रतिबिम्बित होनेपर वह अनेकरूपसे प्रतीत होता है वैसेही आत्माभी उपाधियोंसे नाना प्रतीति होती है। अब मैंने कपोतसे जो सीखा है, उसे सुनो—

नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः केनचित् क्वचित् ।
कुर्वन् विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥

कभी भी किसीसे अत्यन्त प्रेम या संग न करे, अन्यथा वह कबूतरके समान स्नेहमें फँसकर क्लेश पाता है और अन्तमें मारा जाता है। यह मैंने कबूतर से सीखा। हे राजन् ! एक वनमें घोंसला बनाकर कपोत और कपोती रहा करते थे। उन दोनोंका परस्पर इतना अधिक प्रेम था कि वे एक दूसरेसे कभी अलग नहीं होते थे। उनकी दृष्टिसे दृष्टि, अंगसे अंग और मनसे मन सदा बंधा रहता था। कपोती जो भी कुछ दुर्लभ वस्तु चाहती कबूतर उसे

१. सुपेशकृत् भृङ्गी। सुपेशमतिशोभनं रूपं कीटस्य करोतीति चातुर्मास्ये प्रायः तस्या उद्भवो भवति।

अथक प्रयासकर अवश्य ला देता था। एक दिन समय आने पर कपोतीने प्रसव किया। थोड़े ही समयमें उसके बड़े ही सुन्दर और कोमल बच्चे पैदा हुए। कपोती और कपोत उन बच्चोंके मधुर-मधुर चीं-चीं शब्द एवं उनके इधर-उधर फुदकनेपर बड़े ही प्रसन्न होते अपने जीवनको सफल मानते थे। एक दिन वे दोनों बच्चोंके लिये चारा लेने सुदूर वनमें चले गये। दैवयोगसे इसी बीच एक व्याधने जाल फैलाकर उन बच्चोंको पकड़ लिया। जब कपोती-कपोत चारा लेकर लौटे तब जालमें फंसे बच्चोंको देख कपोती बुरी तरह बिलखने लगी और इधर-उधर फड़फड़ाती हुई अन्ततः वह भी जालमें जा गिरी और स्वयं भी फंस गयी। कपोतने भी अपनी प्राणप्यारी पत्नी और बच्चोंको इस प्रकार जालमें फंसे देख बड़ा ही करुण विलाप किया और वह भी दुःखित हो उसी जालमें जा गिरा और फंस गया। इस घटनासे व्याधका प्रयोजन सिद्ध हुआ और वह प्रसन्न हो उन सबको लेकर अपने घर चला गया। हे राजन्! कुटुम्बका पोषण करना मना नहीं, किन्तु इस तरह आसक्तिपूर्वक जो कुटुम्बका पोषण करता है उसका सपरिवार नाश हो जाता है। यह शिक्षा इस दृष्टान्त से ग्रहण करनी चाहिये। जो मनुष्य मुक्तिका खुला द्वार इस दुर्लभ मानवशरीरको पाकर गृहस्थाश्रम में कपोतके समान आसक्त रहता है वह मुक्तिपदपर आरूढ होकर भी नीचे गिर गया ऐसा समझना चाहिए।

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम्।
गृहेषु खगवत् सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः॥ ७४॥

ये सारी बातें एक समय भगवान्ने गरुड़से भी कही थीं।

जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खलु भो द्विजत्वम्।
यस्तन्न पालयति लालयतीन्द्रियाणि तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात्॥
(गरु० पु०)

सैकड़ों योनियोंमें कर्मवश भ्रमण करता हुआ यह जीव भगवत्कृपासे कभी मनुष्यत्वको प्राप्त करता है, उसमें भी ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति तो अत्यन्त दुर्लभ है। जो इसकी उपेक्षा कर विषयासक्त हो इन्द्रियोंको तृप्त करता रहता है उसके हाथमें आया हुआ भी अमृत प्रमादसे नीचे गिर जाता है।

इस प्रकार इस अध्यायमें दत्तात्रेयके आठ गुरुओंके महत्त्वपूर्ण उपदेशोंका निरूपण किया गया।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका सातवाँ अध्याय समाप्त।

●

आठवाँ अध्याय

दत्तात्रेयकी गुरु पिङ्गला वेश्याकी कथा

दत्तात्रेयजीने राजा यदुसे कहा—

सुखमैन्द्रियकं राजन् स्वर्गे नरक एव च।
देहिनां यद् यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद् बुधः॥ १॥

हे राजन्! दुःखकी तरह इन्द्रियसम्बन्धी विषयसुख भी मनुष्योंको स्वर्ग-नरकमें सर्वत्र अनायास ही प्राप्त होते रहते हैं। इसलिये विवेकीपुरुष उन्हें प्राप्त करनेकी चेष्टा न करे। दैवेच्छासे थोड़ा-बहुत, खट्टा-मीठा, सरस-नीरस जो भी पदार्थ मिल जाय, उसे ही ग्रहण करे और उसमें ही सन्तोष करे। न मिलनेपर उसकी चिन्ता भी न करे। अजगरके समान पड़ा सोता रहे। यहाँतक कि भोजनके लिये भी किसी प्रकारकी चेष्टा न करे। यह मैंने अजगरसे सीखा। समुद्रसे मैंने गम्भीरता सीखी। जैसे वह कभी घटता-बढ़ता नहीं, वैसे ही शोक-हर्ष न करना यह मैंने समुद्रसे सीखा। सुन्दर रूपमें आसक्ति विनाशका कारण होती है, यह मैंने पतिङ्गासे सीखा।

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः।
प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः॥ ८॥

साधकको चाहिये कि वह स्त्री, सुवर्ण, आभूषण, वस्त्र आदि मायिक द्रव्योंके प्रति उपभोगबुद्धिसे अत्यन्त आसक्त न हो। अन्यथा उसका विवेक लुप्त हो जाता है और वह पतिङ्गके समान शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है। पुष्पोंसे भ्रमरकी तरह विवेकी पुरुष-छोटे बड़े सभी शास्त्रोंसे सारको ग्रहण करे, यह मैंने भ्रमरसे सीखा। सायंकाल अथवा दूसरे दिनके लिये भिक्षान्नका संग्रह न करे, करपात्री अथवा उदरपात्री होकर ही रहे, यह मैंने मधुमक्षिकासे सीखा। लकड़ी की अथवा चित्रमें बनी स्त्रीका स्पर्श संन्यासी पैरसे भी कभी न करे और न उसे बुरी दृष्टिसे देखे ही, अन्यथा हस्तिनीके स्पर्शसे हाथीके समान उसे बन्धनमें फंसना पड़ता है, यह बात मैंने हाथीसे सीखी।

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि।
स्पृशन् करीव बध्येत करिण्या अङ्गसंगतः॥ १३॥

जो लोभी मनुष्य किसीको एक कौड़ी भी उठा कर नहीं देते, धन इकट्ठा कर स्वयं भी उसका उपभोग नहीं करते ऐसे पापियोंका धन दूसरे ही हरणकर मौज उड़ाते हैं, यह बात मैंने मधुहर्तासे सीखी। भगवत्सम्बन्धी-कीर्तन तथा गानोंके अतिरिक्त कभी स्त्रियोंके गन्दे गीत न सुने, यह मैंने व्याधके गानपर मोहित हो बन्धनमें पड़े हरिणसे सीखा। चटोरी जबान (जिह्वालौल्य) से सदा बचना चाहिये अन्यथा मनुष्य नष्ट हो जाता है, जैसे मांस लगे लोहकण्टक (बंशी) को ग्रहण करनेसे मछली मारी जाती है। यह मैंने मछलीसे सीखा। दूसरोंसे किसी प्रकारकी कोई आशा न करे अन्यथा महान् क्लेश होता है, यह मैंने पिङ्गला नामकी वेश्यासे सीखा था। इस सम्बन्धमें एक छोटा सा इतिहास है उसे सुनो। इस वेश्याका 'पिंगला' नाम सार्थक हुआ था, उसके दो अर्थ थे। पहला अर्थ—वह अपना शरीर दूसरेको अर्पण कर उससे 'पिंग' पीतवर्ण (सुवर्ण) लिया करती थी। पिंगं पीतवर्णं लाति गृह्णाति स्वदेहार्पणेन इति पिंगला। दूसरा अर्थ—आशाका त्याग करनेपर उसने 'पीताम्बरधारी' भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त कर लिया था।

पिङ्गं पीताम्बरं श्रीकृष्णं लातीति पिंगला।

यह वेश्या विदर्भ नगरमें रहा करती थी। सायंकाल होनेपर वह सुन्दर शृङ्गार कर खिड़कीपर जा बैठती। मार्गमें यातायात करनेवाले पुरुषोंको वह अपने रूपपर फँसा कर उनसे रकम ऐंठती थी। एक दिन दैवात्, वह इसी प्रकार सज-धज कर बैठी पुरुषोंकी राह देख रही थी। इस व्यग्रतामें वह कभी बाहर झाँकती और कभी भीतर जाती। इस प्रकार उस दिन निर्गम-प्रवेश करते करते उसे आधी रात बीत गयी पर कोई भी उसके पास नहीं आया।

निर्गच्छन्ती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥

मैं वहीं खड़ा-खड़ा उसका यह सारा चरित्र देख रहा था। धनकी आशामें उस वेश्याका मुख सूख रहा था। दुःखसे व्याकुल हो उसके हृदयमें तत्क्षण विरागके भाव जाग उठे और वह अपनेको धिक्कारती हुई मन ही मन कहने लगी—अरे! मैं कैसी मूर्खा हूँ? अपनी अज्ञानताको मैं क्या कहूँ? रति और धन दोनोंके अमोघदाता अविनाशी अपने समीपमें ही सदा रहने वाले नित्य पतिको छोड़कर मैं किन तुच्छ क्षणभंगुर जारोंकी आशा करने लगी? मैंने व्यर्थ ही इस निन्दित वृत्तिद्वारा अपनी आत्माको कष्ट पहुँचाया, यह मनुष्य शरीर कितना घृणित है। इससे तो मलके नौ पनारे दिन रात

रहा करते हैं। इसके भीतर मल-मूत्र-कफ आदि गन्दी वस्तुएँ भरी हैं। यह दुर्गन्धसे भरा हुआ मलमूत्रका पात्र है। मुझ जैसी नासमझ अन्य कौन ऐसी स्त्री होगी जो इसकी ओर ताके? मुझे धिक्कार है धिक्कार है। मैं तो अब लक्ष्मीके समान भगवान्‌को ही अपना पति बना कर उन्हींके साथ यथेच्छ रमण करूँगी। शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! ऐसा निश्चय कर, वह वेश्या दुराशाएँ त्याग पलंगपर जाकर सो गयी। मैंने उससे यही उपदेश सीखा कि संसारमें किसीकी आशा करना महान् दुःखका कारण है, यहाँ तो नैराश्य किसीकी आशा न करना ही परम सुख है, जैसे पिङ्गला वेश्याने कान्तकी आशा त्याग कर केवल एक भगवान्‌का आश्रय ले सुखपूर्वक शयन किया और शान्ति प्राप्त की।

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥ ४३ ॥

यह पिङ्गला वेश्या एक विशिष्ट अप्सरा थी। किसी कारणवश वह मनुष्ययोनिमें आयी थी। इसीसे उसे भगवत्प्राप्ति केहेतुभूत सात्त्विक बुद्धि उत्पन्न हुई, ऐसा श्रीविजयध्वज तीर्थने अपनी टीकामें संकेत किया है। इस अध्यायमें दत्तात्रेयके नौ गुरुओंका उपदेश वर्णन किया गया।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका आठवाँ अध्याय समाप्त।

—:※:—

नवाँ अध्याय

शेष सात गुरुओंके उपदेश सुनाकर दत्तात्रेयका गमन

दत्तात्रेयने कहा—हे राजन्!

परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत् प्रियतमं नृणाम्।
अनन्तं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः ॥ १ ॥

संसारमें मनुष्य जिन-जिन प्रिय वस्तुओंका संग्रह करता है वे सभी वस्तुएँ उसके दुःखका कारण बन जाती हैं। इस तथ्यको जानकर जो किसी वस्तुका संग्रह नहीं करता उसे अनन्त सुखकी प्राप्ति होती है। देखो, कुरर

पक्षी जबतक मुखमें मांसका टुकड़ा लिये रहता है तवतक गिद्ध और कौवे आदि सभी पक्षी उसका पीछा करते हैं, किन्तु जब वह उसे छोड़ देता है तब सब उसी मांसके टुकड़ेपर टूट पड़ते हैं और फिर वह सुखसे विचरता है। इसलिये, किसी भी वस्तुका संग्रह न करना, यह मैंने कुररसे सीखा। मान-अपमान तथा चिन्ताका परित्याग करना यह मैंने बालकसे सीखा। संसारमें अकेला ही विचरे, यह मैंने कुमारीसे सीखा। हे राजन्! इस प्रसंगमें एक छोटा-सा आख्यान है उसे सुनो! किसी नगरमें एक कुमारी रहती थी। उसके परिवारके बन्धु-बान्धव कार्यवश कहीं बाहर गये हुए थे। इसी बीच उसका वरण करनेके निमित्त कुछ लोग घर पर आ पहुंचे। कुमारी इन आगन्तुकोंके भोजनके लिये जब धान कूटने लगी तब उसकी कलाईकी शंखकी चूड़ियाँ शब्द करने लगीं। वह उसे अच्छा न समझ बड़ी लज्जित हुई और अपनी गरीबीकी थाह दूसरोंको न लगने पावे इस दृष्टिसे उसने चूड़ियाँ एक-एककर अपने हाथोंसे उतार दी। केवल दो-दो ही चूड़ियाँ हाथोंमें रहने दीं। किन्तु, धान कूटनेमें जब फिर भी उनसे शब्द होने लगा तब उसने एक-एक चूड़ी और उतार दी। एक-एक चूड़ी रह जानेपर फिर उससे कोई शब्द नहीं हुआ।

एकस्मान्नाभवद् ध्वनिः ॥ ८ ॥

इस पर, मैंने उस कुमारीसे यह उपदेश सीखा कि—

वासे बहूनां कलहो भवेद् वार्ता द्वयोरपि।
एक एव चरेत् तस्मात् कुमार्या इव कङ्कणः ॥ १० ॥

बहुत लोगोंके साथ रहनेसे कलह होता है और दोमें बात-चीत हुआ करती है। इसलिये, साधकको चाहिये कि कुमारीके कङ्कणके समान संसारमें अकेला ही विचरे। चित्तकी एकाग्रता मैंने बाणकर्तासे सीखी। वह एक समय बाणकी नोंक तीक्ष्ण करनेमें बड़ा दत्तचित्त हो रहा था। उसी समय उसके सामनेसे बड़े धूम-धामके साथ राजाकी सवारी निकल गयी पर इसे उसका कुछ भी ज्ञान न हुआ—

यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्तमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥१३॥

मेरे पूछने पर उसने यही उत्तर दिया कि इधरसे तो राजाकी कोई सवारी नहीं निकली।

मुनि अकेला ही विचरे, किसीका संग न करे और न अपने रहनेके लिये घरका ही निर्माण करे, यह मैंने सर्पसे सीखा। सर्प एकाकी विचरता है और चूहों द्वारा बनाये गये बिलमें आनन्दसे रहता है। सृष्टि, पालन और संहारमें ईश्वर कैसे स्वतन्त्र हैं; यह मैंने मकड़ीसे सीखा। वह अपने मुखसे तन्तुजालका निर्माण करती है और उसमें विहारकर फिर स्वयं उसे निगल जाती है। भगवान्का ध्यान करनेवाले भक्तोंको उनका सारूप्य प्राप्त होता है; यह मैंने भृङ्गीसे सीखा। भृङ्गी भ्रमरका ही एक भेद है वह किसी कीटको पकड़कर निरोधस्थानमें बन्द कर देता है। वह कीट भयके मारे उसी भृङ्गीका ध्यान करता हुआ उसी शरीरसे उसका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। २५ वाँ गुरु हमारा शरीर ही है जो विरक्ति, विवेक और तत्त्व-ज्ञानका मुख्य साधन है। फिर भी, यह अन्तमें 'परकीय' अर्थात् कुत्ते एवं शृगालोंका भक्ष्य है। ऐसा समझकर मैं इसमें भी अनासक्त हो विचरता हूँ। जिस शरीर-सुखके लिये यह जीव नाना प्रकारके पापकर्मों द्वारा धन-सञ्चय कर स्त्री-पुत्रादिका पोषण करता है वह शरीर भी अन्तमें इसे छोड़कर स्वयं नष्ट हो जाता है फिर भी इसके दुःखोंका अन्त नहीं होता। कारण, जीव किसी न किसी वासनाको लेकर ही प्राण त्यागता है। तदनुसार उसका पुनः शरीर निर्माण हो जाता है और वह कभी इस आवागमनके चक्रसे मुक्त नहीं हो पाता। इन्द्रियोंकी विविध-वृत्तियाँ उसे सांसारिक नाना विषयोंमें फँसा कर नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है। जैसे जिह्वा रसके प्रति, पिपासा जलके प्रति, जननेन्द्रिय संभोगके प्रति, उदर अन्नके प्रति, श्रोत्र शब्दके प्रति, घ्राण गन्धके प्रति, चक्षु रूपके प्रति तथा अन्य कर्मेन्द्रियां वचन आदान-गति और मलत्यागादिके प्रति जीवको निरन्तर खींचती रहती हैं जैसे एक पुरुष की कई स्त्रियाँ होने पर वे खींचा-तानी कर उसकी दुर्दशा बना देती हैं वैसे ही इसकी दशा होती है। वह विवश हो कुछ कर नहीं पाता।

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या
वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान्।
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः॥ २८॥

ब्रह्माने अपनी मायाशक्तिसे पशु-पक्षी, कीट, पतंग, स्थावर-जंगम नाना प्रकारकी पुरियोंकी रचना की, किन्तु उनका हृदय इनसे सन्तुष्ट न हुआ। अनन्तर उन्होंने जब मानवशरीर की रचना की तब वह बड़े प्रसन्न हुए।

कारण, इसमें ब्रह्मसाक्षात्कार करनेकी बुद्धि सन्निहित है। इसके द्वारा जीवको भगवान्‌की प्राप्ति बड़ी सुगमतासे हो सकेगी। यह मनुष्य शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। भगवत्कृपासे ही यह प्राप्त हुआ है। यह चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को देनेवाला है। फिर भी यह अनित्य है। इसलिये घबरानेकी बात नहीं। शीघ्र ही मोक्षप्राप्तिके लिये यत्न करना चाहिये। विषय भोगके लिये नहीं। वह तो अन्य योनियोंमें भी सुलभ हो सकता है यह प्रसंग एक समय भगवान् श्रीकृष्णने गरुडसे भी कहा था—

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥ गरु०पु०॥

जबतक शरीर स्वस्थ हो, किसी रोगका आक्रमण न हुआ हो, वृद्धावस्था न आयी हो, इन्द्रियोंकी शक्तियाँ नष्ट न हुई हों; आयु क्षीणप्राय न हुई हो, तभीतक विवेकी पुरुषको अपनी आत्माके उद्धारार्थ शीघ्र प्रयत्न कर लेना चाहिये। अन्यथा घरमें आग लगनेपर कुआँ खोदनेसे कोई लाभ नहीं होता। हे राजन्! एक गुरुसे पूर्ण सुदृढ़ ज्ञान नहीं हो सकता; इसीलिये मैंने २४ गुरु किये थे। भगवान् श्रीकृष्णने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर कहा—हे उद्धव! दत्तात्रेय इस प्रकार ययातिनन्दन हमारे पूर्वज राजा यदुको अमूल्य उपदेश देकर चले गये। राजाको अवधूतके इस उपदेशसे बड़ी शान्ति मिली और वे उसका मनन करते हुए शनैः-शनैः सबका संग त्याग कर ब्रह्मनिष्ठ हो गये।

सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह॥ ३३॥

इस प्रकार ७–८–९ इन तीन अध्यायोंमें शरीरसहित २५ गुरुओंका वर्णन किया गया। वक्ताके सुविधार्थं उनका एकत्र संकलन किया जाता है—

कपोतमीनहरिणकुमारीगजपन्नगाः।
पतङ्गः कुररश्चाष्टौ हेयार्थे गुरवो मताः॥
मधुकृन्मधुहर्ता च पिंगला च द्वयोस्त्रयः।
उपादेयार्थविज्ञाने शेषाः पृथ्व्यादयो मताः॥

तद्वान्तरभेदश्च तत्र तत्र स्फुटीकृतः।
अध्यायत्रितये चाष्ट नवाष्टावीरिताः क्रमात्॥ (श्रीधरी)

(१) कपोतसे गृहासक्तिका त्याग (२) मीनसे रसासक्तिका त्याग (३) हरिणसे ग्राम्यगीतका त्याग (४) कुमारी-कंकणसे सजातीय योगीका त्याग (५) गजसे स्पर्शासक्तिका त्याग (६) सर्पसे गृहनिर्माणासक्तिका त्याग (७) पतङ्गसे रूपासक्तिका त्याग और (८) कुररसे प्रियवस्तुका त्याग सीखा। ये आठ तत्तद्विषयासक्तिके त्यागमें मेरे गुरु हैं। १—मधुकृत् (भ्रमर) २—मधुहर्ता और ३—पिङ्गला ये तीन हेय और उपादेय दो अर्थमें मेरे गुरु हैं। मधुकृत्से माधुकरीवृत्ति तथा सारसंग्रह सीखा, तथा तत्सजातीय मधुमक्षिकासे संग्रहका त्याग सीखा। मधुहर्तासे स्वसंचयत्याग परसंचितग्रहण सीखा। पिंगलासे आशाका त्याग तथा नैराश्यका ग्रहण सीखा।

शेष शरीर सहित पृथ्वी आदि १४ गुरुओंसे सहन-शीलता आदि उपादेय अर्थ सीखे—उनके नाम ये हैं—

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः।
समुद्रोऽजगरो बालो बाणकृत् तन्तुजालकृत्॥
ग्राह्यार्थे गुरवश्चैते भृङ्गी देहश्चतुर्दश।

(१) पृथ्वीसे क्षमा। पर्वत और वृक्षरूप पृथ्वीसे परोपकारिता। (२) प्राणवायुसे प्राणनिर्वाहमात्रवृत्ति। बाह्यवायुसे विषयोंमें अनासक्ति। (३) आकाशसे आत्माकी असङ्गता। (४) जलसे स्वच्छता, मनकी निर्मलता आदि। (५) अग्निसे तेजस्विता। (६) चन्द्रमासे जन्मादि षड्विकारोंसे आत्माकी निर्विकारता। (७) रविसे आत्माका उपाधिसङ्गाभाव। (८) समुद्रसे प्रसन्नता गम्भीरता आदि। (९) अजगरसे दैवागतभोगसे तुष्टि। (१०) बालकसे हर्ष-विषाद तथा मानापमानराहित्य एवं विधि-निषेधातीतत्व। (११) बाणकर्तासे-चित्तकी एकाग्रता। (१२) तन्तुजालकृत् (मकड़ी) से स्वतन्त्रता। (१३) भृङ्गीसे ध्यानद्वारा भगवत्सारूप्य। और (१४) देहसे विवेक तथा वैराग्य सीखा।

इस प्रकार कपोत आदि ८ हेय अर्थमें गुरु, भ्रमर आदि (३) हेय और उपादेय अर्थमें गुरु तथा शेष पृथ्वी आदि १४ उपादेय अर्थमें गुरु कहे गये हैं।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका नवाँ अध्याय समाप्त।

—:❀:❀:—

दसवाँ अध्याय

मीमांसक-मतखण्डनपूर्वक संसारका मिथ्यात्ववर्णन

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव! अब मैं पहले तुमसे आत्मज्ञानके कुछ साधनोंका वर्णन करता हूँ। तुम उन्हें ध्यान पूर्वक सुनो—

मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः।
वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत्॥ १॥

वर्ण और आश्रमके अनुसार धर्मशास्त्रमें जिस प्राणीका जो धर्म बताया गया है वह उसीका आचरण करे। दूसरेका धर्म कभी ग्रहण न करे, क्योंकि इससे हानिके सिवा लाभ नहीं। कर्मके फलोंमें वैपरीत्य देखे, अर्थात् सुखके लिये किये गये कर्मका विपरीत फल दुःख कैसे हो गया, उस पर बारम्बार विचार करे। प्रवृत्तिमूलक काम्य-कर्मोंका परित्यागकर निवृत्तिमूलक-कर्मोंका आचरण करे। फलकी इच्छासे कोई भी कर्म न करे। अहिंसा, सत्य आदि १२ [1]यमोंका एवं शौच-जप आदि १२ नियमोंका यथाशक्ति पालन करे। इसी स्कन्धके १९वें अध्यायके ३३—३४वाँ श्लोक देखें। गुरुदेवकी शरणमें जाकर वहाँ विनम्र हो तन-मन धनसे उनकी सेवाकर आत्म-प्राप्तिके साधन सीखे। मायिक-पदार्थोंमें अधिक ममता न करे। दाहक और प्रकाशक अग्नि जैसे दाह्य और प्रकाश्य काष्ठसे पृथक् है वैसे ही द्रष्टा तथा प्रकाशक आत्मा स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरोंसे पृथक् है, इसका विचार करे। जैसे काष्ठभेदसे अग्नि कहीं लम्बी और कहीं गोलाकार प्रतीत होती है वैसे ही आत्मा उत्कृष्ट-निकृष्ट योनियोंमें देहोंके अनुसार नानारूपसे भासित होती है, स्वतः उसमें कोई वैषम्य नहीं। शरीरमें आसक्ति करना ही संसार-बन्धनका कारण है। जब आसक्ति आत्मज्ञानद्वारा निवृत्त हो जाती है तब जीव मुक्त हो जाता है। अत एव आत्मस्थ ब्रह्मकी भावना द्वारा स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरोंके प्रति अहंबुद्धिका त्याग करें। जैसे यज्ञमें अरणिमन्थनसे अग्नि प्रकट की जाती है उसी प्रकार यहाँ आचार्य नीचेकी अरणि और शिष्य ऊपरकी अरणि है। दोनोंके मध्यमें मन्थनकाष्ठ प्रवचन अर्थात् उपदेश है।

---

१. पातञ्जलयोगसूत्रके अनुसार ५ यम और ५ नियम हैं।
अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।
सौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

उसके अभ्यासरूपी मथनसे ज्ञानाग्नि प्रकट हो जाती है जो गुणोंकी जननी अविद्याका समूल नाश कर डालती है और जीव अपने स्वरूपका बोधकर मृत्युसे छुटकारा पाकर परमानन्दको प्राप्त करता है।

मीमांसक लोग कर्मकाण्डके प्रपंचमें फँसे रहते हैं। उन्हें ज्ञानचर्चा सुहाती ही नहीं। वे निरन्तर कर्मकी ही पुष्टि किया करते हैं। किन्तु कर्मका वास्तविक स्वरूप और उसका रहस्य क्या है यह नहीं जानते। 'स्वयं नष्टः परान्नाशयति' इसके अनुसार, वे स्वयं तो नष्ट होते ही हैं, साथ ही औरोंका भी नाश करते हैं। इनके मतमें 'अहं ब्राह्मणः' इत्यादि प्रतीतिसे ज्ञेय ही आत्मा है, ज्ञानस्वरूप नहीं। उनका मत है—

"अहंप्रत्ययविज्ञेय एवात्मा स च प्रतिशरीरं भिन्नः कर्तृ-भोक्तृरूपश्च न तु तत्स्वरूपभूतो निर्विकार एकः परमात्माऽस्तीति"

ये अज्ञानी कर्ता, भोक्ता, सुख-दुःख, लोक, काल, शास्त्र, आत्मा और भोग्यपदार्थ इन सबको नाना एवं नित्य मानते हैं। इस भ्रमसे उनका बन्धन कभी निवृत्त नहीं होता। कूपमण्डूककी तरह वे कर्मकाण्डके पचड़ेमें पड़े रहते हैं और उत्तरमीमांसा जो ज्ञानकाण्ड है जिसका मनन करनेसे जीव मुक्त हो सकता है उसे नहीं देख पाते।

जीव न तो कर्म करनेमें और न कर्मोंका फल भोगनेमें ही स्वतन्त्र है। हृदयमें बैठा ईश्वर जैसी प्रेरणा करता है तदनुसार ही जीव कार्य करता है। मिथ्या अहंकारसे लोग उस अन्तःप्रेरक शक्तिका अपलाप करते हैं। महाभारतमें इसी तथ्यका संकेत करते हुए महाभिमानी दुर्योधनने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानामि पापं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

मेरी धर्म या पापमें स्वतः प्रवृत्ति नहीं होती। हृदयमें बैठा कोई नियन्ता ईश्वर है, वह जैसी प्रेरणा करता है वैसा ही मैं करता हूँ।

इसलिये, सत्य तो यह है कि ईश्वरकी सत्ताके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता तब ये जडकर्म स्वयं क्या कर सकते हैं। उनके फल देनेवाले ईश्वरको अगत्या मानना ही पड़ेगा। नाना प्रकारके यज्ञोंके अनुष्ठानसे स्वर्ग सुलभ अवश्य होता है। वहाँ जीव अप्सराओंके साथ विमानोंमें बैठकर कुछ काल तक पुण्यका फल उपभोग करते हैं किन्तु पुण्य क्षीण होते ही वे वहाँसे

बलात् नीचे ढकेल दिये जाते हैं। उस समय उनका कर्म सहायक क्यों नहीं होता? वे पुनः जन्म-मरणके चक्करमें फँसते रहते हैं। जिन्होंने प्रमादवश अज्ञानतासे यज्ञमें पशुओंको मारा है, वे ही पशु उनका मांस नोच-नोचकर खाते हैं और वे पड़े-पड़े तड़पते हैं उन्हें शान्ति नहीं मिलती। चन्द्र, सूर्य, अग्नि, यम, वायु आदि सब लोकपाल भगवान्के भयसे अपना-अपना कार्य नियमपूर्वक किया करते हैं। अधिक क्या कहें, ब्रह्माको भी जिससे भय है, उस ईश्वरकी उपेक्षा करनेवाले ऐसे मरणधर्मा हठी मीमांसकों को क्या सुख हो सकता है? किं सुखं मर्त्यधर्मिणः।

कालरूपी ईश्वर द्वारा उनके सारे मनोरथ नष्ट कर दिये जाते हैं और केवल पश्चात्ताप ही उनके हाथ लगता है। अतः जबतक नानात्व है तबतक पारतन्त्र्य है और जबतक पारतन्त्र्य है तबतक निश्चय ही कालरूपी ईश्वरसे भय है। जो कर्म और भोगको ही प्रधानता देते हैं वे भोगस्थानके नष्ट होनेपर निश्चय ही शोकसे व्याकुल होते हैं। उनकी आत्माको कभी शान्ति नहीं मिलती। इसलिये निवृत्तिमार्ग ही मुक्तिका श्रेयस्कर साधन है। आत्मा एक है, देहके सम्बन्धसे ही उसके नानारूप तथा उसका बन्धन होता है। बिना आत्मज्ञानके उसकी मुक्ति नहीं हो सकती यह निश्चित सिद्धान्त है।

इसपर उद्धवने कहा—हे भगवन्! मुक्ति गुणोंके अभावमें होती है अथवा गुणोंके रहनेपर? प्रथम पक्षमें ज्ञानके साधनोंका अभाव होनेसे मुक्ति नहीं होगी अर्थात् सत्त्वगुणके कार्य श्रद्धा-विवित्सादि तथा उनके द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धिके बिना मुक्ति असम्भव है। द्वितीयपक्षमें गुणकार्य-देहजन्य कर्मोंमें तथा सुखदुःखादि द्वन्द्वोंमें बन्धन भी अनिवार्य है। ऐसी दशामें आकाशके समान निर्लेप आवरणशून्य आत्माका बन्धन कैसे? एक ही आत्मा नित्यबद्ध और नित्यमुक्त कैसे? देवदत्त, यज्ञदत्तादिके शरीरमें आत्मा नित्यबद्ध एवं दत्तात्रेय भरतादिके शरीरमें नित्यमुक्त है, यह देख कर मुझे भ्रम होता है। इसका ज्ञान किन लक्षणोंसे हो सकता है? कृपया आप इसका वास्तविक रहस्य बताने का कष्ट करें।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका दसवाँ अध्याय समाप्त।



ग्यारहवाँ अध्याय

बद्ध, मुक्त तथा साधु और भक्तिके लक्षणोंका वर्णन

भगवान्‌ने कहा—हे उद्धव !

बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ।
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥ १ ॥

आत्माके विषयमें 'बद्ध' और 'मुक्त' का भेद सत्त्वादि गुणोपाधिसे होता है, वास्तविक नहीं । कारण गुणोंकी जननी मूलभूत 'अविद्या' (माया) है जो मरु-मरीचिकासरित्‌के समान मिथ्या है । उसके द्वारा देह-इन्द्रियादिकी जो कल्पनाकी गयी है वह भी मिथ्या है । अतः मिथ्या होनेके कारण वस्तुतः आत्माका कोई बन्धन नहीं, और जब बन्धन नहीं तब मोक्षका प्रश्न ही नहीं उठता ? शोक, मोह, सुख-दुःख एवं देहकी प्राप्ति यह सब मायासे है ठीक वैसे ही जैसे स्वप्नकी प्रतीतियाँ । स्वप्न एक बुद्धिका विवर्त है । वह शुक्तिमें रजतके समान अतात्त्विक अन्यथाभाव रूप है अतः संसारकी सत्ता वास्तविक नहीं । यह दीर्घ-कालीन स्वप्न कहा जाता है । भगवान् श्रीरामके संसारविषयक प्रश्नपर वशिष्ठजीने कहा था—

दीर्घस्वप्नमिमं विद्धि दीर्घं वा चित्तविभ्रमम् ।
दीर्घं वापि मनोराज्यं संसारं रघुनन्दन ॥ (योगवासिष्ठ)

बन्ध और मोक्ष करनेवाली 'अविद्या' एवं 'विद्या' ये दोनों मेरी ही शक्तियाँ हैं । जबतक मैं 'अविद्या' को प्रेरित करता हूँ तभीतक जीवका बन्धन है और जब 'विद्याको' प्रेरणा देता हूँ तभी जीवका मोक्ष है । इसलिये अनादिकालसे मेरे अंशभूत 'जीव' के बन्ध और मोक्षकी व्यवस्था चल रही है और यह मिथ्या है । अब तुम इन दोनोंकी विलक्षणताएँ सुनो । बद्ध जीव और मुक्त ईश्वर ये दोनों परस्पर विरुद्ध धर्मवाले होते हुए भी एक ही शरीरमें नियम्य और नियन्तारूपसे रहते हैं । स्वयं अपना और ईश्वरका ज्ञान न रखनेवाला जीव तो सुख-दुःख आदि कर्मोंका फल भोगता दुःखी रहता है और ईश्वर सर्वथा साक्षीमात्र रहकर कर्मोंका फल न भोगता हुआ भी ज्ञान आदि शक्तियोंसे परिपूर्ण हो अपने स्वरूपानन्दमें निमग्न रहता है उसे अपना एवं अपने अंशभूत जीवका भी ज्ञान रहता है—

आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ।
योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ।।७।।

इसलिये, अविद्याग्रस्त जीव 'नित्यबद्ध' है और विद्यायुक्त वह अन्तस्थ ईश्वर 'नित्यमुक्त' है। जीवन्मुक्त पुरुष शरीरमें रहते हुए भी शरीरी नहीं है ठीक वैसे ही जैसे स्वप्नसे जगा हुआ पुरुष स्वप्नगत देहमें अपना अस्तित्व नहीं मानता। देहाभिमानी जीव शरीरमें न रहते हुए भी अपनेको शरीरस्थ मानता है जैसे स्वप्नद्रष्टा अपनेको स्वप्नशरीरगत मान बैठता है। ज्ञानी पुरुष इन्द्रियों द्वारा विषयोंका ग्रहण करनेपर भी अहङ्कार नहीं करता और न उसे विकार ही होता है। अज्ञानी पुरुष प्रत्येक कर्ममें कर्तृत्वका अभिमान कर बन्धनको प्राप्त होता है। यही दोनोंका भेद है। संसारमें ज्ञानी पुरुषकी मुख्य पहचान यही है कि वह चन्दन लगानेवाले एवं काँटे चुभानेवाले दोनोंपर समान दृष्टि रखता है। उसे हर्ष या विषाद कुछ भी नहीं होता। ज्ञानी पुरुष किसीकी न निन्दा करता न स्तुति करता और न किसीको अपने पाण्डित्यका परिचय ही देता है। वह विद्वान् होते हुए भी संसारमें जड़के समान बनकर नानारूपोंमें विचरता है।

कहा भी है—

केऽपि वर्णाश्रमाचारनिष्ठापरा मुग्धबालप्रमत्तोपमाश्चापरे ।
रागिणो भोगिनो योगिनश्चेतरे ज्ञानिनां लक्ष्यते नैकरूपा स्थितिः ।।

हे उद्धव ! मुमुक्षु-पुरुषके ये ही असाधारण लक्षण बताये गये हैं। शास्त्रमें पारंगत होनेपर भी जो परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका उसका वह शास्त्रजन्य सारा श्रम वैसे ही व्यर्थ है, जैसे दुग्धहीन या प्रसवहीन गौका पालन, पुंश्चली पत्नीका संरक्षण, पराधीनजीवन, दुष्ट पुत्रका पोषण, तीर्थयात्रा आदि सत्कार्योंमें न लगाया गया धन तथा मेरे नाम-कीर्तनसे रहित वाणी। इन सबका रक्षण करनेवाले पुरुषको कभी जीवनमें सुख नहीं मिलता, उत्तरोत्तर दुःख ही मिलता रहता है। यहाँ गौका दृष्टान्त व्यवहारदृष्टिसे है। परमार्थमें तो गो-सेवासे बढ़कर दूसरा धर्म है ही नहीं।

'न गोसेवनतो धर्मः परोऽस्ति ह्यनिमित्तकात्'। (आदि-पुराण)

यस्यां न मे पावनमंग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ।
लीलावतारेप्सित जन्म वा स्याद् वन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ।२०।

जिसकी जिह्वामें विश्वकी सृष्टि आदिके प्रभावसूचक हमारे चरित्रोंकी चर्चा नहीं, मंगलमय लीलावतारोंका वर्णन नहीं, ऐसी निष्फल जिह्वा धारण योग्य नहीं। वह वन्ध्या स्त्रीके समान व्यर्थ है, ऐसा विचार कर विवेकी पुरुष देहाध्यासका त्याग कर हमारे स्वरूपमें मनको स्थिर करे। यदि इसमें असमर्थ हो तो 'यत्करोषि यदश्नासि' इसके अनुसार अपने सारे कर्म मुझमें अर्पण करे। सत्संगमें जाकर हमारी पवित्र कथाओंका श्रवण करे जिससे शीघ्र ही भक्तिका प्रादुर्भाव होता है। समय-समय पर हमारे जन्म-कर्मोंका उत्सव तथा अभिनय करे। मेरी प्रसन्नताके हेतु धर्म, नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका अनुष्ठान करे, काम-ब्राह्मणोंको अन्न-वस्त्र और भूषणोंका दान करें, अर्थ-उत्सवोंके निमित्त धनका संचय करे। इस प्रकार धर्माचरण करनेसे प्राणीको मेरी निश्चल भक्ति प्राप्त हो जाती है जिसके सहारे वह बड़ी सरलतासे शीघ्र मुझे प्राप्त कर लेता है।

उद्धवने कहा—भगवन्! आपने बताया कि सत्संगसे ही भक्ति प्राप्त होती है ऐसी दशामें आपके मतमें सत्पुरुष कौन हैं और कौन सी भक्ति आपमें उपयुक्त है? इसके उत्तरमें भगवान्ने कहा—जो दयालु, द्वेषरहित, सहनशील, शान्तस्वभाव और मुझमें भक्ति रखता है वही उत्तम कोटिका 'साधु' है अथवा जो विद्ध एकादशीका उपवास और कृष्णपक्षीय एकादशीका अनुपवास, अनिवेदित श्राद्धादि भक्तिविरुद्ध धर्मोंका त्याग कर मेरा भजन करता है वह भी उत्तम साधु है। अब मेरी भक्तिके लक्षण सुनो, मेरी प्रतिमा अथवा मेरे भक्तोंका श्रद्धा-भक्तिसे दर्शन-पूजन करे। प्रतिदिन पुराणोंकी कथाका श्रवण करे। मेरे मन्दिरमें यथा समय पर्व-पर्वपर उत्सव करे। नियमसे एकादशीव्रतका पालनकरे। उसदिन अन्नका परित्याग करे। यदि इसमें असमर्थ हो तो फलाहार करे। उससे व्रतभंग नहीं होता।

अष्टैतान्यव्रतघ्नानि ह्यापो मूलं पयो दधि।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥ (हेमाद्रि)

वैदिकमन्त्रोंसे हमारी मूर्तिकी स्थापना करे। दम्भ न करे। दूसरे देवताको निवेदित अन्न या दीपक मुझे निवेदित न करे। भगवत्प्रसादसे ही पितरोंका पूजन करे। अनिवेदित अन्न या जल कभी ग्रहण न करे, कारण इन्हें विष्ठा एवं मदिराके समान त्याज्य बताया गया है।

अनर्पयित्वा गोविन्दं यो भुङ्क्ते धर्मवर्जितः।
शुनो विष्ठासमं चान्नं नीरं तु सुरया समम्॥ (पद्मपुराण)

जो भी अपने को प्रिय वस्तु हो, उसे श्रद्धापूर्वक मुझे अर्पित करे। सूर्य, अग्नि, गौ, ब्राह्मण और वैष्णवोंका प्रतिदिन पूजन करे, बाह्य और आभ्यन्तर भेदसे वैष्णव दो प्रकारके बताये गये हैं—

बाह्य आभ्यन्तरश्चैव वैष्णवो द्विविधो मतः।
बाह्यस्तु शङ्खचक्राभ्यां वीतरागस्तु चान्तरः॥ (वंशीधरी)

हे उद्धव ! सत्संग एवं भक्तिसे बढ़कर मेरी प्राप्तिका दूसरा साधन नहीं है। अब मैं और भी कुछ रहस्यकी बातें बताता हूँ, उन्हें तुम ध्यानसे सुनो।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

•

बारहवाँ अध्याय

सत्संगकी महिमा, कर्मानुष्ठान और उसके त्यागकी व्यवस्था

भगवान्‌ने कहा—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं[1] न दक्षिणा॥
यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो[2] हि माम्॥

हे उद्धव ! जिस प्रकार कुसंगको छुड़ानेवाला सत्संग मुझे वशीभूत करता है उस प्रकार योग, सांख्य, धर्म अहिंसादि, वेद-पाठ, तप, संन्यास, इष्ट अग्निहोत्रादि पूर्त, दक्षिणा दान आदि नहीं करते। सत्सङ्गके ही प्रभावसे वृत्रासुर, प्रह्लाद, बलि, विभीषण आदि बहुतसे दैत्य भी मुझे प्राप्त हो गये। यज्ञपत्नियाँ एवं व्रजकी गोपियाँ जिन्होंने न शास्त्रका अध्ययन किया न महापुरुषोंकी सेवाकी और न व्रत-तपस्या ही की फिर भी केवल सत्संगसे ही मुझे

---

१. वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते॥

२. 'अत्यन्तं विषयासंगः सर्वसंग इति स्मृतः। इति निरुक्तिः।

प्राप्त कर सकीं। जब अक्रूरजी बलरामके साथ मुझे मथुरा ले गये थे उस समय गोपियोंने मेरे वियोगमें सारा जगत् दुःखसे हीन देखा था। उनको न अपने शरीरका, न इस लोकका और न परलोकका ही ज्ञान रह गया था। जिन रात्रियोंको उन्होंने मेरे साथ आधे क्षणमें व्यतीत किया था वे ही रात्रियाँ मेरे बिना उन्हें कल्पके समान हो गयीं ऐसी गोपियाँ लाखोंकी संख्यामें मेरे स्वरूपको प्राप्त हो गयीं। इसलिये हे उद्धव! तुम श्रुति-स्मृति, विधि-निषेध, प्रवृत्ति-निवृत्ति कर्म और उनके फल इन सबका त्यागकर मेरी शरणमें आ जाओ। फिर तुम्हें किसीसे भय न रहेगा और न मेरे वियोगजन्य कष्टका ही अनुभव होगा।

उद्धवने कहा—हे भगवन्! आपके ऐसे कुछ पूर्वापर विरुद्धसे प्रतीयमान वचन सुनकर मेरे मनका संशय अभी निवृत्त नहीं हो रहा है। पहले आपने 'मयोदितेष्ववहितः'–१०।१। इसके अनुसार कर्म करनेको कहा और अब आप कर्मका त्याग बता रहे हैं। ऐसी दशामें मैं कर्मका आचरण करूँ या उनका त्याग, कृपया मेरे इस संशयको दूर करें। इसपर, भगवान् श्रीकृष्णने ८ श्लोकों द्वारा प्रपंचका उद्गम बताते हुए उत्तरमें कहा—हे उद्धव! मायाके सहारे प्रपञ्चरूपमें मैं ही भासित हो रहा हूँ। इस प्रपञ्चके प्रति अभिमान करके जीवमें अनादिकालसे अविद्यावश कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि विपरीत धर्म आ गये हैं, इसीसे वे विधि-निषेधके अधिकारी हो गये। अतएव, अन्तःकरण की शुद्धिके लिये 'कर्म करो' ऐसा मैंने पहले कहा था। जब कर्म द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाय तब भक्तिमें विक्षेपकारी कर्मोंका विशेष आदर न कर दृढ़ विश्वाससे मेरा भजन करो, ऐसा कहा। इस प्रकार, जब ज्ञान हो जाय तब कर्म करनेकी आवश्यकता ही न रहेगी। देहाभिमान न रहनेके कारण कर्म स्वयं छूट जाते हैं। उन्हें छोड़ना नहीं पड़ता। योगारूढ व्यक्तिके लिये इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है—

न कर्माणि त्यजेद् योगी कर्मभिस्त्यज्यते हि सः।

हे उद्धव! अब तुम प्रपञ्चके उद्गमकी कथा सुनो—

स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः।
मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः॥

सबको चेतन करनेवाला यह जीव अर्थात् ईश्वर सर्वप्रथम वाणीके रूपमें प्रत्यक्षरूपसे अभिव्यक्त होता है। शरीरके पृष्ठभागमें मेरुदण्डके अन्दर सुषुम्ना नाड़ीमें छः चक्र बने हैं। योगशास्त्रमें कहा है—

मूलाधारः स्वाधिष्ठानं मणिपूरकमेव च ।
अनाहतं विशुद्धाख्यमाज्ञा षट्चक्रमुच्यते ॥
मूलाधारे लिङ्गमूले नाभौ हृदि च कण्ठगे ।
भ्रुवोर्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रे क्रमाच्चक्राणि चिन्तयेत् ॥

ये क्रमसे गुदामूल, लिङ्गमूल, नाभि, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्यमें वर्तमान हैं। ब्रह्मरन्ध्र सबके ऊपर है। इन आधारादि चक्रोंमें ही वाणीरूपसे उस ईश्वरकी अभिव्यक्ति होती है। वाणी शब्दात्मिका है। शब्दके भेद दो हैं, नाद और वर्ण। नाद ही परा वाणी है जिसका प्राणके साथ सञ्चार होता है। प्राण भी ईश्वरका ही रूप है।

प्राणो हि भगवानीशः प्राणो विष्णुः पितामहः ।
प्राणेन धार्यते लोकः सर्वं प्राणमयं जगत् ॥

नादवान् प्राण (परा वाणी) के साथ भगवान् आधारचक्रमें प्रविष्ट होते हैं। "हंकारेण विशेत्पुनः"

जब यह परा वाणी मणिपूरचक्र (नाभि) में आती है तब इसकी 'पश्यन्ती' संज्ञा होती है। हृदय (विशुद्धचक्र) में इसकी 'मध्यमा' संज्ञा होती है जो ईश्वरका मनोमय सूक्ष्मरूप कहा जाता है। बाद, जब यह वाणी मुखमें आयी तब यह मात्रा (ह्रस्वादि), स्वर उदात्तादि और वर्ण ककारादि इस रूपसे परिणत हो 'वैखरी' कही जाती है। यही वाणी नाना वेद पुराण इतिहास और उसकी शाखा-उपशाखा रूपसे अत्यन्त विस्तारको प्राप्त हो गयी। योगशास्त्रमें कहा है—

परा वाङ् मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिमाश्रिता ।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा ॥
वैखर्या च कृतो नादः परश्रवणगोचरः ॥

ध्यान रहे, शरीरके अन्दर ज्ञानमार्ग सुषुम्ना नाड़ीमें शब्दब्रह्मके रूपमें परब्रह्मकी ही यह अभिव्यक्ति हुई है। इसी 'शब्दब्रह्म' का आश्रय लेकर योगी पुरुष परब्रह्मको प्राप्त करता है। जैसे काष्ठके मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्निका एक कण भी वायु और घृतके संयोगसे बढ़ जाता है वैसे ही वाणीरूपसे मैं भी विस्तृत हो जाता हूँ। दस इन्द्रिय, अन्तःकरणचतुष्टय मन, बुद्धि चित्त अहंकार तथा त्रिविध अहंकार द्वारा सृष्ट इस सम्पूर्ण प्रपंचको तुम मेरी ही

अभिव्यक्ति समझो। जैसे क्षेत्रमें पड़कर बीज नानारूपोंमें उत्पन्न हो जाता है वैसे ही एक ही मैं मायाका आश्रय लेकर नाना रूपोंमें अभिव्यक्त हो रहा हूँ। यह प्रपंचरूपी वृक्ष देह रूप है जो बड़ा पुराना अनादिकालसे चला आ रहा है। इससे भोग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं। पुण्य और पाप इसके बीज हैं। अनन्त वासनाएं इस देहरूपी वृक्षकी जड़ें हैं। सुख दुःख इसके दो फल हैं। विषयासक्त गृहस्थ प्राणी इसका दुःखरूपी फल खाते हैं और विरक्त संन्यासी सुखरूपी फल खाते हैं। सूर्यमण्डल तक यह वृक्ष फैला हुआ है। सूर्यमण्डल भेदनेपर ही इसकी निवृत्ति होती है अन्यथा नहीं। इस प्रकार एक ही परमात्मा संकल्प-विकल्पात्मिका मायाशक्तिके द्वारा नाना-रूपोंमें अभिव्यक्त हुआ है, जो गुरुकृपासे इस मर्मको जान लेता है वही वेदोंका वास्तविक रहस्य समझता है। हे उद्धव ! तुम भी इसी प्रकार गुरूपासना द्वारा प्राप्त भक्तिसे तीक्ष्ण किये गये ज्ञानरूपी खड्ग को लेकर इस प्रपञ्चात्मक वृक्ष (लिङ्ग शरीर) को जड़से काट डालो और परमात्माको प्राप्त कर पुनः सभी साधनोंका परित्याग कर दो—

सम्पद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥ २४ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका बारहवाँ अध्याय समाप्त।

★

तेरहवाँ अध्याय

सत्त्वगुणकी वृद्धिसे विद्योत्पत्तिका क्रम और हंसाख्यान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव ! सत्त्व, रज और तम ये प्रकृतिके तीन गुण बताये गये हैं, आत्माके नहीं। सत्त्वकी वृद्धिद्वारा रजोगुण और तमोगुणपर तथा शान्त स्वभाव द्वारा सत्त्वगुणपर विजय प्राप्त करे। शान्त स्वभावमें स्थिति ही सत्त्वकी जय कहलाती है। उस समय प्राणी न किसीका उपकार करता है न अपकार ही। सत्त्वगुणकी वृद्धि सात्त्विक पदार्थोंके
सेवनसे होती है और तभी हमारी भक्तिका भी प्रादुर्भाव होता है। १०
वस्तुएं सत्त्वगुणको बढ़ानेवाली बतायी गयी हैं। उनका ध्यानसे श्रवण करो—

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥

आगम-शास्त्र। अध्ययन निवृत्तिपरक शास्त्रोंका करे, प्रवृत्ति और पाखण्ड-परक शास्त्रोंका नहीं। निवृत्तिपरक शास्त्रोंमें पुराण, वेदान्तादि 'सात्त्विक' हैं। प्रवृत्तिपरक शास्त्रोंमें पूर्वमीमांसा राजस और पाखण्डपरक शास्त्रोंमें बौद्धशास्त्र एवं न्यायशास्त्र तामस हैं।

तामसं न्यायशास्त्रं च हेतुवादाभिसन्धितम्।

इसी प्रकार अपः-जलीय तत्त्वोंमें गङ्गोदक सात्त्विक, गन्धोदक राजस और मदिरादि तामस हैं। प्रजा—जनसमाजके भीतर निवृत्तिमार्गमें निरत भक्त सात्त्विक, प्रवृत्तिमार्गमें लगे दुए पुरुष राजस और मद्य-मांस अण्डादि घृणित वस्तुओंका सेवन करनेवाले लोग तामस हैं। देशोंमें काशी आदि एकान्त स्थान 'सात्त्विक', बाजार और गलियाँ 'राजस' तथा द्यूत-स्थान 'तामस' हैं। इसी प्रकार, कालरूपमें भी ब्राह्ममुहूर्त 'सात्त्विक', प्रदोषवेला राजस और अर्द्धरात्रि 'तामस' है। कर्मोंमें नित्यकर्म' सात्त्विक', काम्यकर्म 'राजस' और मारण-प्रयोगादि नरकप्राप्तिका साधन होनेसे तामस हैं। जन्मोंमें शैव-वैष्णव दीक्षा 'सात्त्विक', शक्तिदीक्षा राजस और भूत-प्रेतादिकी दीक्षा 'तामस' है। ध्यानके बारेमें शिव-विष्णु आदि देवताओंका ध्यान 'सात्त्विक', कामिनी-काञ्चनका ध्यान 'राजस' और अनिष्टकी भावनासे शत्रुका ध्यान 'तामस' है। मन्त्रोंमें प्रणवादि मन्त्र 'सात्त्विक' काम्यमन्त्र 'राजस' और क्षुद्र भूत-प्रेतादि मन्त्र 'तामस' हैं। संस्कारोंमें चित्तका शोधक संस्कार-'सात्त्विक', देह-गेह वस्त्रादिका शोधक संस्कार राजस' और नरकका कारण होनेसे मांसादिका शोधन संस्कार 'तामस'हैं। अथवा यों समझें कि जिन-जिन वस्तुओंकी शास्त्रज्ञ ज्ञानी वृद्धजन प्रशंसा करें वे 'सात्त्विक', जिनकी उपेक्षा करें वे 'राजस' और जिनकी निन्दा करें वे 'तामस' हैं। साधकको चाहिये कि वह इनमेंसे राजस और तामसका क्रमशः परित्याग कर केवल सात्त्विक अंशोंका ही ग्रहण करे। इससे भक्तिलक्षण धर्म शीघ्र ही हृदयमें जागरित होता है जिससे ज्ञान द्वारा साधनकी तीव्रता होनेपर आत्माका साक्षात्कार इसी जन्ममें हो जाता है।

उद्धवने कहा—प्रभो! मनुष्य जानता है विषय आपत्तियोंके स्थान हैं, फिर भी वह उन्हींका रात-दिन सेवन करता है ऐसा क्यों? भगवान्ने कहा—विवेक-शून्य मनुष्यके हृदयमें जिस समय 'अहम्' इस मिथ्याबुद्धिका स्फुरण होता है उस समय उसका सात्त्विक मन रजोगुणसे व्याप्त हो जाता है। उसमें कर्त्तव्या-कर्त्तव्यका ज्ञान नहीं रह जाता। ऐसी दशामें विषयोंका चिन्तनकर उसका मन नाना प्रकारके संकल्प-विकल्प करने लगता है। उन कामनाओंके बेगसे अन्धा

हुआ वह प्राणी बलात् पापकर्मोंमें प्रवृत्त हो जाता है। उनसे उसकी निवृत्ति नहीं हो पाती। इसलिये वेग शान्त होनेपर सत्संग द्वारा धीरे-धीरे विषयोंके प्रति दोषदृष्टि उत्पन्न कर मनका निग्रह करे। फिर वह विषयोंमें आसक्त नहीं होता। 'दोषदृष्टिर्न सज्जते' मंगलमयी मेरी ललित कथाओंका श्रद्धाभक्तिसे नियम पूर्वक प्रतिदिन श्रवणकर मनको मुझमें स्थिर करे। ऐसा करनेसे मन धीरे-धीरे विषयोंसे स्वयं हटने लगता है। एक समय मैंने सनकादि महर्षियोंको भी इसी योगका उपदेश दिया था कि सब प्रकारके विषयोंसे मनको हटाकर मेरे स्वरूपमें स्थिर करना चाहिये। उद्धवने कहा—भगवन्! आपने सनकादि महर्षियोंको जिस-रूपसे उपदेश दिया था उसे मैं भी सुनना चाहता हूँ। भगवान् ने कहा—अच्छा, वह प्रकरण यों हैं—उसे सुनो। एक समय ब्रह्माके मानसपुत्र सनकादिकने अपने पिता ब्रह्माजीसे भगवान्में चित्त स्थिर करनेका उपाय पूछा। साथ ही, यह तर्क भी किया कि चित्त स्वभावतः विषयोंकी ओर जाता है, और चित्तमें ही वासनारूपसे विषय उद्बुद्ध होते हैं, ऐसी दशामें मुमुक्षु पुरुष उस चित्त और विषयोंका परस्पर त्याग कैसे करे, कृपया इसका उपाय आप बतलायें। ब्रह्माजी उस समय सृष्टि कर्ममें इतने व्यस्त थे कि सोचनेपर भी उन्हें उसका समुचित उत्तर ध्यानमें न आ सका।

ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥ १८ ॥

तब ब्रह्माने उत्तर की जिज्ञासासे तुरंत मेरा ध्यान किया। मैं तत्क्षण हंसरूप धारण कर ब्रह्माके समीप जा पहुँचा। सनकादिकने मेरे चरणोंमें प्रणाम किया और ब्रह्माको आगे कर बड़ी नम्रतासे मुझसे पूछा—आप कौन हैं—

ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति ॥ २० ॥

हे उद्धव! उस समय मैंने मुनियोंको जो उत्तर दिया था उसे तुम भी सुनो। मैंने कहा—हे मुनिगण! आपने जो प्रश्न पूछा है यह प्रश्न किंविषयक है, आत्मविषयक अथवा देहविषयक? यदि आत्मविषयक हो तो 'आत्मा' सर्वत्र एक ही है। उसमें नानात्वका व्यवहार है नहीं, ऐसी दशामें बहुतोंमें निर्धारण-रूपसे आप कौन हैं यह तुम्हारा प्रथम प्रश्न कैसे उठ सकता है। यदि देहविषयक हो तो देह पाँच-भौतिक है। वह भी अपने कारणसे अभिन्न तथा जड़त्वेन 'सम' होनेके कारण एक है। इसलिये दूसरा प्रश्न भी संगत नहीं हो सकता। तब मैं किसको लक्ष्य बनाकर उत्तर दूँगा और कौन उसे सुनेगा ही।

को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥

अतः वाणीसे जो तुमने प्रश्न का आरम्भ किया वह सर्वथा अनर्थक है। जब तुम्हें प्रश्न करनेकी ही क्षमता नहीं तब उत्तर क्या दिया जाय। इस प्रकार भगवान्‌ने अपने वाक्‌चातुर्यसे प्रश्नका खण्डन कर यह उत्तर दिया कि मन, वाणी और चक्षु आदि इन्द्रियोंसे जो कुछ ग्रहण किया जाता है वह सभी तो मैं हूँ। दूसरा है कौन? मैं सर्वात्मक हूँ। चित्तसे विषयोंके त्यागके बारेमें श्रीहंसदेवने कहा—

गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया।
गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥

विषयोंके निरन्तर सेवनसे चित्त संस्कारद्वारा विषयोंकी ओर जाता है और विषय-वासनारूप धारण कर चित्तमें उद्‌बुद्ध होते रहते हैं। तुम अवस्था-त्रयके साक्षीभूत मेरे तुरीय रूपमें स्थित हो जाओ तब इन दोनोंका ही परस्पर त्याग हो जायगा। सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंके अनुसार ही जीवको जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। जीव इन तीन अवस्थाओंसे परे 'साक्षी' स्वरूप है, किन्तु देहाभिमानवश उसे इसका ज्ञान नहीं हो पाता। पर जब वह आन्तरिक योगसाधनद्वारा अथवा भक्तिमार्गानुसार भगवच्चिन्तनद्वारा उक्त तीनों अवस्थाओंका त्याग कर तुरीय अवस्थामें स्थित हो जाता है तब उसे देहका कुछ भी भान नहीं रहता। उसके चित्तसे विषयोंका त्याग स्वतः हो जाता है। उस समय वह एकमात्र आत्माका ही अनुभव करता है, उसका शरीर प्रारब्धकर्मानुसार इधर-उधर स्वयं घूमता-फिरता है उसे इसका भी ज्ञान नहीं रहता। प्रकृति स्वयं ही उसके शरीरकी रक्षा किया करती है। वह अपने स्वरूपमें स्थित रहता है। उसके समक्ष जगत्‌की सत्ता सर्वथा विलीन हो जाती है। हे मुनियों! मैंने संक्षेपमें तुम्हें सांख्ययोगका गूढ रहस्य बतलाया है। मैं साक्षात् विष्णु ही हंसरूप धारण कर तुम्हें उत्तर देने आया हूँ। हे उद्धव! इस प्रकार मेरे उत्तरसे सनकादि महर्षि बड़े प्रसन्न हुए और उनका सन्देह निवृत्त हो गया। वे गद्‌गद हो मेरे चरणोंमें गिर पड़े और उन्होंने बड़े प्रेमसे मेरा पूजन एवं स्तुति की। मैं उन्हें आशीर्वाद देकर ब्रह्माके देखते-देखते अपने वैकुण्ठ धामको चला गया।

प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥

श्रीमद्भागवत-कथासाप्ताहिकके एकादश स्कन्धका तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

छठे दिनकी कथा समाप्त (अ० सं० ४६)

—:※:—

श्रीमद्भागवत-कथा (साप्ताहिक)

सप्ताहके सप्तम दिनकी कथा

•

सप्तमे दिवसे कुर्याच्छ्रीभागवतपूरणम् (अ० सं० ३१)

[एकादशस्कन्धके १४ अध्यायसे समाप्ति पर्यन्त]

चौदहवाँ अध्याय

तुरीय अवस्था प्राप्तिके लिये भक्तिसहित ध्यानयोगका वर्णन

उद्धवने पूछा—

वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ।
तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ।। १ ।।

हे भगवन् ! ब्रह्मवेत्ता आचार्योंने श्रेयके अनेक साधन बताये हैं । उनमें विकल्पसे सबकी प्रधानता है अथवा किसी एककी ? आपने तो सबसे उत्तम भक्तियोग बताया है, इसलिये मुझे कुछ सन्देह हुआ । इसपर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव ! भक्तिसे बढ़कर श्रेयका दूसरा कोई साधन नहीं है । प्रलयकालमें जब वेद तिरोहित हो गये थे तब कल्पके आदिमें ब्रह्माको मैंने उनका उपदेश दिया था । ब्रह्माने अपने पुत्र स्वायंभुव मनुको उपदेश दिया। मनुसे भृगु, मरीचि आदि सात महर्षियोंने ग्रहण किया । तदनन्तर उनसे देवता, पितर, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर आदिने ग्रहण किया । बादमें मनुष्योंने अपनी त्रिगुणमयी प्रकृतिके अनुसार वेदकी नाना प्रकारसे व्याख्याएँ की । उनमें परम्पराके अभाव से कुछ पाखण्डी हो गये । ये सब मेरी मायासे मोहित हो श्रेयके अनेक साधन बताते हैं । जैसे श्रीगंगाजीका जल निर्मल एवं मधुर होनेपर भी उसके तटवर्ती एरंड, निम्ब, इमली, कपित्थ और विषवृक्षोंके मूलोंसे संपृक्त होकर बड़ा ही विषम और विरस हो जाता है,

उसी प्रकार इन व्याख्याताओंके मुखमें जाकर वेदार्थ भी विरस और विरुद्ध फल देनेवाले हो गये। ऐसे लोग स्वर्गादि पदार्थोंको सत्य मान कर अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार धर्म, यश, काम, सत्य, शम, दम, यज्ञ, तप, दान आदि नाना साधन बताते हैं। किन्तु इन सब कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले भोग्य स्थान नश्वर एवं दुःखमय हैं। इनसे नित्य सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। जो एकमात्र मेरी 'भक्तिको छोड़ कर श्रेयके अन्य साधन बतलाते हैं, वे अविवेकी पुरुष अन्तमें निश्चित ही नरकगामी होते हैं।

मद्भक्तिवर्जितं श्रेयो ये मन्यन्ते दुराशयाः।
तेषामन्ते तमो घोरमनन्तं प्राप्यते ध्रुवम्॥
(विजयध्वज तीर्थं)

मेरी भक्तिसे जैसा अनुपम नित्य सुख प्राप्त होता है, वैसा अन्य किसी भी साधनसे नहीं हो सकता। मेरे शान्तचित्त निरपेक्ष भक्तके लिये सम्पूर्ण दिशाएँ सदा सुखमय हो जाती हैं। 'सर्वाः सुखमया दिशः।' वह ब्रह्मा इन्द्र आदिके पद तथा मुक्तिको भी ठुकरा देता है। हे उद्धव! पुत्र, मित्र, भाई, बन्धु, पत्नी और अपना शरीर भी मुझे उतना प्रिय नहीं जितने प्रिय तुम हो! मैं अपने अन्तर्वर्ती ब्रह्माण्डोंको पवित्र करनेके हेतु ऐसे भक्तोंकी चरणधूलि लेनेको उनके पीछे-पीछे फिरा करता हूँ। जैसे अग्निका एक कण विशाल लकड़ीकी टालको जला कर भस्म कर डालता है वैसे ही मेरी भक्ति समस्त पापराशिको समूल भस्म कर देती है। मैं भक्तिसे जिस प्रकार वशमें हो जाता हूँ, वैसे अन्य साधनोंसे नहीं। सत्य और दयासे युक्त धर्म तथा तपस्यासे युक्त विद्या भी भक्तिरहित मनुष्यके अन्तःकरणको पवित्र नहीं कर सकती।

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना।
विनानन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद् भक्त्या विनाशयः॥ २२॥

जबतक भक्तिके उद्रेकसे शरीरमें रोमांच न हों, चित्त द्रवीभूत न हो नेत्रोंसे अनवरत प्रेमाश्रुओंकी धारा न बहे, तबतक मनुष्यके अन्तःकरणका मल धुल नहीं सकता, यह ध्रुव है।

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥२३॥

मेरी मङ्गलमयी दिव्य लीलाओंका श्रवण कर जिसकी वाणी गद्गद हो जाती है, चित्त द्रवीभूत हो जाता है, भक्तिके आवेशमें आकर वह कभी

रोता है, कभी हँसता है, तो कभी लोकलज्जाका त्यागकर नाचने और गाने लगता है। हे उद्धव! ऐसा मेरा भक्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको पवित्र कर देता है। 'मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।'

यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसम्प्रयुक्तम्॥ २५॥

जैसे मनुष्य जूनेसे वर्तन माँजकर साफ करता है, वैसे ही साधकगण मेरी पुण्यमयी कथाओंके श्रवण और नाम-कीर्तनरूपी जूनेसे जब वासनाओंको दूर कर अन्तःकरणको स्वच्छ कर लेते हैं तब उसमें मेरा सूक्ष्म रूप स्पष्ट दिखायी पड़ने लगता है। जैसे अञ्जन लगानेसे चक्षु स्वगत दोषको दूर कर रूपका प्रत्यक्ष करता है। विषयोंका चिन्तन करनेसे मनुष्यका चित्त विषयोंमें रम जाता है और मेरा स्मरण करनेसे वह वासनारहित हो मुझमें लीन हो जाता है फिर उसकी तीनों अवस्थाएँ स्वतः नष्ट हो जाती हैं और वह तुरीय अवस्थामें स्थित हो परम आनन्दका इसी जन्ममें अनुभव कर लेता है इसलिये साधकको चाहिये कि वह स्त्री तथा स्त्रीलम्पटोंका संग दूरसे ही त्यागकर एकान्तमें बैठ, मेरे स्वरूपका ध्यान करे। उद्धवने पूछा—हे प्रभो! मुमुक्षुजन किस प्रकार आपके स्वरूपका ध्यान करें, कृपया उसकी प्रक्रिया बतलायें। इस पर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव! 'चैलाजिन-कुशोत्तरम्' इस गीता वाक्यके अनुसार स्वच्छ समतल भूमिमें पहले कुशासन उस पर मृगचर्म तथा उसके ऊपर कोमल वस्त्र बिछाकर सीधे बैठ जाय और दोनों हाथ गोदीमें रख कर नासिकाके अग्रभाग भ्रूमध्यमें दृष्टि लगावे। गुरुदत्त क्रिया द्वारा प्राणापानकी विषम गतिको समकर मूलाधारसे उर्ध्वगति द्वारा प्राणको सुषुम्नाद्वारा हृदयस्थ अनाहतचक्रमें ले जाय। वहाँ अष्टदल विकसित उर्ध्वमुख कमलका ध्यान करे। उस कमलकी कर्णिकामें उत्तरोत्तर सूर्य, चन्द्र और अग्निकी भावना करे। उसी अग्निके मध्यमें मेरे सुन्दर चतुर्भुज रूपका ध्यान करे। चरणसे आरम्भ कर जब क्रमशः मुखकमल तक पहुँच जाय तब मन्दमुसकान युक्त केवल मेरे मुखकमलका ही ध्यान करता रहे।

सुस्मितं भावयेन्मुखम्।

ऐसा करनेसे योगीका दृश्य द्रष्टा और दर्शनरूप सांसारिक भ्रम अर्थात् त्रिपुटीका शीघ्र नाश हो जाता है और उसे परम शान्ति प्राप्त होती है।

यह ध्यान योगियों की पद्धतिके अनुसार बताया गया। साधारण संसारी जन स्वाभिलषित किसी भी मूर्तिका नेत्र बन्दकर हृदयमें ध्यान कर सकते हैं।

श्रीमद्भागवत-कथा-साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

—:※:—

पन्द्रहवाँ अध्याय

धारणा सहित सिद्धियोंका वर्णन

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव !

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः॥ १॥

योगी पुरुष जब मेरे स्वरूपकी इस प्रकार धारणा कर उसमें चित्त स्थिर कर लेता है तब नाना प्रकारकी सिद्धियाँ विघ्न करनेके लिये उसके समीप आती हैं। साधकको चाहिये कि वह उनके प्रलोभनमें न फँसे। कारण उनसे मेरी प्राप्तिमें विलम्ब होना संभव है। उद्धवने कहा—भगवन् ! किस धारणासे कौनसी सिद्धि प्राप्त होती है तथा ये धारणाएँ एवं सिद्धियाँ कितनी हैं ? कृपया इनका संक्षिप्त विवेचन कर बतलायें। क्योंकि आप योगियोंके सिद्धिदाता परम गुरु हैं। इसपर श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव ! ध्यानसे सुनो। सिद्धियाँ १८ एवं धारणाएँ भी १८ ही हैं। उनमें ८ उत्तम सिद्धियाँ हैं जिनमें प्रधान मैं हूँ। १० सिद्धियाँ सत्त्वगुणके उत्कर्षसे प्राप्त होती हैं। इनके सिवा ५ क्षुद्र सिद्धियाँ और भी हैं, जो क्षुद्रदेवताओंकी आराधनासे प्राप्त होती हैं। अब अष्ट सिद्धियोंका स्वरूप सुनो—

अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा।
ईशिता वशिता चैव तथा कामावसायिता॥

देहकी तीन सिद्धियाँ 'अणिमा' सिद्धिसे शिलामें प्रवेश करनेकी क्षमता, 'लघिमा' से सूर्यकिरणों द्वारा सूर्यलोकतक जानेकी क्षमता, 'महिमा' सिद्धिसे सबमें व्याप्त होनेकी क्षमता, 'प्राप्ति' सिद्धिसे अंगुलि द्वारा चन्द्र-स्पर्श करनेकी क्षमता, 'प्राकाम्य' सिद्धिसे इच्छानुसार जलकी तरह पृथ्वीमें भी प्रवेश करने और और ऊपर आ जानेकी क्षमता, मूलमें प्रकाश्य पाठ है। उसका अर्थ भूगभंगत पदार्थोंको देखने तथा प्राप्त करनेकी क्षमता 'ईशिता' सिद्धिसे सबकी शक्तिको अपने मनोनुकूल प्रेरित करनेकी क्षमता, 'वशितासे' विषय-भोगमें

निर्लेप रहनेकी क्षमता और कामावसायितासे अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त करनेकी क्षमता प्राप्त होती है। अन्य १० सिद्धियोंमें (१) छः ऊर्मियोंसे—भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्युसे रहित होनेकी क्षमता।

क्षुत्पिपासे शोकमोहौ जरामृत्यू षडूर्मयः।

(२) दूरमें होनेवाले शब्दका श्रवण, (३) दूरस्थ पदार्थोंका दर्शन, (४) मनके समान देहकी भी गति, (५) अभीष्टरूपकी प्राप्ति, (६) परकाय-प्रवेश, (७) स्वेच्छा-मृत्यु, (८) अप्सराओंके साथ देवताओंकी क्रीड़ाओंका दर्शन, (९) संकल्प-सिद्धि और, (१०) वीं सिद्धि अप्रतिहत आज्ञा। अब ५ क्षुद्रसिद्धियोंका स्वरूप सुनो—

त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः॥ ८॥

(१) भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालके ज्ञानकी क्षमता, (२) द्वन्द्व-सहिष्णुता, सुख-दुःख, जय-पराजय, हानि-लाभ, मान-अपमान, शीत उष्ण आदि द्वन्द्वोंको सहन करनेकी क्षमता, (३) दूसरेके चित्तकी बातोंको जाननेकी क्षमता, (४) अग्नि, सूर्य, जल, विष, शस्त्र तथा शापादिके स्तम्भन करनेकी क्षमता अर्थात् उनके निवारण करनेकी क्षमता और, (५) किसीसे पराजित न होने की क्षमता। इस प्रकार इन सिद्धियोंकी संख्या २३ कही जाती है। इन सभीकी प्राप्ति धारणा-द्वारा होती है किन्तु साधकके लिये ये सब विघ्नकारक बतायी गयी हैं। इसलिये साधकको इन सबका परित्याग कर सम्पूर्ण सिद्धियोंके अधिपति औरदाता मुझे ही प्राप्त करनेकी तीव्रसाधन-द्वारा चेष्टा करनी चाहिये, कारण मैं ही अन्तर्यामी रूपसे इन सब सिद्धियोंके भीतर और बाहर व्यापक रूपसे सर्वत्र वर्तमान रहता हूँ।

अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।

किस क्रियासे कौनसी सिद्धि होती है यह मूलका विषय अत्यन्त गम्भीर है। गुरुदत्त यौगिकक्रियाओं द्वारा योगियोंको ही उसकी अनुभूति होती है। इसे क्रियावान् साधक ही समझ सकेंगे अन्य नहीं। अतः अनावश्यक समझ कर उसकी प्रक्रिया यहाँ नहीं लिखी गयी। दूसरी बात—पुस्तकके आधार पर क्रिया करनेसे नानारोग होनेकी सम्भावना है।

अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वव्याधि समुद्भवः।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

—: ❀ :—

सोलहवाँ अध्याय

भगवान्‌के द्वारा अपनी दिव्यविभूतियोंका वर्णन

उद्धवने कहा—भगवन् ! आप साक्षात् परब्रह्म हैं। आपके स्वरूपका ध्यान और उसका ज्ञान ये दोनों ही बहिर्वृत्तिवाले चंचल-प्रकृति मनुष्योंके लिये अत्यन्त कठिन है। इसलिये महर्षिगण आपकी जिन दिव्य विभूतियोंकी उपासनाकर सरलतापूर्वक मुक्ति प्राप्त करते हैं। उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ। स्वर्ग, मर्त्य-पाताल आदि लोकों में जो भी आपकी ज्ञान-प्रभावादिसे सम्पन्न विभूतियाँ हों, कृपाकर उन सबका वर्णन करें। मैं आपके श्रीचरणोंमें वारम्वार प्रणाम करता हूँ। भगवान् श्रीकृष्णने कहा—उद्धव ! कुरुक्षेत्रके मैदानमें युद्धाभिलाषी अर्जुनने भी मुझसे यही प्रश्न किया था। अच्छा, तुम भी मेरी उन मंगलमयी विभूतियोंके नामोंका श्रवण करो। सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा मैं ही हूँ। इस दृष्टिसे मेरी उपासना करनी चाहिए। वशीभूत करनेवालोंमें मैं ही काल हूँ, सूक्ष्मोंमें मैं जीव हूँ, दुर्जयोंमें मैं मन हूँ. मन्त्रोंमें मैं प्रणव हूँ, छन्दोंमें गायत्री हूँ, देवताओंमें इन्द्र हूँ, अदितिके पुत्र आदित्योंमें मैं विष्णु वामन हूँ, रुद्रोंमें सदाशिव हूँ, ब्रह्मर्षियोंमें भृगु राजर्षियोंमें मनु हूँ, देवर्षियोंमें नारद हूँ, धेनुओंमें कामधेनु, सिद्धेश्वरोंमें कपिल हूँ, पक्षियोंमें गरुड़, मनुष्योंमें राजा, दैत्योंमें प्रह्लाद, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा गजेन्द्रोंमें ऐरावत, अश्वोंमें उच्चैः-श्रवा, तीर्थोंमें गङ्गा, पितरोंमें अर्यमा, आश्रमोंमें संन्यास, वर्णोंमें ब्राह्मण, वृक्षोंमें अश्वत्थ, व्रतोंमें अहिंसा, योगोंमें समाधि, भक्तोंमें उद्धव मैं हूँ,। ख्यातिवादियोंमें मैं विकल्प हूँ। 'विकल्पः ख्यातिवादिनाम्' ख्यातियाँ पाँच प्रकार की बतायी गयी हैं।

आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा।
तथाऽनिर्वचनख्यातिरित्येतत्ख्यातिपञ्चकम् ॥
विज्ञानशून्यमीमांसातर्काद्वैतविदां मतम्।

विज्ञानवादीके मतमें आत्मख्याति है। वे वाह्यशुक्ति आदिमें बुद्धिरूप आत्मधर्मका रजतरूपसे अध्यास मानते हैं। उनका कहना है कि—'आत्मैव रूप्याकारतया भासते' इति। शून्यवादीके मतमें असत्ख्याति है। वे शुक्तिमें देशान्तरस्थ अपरोक्ष-रजतकी कल्पना असत् मानते हैं। उनका कहना है कि 'अलीकपदार्थतया भासमानत्वमसत्ख्यातिरिति'। मीमांसक शुक्ति-रजतमें

अख्याति मानते हैं। उनका सिद्धान्त है—'परस्परं संश्लेषेण यद्भानद्वयं तदख्यातिरिति।' नैयायिकके मतमें अन्यथाख्याति है। वे शुक्तिमें देशान्तरस्थ रजतका अध्यास मानते हैं। उनका सिद्धान्त है—'द्व्यणुकाद्यारम्भेण तत्तद् द्रव्यं जायते, अतद्वति तत्संसर्गोऽन्यथाख्यातिरिति।' वेदान्तियोंके मतमें अनिर्वचनीयख्याति है। वे शुक्तिमें अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्ति मानते हैं। उनका सिद्धान्त है—सर्वमेवाद्वैतमनिर्वचनीयम्।

'सदसद्भिन्नत्वे सति सदसदात्मकं ज्ञानमनिर्वचनीयमिति'

इस प्रकार यह दुरन्त विकल्प भी मेरा स्वरूप है। यह ब्रह्माण्ड उसके अन्तर्गत विषय, पृथ्वी आदिके उत्तरोत्तर दशगुणित आवरण,तीन गुण, प्रकृति, पुरुष और उससे परे ब्रह्म ये सभी मेरी विभूतियाँ हैं। वैष्णव सम्प्रदायके प्रमुख आचार्य श्रीयामुनाचार्यजीने भी इसी मर्मका अपने आलवन्दारस्तोत्रमें बड़े सुन्दर ढंगसे उल्लेख करते हुए कहा है—

यदण्डमण्डान्तरगोचरं च यद् दशोत्तराण्यावरणानि यानि च।
गुणाः प्रधानं पुरुषः परं पदं परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः॥

हे उद्धव ! विशेष क्या कहूँ ? संसारमें जो भी तेज, ऐश्वर्य, कीर्ति, ज्ञान वीर्य, प्रभाव आदिसे सम्पन्न दिखायी पड़ें, उन सबको मेरी ही विभूति समझना तथा उन सबका मन, वाणी और शरीरसे आदर करना, किसीका तिरस्कार न करना। मुझमें किसी भी प्रकारसे जीवोंका चित्त स्थिर हो जाय, इसी दृष्टिसे इनकी कल्पना की गयी है। वस्तुतः ये सब मनके ही विकार हैं खपुष्पादिके समान इनमें वास्तविक सत्यता नहीं है। इसलिये बुद्धिसे मन और वाणीको संयत कर स्वस्थ चित्तसे चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते-जागते, हर समय मेरा ही ध्यान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य फिर संसारमें लौटकर नहीं आता मुझे प्राप्तकर वह कृतकृत्य हो परमानन्दका अनुभव करता है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका सोलहवाँ अध्याय समाप्त

—:※:—

सत्रहवाँ अध्याय

चारों वर्ण, ब्रह्मचारी और गृहस्थके संक्षिप्त धर्मोंका वर्णन

ज्ञानयोग, भक्तियोग और अष्टाङ्गयोगका वर्णन सुननेके अनन्तर अब कर्मयोगकी जिज्ञासासे उद्धवने पूछा—हे भगवन् ! आपने पहले 'यं न योगेन सांख्येन' इसके द्वारा जिस धर्मका वर्णन किया एवं विष्णुधर्मोत्तरमें 'हंस' रूपसे ब्रह्माको जिस परम धर्मका उपदेश किया वह लोकमें प्रायः लुप्त-सा हो गया है। आपसे अतिरिक्त उस धर्मका कोई उत्तम वक्ता भी नहीं है। अतः आप वर्ण, आश्रम तथा आचारवान् पुरुषोंके धर्मका संक्षेपसे वर्णन करें। शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन् ! जब उद्धवने इस प्रकार भगवान्से पूछा तब भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न हो मनुष्योंके कल्याणार्थ सनातन-धर्मका वर्णन करना आरम्भ किया।

प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान् ॥ ८ ॥

भगवान्ने कहा—हे उद्धव ! तुम्हारा यह प्रश्न धर्मसम्बन्धी एवं मोक्षका साधन है। अतः मैं वर्ण और आश्रमधर्मका वर्णन करता हूँ उसे सुनो। सत्ययुगमें मनुष्योंका 'हंस' (शुद्ध-स्वरूप) नामक केवल एक ही वर्ण था। उस समय प्रजा जन्मसे ही कृतकृत्य होती थी। इसलिये उसका नाम 'कृतयुग' कहा जाता था। कृतयुगमें वेद 'प्रणव' रूपमें और धर्म-तप, शौच, दया और सत्य इन चार चरणोंसे युक्त 'वृषभ' रूपमें था एवं प्रजा निरन्तर तपस्यामें निरत रहकर केवल हृदयमें ही मुझ निर्विकल्प शुद्धस्वरूप परब्रह्मका ध्यान करती थी। त्रेतायुगमें मुझसे ही वेदत्रयीका प्रादुर्भाव हुआ, जिससे होता, अध्वर्यु और उद्गाता इन तीन रूपसे यज्ञरूपमें मैं ही प्रकट हुआ। 'यज्ञो वै विष्णुः 'इति श्रुतेः। अनन्तर मेरे ही विराट्रूपके मुख, बाहु ऊरु और पादसे चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) और हृदय, जघन, वक्षःस्थल तथा मस्तकसे ४ आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) प्रकट हुए। इस प्रकार जन्मस्थानके अनुरूप ही उनकी उत्तम, मध्यम और निम्न प्रकृतियाँ भी हुईं। शम-दम-सन्तोष आदि ब्राह्मणोंकी, शौर्य, तेज, तितिक्षा, ब्रह्मण्यता आदि क्षत्रियोंकी, आस्तिक्य दान, धनलिप्सा-ब्रह्मण्यता आदि वैश्योंकी और त्रिवर्णोंकी सेवा, यथालाभ-सन्तोष आदि शूद्रोंकी प्रकृति हुई। अशौच, अनृत, चौर्य, कलह आदि चाण्डालोंका स्वभाव बना। अहिंसा, सत्य अस्तेय काम क्रोध लोभ (अप्रयोजन धनेच्छा) का त्याग तथा प्राणियोंके प्रिय और

हितकी चेष्टा यह वर्णोंका ही सामान्य धर्म नहीं अपितु प्राणिमात्रका अनुष्ठेय धर्म बताया गया है।

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ २१ ॥

उपनयन-संस्कार द्वारा संस्कृत ब्रह्मचारी २५ वर्ष तक गुरुकुलमें निवास करे। ब्रह्मचारीके दो भेद बताये गये हैं—उपकुर्वाण और नैष्ठिक। इनमें प्रथम सावधिक ब्रह्मचर्य है और दूसरा आजन्म। ब्रह्मचारी गुरुकुलमें श्रद्धा भक्तिसे तन-मन लगाकर गुरुकी सेवा कर वेदाध्ययन करे। मेखला, मृगचर्म, दंड, कमंडलु और अक्षमाला धारण करे। [तन्त्रमें 'अ' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त वर्णोंकी जपमालाको 'अक्षमाला' बताया है।

आदिक्षान्तगतैर्वर्णैर्जपमालाक्षमालिका।
पञ्चाशन्मणिभिर्माला विहिता सर्वकर्मसु।
अकारादिक्षकारान्ता ह्यक्षमाला प्रकीर्तिता ॥ (गौतमीय)

ब्रह्मचारी जप और भोजन करते समय मौन रहे। नख और रोम न कटाये। शृङ्गारादिसे सर्वथा दूर रहे। शुक्रका भूल करके भी कभी पात न करे। प्रातःसायं नियमसे सन्ध्योपासन करे। भिक्षान्न गुरुको समर्पण कर उनकी आज्ञासे भोजन करे। गुरुको साधारण मानवसदृश समझकर कभी उनमें दोषकी कल्पना न करे और न कभी उनकी निन्दा ही करे। गुरु कामी हो तो उन्हें कृष्ण, सत्यवादी हो तो रामचन्द्र, क्रोधी हो तो नृसिंह और कपटी हो तो उन्हें वामनरूपमें देखे, उनके प्रति कभी साधारण मानवकी बुरी भावना या कल्पना न करे।

कामिनं कृष्णरूपं हि गुरुं मन्येत मानवः।
सत्यव्रतं रामचन्द्रं नृसिंहं क्रोधिनं तथा ॥
कपटं वामनं विद्याद् दोषैस्तं न नरं स्मरेत्। (आदिपुराण)

गुरुके आदेशोंपर आपत्ति करनेवाला या हुं तुं करनेवाला अशिष्ट छात्र तथा सभामें शास्त्रार्थ द्वारा विद्वान् ब्राह्मणको पराजित करनेवाला शास्त्रार्थी पण्डित चील, गिद्ध और कौवोंसे सेवित श्मशानका वृक्ष होता है।

गुरुं हुंकृत्य तुं कृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः।
श्मशाने जायते वृक्षः कङ्कगृध्रोपसेवितः ॥

राजा अग्नि गुरु और स्त्री इनका सेवन अत्यन्त निकटसे विनाशका हेतु और अत्यन्त दूरसे निष्फल इसलिये मध्यभागसे करना चाहिये।

निकटेऽतिविनाशाय ह्यतिदूरे च निष्फला।
सेव्या हि मध्यभागेन राजवह्निगुरुस्त्रियः॥

स्त्रियोंका कामभावसे निरीक्षण, उनसे वैसी ही बातचीत तथा परिहास आदि ब्रह्मचारी कदापि न करे। अस्पृश्यका स्पर्श, अभक्ष्यका भक्षण और असम्भाष्यसे संभाषण इनका त्याग करे। आचारका पालन करे, इस प्रकार, व्रतकी समाप्तिपर ब्रह्मचारी गुरु-दक्षिणा देकर समावर्तनद्वारा चाहे गृहस्था-श्रममें प्रवेश करे अथवा संन्यास ग्रहण करे।

प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः।

यहाँ 'द्विजोत्तम' पद क्षत्रिय या वैश्यको संन्यासका अधिकार नहीं है, यह सूचित करता है। समावर्तनके अनन्तर ब्रह्मचारी अपने वर्णके अनुरूप कुलीन तथा सुलक्षणा कन्यासे विवाह करे। यज्ञ-अध्ययन और दान द्विजातिमात्र कर सकता है। प्रतिग्रह, अध्यापन और याजन यह अधिकार केवल ब्राह्मणको ही है अन्यको नहीं। क्षत्रिय आपत्कालमें भी प्रतिग्रह नहीं ले सकता। यदि ब्राह्मण इन वृत्तियोंमें भी दोष देखे तो शिलोञ्छवृत्तिसे अपना निर्वाह करे। आपत्कालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी वृत्ति भी ग्रहण कर सकता है, किन्तु नीच-सेवा कभी न करे 'न श्ववृत्या कथञ्चन'। गृहस्थ मनुष्य यथा समय देवता, ऋषि और पितरोंका श्राद्ध तथा पूजन करता रहे। भोजनसे पहले गोग्रास अवश्य निकाले, अतिथिको कभी विमुख न करे। उसे कुछ न कुछ अवश्य दे अन्यथा वह अपना पाप दे जाता है और उसका पुण्य लेकर चला जाता है। कुटुम्बमें अत्यन्त आसक्त न हो। घरमें अतिथिके समान निवास करे। मन, वाणी और शरीरसे किसी प्राणीको कष्ट न दे। हे उद्धव! आचार सम्पन्न ऐसे आस्तिकको उत्तम गति प्राप्त होती है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायणका अट्ठाईसवाँ विश्राम]

—:❀:—

अठारहवाँ अध्याय

वानप्रस्थ और संन्यासधर्मका वर्णन

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव ! अब तुम वानप्रस्थ और संन्यासके धर्मोंका श्रवण करो।

वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा।
वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥

पचास वर्षकी अवस्था तक गृहस्थमें जीवन बिताकर पत्नीको साथ ले ७५ वर्षकी अवस्था तक वनमें निवास करे। वहाँ उत्पन्न होनेवाले पवित्र कन्द, मूल[1] फल आदिसे शरीरका निर्वाह करे। वल्कल, तृण भोजपत्र तथा मृगचर्मसे निर्मित वस्त्र धारण करे। केश, नख, रोम आदि न कटाये। दांतोंकी भी अधिक सफाई न करे अर्थात् शृङ्गार न करे। त्रिकाल स्नान करे। पृथ्वीपर शयन करे। ग्रीष्ममें पंचाग्निका ताप सहे, वर्षामें मूसलाधार वृष्टिका सहन करे। शिशिरमें कण्ठपर्यन्त जलमें निमग्न रह कर तप करे। अग्नि अथवा कालसे पके हुए केले आदि फलोंका भोजन करे। उलूखल अथवा पत्थरसे कूट कर खाये अथवा दाँतोंसे ही चबा ले। अपने शरीरका निर्वाह स्वयं ही करे। नीरोग अवस्थामें दूसरेसे लाया हुआ अन्न आदि ग्रहण न करे। अग्निहोत्रादि नियमोंका विधिवत् यथा समय पालन करे। इस प्रकार अनवरत कठोर तपस्या द्वारा जब इन्द्रियाँ शिथिल हो जायं और वैराग्यकी तीव्र भावना हृदयमें जाग्रत हो तब संन्यास ग्रहण करनेका विचार करे, इसके पूर्व नहीं। संन्यास आश्रम इस युगमें अत्यन्त कठिन है। इसमें कौपीन एवं दण्ड-कमण्डलुके अतिरिक्त दूसरी वस्तु न ग्रहण करे। आपत्कालमें शरीररक्षार्थ कम्बल आदि ले सकता है। संन्यासी तीन प्रैष मन्त्रोंका उच्चारण कर इस आश्रममें प्रवेश करता है। प्रथम मन्त्र द्वारा वह तीनों लोक एवं उनके विषयोंके त्यागका संकल्प करता है। द्वितीय मन्त्र द्वारा वह पुत्रैषणा वित्तैषणा और लोकैषणा। इन तीनों एषणाओंके त्यागका संकल्प करता है और तृतीयमन्त्र द्वारा वह प्राणीमात्रको अभयदान करनेका संकल्प करता है। इसलिये पूर्ण विरक्त हो, और यदि इन नियमोंके पालन

---

१. कन्दमूलयोः किञ्चिदेव भेदः—यस्य फलं मूलं च भक्ष्यते तत् मूलकादि मूलम्। यस्य मूलमेव भक्ष्यते तत् सूरणादि कन्द इत्युच्यते।

करनेकी क्षमता हो तो इस आश्रममें प्रविष्ट होनेका साहस करे। अन्यथा विषयासक्त पुरुषका युवावस्थामें संन्यास लेनेसे अधःपतन होता है और वह 'वान्ताशी' वमन खानेवाले श्वानकी कोटिमें गिना जाता है।

यस्त्यक्त्वा विषयान् मूढः पुनस्तानेव सेवते।
स वान्ताशी परिज्ञेयः सारमेयो नराधमः।।

संन्यासी मौन अनीहा और प्राणायाम इनके द्वारा वाणी, देह और चित्तका दंड (संयम) करे। जिसके हाथमें यह वाणी देह और मनका संयम-रूपी त्रिदंड न हुआ, वह केवल बाँसका दण्ड ग्रहण करनेसे संन्यासी नहीं हो सकता। 'वेणुभिर्न भवेद् यतिः।' संन्यासी अकेला ही पृथ्वीपर विचरे। मठ बनाकर न रहे। पहलेसे अनिश्चित सात घरोंमें जाकर भिक्षा करे। एकान्तमें बैठकर अद्वैततत्त्वका विचार करे। जगत्को स्वप्नकी तरह मायाका खेल जानकर उसमें आसक्ति न करे। किसीसे वाद-विवाद न करे। शास्त्रार्थमें किसीका पक्ष न ले, न कभी भूलकर किसीका अपमान करे और न किसीसे बैर ही मोल ले। 'तत्त्वमसि'' अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि महावाक्योंका निरन्तर चिन्तन करता रहे तभी उसकी सद्गति होती है।

यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः।
ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदण्डमुपजीवति ।।
सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा।
अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते।। ४०–४१ ।।

जिसने मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियोंपर विजय प्राप्त नहीं की, जिसकी बुद्धि विषयोंमें अत्यन्त आसक्त है, जो ज्ञान-वैराग्यसे रहित हो संन्यासका प्रदर्शन कर अपनी आजीविका करता है, वह धर्मघाती अपनेको, देवताओंको एवं मुझे भी धोखा देता है। वासनानिवृत्त न होनेके कारण वह दोनों लोकोंसे च्युत होकर नीच-योनिमें चला जाता है। इसलिये, कलियुगमें खूब सोच-विचार कर संन्यास ग्रहण करना चाहिये। कारण इस युगमें संन्यास-धर्मको निभाना अत्यन्त कठिन है। उसमें पद-पदपर पतनका भय है।

असंभाव्या हि तद्धर्मास्तद्ग्रहीता ततः पतेत्।

हे उद्धव ! इस प्रकार मैंने वर्ण और आश्रमके धर्मोंका संक्षेपमें वर्णन किया।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका अठारहवाँ अध्याय समाप्त

उन्नीसवां अध्याय

ज्ञान, भक्ति तथा यम-नियमादिका संक्षिप्त वर्णन

उद्धवने पूछा—हे भगवन्! वैराग्य-विज्ञानसे युक्त जो ज्ञान है तथा ब्रह्मा आदि देवताओंसे अन्वेषणीय जो भक्ति-योग है, कृपया उसका वर्णन करें। संसारमें आध्यात्मिकादि त्रिविध तापोंसे तप्त प्राणीके लिये अमृतवर्षी आपके चरण-कमलरूपी छत्रछायाके अतिरिक्त मैं दूसरी शरण नहीं देखता। कालरूपी सर्पसे डसा हुआ यह जीव तुच्छ-सुखकी लालसासे संसारकूपमें पड़ा है। आप अपने अमृतस्रावी मोक्षप्रद वचनोंसे सिंचन कर इसका उद्धार करें। भगवान्ने कहा—हे उद्धव! महाभारत युद्धकी समाप्तिपर युधिष्ठिरने भीष्मसे बहुतसे धर्मोंकी जिज्ञासाके अनन्तर मोक्षसम्बन्धी धर्मोंको पूछा था। उन्हीं भीष्मके मुखसे निःसृत ज्ञान-वैराग्य-भक्ति आदिके सहित उन धर्मोंका वर्णन मैं संक्षेपसे करता हूं। ध्यानपूर्वक सुनो। ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं हो सकता, यह वेदका अटल सिद्धान्त है।

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।

और यह ज्ञान 'भक्ति'के बिना नहीं हो सकता। ज्ञानका स्वरूप इस प्रकार है।

जिसके द्वारा प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा (६), मनसहित दस इन्द्रियां (११), पञ्चमहाभूत (५), तीन गुण (३) इन अट्ठाईस तत्त्वोंको ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सभी कार्यरूप प्राणियोंमें अनुगत देखे एवं कार्य-कारणरूपी भावोंमें परमात्माको अनुगत देखे तथा कार्यकारणरूपी इस जगत्को परमकारणसे अभिन्न देखे, उससे पृथक् न देखे, इसे ज्ञान कहते हैं। जिस एक ज्ञानसे पहले त्रिगुणात्मक भावोंको एकात्मक देखा था उन्हें वैसा पूर्ववत् न देखे किन्तु परमकारण ब्रह्मरूपमें देखे, उसे विज्ञान कहते हैं।

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।

जगत्की सत्ता आदिमें नहीं और अन्तमें नहीं है, इसलिये मध्यमें भी इसका अस्तित्व रज्जुमें 'सर्प'की तरह भ्रान्तिमूलक अर्थात् अतात्त्विक अन्यथा-भावरूप विवर्त है। इसके विपरीत आत्मा आदिमें, मध्यमें एवं सबके नाश होनेपर अन्तमें भी शेष रहता है, इससे आत्मा 'सत्' है और जगत् असत् है। यह बात प्रमाणचतुष्टय श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य और अनुमानसे निर्णीत है—

जैसे—

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्[1]।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद् विकल्पात्स विरज्यते ॥ १७ ॥

और इनके द्वारा जगत्की सत्ता बाधित भी है, अतः विवेकी पुरुष इस प्रपञ्चसे विरक्त हो जाता है इसमें आसक्त नहीं होता। इस लोककी तरह ब्रह्मलोकपर्यन्त सम्पूर्ण भोग दुःखरूप एवं नश्वर हैं। ऐसा दृढ़ निश्चय कर साधक मुझ आनन्दनिधि एक अद्वितीय परमात्माको ही प्राप्त करनेकी चेष्टा करे। यह ज्ञान और मेरी प्राप्ति 'भक्ति' द्वारा ही सरलतासे हो सकती है, अन्य साधनोंसे नहीं। भक्तिके स्वरूपका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ फिर भी तुम्हें उसके कुछ साधनोंका स्मरण दिलाता हूँ। सर्वप्रथम मेरी मंगलमयी कथा सुननेका दृढ़ अभ्यास करे। मन्दिरोंमें जाकर मेरी मूर्तिके सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करे। कुछ थोड़ा-सा समय निकाल कर प्रतिदिन नियमसे मेरे नामोंका कीर्तन करे। साष्टाङ्ग प्रणाम करनेकी विधि इस प्रकार है—

दोर्भ्यां पदाभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा।
मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥

मेरे भक्तोंका श्रद्धा-भक्तिसे पूजन करे। प्राणीमात्रमें मेरी भावना रखे, किसीसे ईर्ष्या-द्वेष न करे। यज्ञ, जप, तप, व्रत, दान आदि जो भी सत्कर्म करे यहाँतक कि अपना शरीर भी मुझे अर्पण कर दे। हे उद्धव ! मेरे निमित्त किया गया पाप भी धर्म हो जाता है एवं मेरा अनादरकर किया गया धर्म भी पाप हो जाता है, इसे तुम निश्चित समझो।

मन्निमित्तं कृतं पापमपि धर्माय जायते।
मामनादृत्य धर्मोऽपि पापं स्यान्मत्प्रभावतः॥ (वंशीधरी)

---

१. श्रुतिः शब्दः 'आत्मैवेदं जगत्सर्वं नेह नानास्ति किञ्चन' इत्यादि। प्रत्यक्षं-पटादिकार्यं तन्त्वादिव्यतिरेकेण न दृश्यते। चैतन्यव्यतिरेकेण वा न किञ्चिद् दृश्यते घटादीनां मृदुद्भवत्वं मृदवसानत्वं च दृष्टमेव 'मृत्तिकेव सत्यम्' इति श्रुतेः। ऐतिह्यं महाजनप्रसिद्धिः आप्तप्रमाणम् महाजनो येन गतः स पन्थाः इत्यादि। अनुमानम् इदं जागत म सार्वकालिकम्, आद्यन्तवत्त्वात्। यद्वा-विमतं विवादास्पदं जगत् मिथ्या दृश्यत्वात् शुक्तिरजतादिवत् इत्यादि। एतेषु प्रमाणेषु जागरूकेषु सत्सु अनवस्थानात् एतैः प्रमाणैर्जगत्सत्ताया बाधितत्वात् स विवेकी पुरुषः विकल्पात् अस्मात् प्रपञ्चात् विरज्यते विरक्तो भवति नास्मिन् सज्जत इत्यर्थः।

इसके आगे उद्धवजीने २८ से ३२ तक पाँच श्लोकोंमें यम-नियम आदिके अनेक प्रश्न पूछे हैं। भगवान् श्रीकृष्णने क्रमसे उनका उत्तर देते हुए कहा— अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असङ्ग, ह्री लज्जा (कुकर्ममें हेयत्वबुद्धि) असंचय (अपरिग्रह) आस्तिक्य, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य (धर्ममें स्थिरता) क्षमा और अभय। ये १२यम और शौच, जप तप, होम, श्रद्धा आतिथ्य मदर्चन, तीर्थाटन परार्थेहा, तुष्टि और आचार्यसेवन। शौच वाह्य और आभ्यान्तर भेदसे दो प्रकारका है तभी १२ संख्याकी पूर्ति होगी। ये ही १२ नियम हैं। मुझमें निष्ठा रखने वाली बुद्धि शम है और इन्द्रियोंका निग्रह दम है। दुःख सहन करना तितिक्षा है। जिह्वा और उपस्थके वेगको जीतना धृति है। द्रोहका त्याग दान है। कामनाओंका त्याग तप है। वासनाओंको जीतना शौर्य है। ब्रह्मका विचार सत्य है। प्रिय मधुर वाणी बोलना ऋत है। शौच, कर्मोंमें अनासक्ति अर्थात् कर्तृत्वाभिमान से रहित होना। ममता त्याग संन्यास है, इष्टधन धर्म है। विष्णुरूपकी आराधना ही यज्ञ है। ज्ञानोपदेश दक्षिणा है। प्राणायाम बल है। मेरे प्रति ईश्वरत्वकी भावना भाग्य है। मेरी भक्ति ही लाभ है। भेदनिवृत्ति विद्या है। पापमें प्रवृत्तिका न होना ही ह्री (लज्जा) है। निरपेक्षतादि गुणोंको श्री कहते हैं। दुःख-सुखका अभाव सुख है। विषयभोगकी इच्छा करना दुःख है। बन्ध और मोक्षका ज्ञाता पण्डित है। देहमें अहंबुद्धि रखने वाला मूर्ख है। निवृत्तिमार्ग ही सन्मार्ग है। प्रवृत्तिमार्ग ही कुमार्ग है। सत्त्वगुणकी वृद्धि ही स्वर्ग है। तमोभावोंकी वृद्धि नरक है। हे सखे! गुरु और बन्धु मैं हूँ। मनुष्य शरीर गृह है। सत्यशौचादि गुणों से सम्पन्न धनाढ्य है। असन्तुष्ट दरिद्र है। अजितेन्द्रिय कृपण है। विषयोंमें अनासक्त ईश्वर (स्वतन्त्र) है। विषयोंमें आसक्त ही अनीश्वर परतन्त्र है। हे उद्धव! गुण और दोषका वस्तुतः निर्दुष्ट लक्षण यही है कि किसीके गुण या दोषको देखना दोष है और किसीका न देखना यही गुण है।

गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः। ४५।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।



बीसवाँ अध्याय

कर्म ज्ञान और भक्तियोगका संक्षिप्त वर्णन तथा अधिकारिभेदसे गुण-दोषकी व्यवस्था

उद्धवने कहा—हे भगवन् ! वेद आपकी आज्ञारूप हैं । वे विधि और निषेध दोनों का वर्णन करते हैं। उन्हींके अनुसार पुण्य और पाप द्वारा गुण और दोषकी व्यवस्था हुई है । यह गुणदोषमयी भेददृष्टि वेदसे ही उत्पन्न होती है, और वेद ही इसका खण्डन करते हैं । ऐसा क्यों ? वेदने 'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इत्यादि श्रुतियों द्वारा आत्माके श्रवणका विधान कर पुनः 'नानुध्यायेद् बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत्, इसके द्वारा उसका खण्डन निषेध भी किया क्या यह उचित है ? एक ही शास्त्र भेददृष्टिका विधान भी करे और वही उसका निषेध भी करे, यह तो संगत सा प्रतीत नहीं होता। कृपया आप इस पर अपना विचार प्रकट करें और मेरा यह भ्रम संशय निवृत्त करें ।

भगवान्ने कहा—हे उद्धव ! यह विरोध आपाततः प्रतीत होता है वस्तुतः नहीं । अधिकारीभेद से इसमें कुछ भी विरोध नहीं है । मोक्षसाधनके मैंने तीन उपाय बताये हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति, इनके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं है ।

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥६॥

जो व्यक्ति कर्मों को दुःखप्रद मानकर उनके फलों से विरक्त हैं, उनके लिये 'ज्ञानयोग' है । जो फलकी इच्छा रखते हैं, उनके लिये कर्मयोग है। दैवेच्छासे जिनकी श्रद्धा मेरी कथामें उत्पन्न हो गयी, जो न विरक्त हैं और न अत्यासक्त हैं, उनको सिद्धि देनेवाला 'भक्तियोग' है । इस प्रकार विरक्त का ज्ञानमें अधिकार, अत्यासक्तका कर्ममें अधिकार और दोनोंसे रहितका 'भक्ति'में अधिकार है। इन तीनों अधिकारियोंमें परस्पर कोई विरोध नहीं । वैराग्यका कारण निष्कामकर्महेतुक अन्तःकरण की शुद्धि है । अत्यासक्तिका कारण अनादि अविद्या, और अत्यासक्ति-निवृत्तिका कारण भगवत्कृपाजन्य सत्संग है । यह सत्संग विना भगवत्कृपा के नहीं प्राप्त होता । सत्संग होने पर यह संसार का समूल नाश कर डालता है । गोस्वामीजीने लिखा है ।

बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं सन्ता । सत्संगति संसृति कर अन्ता ॥

कर्मयोगकी व्यवस्था भी सावधिक है। जबतक फलोंके प्रति विरक्ति न हो, हमारी कथामें श्रद्धा उत्पन्न न हो तबतक निरन्तर नित्य-नैमित्तिक कर्म करता रहे। काम्य कर्म एवं निषिद्ध-कर्म न करे। ऐसा करनेसे कर्मयोगी पुरुष स्वर्ग या नरकमें नहीं जाता। वह विशुद्ध ज्ञान और भक्तिकी परा भूमिका प्राप्त कर लेता है। यह मानव शरीर ज्ञान और भक्तिके सम्पादनका साधन है' ऐसा समझ कर मृत्युके पहले ही, मोक्षके लिये शीघ्र यत्न कर लेना चाहिये। वृक्षको कटते देख जैसे पक्षी अपना घोंसला छोड़कर उड़ जाते हैं वैसे ही प्रतिक्षण काल द्वारा क्षीण होती आयुको देख देहाभिमान त्याग कर, मनुष्य को अपने स्वरूपका बोधकर लेना चाहिये।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥१७॥

यह मानव-शरीर अत्यन्त दुर्लभ दृढ़ नौकाके समान है। भगवत्कृपासे ही यह सुलभ होता है अपने पुरुषार्थ से नहीं। गुरु इसका कर्णधार है। स्मरणमात्रसे ही मैं अनुकूल वायुरूप होकर इसे प्रेरित करता हूँ। इसे प्राप्त करके भी जिसने संसाररूपी समुद्रको पार नहीं किया, वह आत्मघाती कहलाता है। साधकको चाहिये कि वह अष्टांगयोग एवं अध्यात्मशास्त्रोंके चिंतन द्वारा धीरे-धीरे मनकी गतिको रोकनेका प्रयास करे। इससे शनैः-शनैः साधनानुसार देहाभिमान छूट कर मृत्युका भय निवृत्त हो जाता है। अपने-अपने अधिकारमें जो निष्ठा है वही गुण है जैसे भक्तका भक्तिमें और योगीका योगमें अधिकार स्वतःसिद्ध है। इसके विपरीत अधिकारविरुद्ध-निष्ठा दोष है, ऐसा शास्त्रका निर्णय है। इसलिये फलाकांक्षा से रहित हो श्रद्धाभक्ति से मेरा भजन करे। इससे हृदयकी वासनाएं शीघ्र नष्ट हो जाती हैं, अहंकार छूट जाता है, सारे संशय निवृत्त हो जाते हैं, कर्म क्षीण हो जाते हैं, और उसे शीघ्र ही आत्माका साक्षात्कार हो जाता है। कर्म, ज्ञान, वैराग्य, दान, धर्म आदि साधनोंसे जो कुछ भी प्राप्त होता है वह सब केवल मेरी भक्तिसे ही प्राप्त हो जाता है। मेरे भक्तोंको विधि-निषेध-जन्य पुण्य-पाप भी नहीं लगते। कारण वे प्रकृतिसे परे मुझ परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। जो मनुष्य मेरे बतलाये हुए इन सरल उपायोंका आदरपूर्वक अनुसरण करते हैं, वे काल कर्म और मायासे रहित हो मेरा दिव्यलोक पा जाते हैं जिसे महर्षिगण 'ब्रह्मपद' के नाम से व्यवहार करते हैं।

क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद् ब्रह्म परमं विदुः ॥३७॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका बीसवाँ अध्याय समाप्त।



इक्कीसवाँ अध्याय

देश, काल आदिके अनुसार कामी पुरुषोंके गुण-दोषोंका विवेचन

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव !

य एतान् मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ।
क्षुद्रान् कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ।।८।।

हमारी प्राप्तिके साधनभूत 'भक्ति, ज्ञान, और कर्मरूप इन तीनों मार्गोंका परित्याग कर जो मनुष्य इन्द्रियोंसे तुच्छ विषयोंका निरन्तर सेवन करते हैं वे नाना-योनियोंमें जाकर दुःख भोगते हैं। ऐसे ही कामी पुरुषोंके धर्म, व्यवहार और शरीरनिर्वाहके लिये देश, काल आदिकी शुद्धि, अशुद्धि तथा गुण-दोषकी कल्पना की गयी है। जैसे कृष्णमृगसे युक्त एवं ब्रह्मण्य-देश शुद्ध माने गये हैं। इनसे रहित अङ्ग, वङ्ग, कलिंग आदि असंस्कृत तथा ऊषर देश अशुद्ध माने गये हैं। यहाँ प्रथममें 'गुण' और दूसरेमें 'दोष' है। इसी प्रकार, पूर्वाह्लादि काल गुणवान् होनेसे 'शुद्ध' और सूतक आदिमें 'दशाह' आदिका काल सत्कर्मयोग्य न होनेके कारण, 'दोषयुक्त' और 'अशुद्ध' बताया गया है।

द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च ।
संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाथवा ।। १० ।।

ताम्रादिक द्रव्यकी जलसे शुद्धि, मूत्र आदिसे 'अशुद्धि'। शुद्ध है या अशुद्ध है इस प्रकार किसी विषयमें सन्देह होनेपर ब्राह्मणके वचनसे शुद्धि, विपरीत ब्राह्मणेतरके वचनसे अशुद्धि। पुष्पोंकी प्रोक्षणसे 'शुद्धि' सूँघनेसे 'अशुद्धि' मानी गयी है। गंगाजल, तुलसी, बिल्व और कमल ये बासी होनेपर भी त्याज्य नहीं है।

वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ।
अवर्ज्यं जाह्नवीतोयं तुलसीबिल्वपद्मकम् ।।

अन्त्यज आदि निम्नजातिसे स्पृष्ट सरोवरके जलकी शुद्धि और अशुद्धि जलकी अधिकता एवं न्यूनतापर निर्भर है। शक्ति-अशक्ति ज्ञान तथा समृद्धिके तारतम्यसे भी 'शुद्धि' और 'अशुद्धि' मानी जाती है। जैसे सूर्य आदिके

ग्रहणमें भोजन करनेमें समर्थ पुरुषोंके लिये अशुद्धि और असमर्थोंके लिये शुद्धि' सूतकमें दश दिन बाद ज्ञान होनेपर 'शुद्धि' और इसके अन्दर 'अशुद्धि' फटे, पुराने, मलिन वस्त्र धारण करना समृद्ध श्रीमानोंके लिये अशुद्धि और दरिद्रोंके लिये 'शुद्धि' मानी गयी है। ये सब विचार देश काल एवं अवस्थाके अनुसार ही हुआ करते हैं। विवाह आदिमें कौआ या कुत्ते आदिसे स्पृष्ट अन्नकी भी शुद्धिका विधान इस प्रकार है :—

देवद्रोण्यां विवाहे च यज्ञेषु प्रकृतेषु च।
काकैः श्वभिश्च यत्स्पृष्टं तदन्नं नैव दुष्यति ॥ (मनु०)
तन्मात्रमन्नमुद्धृत्य शेषं संस्कारमर्हति।
धान्यानां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्द्रव्याणामग्नितापनात् ॥ (मनु०)

मन्त्र, कुश, ब्राह्मण और अग्नि, ये निर्माल्य अर्थात् 'अशुद्ध नहीं माने जाते। किन्तु चार स्थानोंपर इनका अपवाद मिलता है।

मन्त्राः शूद्रेषु निर्माल्या ब्राह्मणा प्रेतभोजने।
कुशाः पिण्डेषु निर्माल्याश्चितायां च हुताशनः ॥

शूद्रोंमें मन्त्र अशुद्ध, प्रेतभोजन अर्थात् एकादशाह तथा द्वादशाहके दिन भोजन करनेपर ब्राह्मण अशुद्ध।

'एकादशं द्वादशं च प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम्'

पिण्डोंपरके कुश अशुद्ध तथा चिताकी अग्नि अशुद्ध मानी गयी है। मिट्टीके पात्रोंकी शुद्धि जलानेसे होती है।

मृण्मयानां तु पात्राणां दहनाच्छुद्धिरिष्यते। (देवल)

मल-मूत्रादिका स्पर्श होनेपर उसकी शुद्धि दुर्गन्ध और लेपकी निवृत्तिसे होती है। इस लिये बायाँ हाथ १० बार और दोनों हाथ मिलाकर सात बार मिट्टीसे अवश्य धोने चाहिये, अन्यथा इससे कम धोनेपर या साबुनसे धोनेपर शुद्धि नहीं होती, ऐसा स्मृतिका विधान है।

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥

'अपवित्रः' इत्यादि मन्त्रसे आत्मा (कर्ता) की, गुरूपदिष्ट होनेसे मन्त्रकी और ईश्वरको समर्पण करनेसे कर्मकी शुद्धि होती है। इसी प्रकार प्राणी

को चाहिये कि वह देश काल, द्रव्य, कर्ता, मन्त्र, और कर्म इन छहोंकी शुद्धि कर वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान करे। 'प्रवृत्ति' कर्ममें बड़ा भारी जंजाल है। अहङ्कारवश वह जीवके बन्धनका हेतु हो जाता है और ईश्वरार्पण बुद्धिसे कर्म करनेसे 'निवृत्ति' कर्ममें बन्धन नहीं होता। इसलिये शास्त्रोंमें निवृत्ति कर्म शोक मोह तथा मृत्युभयतक को दूर करता है. अतः कल्याणकारी होनेसे यह सर्वोत्तम धर्म माना गया है।

एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥

मीमांसकगण 'निवृत्तिपरक' वेदको 'प्रवृत्तिपरक' मानते हैं। वे अज्ञानतावश पुष्पको ही 'फल' समझ बैठे हैं अतएव अपने सुखके लिये नाना प्रकारके संकल्प कर, हिंसा-प्रधान यज्ञों द्वारा इन्द्र आदि देवताओंका यजन करते हैं, मेरा नहीं।

उपासत इन्द्रमुख्यान् देवादीन् न तथैव माम् ॥३२॥

ऐसे अहङ्कारियोंको मेरी चर्चा तक नहीं सुहाती। वे आवागमनके चक्रसे कभी मुक्त नहीं होते। शब्दब्रह्म (वेद) समुद्रके समान बड़ा ही गंभीर है। उसकी स्थिति प्राण, मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमें क्रमसे परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणीके रूपमें हैं। उसका भेद जाने बिना वेदका वास्तविक रहस्य कोई समझ नहीं सकता। वेदको केवल पुस्तकके रूपमें ही नहीं समझना। वे वैखरी रूप हैं और अनन्त होनेके कारण उनका ज्ञान होना और भी कठिन है। अन्तर्दीक्षासम्पन्न योगीको ही इसका ठीक-ठीक ज्ञान होता है।

किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत्।
इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥ ४२ ॥

यह वेद कर्मकाण्डमें विधिवाक्योंद्वारा किसका विधान करता है। देवताकाण्डमें मन्त्र वाक्योंद्वारा किस देवताका निरूपण करता है, ज्ञानकाण्डमें निषेधार्थ किसका अनुवाद कर विकल्प करता है, इस वेदवाणीका तात्पर्य मेरे सिवा जैमिनि आदि कोई भी आचार्य नहीं जानते। हे उद्धव! अब तुम इसका रहस्य सुनो! वेद कर्मकाण्ड द्वारा यज्ञ रूपमें मेरा ही विधान करता है तथा देवता रूपमें भी मेरा ही निरूपण करता है और आकाशादि रूपसे मुझमें ही समस्त विश्वका आरोपकर, फिर मेरा ही निषेध करता है अर्थात् मुझसे पृथक् कुछ भी नहीं है यह सिद्ध करता है। संपूर्ण वेदका तात्पर्य यही है कि वह परमार्थ

रूपमें मेरा ही आश्रयले भेदरूपमें जगत्को माया बताकर फिर 'नेह नानास्ति किञ्चन' इसके द्वारा उसका निषेध कर कृतकृत्य हो जाता है। अर्थात् 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'—इसके अनुसार वह सफल मनोरथ हो जाता है।

मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति ॥ ४३ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त

बाईसवाँ अध्याय

तत्त्वसंख्याका विरोधपरिहार, प्रकृति-पुरुषका विवेचन तथा जन्म-मृत्युका प्रकार

पूर्व अध्यायमें वेद 'प्रवृत्तिपरक हैं' इसका खण्डन कर 'मोक्षपरक' हैं यह सिद्ध किया गया। मोक्षपरक होनेपर भी इसमें बहुतसे कुछ अवान्तर विवाद हैं, जैसे कुछ विद्वान् लोग तत्त्वोंकी संख्यापर विवाद करते हैं। इसके बारेमें सत्य क्या है, इस जिज्ञासासे उद्धवजी पूछते हैं—विश्वेश्वर !

कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो।
नवैकादश पञ्च त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥

ऋषियोंके द्वारा परिगणित तत्त्वोंकी संख्या कितनी है ? आपने १९ वें अध्यायमें २८ तत्त्व बताये हैं। कोई २६ बताते हैं, तो कोई २५ ही बताते हैं। कोई ७, कोई ९, कोई ६, कोई ४, कोई ११, कोई १७ और कोई १६ तो कोई १३ ही तत्त्व बताते हैं। आचार्योंने यह संख्याभेद किस अभिप्रायसे किया है ? आप इसका रहस्य बताने की कृपा करें। भगवान्ने कहा—हे उद्धव ! विद्वान् पुरुष जिस पक्षका स्थापन करते हैं उसमें कोई न कोई युक्ति अवश्य रहती है इससे वे सब सत्य हैं, उनमें असत्यता नहीं। जहाँ कार्यका कारणमें अन्तर्भाव कर दिया, वहाँ संख्या कम हो जाती है। जहाँ नहीं किया, वहाँ संख्या बढ़ जाती है। जैसे जीव और ईश्वरका भेद करनेपर तत्त्वसंख्या २६ और अभेद विवक्षामें २५ हो जाती है। जो ७ तत्त्व मानते हैं उनके

मतमें पंचमहाभूत, जीव और ईश्वरका संकेत हैं। जो ९ तत्त्व मानते हैं, वे प्रकृति, महत्तत्त्व अहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा ये अष्टधा प्रकृति और १ पुरुषका निर्देश करते हैं। जो ६ तत्त्व मानते हैं, वे पञ्चमहाभूत और एक ईश्वर, जीवका उसमें अन्तर्भाव मानते हैं। जो ४ ही तत्त्व मानते हैं, उनका संकेत आत्माके साथ पृथ्वी, जल तथा तेजकी ओर है। ११ तत्त्व माननेमें पञ्चमहाभूत, ५ इन्द्रियाँ और १ आत्मा है। १७ तत्त्व माननेवालोंके पक्षमें ५ महाभूत, ५ तन्मात्राएँ, ५ इन्द्रियाँ, मन और आत्माकी गणना है। १६ तत्त्वोंके पक्षमें मनका आत्मामें अन्तर्भाव कर देनेसे एक संख्या घट जाती है। १३ तत्त्व माननेमें ५ महाभूत, ५ इन्द्रियाँ, मन, जीव, और ईश्वरकी गणना की गयी है। हे उद्धव! प्रकृति और पुरुषके भेदज्ञापनके लिये ही ऋषियोंने इतने प्रकारसे तत्त्वोंकी संख्या की है। युक्तियुक्त होनेसे ये सभी पक्ष ग्राह्य हैं। इनमें कुछ भी असत्यता नहीं। कारण, विद्वानोंके लिये कुछ दुष्कर नहीं हैं। वे जिस पक्षको चाहें युक्तिसे सिद्ध कर सकते हैं।

सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद् विदुषां किमशोभनम् ॥ २५ ॥

उद्धवने फिर पूछा—हे भगवन्! प्रकृति और पुरुष ये दोनों ही क्रमशः जड़ और चेतन होनेसे पृथक् हैं। किन्तु परस्पर सापेक्षरूप अन्योन्याश्रय होनेके कारण इनका भेद स्पष्टरूपसे प्रतीत नहीं होता। प्रकृति अर्थात् प्रकृतिके कार्य (देह) में आत्मा और आत्मामें प्रकृति लक्षित होती है, क्योंकि आत्माके विना प्रकृतिकी सत्ता रह नहीं सकती। 'अहं देवदत्तः' इस 'अभेद' प्रतीतिसे देह और आत्माका भेद लक्षित नहीं होता, इसे मैं किस प्रकार समझूँ? कृपया आप मेरा यह संशय निवृत्त करें।

भगवान्ने कहा—हे उद्धव! विकार-अविकार, नानात्व-एकत्व, सापेक्षत्व-निरपेक्षत्व, अन्धकार-प्रकाश इत्यादि रूपसे तो अत्यन्त भेद है। मेरी गुणमयी माया गुणोंके आश्रयसे ही यह नाना-प्रकारकी भेदबुद्धि उत्पन्न करती है। देखो न, एक ही शरीरमें प्रत्येक इन्द्रियमें अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव इस प्रकार तीन-तीन भेदोंकी कल्पना की गयी है। उदाहरणार्थ जैसे चक्षुमें चक्षुइन्द्रिय अध्यात्म इसका विषय रूप 'अधिभूत', और सूर्य इसके 'अधिदैव' है। ये तीनों ही भेद परस्पर सापेक्ष हैं। इनमेंसे किसी भी एकके अभावमें 'रूप' का ज्ञान नहीं हो सकता। किन्तु 'आत्मा प्रकाशस्वरूप होनेसे वह इन तीनोंसे पृथक् है। इसी प्रकार त्वक्, श्रवण, नासिका आदि इन्द्रियोंमें भी क्रमसे तीन-तीन भेद समझना चाहिये। त्वक् स्पर्श वायु। श्रोत्र शब्द

दिशाएँ। जिह्वा रस वरुण, घ्राण, गन्ध, अश्विनीकुमार। चित्तसे युक्त अन्तःकरण चतुष्टय भी त्रिविध है। मन मननीयविषय चन्द्र। बुद्धि ज्ञेय ब्रह्म। चित्त चेतयितव्य वासुदेव। अहङ्कार अहङ्कर्तव्यता रुद्र। इसलिये यह सारा भौतिक प्रपञ्च ही त्रिविध माना गया है। इसका मूलभूत कारण त्रिविध अहंकार है, इसीसे मोह और नाना प्रकारका स्थूलोऽहं कृशोऽहं यह विकल्प उत्पन्न होता है। इन सभी विकल्पोंका आधारभूत 'आत्मा' है उसकी प्राप्ति अहंकार-निवृत्तिसे होती है और 'अहंकार' की निवृत्ति तब होगी जब यह सारा त्रिविध विकल्प ही विलीन हो जाय। यह विकल्प रूप प्रपञ्च आत्माके अज्ञानवश ही भासित हो रहा है। इसलिये आत्माका ज्ञान होनेपर यह विकल्प स्वतः निवृत्त हो जाता है।

आत्माऽपरिज्ञानमयो विवादो ह्यस्तीति नास्तीति भिदार्थनिष्ठः।
व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥३३॥

द्वैतवादी विद्वान् प्रपञ्चको सत्य मान कर 'अस्ति' कहते हैं। अद्वैतवादी इसका खण्डन कर 'नास्ति' कहते हैं। ये दोनों ही भ्रममें हैं। कारण, इन्हें 'आत्मा' का सम्यक् परिज्ञान नहीं। इसीसे इन दोनोंके हृदयमें भेदवस्तुनिष्ठ विवाद जागरित है। भेदपरक विवाद यद्यपि जलताडनवत् निष्फल है। फिर भी मुझसे विमुख प्राणी उससे निवृत्त नहीं हो पाता और वह ऊंच-नीच योनियोंमें जन्म लेकर जन्म-मृत्युका क्लेश भोगता रहता है। मेरा ज्ञान तो वस्तुतः 'भक्ति' से प्राप्त होता है और 'भक्ति' सत्सङ्ग तथा कथा-श्रवणादि द्वारा प्राप्त होती है। जीव इसी पद्धतिसे मेरा ज्ञान प्राप्त कर इस त्रिगुणात्मक प्रपंचसे निवृत्त हो जाय। हे उद्धव! तभी जीवको पूर्ण शान्ति एवं मेरे स्वरूपका वास्तविक अनुभव हो सकेगा।

उद्धवने पूछा—हे भगवन्! आपसे विमुख प्राणी किस प्रकार शरीरोंका ग्रहण और त्याग करते हैं? उनके जन्म-मरणकी प्रक्रिया क्या है? कृपया इसे बतानेका कष्ट करें।

इस पर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव! जीवका जन्म और मरण उस सूक्ष्म-शरीरके अध्यासवश होता है जो १७ तत्त्वोंसे निर्मित है।

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ॥ (शंकराचार्य)

सूक्ष्म शरीर मनःप्रधान और कर्ममय कर्माधीन है। वही एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाता है। जीवात्मा उससे भिन्न है तथापि मिथ्या अहंकारवश

वह उसमें अध्यासकर लोकसे लोकान्तरमें उसका अनुसरण करता है। स्थूल शरीरकी प्राप्ति ही इसका जन्म और उसका नाश ही इसकी मृत्यु है। वस्तुतः वह जन्म-मृत्युसे रहित है, भ्रान्तिवश ही वह जन्म लेता और मरता है। पिताको पुत्रके जन्मसे और पुत्रको पिताके मरणसे अपने शरीरके भी जन्म और मरणका अनुमान कर लेना चाहिये। जैसे वृक्षकी उत्पत्ति और नाशका द्रष्टा वृक्षसे पृथक् है, वैसे ही शरीरके जन्म और मरणका द्रष्टा 'जीवात्मा' भी शरीरसे पृथक् है।

तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४६ ॥

अज्ञानी पुरुष ही 'आत्मा'को 'शरीर'से पृथक् न मानकर संसार-चक्रमें उलझे रहते हैं तथा गुणोंके अनुसार देव, असुर, मनुष्य तिर्यक् और स्थावर-योनियोंमें घूमा करते हैं। हे उद्धव! तुम यह निश्चित समझो कि शरीर आदि लेकर यह भ्रमात्मक सारा प्रपञ्च आत्माके अज्ञानसे ही भासित हो रहा है। तुम अपने मनमें यह निश्चित धारणा कर लो कि मैं इन्द्रियों द्वारा विषय-भोग नहीं कर रहा हूँ, इन्द्रियाँ ही विषयोंकी ओर जा रही हैं, मैं आत्मा हूँ अकर्ता हूँ मेरा इनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं। ऐसा दृढ़ निश्चय कर लेनेपर संसारमें चाहे कोई अपमान करे, गाली दे, या मारे या ऊपर थूक दे अथवा कोई भी कुछ क्यों न करे उसे चुपचाप सहन कर ले। कुछ बोले नहीं। इस प्रकार अपने आत्माके उद्धारार्थ निरन्तर प्रयत्न करता रहे उससे कभी विचलित न हो।

उद्धवने कहा—भगवान्! दुर्जनोंके द्वारा किये गये तिरस्कारों का सहन करना तो अत्यन्त कठिन है। विद्वान् पुरुष भी इन्हें सह नहीं सकते। फिर साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या? इसलिये कृपाकर आप सहन-शीलताके कुछ ऐसे उपाय बतलायें जिनसे मैं आपके इस-अमूल्य उपदेशका पालन करनेमें समर्थ हो सकूँ।

श्रीमद्भागवतकथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका बाईसवाँ अध्याय समाप्त।



तेईसवाँ अध्याय

तिरस्कार सहन करनेमें एक सहनशील अवधूतका उपाख्यान

[यहाँसे ४ अध्यायोंमें तिरस्कार-सहनके सुगम उपायोंका वर्णन किया गया है।]

(इस अध्यायमें, भिक्षुगीता, द्वारा मन पर विजय, २४ वेंमें प्रकृतिपुरुषका विवेचन २५ वेंमें गुणवृत्तियों पर विजय और २६ वेंमें ऐलगीता द्वारा विषयोंका त्याग तथा सत्संगकी चर्चा की गयी है।)

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! जब उद्धवने इस प्रकार पूछा, तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे बृहस्पतिके शिष्य उद्धव! संसारमें ऐसा साधु पुरुष दुर्लभ है जो दुर्जनोंके तीक्ष्ण कटुवचनोंसे विदीर्ण हुए अपने मन को संयत रख सके। तीक्ष्ण बाणोंसे विंधनेपर भी वैसा कष्ट नहीं होता जैसा दुर्जनोंके मर्मभेदी वचनोंसे होता है। इस विषयमें हम एक प्राचीन इतिहास कहते हैं उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया।
वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥६॥

उज्जयिनी नगरीमें एक धनाढ्य ब्राह्मण रहता था, जो बड़ा ही कृपण, लोभी और नीच-प्रकृतिका था। उसने कभी अपने सगे-सम्बन्धी या अतिथियों का वाणी से भी सत्कार नहीं किया और न अपने शरीर के लिये ही धनका कुछ उपयोग किया। उसके इस प्रकार धनसंचय करनेसे पारिवारिक जनों के साथ ही साथ यज्ञ-भागी पंचदेवता देव, ऋषि पितर भूत नर संज्ञक भी कुपित हो उठे। देवताओंके क्रोधसे उसका सारा धन नष्ट हो गया। कुछ धन आगमें जल गया। कुछ बन्धुओंने ले लिया। कुछ डाकुओंने लूटा और कुछ बचा-खुचा राजाने छीन लिया। धननाश होनेपर चिन्तासे व्याकुल हो रोते-रोते उसका कंठ सूख गया। तब उसके हृदयमें तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ।

निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥

वह कहने लगा—अरे! मैंने व्यर्थ ही अपनी आत्माको इतना कष्ट दिया मेरा यक्षके समान संचित यह धन किसी काममें न आया। मैंने न किसीको दिय और न स्वयं ही उसका उपभोग किया। कृपणके धनकी अन्तमें यही

दशा होती है। यहाँ तो उसे शरीर-कष्ट और परलोकमें नरक-यातना भोगनी पड़ती है। विवेकी पुरुषको थोड़ा भी लोभ हो जाना उसके गुण और उसकी कीर्तिको ऐसे नष्ट कर देता है जैसे श्वेतकुष्ठ सुन्दर रूपको।

लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रं[1] रूपमिवेप्सितम् ।। १६ ।।

धनके साथ १५ प्रकार के अनर्थं बतलाये गये हैं। साधक पुरुष इनसे सर्वथा बचता रहे।

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः[2] कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्द्धा व्यसनानि च ।।२८।।
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ।।२६।।

इनमें आरम्भिक छः अनर्थ धन प्राप्त्यर्थं हैं। धन प्राप्त होनेपर फिर क्रमसे ६अनर्थोंकी और सम्भावना होती है। पहले स्मय अर्थात् गर्व होता है। फिर मद, दूसरोंका तिरस्कार, अथवा अपनेमें आधिक्य बुद्धि, भेद परस्पर कलह, द्वेष अविश्वास एवं स्पर्धा होती है। साथ ही, तीन व्यसन पर-स्त्री-गमन, जुआ और मदिरापानकी कुप्रवृत्तियाँ भी जोर पकड़ती हैं। धनके ही कारण भाई-बन्धुओंमें शत्रुता हो जाती है। जिसमें एक दूसरेके प्राण तक लेनेको तुल जाते हैं। ऐसे अनर्थमूल धनमें भला कौन विवेकी पुरुष आसक्त होगा? यह शरीर स्वर्ग और मोक्षका साधन है फिर भी जो इसे प्राप्त कर इन दोनोंमें से एकको भी प्राप्त न कर सका उसने अपनी आत्माको निश्चित ही धोखा दिया है।

मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षैकसाधनम्।
द्वयोर्न साधयत्येकं तेनात्मा वञ्चितो ध्रुवम् ।। (गरुड़पुराण)

वस्तुतः मृत्युसे ग्रस्त इस प्राणीको धन और धनवानोंसे क्या प्रयोजन? निश्चय ही यह धनका लोभी किसीकी मायासे मोहित हुआ है इसमें सन्देह नहीं। आज न जाने किस पुण्यके प्रतापसे मुझपर भगवान् प्रसन्न हुए जो मेरे हृदयमें ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ। यह संसार-सागरसे पार करनेवाली दृढ़ नौका है। अब मैं अपना शेष जीवन भगवत्प्राप्तिमें ही व्यतीत करूँगा।

---

१. श्वित्र ऐति पाठः प्रामादिकः।

२. दम्भः परवञ्चनार्थं मिथ्यानुष्ठानं तदनुकूलवेषधारणं वा। कामः परकीय धनेच्छा संस्पर्धा परोत्कर्षासहनम्।

राजर्षि खट्वाङ्गने एक मुहूर्तमें ही सब कुछ भगवान्के अर्पणकर वैकुण्ठ लोक प्राप्त कर लिया था। आशा है, जगत्के अधिष्ठाता त्रिदेव भी मेरे इस संकल्पका अनुमोदन कर मेरी सहायता करेंगे। हे उद्धव ! ऐसा निश्चय कर वह ब्राह्मण अहन्ता और ममताका सर्वथा परित्यागकर संन्यासी बन गया। वह शान्तचित्त हो अकेला ही पृथ्वीपर विचरता था। एक दिन वह आसक्ति-रहित हो अपनी ज्ञाननिष्ठाको छिपाकर भिक्षार्थ नगरके समीप किसी ग्राममें गया।

भिक्षार्थं नगरग्रामानसङ्गोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥

वहाँ उस अवधूतको देखते ही दुर्जनमण्डली उसके पीछे लग गयी और नाना प्रकारके तिरस्कारों द्वारा उसे सताने लगी। किसीने उसका कमण्डलु, किसीने माला तो किसीने उसकी कन्था ही छीन ली। जब वह नदीतटपर बैठकर भोजन करने लगा तब उन पापियोंने उसके ऊपर लघुशंका कर दी। किसीने खखारकर उसके सिरपर ही थूक दिया। इन उत्पातोंपर भी उसके मौन रहनेपर बलात् उसे बुलवानेके लिये वे उसपर दण्डेसे प्रहार भी कर बैठे। कोई उसे चोर कहकर डाँटता तो किसीने धर्मध्वजी दम्भी घोषित कर दिया। कोई कहता यह धन नष्ट होनेपर परिवारसे निकाला गया है और ढोंगी संन्यासी बना घूमता है, इसे रस्सीमें बाँध लो। कोई कहता अरे, यह तो बड़ा धैर्यवान् मालूम पड़ता है, बगुलाके समान मौन रहकर अपना मतलब साधता है। कोई उसकी निन्दा करता, कोई हँसी उड़ाता, और कोई पास जाकर उसके मुँहपर अपानवायु छोड़ देता। ऐसी भीषण नाना-यातनाओंपर भी वह अपने धैर्यसे विचलित नहीं हुआ। हे उद्धव ! उस अवधूतने उन यातनाओंके बीच जिस अमृतमयी गाथाका गान किया था वह भिक्षु-गीता नामसे प्रसिद्ध है। उसे तुम सुनो—उसमें १६ श्लोक हैं उसका पहला श्लोक यह है—

नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवतात्मा ग्रहकर्मकालाः ।
मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥ ४३ ॥

संसारमें मनुष्य, देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म और काल ये छः ही सुख-दुःखके कारण माने जाते हैं। किन्तु, मेरे दुःखके कारण ये नहीं हो सकते। केवल मन ही सुख-दुःखका प्रधान कारण है जो मनुष्यको संसारचक्रमें घुमाता रहता है। मन हो शान्त, घोर और विमूढ़ वृत्तियोंकी रचना कर सात्त्विक, राजस और तामस कर्मोंको कराता है। तदनुसार ही जीव देव, मनुष्य, तिर्यगादि योनियोंमें जाता है ! हमारा सहयोगी मित्र ईश्वर इसी शरीरमें नियन्ता रूपसे

रह कर सब कुछ देखता सुनता हुआ भी 'मुक्त' रहता है और जीव मनको ही अपना रूप मानकर कर्तापनके अभिमानसे बँध जाता हैं। इसलिये सुख-दुःख मन द्वारा ही होते हैं। मनके रोकनेपर सुख-दुःखका नाम निशान भी नहीं रहता। दान, धर्म यम-नियम आदि साधन भी मन रोकनेके लिये ही बताये गये हैं! किन्तु जिसका मन वशीकृत है अथवा संयत नहीं है, प्रत्युत आलस्यादि दोषोंसे साधनाक्षम है इन दोनोंको ही दान, धर्म आदिसे कोई लाभ नहीं। इन्द्रिय एवं देवता सभी मनके वशीभूत हैं। मन किसीके वशमें नहीं होता। वह महाबलवान् है जिसने मनको जीत लिया उसे भगवान् विष्णुका कृपापात्र समझना चाहिये।

स ज्ञेयो भगवान् विष्णुर्मनो यस्य वशे स्थितम्। (आदि पु०)

शरीरके अन्दर प्रविष्ट संकल्प-विकल्प द्वारा मर्मका भेदन करनेवाले मनरूपी इस दुर्जय शत्रुको न जीत कर कुछ लोग व्यर्थ ही दूसरोंसे शुष्क वैरकर शत्रु या मित्र बनाते रहते हैं। इसे जीतनेका प्रयत्न नहीं करते। मनसे कल्पित इस शरीर तथा स्त्री पुत्रादिके प्रति अहन्ता-ममताकर अन्धबुद्धि वाला यह मनुष्य मैं-मैं और तू-तू करता हुआ इस अपार संसारमें घूमता फिरता है मुक्त नहीं हो पाता।

तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित्।
कुर्वन्त्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून् विमूढाः ॥ ४८ ॥
देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः।
एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥ ४९ ॥

यदि दुःखका कारण मनुष्यको माना जाय तो इसमें एक शरीरसे ही दूसरे शरीरको कष्ट पहुँचा। आत्मासे उस कष्टका क्या सम्बन्ध? वह तो इससे पृथक् है। बतलाओ तो सही, जब अपने दाँतसे अपनी ही जिह्वा कट जाती है, तब वेदना होने पर किसपर कोप करते हो?

जिह्वां क्वचित्संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥५०॥

जीवात्माका दुःख तो मनःप्रधान शरीराभिमानमूलक है। उसे सहना चाहिए, कारण मन अपना ही है। उसने दुःखकी कल्पना कर ली है इसलिये मनसे अतिरिक्त किसी अन्यको दोष देना उचित नहीं। दुःखका कारण यदि देवताको मानें तो एकके हाथके देवता इन्द्रने दूसरेके मुखके देवता अग्निको थप्पड़ मार दिया। इस प्रकार दोनों देवता आपसमें लड़ गये। इसमें

भी आत्मासे क्या सम्बन्ध ? देवताओंका सब देहोंमें अभेद है। इसलिये, वस्तुतः ये भी कोपके विषय नहीं हो सकते। दुःखका कारण यदि आत्माको माने तो वह तो अपना ही स्वभाव है, किसी दूसरेका तो है नहीं, आत्मासे अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु ही नहीं, जो है भी, वह मिथ्या है। तब बताओ किसपर कोप किया जाय ? यदि दुःखका कारण आदित्यादि ग्रहोंको मानें तो जो ग्रह जिन ग्रहोंको शत्रु-मित्र या समदृष्टिसे देखते हैं अथवा यों समझें जन्मलग्नकी अपेक्षा द्वादश अष्टमादिराशिमें स्थित ग्रह सुख दुःखके कारण होते हैं। उन ग्रहोंसे दूसरे ग्रहोंको ही पीड़ा होती है आत्मासे क्या सम्बन्ध ? अज्ञानवश ही लोग आत्मामें दुःखकी कल्पना कर लेते हैं। यदि दुःखका कारण कर्मको मानें, तो उसका भी आत्मासे कोई सम्बन्ध नहीं। कारण, देह जड़ है वह कर्म कर नहीं सकती। आत्मा चेतन ज्ञानस्वरूप है, वहाँ भी कर्म नहीं, जब कर्मका मूल ही नहीं तब वह दुःखका कारण कैसे ? अनुत्पन्न पुत्रका नामकरण नहीं होता और न बिना खोदे तालावमें मगर घुस ही सकता है।

अजातस्य हि पुत्रस्य कथं नाम प्रवर्तते।
अखाते हि तडागे च प्रविष्टो मकरः कथम्॥

यदि दुःखका कारण कालको मानें तो भी आत्मासे क्या सम्बन्ध ? वह भी दुःखका कारण नहीं हो सकता। क्योंकि, वह तो कालरूपी ईश्वरका अंश है। अग्निसे अग्निका और शीतसे शीतका नाश नहीं हो सकता। इसलिये मनसे अतिरिक्त कोई भी वस्तुतः सुख-दुःखका कारण नहीं है। केवल देहमें अहंकार करनेवालोंको ही दुःख हुआ करता है। जिसे ऐसा ज्ञान है, वह किसी भी दशामें प्राणियोंसे भयभीत नहीं होता। हे उद्धव ! वह अवधूत इस ज्ञानमयी गाथा द्वारा अपने मनको शान्त कर दुःखसे मुक्त हो गया था। इसलिये विवेकी पुरुषको सात्त्विक बुद्धिसे अपने मनका ही संयम करना चाहिये। जो मनुष्य भिक्षु द्वारा गान की गयी इस ब्रह्मनिष्ठ गाथाको सुनता है या सुनाता है अथवा उसका मनन करता है वह फिर किसी प्रकारके सुखदुःखादि द्वन्द्वोंसे विचलित नहीं होता।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका तेईसवाँ अध्याय समाप्त।

चौबीसवाँ अध्याय

'द्वैत' सत्यत्वरूप मनोभ्रमका सांख्यज्ञान द्वारा निवारण

मनःप्रधान सूक्ष्मशरीरमें 'अहंबुद्धि' ही जीवके सुख-दुःखका प्रधान कारण है, यह भिक्षु-गीतामें बतलाया गया। यह अहंबुद्धि आत्मा और अनात्माके विवेकसे निवृत्त होती है जो सांख्यज्ञानसे संभव है। इसलिये, भगवान् इस अध्यायमें सांख्यज्ञानका उपदेश करते हैं—

अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम्।
यद् विज्ञाय पुमान् सद्यो जह्याद् वैकल्पिकं भ्रमम्॥ १॥

हे उद्धव! अब हम कपिल आदि महर्षियोंद्वारा निर्णीत सांख्यज्ञानका वर्णन करते हैं, जिसका ज्ञान होते ही मनुष्य शीघ्र ही देहाभिमानजन्य शत्रु, मित्र सुख-दुःख आदि द्वैत भ्रमसे मुक्त हो जाता है। पहले प्रलयकालमें यह ज्ञान द्वैतशून्य और एक था जिसे 'ब्रह्म' कहते हैं। वही ब्रह्म 'प्रकृति' और 'पुरुष' इन दो रूपोंमें अभिव्यक्त हुआ। 'एकोऽहं बहु स्याम्' यह मेरी 'इच्छा' रूपा शक्ति ही प्रकृति है। 'प्रकृति' के निरीक्षणकालमें मैं ही 'पुरुष' रूपसे पृथक् हुआ। यहाँ यह ध्यान रहे कि गुणोंकी साम्यावस्था ही प्रकृति है और उनकी वैषम्यावस्था सृष्टि है। सृष्टिकालमें प्रकृतिसे 'सत्त्व, रज और तम' ये तीन गुण उत्पन्न हुए। गुणोंसे 'क्रियाशक्ति प्रधान' प्रथम विकार सूत्र उत्पन्न हुआ, सूत्रसे 'ज्ञानशक्ति' प्रधान महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ। महत्तत्त्व द्वारा सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारके 'अहंकार' हुए। ये ही जीवोंके मोह-भ्रम एवं द्वन्द्वोंके प्रधान कारण माने गये हैं। 'तामस अहंकारसे पञ्चतन्मात्रा और पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्ति, 'राजस' अहंकारसे बुद्धिसहित इन्द्रियोंकी और 'सात्त्विक' अहंकारसे इन्द्रियाधिष्ठाता देवता और मनकी उत्पत्ति हुई। ये ही प्रकृतिके २४ तत्त्व कहे जाते हैं। ध्यान रहे, एक ही ब्रह्म लीलार्थं इतने रूपोंमें व्यक्त हो गया। इसलिये इस समुदायकी ब्रह्मरूपसे ही उपासना करनी चाहिये ऐसा भगवान् कपिलका उपदेश है।

पञ्चभिः पञ्चभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा।
एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः॥

भा० स्क० ३। २६। ११

पञ्चमहाभूत पञ्चतन्मात्राएँ अन्तःकरण चतुष्टय और दस इन्द्रियां इन्हीं २४ तत्त्वोंने मिलकर मेरे रहनेका स्थान 'अण्ड' वनाया, जो चिरकालतक जलमें ही पड़ा रहा। उसी अण्डसे नारायणमूर्ति धारण कर मैं प्रकट हुआ और मेरी नाभिसे जगत्का कारणभूत 'कमल' उत्पन्न हुआ। कमलसे चराचर सृष्टि के कर्ता ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने लोकपालों सहित तीनों लोकोंकी रचना की। उन्हींमें फिर १४ लोकोंकी भी कल्पना की गयी, जैसे भूः भुवः स्वः महर्जन तप और सत्य ये ७ ऊपरके लोका अतल वितल सुतल, तलातल महातल रसातल और पाताल ये ७ नीचेके लोक। गुणकर्मानुसार जीव इन्हीं लोकोंमें घूमता-फिरता है। संसारमें जो भी पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, वे प्रकृति और पुरुषसे पृथक् नहीं। सृष्टिके आदिमें भी ब्रह्म है, सृष्टि के अन्तमें भी ब्रह्म है और सृष्टिके मध्यमें भी ब्रह्म है इसलिये ब्रह्मके कार्यको भी ब्रह्मरूप ही समझना चाहिये। जैसे मृत्तिकाके कार्य घट शरावादि में आदि-अन्त और मध्यमें मृत्तिका ही है, दूसरी वस्तु नहीं, वैसे ही यहाँ भी ब्रह्म ही ब्रह्म है तब इसमें सुख-दुःख की कल्पना कैसी ? प्रलयके समय पृथ्वी जलमें, जल तेजमें, तेज वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश अहङ्कारमें, जीवसहित अहङ्कार महत्तत्वमें, महत्तत्व प्रकृतिमें और प्रकृति आत्मा (ब्रह्म) में लीन हो जाती है। आत्मा केवल आत्मस्थ ही रहता है उसका कहीं लय नहीं होता।

आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ।२७।

कारण वही सबका अधिष्ठान और अवधिस्वरूप है। विश्वकी उत्पत्ति और प्रलय द्वारा ही उस आत्माका परिज्ञान होता है।

एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः।
मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥२८॥

इस प्रकार विचार करनेवाले साधकके हृदयमें देहाभिमान-जन्य 'सुख-दुःख' रूपी मानसिक भ्रम वैसेही विलीन होता है जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर अन्धकार मिट जाता है। अतः हे उद्धव ! हमने सृष्टिसे प्रलय और प्रलयसे सृष्टितक संक्षेपसे सांख्यशास्त्रका रहस्य वर्णन किया। इसके निरन्तर मनन करनेसे अहङ्कारके साथ सारे संशय निवृत्त हो जाते हैं और साधकको शनैः-शनैः अपने स्वरूपानन्दकी अनुभूति होने लगती है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका चौवीसवाँ अध्याय समाप्त।

पच्चीसवाँ अध्याय

द्वन्द्व-निर्वृत्तिके लिये गुणवृत्तियोंपर विजयके उपाय

[प्रकृति और पुरुषका ज्ञान होनेपर भी, जबतक विशेष प्रयत्न द्वारा गुणवृत्तियोंपर विजय प्राप्त न की जाय तबतक द्वन्द्व (द्वैत) की निवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिये गुणवृत्तियोंपर विजयके उपाय बतानेके पूर्व गुणकी वृत्तियोंका भी निरूपण यहाँ किया किया जाता है] भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव ! शम, दम, तितिक्षा, ईक्षा, तप, सत्य, दया आदि 'सत्त्व'गुण की। काम, ईहा मद तृष्णा स्तम्भ हास्य विषय भोग मद आदि 'रजोगुणकी' और क्रोध, लोभ, अनृत हिंसा याच्ञा दम्भ निद्रा आदि 'तमोगुण' की वृत्तियाँ हैं। मिश्रितगुणोंकी वृत्तियों का नाम 'सन्निपात' है। मैं हूँ, यह मेरा है यह बुद्धि सन्निपात है। कारण—मैं कहनेमें मैं शान्त हूँ, मैं कामी हूँ और मैं क्रोधी हूँ, मेरा पुत्र शान्त है कामी है और क्रोधी है। ऐसे तीनों ही भाव यथासमय आ सकते हैं इसलिये मन तन्मात्रा शब्दादि तथा इन्द्रियोंके सात्त्विक तामस राजस होनेसे और व्यवहारके अहन्ता ममता पूर्वक होनेके कारण इन वृत्तियोंसे मिला हुआ यह सारा व्यवहार सन्निपात कहा जाता है। धर्म, अर्थ और काममें निष्टा गुणोंका सन्निपात है क्योंकि येसत्त्व तम और रज के कार्य हैं। शम दम आदिसे सम्पन्न पुरुष को सत्त्वयुक्त, कामना आदिसे सम्पन्न को रजोयुक्त और क्रोध आदिसे सम्पन्न पुरुषको तमोयुक्त जानना चाहिये। निरपेक्ष भजन करनेवाला सात्त्विक, भोगसंकल्पसे भजन करनेवाला राजस और हिंसा आदि के संकल्पसे भजन करनेवाला तामस कहा गया है। जब मनुष्य सत्त्वका आश्रय लेकर रज और तम इन दो गुणोंको जीत लेता है तब वह धर्म-ज्ञानादिसे युक्त हो सुखी होता है। जब रजोगुण वृद्धिको प्राप्त होकर सत्त्व और तमको जीत लेता है तब नाना प्रकारके कर्मोंमें आसक्त हो दुःखी होता है। जब तमोगुण रज और सत्त्वको जीत लेता है तब मनुष्य शोक, मोह, निद्रा और हिंसामें आसक्त होता है। सत्त्वगुणकी वृद्धिसे दैवबल, रजोगुणकी वृद्धिसे आसुर बल और तमोगुणकी वृद्धिसे राक्षस बल बढ़ता है। यहाँ गुणानुसार इन्द्रियाँ ही निवृत्ति प्रवृत्ति तथा मोह स्वभाववाली हैं, इसलिये यहाँ देव असुर और राक्षस रूपसे उनका संकेत किया गया हैं।

सत्त्वाज्जागरणं विद्याद् रजसा स्वप्नमादिशेत्।
प्रस्वापं तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु सन्ततम्॥२०॥

सत्त्वगुणसे जागरण, रजोगुणसे स्वप्न और तमोगुणसे सुषुप्ति होती है। तुरीयावस्थापन्न आत्मा तीनोंमें स्थित है। इस प्रकार संसारमें द्रव्य देश फल काल ज्ञान कर्म कारक श्रद्धा, अवस्था आकृति (देवत्वादि) निष्ठा स्वर्गादि जितने पदार्थ हैं इनकी संख्या ११ है वे सभी त्रिगुणात्मक हैं। इनका स्वरूप इसी अध्यायके २३ वें श्लोकसे २९ तक ७ श्लोकोंमें देखना चाहिये।

द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः।
श्रद्धावस्थाऽऽकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥

भगवान्की भक्तिके द्वारा इन वृत्तियोंको जीतने वाला प्राणी बड़ी सुगमतासे मोक्षको प्राप्त कर लेता है। भक्तिसिद्धान्तमें 'मोक्ष' का अर्थ 'पार्षद' भावकी प्राप्ति बतायी है।

विष्णोरनुचरत्वं हि मोक्षमाहुर्मनीषिणः। (पद्मपुराण)

इसलिये साधकको सात्त्विक देश, सात्त्विक मनुष्य सात्त्विक आहार तथा सात्त्विक ग्रन्थके सेवनसे रजोगुण तमोगुणको, और निरपेक्ष शान्तमयी भावना द्वारा सत्त्वगुण को भी जीतना चाहिये। इस प्रकार गुणवृत्तियोंके जीत लेने पर साधकका शनैः-शनैः देहाध्यास निवृत्त हो जाता है और वह ब्रह्मानन्द में निमग्न हो संसारमें जीवन्मुक्त होकर विचरता है।

गुणकृतामुरुसंसरणव्यथामजितपुण्यकथाकथनादिभिः ।
धुनुत भक्तिरसेन विवेकिनो नहि पुनः सुलभं जनुरीदृशम् ॥
(श्रीधरी)

हे विवेकी पुरुषो! मायाके गुणोंसे उत्पन्न होने वाली नाना योनियोंकी इस जन्म-मरण रूपी भयानक व्यथाको भक्तिरूपी रसायन पीकर शीघ्र ही दूर कर लो अन्यथा याद रक्खो सर्वाङ्ग परिपूर्ण यह मनुष्य जन्म फिर सुलभ न हो सकेगा। यह भक्तिरसायन अजित भगवान् श्रीकृष्णकी मङ्गलमयी पुण्य कथाओंके प्रवचन श्रवण तथा नामकीर्तनसे प्राप्त होती है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त



छब्बीसवाँ अध्याय

ऐलगीत द्वारा विषयोंके त्यागका तथा सत्सङ्गचर्चाका वर्णन

भगवान्ने कहा—हे उद्धव !

मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ।
आनन्दं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ।।८।।

मेरे स्वरूपको लक्ष्य करानेवाला यह मानव शरीर पाकर जो भक्तिरूपी धर्ममें पूर्णरूप से आस्था रखता है उसे अपने आत्मामें ही मुझ आनन्दनिधि परमात्माकी उपलब्धि हो जाती है। वह जीवन्मुक्त पुरुष यद्यपि मिथ्याभूत विषयोंमें आसक्त नहीं होता फिर भी उसे विषयी एवं उदर भरनेवाले नीच पुरुषों का संग नहीं करना चाहिये। ऐसे पुरुषोंमें किसी एकका भी संग करसेसे उसका अधः पतन हो जाता है, जैसे अन्धे के सहारे चलनेवाले अन्धे का होता है। इस विषय में चक्रवर्ती राजा ऐल पुरूरवाने एक गाथा गायी है उसे सुनो—वे उर्वशीके विरहमें व्याकुल हो साधना द्वारा उसीके लोकको चले गये थे। एक दिन वे स्वयं ही विषयों से विरक्त हो, कहने लगे—अरे ! मैंने अपनी सारी आयु विषयभोगमें ही नष्ट कर डाली। मुझे सूर्यके उदय और अस्तका भी ज्ञान न रहा था। मैं उस उर्वशीको सबसे अधिक चाहता था फिर भी वह मुझे छोड़कर चली ही गयी। मैं खरके समान उनके पीछे ही लगा रहा, फिर भी वह मुझे पैरसे ठुकराती ही रही।

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ।
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ।।१२।।

उस पुरुषकी विद्यासे, तपस्यासे, संन्याससे, शास्त्रश्रवणसे, एकान्तसेवनसे, और मौन धारण करनेसे क्या लाभ जिसका मन स्त्रियोंसे आकृष्ट हो जाय।

मैंने सैकड़ों वर्ष तक विषयोंका सेवन किया। फिर भी, मेरी कामवासना अभी तक शान्त नहीं हुई। घृतकी आहुतिसे अग्निकी तरह वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गई। उर्वशीने मुझे सूक्त वाक्यों द्वारा बहुत कुछ समझाया भी कि स्त्रियोंकी मैत्री स्थिर नहीं रहती फिर भी मुझे ज्ञान न हुआ। मुझे धिक्कार है। मल, मूत्र, पीव आदिसे भरे इस घृणित शरीरमें रमण करने वाले मुझमें और कीड़ोंमें क्या अन्तर रहा ?

विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ।।२१।।

हे उद्धव ! राजा ऐल इस प्रकार वैराग्यपूर्ण गीत गाते हुए उर्वशीलोक को त्यागकर एकान्तमें चले गये। वहाँ अपनी सात्त्विक बुद्धिसे मनको स्थिर कर ध्यानयोग द्वारा मेरी आराधना करने लगे। कुछ ही कालमें वह संसारसे उपरत हो जीवन्मुक्त होकर विचरते रहे और अन्त में मुझे प्राप्त हो गये।

ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्।
सन्त एतस्य छिन्दन्ति मनोव्यासंगमुक्तिभिः ॥२६॥

इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य कुसंगका त्याग कर सत्पुरुषोंका संग करे। वे अपने सदुपदेश के द्वारा उसके मनकी विषयासक्तिको शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं।

सत्पुरुषोंके समाजमें निरन्तर मेरी मंगलमयी कथाएँ हुआ करती हैं जिनके श्रवणसे शीघ्र ही मेरी प्रेमलक्षणा परा भक्ति उत्पन्न हो जाती है। भक्ति प्राप्त होने पर फिर उसे कुछ दुर्लभ नहीं रहता। वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। संसार समुद्रमें डूबते हुए मनुष्यों को पार लगानेके लिये सत्पुरुष दृढ़ नौकारूप कहे गये हैं।

अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम्।
धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ॥३४॥

जैसे प्राणियोंका जीवन अन्न है। जैसे आर्त्त प्राणियोंको शरण देनेवाला मैं हूँ। जैसे परलोकका धन धर्म है , वैसे ही सांसारिक दुःखोंसे भयभीत प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले सत्पुरुष हैं। उन्हीं का सर्वदा संग करना चाहिये, इस प्रकार भगवान्ने गत ४ अध्यायोंमें तिरस्कारजन्य दुःख-सहनके सुगम उपायोंका वर्णन किया है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त।

सत्ताईसवाँ अध्याय

भगवान्के द्वारा सविधि क्रियायोगका वर्णन

उद्धवने कहा—हे भगवन् ! संसारमें मनुष्योंका चित्त राग-द्वेषादिसे निरन्तर व्याकुल रहता है। उसका असंग होना तो बड़ा ही कठिन है। सुना जाता

है कि कर्मयोग मनुष्यों के लिये श्रेय का सबसे सुगम साधन है। इसे ब्रह्माने अपने भृगु आदि पुत्रों को तथा भगवान् शिव ने पार्वती जी को बताया। अनन्तर भगवान् व्यास देवर्षि नारद तथा अन्य सभी महर्षियों ने इसकी पुष्टि की और इसके महत्त्व का गान किया। अतः कृपया आप उस कर्मयोगका वर्णन करें जिससे आपकी आराधना द्वारा चित्तकी शुद्धि हो और मनुष्य सरलता से कुसंग का त्याग कर श्रेयके मार्गमें अग्रसर हो जाय।

भगवान्‌ने कहा—हे उद्धव! कर्मकाण्डका तो बड़ा भारी विस्तार है। उसके न ग्रन्थोंका अन्त है और न उसके अनुष्ठानोंका ही, किन्तु हम संक्षेपमें उसके मुख्य-मुख्य स्थलों का वर्णन करते हैं। वैदिक, तान्त्रिक और मिश्रित ये तीन मेरी पूजाके प्रकार हैं। वैदिक पुरुषसूक्तादि से पूजा, तान्त्रिक तन्त्रमन्त्रोक्तन्यासप्रधानपूजा, मिश्र पुराणवेदतन्त्रमिश्रितपूजा। इनमेंसे जिसमें अभिरुचि हो उसीसे श्रद्धाविश्वासपूर्वक मेरा पूजन करे। सर्वप्रथम यथा समय उपनयन संस्कार द्वारा द्विजत्वको प्राप्त करे। फिर, प्रतिदिन नियमसे दन्तधावनपूर्वक स्नान आदिसे शुद्ध हो सन्ध्योपासन कर मेरी प्रतिमाका पूजन करे। निम्बादि की दन्तधावन से अथवा शुद्ध मञ्जन से मुख शुद्धि करे। आधुनिक गन्दे पाउडरों से नहीं। निषिद्धदिन में भी जिह्वा की शुद्धि अवश्य करे अथवा जलके १२ कुल्ला कर ले। विना सन्ध्योपासन[1] किये मेरी प्रतिमाका पूजन न करे अन्यथा उसका कुछ भी फल नहीं होता। कारण वह अशुचि रहता है। कोई शुभ कर्म करनेका अधिकारी नहीं। प्रत्येक कार्य में संकल्प अवश्य करे, अन्यथा पुण्य कर्म निष्फल हो जाते हैं।

सङ्कल्पं च सदा कुर्यात् स्नानदानव्रतादिषु।
अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति च॥

'देवो भूत्वा देवं यजेत्' इस नियमसे पूजनके पूर्व अपने सम्प्रदायानुसार तिलक अवश्य लगावे प्रतिमाएं आठ प्रकारकी बतायी गयी हैं।

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता॥१२॥

पाषाणकी, काष्ठकी, लौह-सुवर्णादि धातुकी, लेप्या भित्तिमें लिखित चन्दनादि लेपकी, लेख्या चित्ररूपा, सैकती मृण्मयी मनोमयी और मणिमयी ये मूर्तियाँ आठ प्रकार की बतायी गयी है: लौह (धातु) की परिभाषा निम्नलिखित हैं—रीति-पीतल

---

१. सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यत् किञ्चित् कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत्॥

सुवर्णं रजतं ताम्रं रीतिः कांस्यं तथा त्रपु ।
सीसं कालायसं चैवमष्टौ लोहाः प्रकीर्तिताः ॥

मूर्तिकी प्रतिष्ठा चल और अचल दो प्रकारकी होती है। चलमूर्ति शालग्राम बालमुकुन्दादि, अचल मूर्ति श्रीजगन्नाथादि। अचलमूर्ति और शालग्राममें आवाहन और विसर्जन नहीं होता। चलमें विकल्प है। सैकतीमें आवाहन और विसर्जन करना चाहिये ! दारुमयी और मणिमयी आदिमें ये एच्छिक हैं। मृण्मयी, लेप्या और चित्ररूपी मूर्तियोंके स्नानकी जगह केवल दूरसे मार्जन करे। निष्काम भक्त यथालब्ध द्रव्योंसे अथवा मानसिक द्रव्योंसे ही हृदयमें मूर्तियोंका यथारुचि प्रतिदिन पंचोपचार अथवा षोडशोपचारसे पूजन करे। श्रद्धा-भक्तिसे जो मुझे केवल जल भी समर्पण करता है उससे मेरी पूर्ण तृप्ति हो जाती है, किन्तु अश्रद्धासे सब कुछ देनेपर भी मुझे प्रसन्नता नहीं होती। अष्टदल कमल बनाकर उसमें वेदमन्त्रोंसे मेरा पूजन करे। गरुड़को आगेकर मेरे आयुधोंका तथा नन्द सुनन्द आदि पार्षदोंका आठों दिशाओंमें पूजन करे। दुर्गा, गणेश आदि देवताओंका भी यथास्थान पूजन करे।

दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् ।
स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान् पूजयेत् प्रोक्षणादिभिः ॥२८॥

दुर्गा साक्षात् कृष्णका ही रूप है—

यः कृष्णः सैव दुर्गा या दुर्गा कृष्ण एव सः । (गौतमीयकल्प)

ब्रह्मवैवर्तके अनुसार गणेशजी श्रीकृष्णके अवतार माने गये हैं। इस लिये प्रत्येक शुभ कार्यके आरम्भमें सर्वप्रथम गणेशजीका पूजन अवश्य करे। ऐसा करनेसे कार्यमें विघ्न नहीं होता, और यह अनादिकालसे शास्त्रीय प्राचीन परम्परा है। अतः 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते' इस गीताके अनुसार उसका सभी सम्प्रदायवालों को पालन करना चाहिये।

कार्यारम्भे गणेशश्च पूजनीयः प्रयत्नतः

कुछ वैष्णव विद्वान् दुराग्रहवश गणेशजीके स्थानमें विष्वक्सेनका पूजन करते हैं। वे भागवत-धर्मके मर्मज्ञ होते हुए भी ऐसा क्यों करते हैं इसे वे ही समझ सकते हैं। दुर्गाका वह्निकोणमें, गणेशजीका नैर्ऋत्यमें, व्यासका वायव्यमें, विष्वक्सेनका ईशानमें, वाममें गुरुपादुकाका और इन्द्रादि देवताओंका पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करनेका भागवतमें ही विधान बताया गया है। उनके मतमें इस ग्रन्थकी सङ्गति क्या होगी अतः जो ऐसा नहीं करते वे दोषके भागी

होते हैं, उन्हें पूजनका यथावत् फल भी प्राप्त नहीं होता और न उनके इष्टदेवता इससे सन्तुष्ट ही होते है। हमारे परमादरणीय वैष्णव सम्प्रदायके सर्वमान्य आचार्य सन्दर्भकार लिखते हैं।

अतो नाममात्र साधारण्येनानन्यभक्तैर्नातिभेतव्यम्, किन्तु भागवत-नित्यवैकुण्ठसेवकत्वात् विष्वक्सेनादिवत्सत्कार्या एव ते।

अर्चयित्वा तु गोविन्दं तदीयान्नार्चयेत्तु यः।

इत्यादिवचनेन तदसत्कारे दोषश्रवणात्। अत्र विशेषो भक्तिसन्दर्भे द्रष्टव्यः।

विभव होनेपर प्रतिदिन चन्दन, खस, कपूर, कुंकुम और अगरसे सुवासित पञ्चामृत द्वारा या केवल जल द्वारा भगवान्को स्नान कराये। पुरुषसूक्तसे अग्निमें हवन करे। नाना प्रकारके अच्छे-अच्छे पकवान भोग लगाये किन्तु वे शुद्ध घृतसे निर्मित हों। अशुद्ध अखाद्य घृतका प्रयोग न किया जाय अन्यथा देवता उसे ग्रहण नहीं करते। 'देवतास्तन्न गृह्णन्ति'। प्रतिदिन मूलमन्त्र या द्वादशाक्षरका कमसे-कम एक सहस्र जप करे। श्रीमद्भागवत या अन्य पुराणों की कथाका श्रवण करे। यथासमय कीर्तन करे और कराये। कपूर और शुद्ध घृतकी बत्तियोंसे भगवान् की प्रतिमाकी आरती उतारे। ध्यान रहे कि भगवान्के पूजनमें किसी भी प्रकारकी अशुद्धवस्तुका उपयोग न हो। चार-बार चरणोंमें, दो बार नाभिमें, एक बार मुखमण्डलमें और सात बार सम्पूर्ण अंगोंमें आरती घुमाये।

आदौ चतुः पादतले प्रदेयं द्विर्नाभिदेशे मुखमण्डलैकम्।
सर्वाङ्गदेशेषु च सप्तवारं नीराजनेऽयं विधिरीश्वरस्य॥

(विष्णुधर्म)

भगवान्के सामने नाना वाद्यों सहित अथवा ताली ही बजाकर कीर्तन तथा नृत्य करे, उससे शरीरमें स्थित महापातकरूपी पक्षी शीघ्र उड़ जाते हैं।

नृत्यतां श्रीपतेरग्रे करसंस्फोटनादिभिः।
उड्डीयन्ते शरीरस्था महापातकपक्षिणः॥

साष्टाङ्ग, दंडवत् प्रणाम करनाना स्तोत्रों द्वारा मेरी स्तुति करे। भगवान् का प्रसाद न मिलनेपर भी मांगकर श्रद्धासे ग्रहण करे। उसमें लज्जा न करे और न उसका अनादर ही करे। हाथपर तुलसीदल रखकर ही चरणामृत पिये अन्यथा पात्रसे पिये। किसी भी देवी या देवताकी भूलसे भी निन्दा न करे। यथासमय पर्व-पर्वपर सब देवताओंका आनन्द महोत्सव मनावे।

द्रव्यके सदुपयोग के लिये सुन्दर मन्दिरों का निर्माण करे। उनमें विधि पूर्वक यथाभिलषित मेरी प्रतिमाओं की स्थापना करे। उनकी नित्य निरवच्छिन्न पूजाके प्रवाहार्थं स्थायी सम्पत्ति का दान करें। पुष्पफलादि की सुविधा के लिये सुन्दर बगीचे बनावे। साथ ही हो सके तो वापी-कूप-तडाग विद्यालय तथा धर्मशाला का निर्माण करे। यदि इन धार्मिक कार्यों के करनेमें अपनी क्षमता न हो तो दूसरों का सहयोग करे—क्योंकि

कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च।
कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥५४॥

इन कार्योंका करनेवाला, सहयोग देनेवाला; प्रेरणा करने वाला, अनुमोदन करनेवाला, ये सब परलोकमें समान फलके भागी होते हैं उसमें भी जो जितना अधिक सहयोग करेगा उसे उतनाही अधिक फल प्राप्त होगा। लक्ष्मी चला है, जीवन भी अस्थिर है, परलोकमें खाद्य-सामग्री अपेक्षित होती है। बिना यहाँ दिये वहां कुछ मिल न सकेगा, अतः अपने जीवनकालमें ही कुछ द्रव्य निकालकर सुशील-पठनशील आचार-सम्पन्न विनम्र छात्रों के लिये यथाशक्ति अन्नसत्रका प्रबन्ध अवश्य कर दे। जिससे परलोक में क्षुधा का कष्ट उठाना न पड़े। प्रतिदिन चौबीस घण्टेमें थोड़ा समय निकाल अपने परिवारके साथ बैठकर मेरे नामोंका कीर्तन करे और दिनमें किये गये पापों की क्षमा याचना करे, पश्चात्ताप करे ऐसा करनेसे मनुष्य परलोक में कष्ट का अनुभव नहीं करता।

हे उद्धव! हमने अत्यन्त संक्षेपसे यह पूजा की विधि एवं जीवनोपयोगी कुछ आवश्यक साधन बतलाये हैं। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार श्रद्धा-भक्तिसे हमारा पूजन करता है उसे शीघ्र ही भक्ति ज्ञान और वैराग्य इन तीनोंकी प्राप्ति हो जाती है और फिर उसे किसी प्रकारका सांसारिक क्लेश विचलित नहीं कर सकता। अन्तमें वह हमारा दिव्य वैकुण्ठ लोक प्राप्त कर लेता है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त।

—:※:—

अट्ठाईसवाँ अध्याय

दृढताके लिए सिंहावलोकन द्वारा पुनः संक्षेपमें ज्ञानयोगका निरूपण

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—उद्धव ! अब मैं अपने परमधाममें जानेका विचार कर रहा हूँ। इसलिये मैं तुम्हें पुनः संक्षेपमें कुछ ज्ञानयोगका उपदेश करता हूँ। इससे तुम्हें बड़ी शान्ति मिलेगी एवं मेरे वियोगजन्य कष्टका तुम्हें किञ्चिन्मात्र भी अनुभव न होगा, ध्यानपूर्वक इसका श्रवण करो—

परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्।
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च ॥१॥

दूसरोंके अच्छे या बुरे स्वभाव अथवा उनके कर्मों की न तो प्रशंसा करे और न निन्दा ही करे। संसारमें सभी स्त्री-पुरुषोंको प्रकृति और पुरुषका ही रूप समझे। जो निन्दा या स्तुति करता है वह मिथ्याभूत द्वैतमें आसक्त हो 'अद्वैत' ज्ञानसे भ्रष्ट हो जाता है। इस मिथ्या द्वैत जगत्में अच्छा क्या और बुरा क्या ? वाणीसे जो कहा जाय, मनसे जिसका चिन्तन किया जाय और चक्षुसे जो कुछ देखा जाय वह सब मिथ्या ही तो है। जैसे मुख आदि का प्रतिबिम्ब, प्रतिध्वनि और शुक्तिमें रजत आदिकी प्रतीति ये सब असत् होनेपर भी सत्यवत् अर्थक्रियाकारी होते हैं, वैसे ही देह आदि सम्पूर्ण पदार्थ मृत्यु पर्यन्त जीवोंको सत्यवत् प्रतीत होकर नाना प्रकारसे दुःख दिया करते हैं। 'आत्मैवेदं जगत्सर्वम्' इस श्रुति के अनुसार यह विश्व आत्मा ही तो है ! वह स्वयं अपनेमें अपनेसे अपना ही सृष्टि, पालन और संहार रूपसे अभिनय करता है। इस जगत्में आत्मासे अतिरिक्त कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। आध्यात्मिकादि त्रिविध भेदकी जो प्रतीति हो रही है और सत्त्वादिगुणों का कार्य जो यह सारा प्रपञ्च प्रतीत हो रहा यह सब मायासे है जैसे कि रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होती है। जैसे प्रकाश होनेपर रज्जुमें सर्पका भ्रम जाता रहता है वैसेही मेरा ज्ञान होनेपर यह सारा भ्रम भी तत्क्षण विलीन हो जाता है। उस समय मनुष्य सूर्यके समान सर्वत्र समभावसे विचरता है और वह

किसीकी निन्दा स्तुतिमें नहीं पड़ता। प्रत्यक्ष[1], अनुमान, श्रुति और अनुभवके द्वारा इस जगत्को मिथ्या जानकर साधक किसीका संग न करे। वह संसारमें अकेला ही विचरे।

इसपर उद्धवने कहा—हे भगवन्! आत्मा द्रष्टा और चेतन है। उसे संसार हो नहीं सकता। अब रही देहकी बात, वह दृश्य और जड़ है उसके लिये भी संसारका प्रश्न नहीं उठता। तब यह संसार होता किसको है किसीको नहीं। किन्तु दुःखोंकी प्रतीति इन दोनोंको ही होती है, इसका कारण क्या? इस पर भगवान्ने कहा—उद्धव सुनो!

यावद् देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः सन्निकर्षणम्।
संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः॥ १२॥

जबतक देह इन्द्रिय और प्राणके साथ जीवका आकर्षण रहेगा तब तक अज्ञानी पुरुषको इस मिथ्याभूत संसारकी प्रतीति होती ही रहेगी, ठीक वैसे ही जैसे कि स्वप्नमें सिर कटनेकी प्रतीति होती है। जागनेपर जैसे स्वप्न अनर्थकारी नहीं रहता वैसे ही 'ज्ञान' होनेपर संसारकी प्रतीति भी नहीं रहती। शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ मोह, जन्म, मृत्यु आदि मात्र देहाभिमानसे ही जीवको प्राप्त होते हैं आत्माको नहीं। यह कालचक्रका मारा नाना उपाधियोंसे घिरा हुआ यह जीव संसारमें भटकता फिरता है। इसीसे उसे यह सब विपरीत बोध हो रहा है। यद्यपि संसार 'निर्मूल' है, फिर भी यह मनके सहारे इन्द्रजालके समान नानारूप धारणकर फैला हुआ है। भक्तिद्वारा प्राप्त ज्ञानरूपी तीक्ष्ण खड्गसे इस इन्द्रजालको काटकर मुनि लोग जीवन्मुक्त हो निर्भय विचरते हैं। इस ज्ञानखड्गकी प्राप्ति सद्गुरुकी कृपा

---

१. प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा।
आद्यन्तवदसद् ज्ञात्वा निःसङ्गो विचरेदिह॥ ९॥

प्रत्यक्षेण घटादीनामाद्यन्तवत्त्वम्। अनुमानेन यथा-पृथिव्यादि आद्यन्तवत् दृश्यत्वाद् घटादिवत्। अथवा पृथिव्यादि असत् सावयवत्वात् घटादिवत्, यन्नैवं तन्नैवं यथा आत्मेति। निगमेन वेदेन। 'नेह नानास्ति किञ्चन' इति, तस्माद्वा एतस्मादात्मनः सकाशादाकाशः सम्भूतः' इत्यादिश्रुतेरा-काशादीनां जन्यत्वेनानित्यत्वात् यज्जन्यं तद्विनाशीति व्याप्तेः। आत्मसंविदा स्वानुभवेनापि सर्वमसद् दृश्यत इति।

पर ही अवलम्बित है। वह उनके उपदेशोंका मनन करनेसे होती है। अतः प्रतिक्षण अपने मनमें ऐसा विचार करते रहना चाहिये। जैसे—

न यत् पुरस्तादुत यन्न पश्चान् मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम्।
भूतं प्रसिद्धं च परेण यद् यत्तदेव तत् स्यादिति मे मनीषा॥ २१॥

यह जगत् पहले भी नहीं था और अन्तमें भी नहीं रहेगा। इसलिए उसका यह मध्यका अस्तित्व भी मिथ्या है। यह केवल स्वप्नके समान-व्यवहारमात्र है। वास्तवमें इस जगत्के रूपमें भी सत्य अविनाशी ब्रह्मही भासित हो रहा है; श्रुति कहती है 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अतः जो जिससे उत्पन्न या प्रकाशित होता है, वह वस्तुतः वही है इसमें सन्देह नहीं। जैसे मिट्टीसे घट शराव आदि, सुवर्णसे कटक, कुण्डलादि जो भी उत्पन्न होते हैं, वे सब अन्ततः मिट्टी या सुवर्ण ही तो हैं; उनसे अतिरिक्त नहीं।

वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।

घटकी मृत्तिकाकी तरह इस जगत्के आदि अन्त और मध्य तीनों कालमें ब्रह्मकी ही सत्ता है अन्य कुछ नहीं। जगत्की सत्ता न आदि में है और न अन्त में है, मध्यमें ही केवल रज्जुमें सर्पकी तरह भासित हो रही हैं परमार्थतः नहीं! इसलिये ब्रह्मर्षियोंने साक्षात् अनुभवकर ब्रह्मको सत्य और जगत्को मिथ्या कहा है। मेरी स्तुतिमें देवगण कहा करते हैं—

त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात्।

ऐसा निरन्तर श्रवण-मनन और निदिध्यासन करनेसे, साधकको मेरे स्वरूप का शनैः-शनैः साधनानुसार ज्ञान होने लगता है। फिर, उसे जगत्की सत्ता भासित नहीं होती। यहाँ शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण आदि कोई भी पदार्थ नहीं है। केवल चारों ओर मायाका जाल ही बिछा पड़ा है। जिसे यह ज्ञान प्राप्त हो गया उसकी इन्द्रियाँ, निश्चल हों अथवा चञ्चल हों, उसे गुण या दोष कुछ भी नहीं लगता। जैसे आकाशमें मेघोंके रहने न रहनेपर सूर्यको कुछ नहीं होता। फिर भी विवेकी पुरुषको सांसारिक मायिक विषयोंको संग नहीं करना चाहिये। अज्ञानी जीव इन्द्रियों द्वारा नाना प्रकारके कर्म कर बन्धनमें पड़ जाते हैं। ज्ञानी पुरुष शरीरमें रहते हुए सब कुछ करते हुए भी मैं कुछ नहीं करता इस भावनासे बन्धनमुक्त हो केवल आत्मसुखका अनुभव करता है; उसकी जीवन्मुक्त अवस्था हो जाती है! उसे चलते फिरते, खाते, पीते, देखते सुनते, भी शरीरका भान नहीं रहता। प्रकृति,

दासीकी तरह स्वयं ही उसके शरीरके रक्षार्थं खान-पानकी व्यवस्था करती है।

यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद् विधत्ते।
एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥

जैसे सूर्यका उदय घट, पट आदि पदार्थोंकी रचना नहीं करता, किन्तु नेत्रों के सामनेका अन्धकाररूपी आवरण दूर कर घट-पट आदि पदार्थोंको प्रकाशित कर देता है, ठीक वैसे ही अनवरत मेरे तीव्र ध्यानसे प्रादुर्भूत विद्या शक्ति बुद्धिके अज्ञानरूपी आवरणको हटा देती है जिससे इस जगत्‌में सर्वत्र एक मेरी ही सत्ता भासित होने लगती है। इस अवस्थामें जीवके सुख-दुःख जन्म-मृत्यु भय सर्वदाके लिये विलीन हो जाते हैं और वह इसी शरीरमें परम आनन्दका अनुभव कर कृतार्थं हो जाता है। हे उद्धव ! मैंने संक्षेपमें तुमसे आत्मसम्बन्धी इस ज्ञानयोगका निष्कर्ष वर्णन किया है। तुम प्रतिक्षण एकान्तमें बैठकर इसका मनन करते रहो। इससे फिर तुम्हें किसी प्रकारका सांसारिक क्लेश न होगा और न मेरा वियोग ही कष्ट दे सकेगा।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक-पारायणका उन्तीसवाँ विश्राम]

उन्तीसवाँ अध्याय

भगवत्प्राप्तिके साधनोंमें सर्वोत्तम अमृतस्रावी 'भक्तियोग' का पुनः संक्षिप्त वर्णन

उद्धवने कहा—हे भगवन् !

सुदुश्करामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः।
यथाञ्जसा[1] पुमान् सिद्ध्येत् तन्मे ब्रूह्यञ्जसाच्युत[2] ॥ १ ॥

---

१. अञ्जसा अनायासेन।
२. अञ्जसा सुबोधं यथास्यात्तथा साधनं ब्रूहीत्यन्वयः।

देहाभिमानी पुरुषके लिये ज्ञानयोगका मार्ग अत्यन्त कठिन है। इसलिये मनुष्य सरलतासे जिस प्रकार मुक्ति प्राप्त कर सके, ऐसा कोई सुगम साधन बतायें। प्रायः देखा और सुना जाता है कि योगियोंको मनके निग्रहमें महान् क्लेश उठाना पड़ता है क्योंकि वासना क्षीण न होनेके कारण उसका पूर्णरूपसे निग्रह नहीं हो पाता, प्रायः उसका झुकाव विषयोंकी ओर ही रहा करता है।

अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम्। भा० १०।५१।६१

किन्तु भक्तजन आपके सुकोमल चरणकमलका आश्रय ले बड़ी सरलतासे मनको रोक लेते हैं, उनका मन वहीं रूपसुधामाधुरीमें एकत्र केन्द्रित हो जाता है, वे कभी मन या उसकी जननी मायासे पराजित नहीं होते। ज्ञानका अहंकार करनेवालोंका तो पद-पदपर पतनका भय बना ही रहता है यह ध्रुव है। आप सरीखा कौन ऐसा दयालु देवता होगा जिसने रामावतारमें वानर और भालुओंसे भी मैत्री कर उन्हें कृतार्थ कर दिया। विशेष क्या कहें जो आप बाहर आचार्यरूपसे गुरु बनकर एवं अन्दर अन्तर्यामी रूपसे नियन्ता बनकर जीवोंकी विषय-वासनाको नष्टकर उनके समक्ष अपने स्वरूपको प्रकट करते हैं।

योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति।६।

कृतज्ञ पुरुष कभी भी आपके उपकारको भूल नहीं सकते। वे सदा आपके ऋणी ही रहेंगे।

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! जब इस प्रकार अत्यन्त अनुरक्तचित्त हो उद्धवने भगवान्से पूछा तब वे मुस्कराते हुए बड़े प्रेमसे कहने लगे—हेउद्धव! अच्छा अब मैं तुमसे सुखसाध्य धर्मोंका पुनः संक्षेपमें वर्णन करता हूँ जिनके श्रद्धापूर्वक अनुष्ठानसे मनुष्य इस दुर्जय संसारसे पार हो जाता है। यहाँ भगवान्ने १३ श्लोकोंमें भक्तिलक्षण भागवतधर्मोंका निष्कर्ष रूपमें वर्णन किया है। भगवान् श्रीकृष्णने कहा—उद्धव! सात्त्विक बुद्धिसे अहंकारका त्याग कर मन सहित १० इन्द्रियोंसे मनुष्य जो भी नित्य-नैमित्तिक कर्म करे, उसे मुझे ही अर्पण करता जाय। संकल्प-विकल्प भी सब मेरे ही निमित्त हों। मन सर्वदा भक्तिमें और भगवद्भक्तोंमें लगा रहे। काशी वृन्दावन द्वारका आदि पुण्य देशोंमें निवास करे। भक्तोंका पूजन-सत्कार कर, उनसे मेरी पवित्र कथा सुने। एकादशी अथवा प्रदोष, दोनोंमेंसे किसी एकका या दोनों का यथा-शक्ति नियमपूर्वक व्रत करे। मेरे मन्दिरके उत्सवोंमें द्रव्योंसे सहायता करे। नृत्य, वाद्य और गान सहित मेरे नामोंका स्वयं कीर्तन करे और करावे।

सब प्राणियोंमें तथा अपनेमें व्यापक रूपसे मुझे देखे। किसी प्राणीका मन या वाणी से कभी अनादर न करे। (१) ब्राह्मण और चाण्डालमें, (२) ब्रह्मस्वहारी और ब्रह्मण्यमें, (३) सूर्य और अग्निकणमें, (४) अक्रूर और क्रूरमें अर्थात् सभीमें ब्रह्मदृष्टि रखनेवाला पंडित कहलाता है।

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः ॥ १४ ॥

पहलेमें जातितः, दूसरेमें कर्मतः, तीसरेमें गुणतः और चौथेमें स्वभावतः वैषम्य है। सबमें ईश्वरकी भावना रखने वाले प्राणीकी धीरे-धीरे अहंकार स्पर्धा, असूया (निन्दा), तिरस्कार आदि सभी दुर्भावनाएँ शीघ्र नष्ट हो जाती हैं।

विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम्।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥ १६ ॥

हँसने वालोंकी उपेक्षा कर, ऊँच-नीच दृष्टिको हटा, लज्जाका त्यागकर कुत्ता, चाण्डाल, गौ, गधा इन सबको दण्डवत् प्रणाम करे। इस श्लोकसे भगवान्‌ने ज्ञानी पुरुषकी उच्चतम अवस्थाका निर्देश किया है। यदि ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो पहले इस पद्धतिसे प्रणाम करे।

सम्मानं पुल्कसादीनां गोविप्रे दण्डवन्नतिः।
खरादेर्यवसादानं प्रणतिर्दण्डवद् भवेत् ॥ (श्रीविजयध्वज तीर्थ)

चाण्डालादि में हेय दृष्टि न करना, गौ और ब्राह्मणको प्रणाम करना। खर आदि पशुओंको घास-भूसा देना। यह भी दण्डवत् प्रणाम कहा जाता है।

जब तक प्राणीमात्रके प्रति ईश्वरदृष्टि न हो तब तक निरन्तर श्रद्धा-भक्तिसे मेरी उपासना करता रहे। 'भक्ति लक्षण धर्म' का आरम्भ ही बड़े महत्त्वका है। इसमें वैगुण्य तो कुछ होता नहीं और प्राणी महान् भयसे सहज ही त्राण पा जाता है। बुद्धिमानोंका यही विवेक है और यही उनका चातुर्य है कि इस नश्वर देहसे मुझ सत्य और अविनाशी परमात्माको प्राप्त कर लें। हे उद्धव! हमने तुम्हें सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञानका निष्कर्ष रूपसे यह सार तत्त्व बतला दिया। यह ज्ञान देवताओंको भी दुर्लभ है। जो मनुष्य श्रद्धा-विश्वाससे एकान्तमें इसका मनन करता है वह मेरी पराभक्ति प्राप्तकर कर्मबंधनोंसे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। हे सखे! तुमने बड़े प्रेमसे मेरा यह उपदेश सुना है। कहो, तुम्हारे मनका शोक और मोह दूर हुआ या

नहीं ? ध्यान रहे, मेरे इस ज्ञानका उपदेश श्रद्धालु भक्तको ही करना चाहिए, नास्तिकोंको नहीं। जैसे अमृतका पान कर लेने पर कोई पेय वस्तु शेष नहीं रह जाती उसी प्रकार जिज्ञासु पुरुषके लिये इस मदुपदिष्ट रहस्यको जान लेनेपर कुछ ज्ञातव्य विषय शेष नहीं रह जाता। शुकदेवजी बोले— हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा इस अमृतमय उपदेशका श्रवणकर उद्धवके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली, कंठ रुँध गया। वे भावावेशमें कुछ बोल न सके। हाथ जोड़कर भगवान्के चरणोंपर गिर पड़े। कुछ देर बाद उठकर, बोले— नाथ! आपने दया कर मेरे हाथमें विज्ञानरूपी ऐसा दीपक दे दिया जिससे मेरा अज्ञानरूपी अन्धकार सदाके लिये नष्ट हो गया। अब मैं अणु-अणुमें आपकी सत्ता देख रहा हूँ। भगवन्! मैं आपके चरणोंमें बारम्बार नमस्कार करता हूँ। अब आप ऐसा अनुग्रह करें जिससे आपके चरण-कमलोंमें मेरी भक्ति और यह आपका ज्ञान सदा बना रहे। इसपर भगवान्ने कहा—उद्धव ! तुम बदरिकाश्रम चले जाओ। वहीं मेरे इस उपदेशका स्वस्थचित्त से मननकर इस 'भागवत धर्म'का आचरण करो। इससे तुम शीघ्र गुणातीत हो जाओगे। फिर तुम्हें कोई भी सांसारिक क्लेश विचलित न कर सकेगा।

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! भगवान्के ऐसा कहने पर उद्धव जाते समय भगवान् की परिक्रमा कर पुनः उनके चरणोंमें अपना सिर रख उनका अश्रुधारासे अभिषेक करने लगे। भगवान्के वियोगसे विकल उद्धव भगवान् को छोड़ना नहीं चाहते थे। उन्हें महान् कष्ट का अनुभव हो रहा था। यह देख भगवान्ने उन्हें अपनी चरणपादुका दे दी। उद्धव उन्हें अपने सिर पर रख पुनः-पुनः लौटकर भगवान्को देखते प्रणाम करते और रुदन करते हुए बदरिकाश्रम की ओर चल दिये[1]। वहाँ जाकर उद्धवने भगवान्के उपदेशानुसार कठोर तपस्या कर उनकी गति सामीप्य मुक्ति प्राप्त कर ली।

हे राजन्! इस प्रकार भगवान्ने वेदमें भरे हुए भक्ति-वैराग्य से ओत-प्रोत देवदुर्लभ इस ज्ञानरूपी अमृतको निकालकर उद्धवको पिलाया और उन्हें कृतार्थ कर दिया। जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे इस देवदुर्लभ उपदेशका श्रवण मनन तथा निदिध्यासन करेगा वह तो मुक्त होगा ही इसमें सन्देह नहीं किन्तु उसके सम्पर्क में आने पर सारा जगत् भी मुक्त हो सकता है यह इस उपदेश की महत्ता है। जिनकी कृपासे जगत् को यह अमृतमय अमूल्य उपदेश

---

१. यहां उद्धवका गमन तृतीयस्कन्धोक्त उपक्रम के अनुसार समझना चाहिये अन्यथा पूर्वापरग्रन्थ विरुद्ध हो जायगा।

प्राप्त हुआ उन जगत्के आदि कारण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको मैं मालिनीछन्द के अन्तिम पदके द्वारा प्रणाम करता हूँ।

पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥४९॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

तीसवाँ अध्याय

भगवान्‌की इच्छाके अनुसार महर्षियोंके शापसे यदुकुलका संहार

राजा परीक्षित्‌ने शुकदेवजीसे पूछा—हे मुने !

ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम्।
द्वारवत्यां किमकरोद् भगवान् भूतभावनः ॥ १ ॥

भगवान्‌के अनन्य भक्त उद्धवजीके वदरिकाश्रम चले जानेपर सृष्टि, पालन और संहारके कर्ता भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें क्या किया ? ब्रह्मशापसे नष्ट होनेवाले यदुकुलमें विराजमान भगवान्‌ने अपना लोकप्रिय विग्रह कैसे अन्तर्हित[1] किया ? शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! एक समय भगवान् श्रीकृष्ण सुधर्मा नामक सभामें विराजमान थे। उसी समय सूर्यके चारों ओर मण्डल 'भूकम्प' उल्कापात तथा धूमकेतु आदिका उदय ये बड़े-बड़े मृत्युसूचक उत्पात होने लगे। यह देखकर भगवान्‌ने सभामें बैठे यदुवंशियोंसे कहा—हे यादवगण ! ये विनाशसूचक भीषण उत्पात हो रहे हैं ! इसलिये तुम लोगोंको अब यहाँ रहना उचित नहीं। तुम लोग शीघ्र ही यहाँसे स्त्री, बाल-वृद्धों सहित शंखोद्धार तीर्थमें चले जाओ।

शङ्खोद्धारं[2] व्रजन्त्वितः ॥ ६ ॥

---

१. भगवान्‌का विग्रह सच्चिदानन्दरूप होनेके कारण उसका यहाँ त्याग विवक्षित नहीं है। वस्तुतः 'यस्य पृथिवी शरीरम्' इस श्रुतिके अनुसार पृथिवीका त्याग किया ऐसा अर्थ करना चाहिये।

२. यह तीर्थ द्वारकाके समीप प्रभासक्षेत्रमें है। त्रितमुनिके शापसे कक्षीवान् मुनि शंखरूप हो गये थे। भगवान् श्रीकृष्णने उनका उद्धार किया था। इसीसे उसका नाम शंखोद्धार पड़ा।

हम सब लोग भी प्रभासक्षेत्र चलेंगे, जहाँ पश्चिमवाहिनी सरस्वती वर्तमान हैं। वहाँ स्नान पूर्वक व्रतका संकल्प कर पवित्रतासे ब्राह्मण तथा देवताओंकी गौ भूमि, स्वर्ण, वस्त्र तथा और भी नाना प्रकारके द्रव्य दान दक्षिणासे पूजा करेंगे जिससे इस महान् अरिष्टकी शान्ति हो सके। यह प्रस्ताव सुनकर सभी यदुवंशी प्रभास क्षेत्रको चल दिये। वहाँ उन्होंने अरिष्टशान्तिके लिये नाना प्रकारके श्रेयके साधनभूत मांगलिक कृत्य किये। अनन्तर प्रारब्धके वशीभूत हो उन सबने यथेच्छ मैरेयक (महामदिरा)-का पान किया। पपुर्मैरेयकं मधु।[१] जिससे उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और उन्हें अपने-पराये का भी कुछ ज्ञान न रहा। सायंकाल होते ही नशेमें चूर यादवगण आपसमें ही एक दूसरे पर व्यंग कसते हुए जूझने लगे। क्रोधमें भर उन लोगोंने अपने-अपने हाथोंमें धनुष, तलवार, गदा, भाला, गड़ाँसा आदि नाना प्रकारके शस्त्र उठा लिये। प्रद्युम्न, साम्ब, अक्रूर, भोज, अनिरुद्ध, सात्यकि आदि वीर यादव आपसमें ही मरने मारने लगे। पुत्र पितासे, भाई भाईसे, भानजा मामासे, भतीजा चाचासे, नाती नानासे, मित्र मित्रोंसे, और सुहृद सुहृदोंसे जमकर युद्ध करने लगे। मदिरासे मोहित हुए सम्बन्धी लोग अपने सम्बन्धियोंको ही मारने लगे।

मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिर्ज्ञातीस्त्वहन् ज्ञातय एव मूढाः।१६।

इस भीषण हृदयविदारक संघर्षमें शस्त्रोंके नष्ट होनेपर उन्होंने समुद्रतटपर जमे हुए लम्बे-लम्बे सरकण्डे उखाड़ लिये जो इनके हाथोंमें आते ही भगवान् की इच्छासे तीक्ष्णधार वाले वज्रके समान कठोर हो गए। वीर यादवगण सरकण्डोंसे ही आपसमें एक दूसरेपर प्रहार करने लगे। श्रीकृष्ण और बलरामजी जब उन्हें रोकने आये तब वे अपना शत्रु समझकर उन्हें भी मारने दौड़े। इससे क्रुद्ध हो वे दोनों भी उनपर टूट पड़े। इस प्रकार, बाँस के बनमें आग लग जानेसे बाँस बनके समान स्वल्पकालमें ही सम्पूर्ण यदुवंशी आपसमें ही मर-कट कर धराशायी हो गये। यदुकुलके नष्ट हो जानेपर भगवान्ने पृथ्वीका भार पूर्णरूपसे उतरा हुआ माना। इधर बलरामजीने समुद्रतटपर आसीन हो नेत्र बन्दकर योगद्वारा इस लोकका परित्याग कर दिया और सशरीर अपने लोकको[२] चले गये। बलरामजीका निर्याण देख भगवान् श्रीकृष्ण एक अश्वत्थ वृक्षके मूलमें जा विराजे। वहाँ वाम पादको दक्षिण ऊरुपर रखकर शान्त मुद्रामें चुपचाप लेट गए। इसी समय

१. स्वरूपेण महावैकुण्ठं प्रति गमनं स्वांशरूपेण पातालतलगमनं च।
२. कदम्बरससंभूता मदिरा सुरसा भवेत्।
सैव मैरेयकं प्रोक्तं यत्पानाद् भ्रश्यते मतिः ॥ तीर्थं ॥

भगवदिच्छा से प्रेरित हो जरा[1] नामका व्याध, जिसने मछलीके उदरसे प्राप्त मूसलके लौहखण्डसे अपने बाणकी नोक बनायी थी उसी बाण से उसने भगवान्‌के चरणको मृगका मुख समझकर उसे वेधा।

मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध[2] मृगशङ्कया।

किन्तु अतीव कोमल उस चरणका स्पर्श करते ही वह बाण कुण्ठित हो पृथ्वीपर गिर पड़ा उसे वेध न सका। कुछ चित्रकार अज्ञानतावश विना समझे-बूझे भगवान्‌का चित्र बना कर उनके चरणसे रक्तस्रावका प्रदर्शन कराते हैं यह अत्यन्त अनुचित[3] है।

---

१. जरेति टावन्तस्य स्त्रीत्वेऽपि नाम्नि पुंस्त्वादिनियमो नास्तीति बोधितमनेन यथा वसिष्ठस्य पुत्रः शक्तिरित्यत्र स्त्रीत्वम्।

२. विव्याधेति—मृगो मया विद्ध इति लुब्धकस्याभिमानदृष्ट्यैव प्रयुक्तम्। वस्तुतस्तदीयः शरश्चरणं केवलं पस्पर्श न तु विव्याध तदङ्गस्य सच्चिदानंदरूपत्वात्। अन्यथा 'भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः' इत्यत्र पादाच्छरं निष्क्रामयामासेत्युक्तं स्यादिति (वंशीधरी)

३. अतः इस प्रकारके चित्र सर्वथा अशुद्ध है। प्रेसके कतिपय अधिकारियोंने भी इस पर कुछ विचार नहीं किया और मनमानी ढंगसे भगवान् का ऐसा शोकाकुल उदासी लिये बीभत्स चित्र बना डाला जिसे देखते ही क्षोभ होता है। जहाँ भौतिक घातक पदार्थ योगीके शरीर पर भी आघात नहीं पहुंचा सकते।

अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः।

वहाँ भगवान्‌के दिव्यातिदिव्य सच्चिदानन्द विग्रहको साधारण भौतिक बाण वेधन करे, यह कभी संभव हो सकता है? कहीं-कहीं चित्रमें भगवानके बैठानेका प्रकार भी ठीक नहीं। दक्षिण पादको वाम जानु पर रक्खा गया है, जबकि वाम पादका दक्षिण ऊरु पर रखने का विधान है। कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पङ्कजारुणम्। वामं पादं दक्षिणे ऊरौ कृत्वा आसीनमिति श्रीधरी। ऐसे अशास्त्रीय चित्रोंका निर्माण करना एक अपराध है अतः उन निर्मित चित्रोंको रेशमी वस्त्रमें बांध पुष्पमालाओंसे अलङ्कृत कर सादर गंगाके मध्यमें निमग्न कर देना चाहिये और भविष्यमें कभी ऐसे चित्र न बनाये जांय। जो बने हुए ब्लाक हैं उन्हें भी तदवस्थ कर देना चाहिये। उनके स्थान पर नये ब्लाकों का निर्माण किया जाय। पृष्ठसे अश्वत्थ वृक्षका आश्रय ले वाम पादको

बाणका प्रहार कर समीप आनेपर व्याधने चतुर्भुज रूपमें भगवान्को देखा और किंकर्तव्य विमूढ हो स्तब्ध रह गया। अपराध से भयभीत हो वह उनके चरणों में जा गिरा और गिरकर अपने अपराधकी क्षमा-याचना कर कहने लगा। हे भगवन्! जिनके स्मरण मात्रसे मनुष्यों का अज्ञानरूपी अन्धकार निवृत्त हो जाता है उन आपके साथ मैंने बड़ा ही पापकर्म किया। आप मुझे दण्ड दें जिससे मैं पुनः सत्पुरुषों के साथ ऐसा अपराध न कर सकूं। भगवान्ने कहा—अरे व्याध! तुम डरो नहीं। उठो? मेरी इच्छासे ही यह कार्य हुआ है। तुम चिन्ता न करो। सानन्द मेरे वैकुण्ठ लोक चले जाओ। यह सुन वह व्याध भगवान्की परिक्रमाकर विमान द्वारा सीधा वैकुण्ठ चला गया। इधर, सारथि भगवान् को खोजता हुआ तुलसीमाला की सुगन्धसे आकृष्ट हो वहाँ पहुँचा जहाँ भगवान् अश्वत्थ के मूल में बैठे थे। वह उन्हें देखते ही उनके चरणोंपर जा गिरा। उसके देखते-देखते ही ध्वजा और घोड़ों सहित भगवान् का रथ आकाशमें चला गया। उसके पीछे भगवान् के आयुध भी चले गये। उससे अत्यन्त विस्मित चित्त सारथिको देख भगवान्ने कहा—दारुक! तुम घबराओ नहीं, द्वारका लौट जाओ। वहाँ जाकर हमारे परिवार से यादवों का निधन, रामका निर्याण तथा मेरा भी अन्तर्धान सुना देना, बादमें तुम सब सपरिवार अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ चले जाना। मेरे. अन्तर्हित होते ही समुद्र इस पुरीको डुबा देगा। तुम इसे मेरी लीला जानकर किसी प्रकारका शोक न करना। भगवान्के ऐसा कहनेपर सारथि ने भगवान्की परिक्रमा कर तीन वार प्रणाम किया। पुनः उनके चरणोंको अपने हाथोंसे सिर पर रख पुनः उनका ध्यान करता हुआ दुःखित चित्त से द्वारका को लौट गया।

तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ।५०।

जिस समय यदुकुलका संहार हुआ था उस समय १३ दिन का पक्ष था यह संसार के लिये बड़ा अनिष्टकारक होता है।

त्रयोदशदिने पक्षे यादवा निधनं गताः।

धृतराष्ट्र की सती पत्नी गान्धारीने पूर्वमें यदुकुलके नाशका जो शाप दिया था वह केवल निमित्तमात्र था और वह भी भगवान् की इच्छा से

दक्षिण ऊरु पर रखकर शान्तमुद्रामें भगवान् आसीन हों। मुखकी आकृति सुस्मित प्रसन्नता लिये हो। म्लानता की झलक किञ्चिन्मात्र भी प्रतीत न हो। बाणका पैर में स्पर्श होते ही वह कुण्ठित हो नीचे गिर रहा हो ऐसा भाव चित्र में व्यक्त होना चाहिये।

हुआ था। भगवान्‌ने विचारा कि कलिके प्रभावसे सत्पुरुषोंके भी मन विकृत हो जायँगे। ऐसी दशामें यदुवंशियोंकी दुर्गति न हो इस अनुग्रहबुद्धिसे भगवान्‌ने स्वयं ही अपने कुलका संहार कराया था।

सतामपि कलौ प्राप्ते विकारो मानसो भवेत्।
तस्माद् यदूँश्च संजह्रे नैते स्युः पापिनः खलु॥
इत्यनुग्रहबुद्ध्या हि संजह्रे स्वकुलं विभुः (वंशीधरी)

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका तीसवाँ अध्याय समाप्त।

—:❀:—

इकतीसवाँ अध्याय

ऐहिक लीला समाप्त कर भगवान् श्रीकृष्णका सशरीर गोलोकगमन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्।

अथ तत्रागमद् ब्रह्मा भवान्या च समं भवः।
महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः॥ १॥
द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः।
गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरेः कर्माणि जन्म च॥ २॥

दारुक सारथिके चले जानेपर ब्रह्मा, पार्वतीसहित भगवान् शिव, इन्द्र आदि देवता तथा सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर आदि सभी गण भगवान्‌का निर्याण देखनेकी उत्कंठासे वहाँ उपस्थित हुए। सबने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। उस समय आकाशमण्डल विमानोंसे छा गया। जय-जयकारकी ध्वनिके साथ पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी। गन्धर्वगण अप्सराओंके साथ सानन्द नाच-गान करने लगे। भगवान्‌ने अपनी विभूति ब्रह्मा आदि देवताओंको सस्नेह देख अपना मन गोलोकस्थ स्वरूपमें स्थिर कर नेत्रकमल बन्द कर लिये। योगीपुरुषोंके धारणा-ध्यानका विषय तथा गोलोकके आधारभूत अपने दिव्यातिदिव्य श्रीविग्रहको अलौकिक प्रकाश-पुंजसे अन्तर्हित कर भगवान् सशरीर वैकुण्ठ होते सीधे गोलोक चले गये।

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत् स्वकम्॥ ६॥

उस समय स्वर्गमें नगाड़े बज उठे और आकाशसे बारंबार पुष्पवृष्टि होने लगी। सत्य, धर्म, धृति, कीर्ति तथा श्री आदि सभी शक्तियाँ पृथ्वीसे

उठकर भगवान्‌के पीछे-पीछे चल दीं। जैसे बिजली चमककर एक स्थानसे दूसरे स्थानपर चली जाती है, वैसे ही भगवान् भी इस लोकसे अपने लोक चले गये। उनकी गति कोई लक्ष्य न कर सका। इन्द्र आदि देवता भी चकित हो उस अद्‌भुत योगगतिकी साधु-साधु करते प्रशंसाकर अपने-अपने लोक चले गये। केवल महावैकुण्ठ तथा क्षीरसमुद्र आदि स्थानोंसे लेनेके लिये आये हुए पार्षदोंने ही उन्हें देखा और उन्हींके साथ भगवान् अपने धामको चले गये। सृष्टि, पालन और संहार यह सब भगवान्‌की ही लीला है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर भगवान्‌की इस दिव्य-गतिका श्रद्धा-भक्तिसे कीर्तन करता है वह कालान्तरमें निश्चित उसे पा जाता है। सारथिने द्वारकामें जाकर वसुदेव और उग्रसेनके समक्ष रो-रोकर यादवोंके निधन तथा भगवान्‌का सारा समाचार कह सुनाया। उसे सुनते ही वे सबके सब शोकसे मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े। कुछ देर बाद वसुदेव आदि सभी पारिवारिक जन प्रभास-क्षेत्र पहुँचे। देवकी, रोहिणी आदि उनकी स्त्रियाँ भी उनके पीछे-पीछे चल दीं। मृतक पतियोंके शरीरोंसे लिपटकर स्त्रियाँ नाना प्रकारसे विलाप करने लगीं और विरह से मूर्च्छित हो उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। रुक्मिणी आदि भगवान्‌की स्वरूपभूत पत्नियाँ अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं। अर्जुनने दुःखित बन्धु-बान्धवोंको नानोपदेश द्वारा सान्त्वना देकर मृतकोंका पारलौकिक संस्कार कराया। इधर, भगवान्‌के अन्तर्हित होते ही समुद्रने तत्क्षण द्वारकाको डुबा दिया। केवल एक भगवान्‌का दिव्यभवन शेष रह गया जहाँ भगवान् सर्वदा निवास करते हैं और स्मरण मात्रसे प्राणियोंके समस्त पापोंका नाश कर देते हैं।

नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान् मधुसूदनः ॥ २२ ॥

अनन्तर अर्जुन बचे हुए स्त्री, बाल-वृद्धोंको इन्द्रप्रस्थ ले गये और उसके समीपस्थ मथुरा नगरीमें शूरसेनादि देशोंके पालनार्थ श्रीकृष्णके प्रपौत्र अनिरुद्धके पुत्र वज्रका ब्राह्मणोंद्वारा राज्याभिषेक करा दिया।

मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः।

हे राजन्! तुम्हारे पितामह युधिष्ठिर भीम आदि अपने बन्धुओंका इस प्रकार निधन सुन वंश प्रवर्तक तुम्हें राज्यका भार सौंपकर उत्तर दिशामें हिमालय पर चले गये। जो मनुष्य श्रद्धाभक्तिसे भगवान्‌के जन्मकर्मोंकी इस मंगलमयी कथाका श्रवण या वर्णन करता है वह कायिक वाचिक और मानसिक इन त्रिविध पापोंसे मुक्त होकर भगवान्‌के परम धामको प्राप्त करता है।

य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च।
कीर्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २५ ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके एकादश स्कन्धका इकतीसवाँ अध्याय समाप्त।

एकादश स्कन्ध समाप्त।

द्वादश स्कन्ध प्रारम्भ

सुनवलक्षणलक्षितविग्रहं सुजनदुर्जनसंग्रहनिग्रहम् ।
अखिललोकसमुद्धरणक्षमं तदिदमाश्रयतत्त्वमिहोच्यते ॥

इस स्कन्धमें १३ अध्यायोंसे पुराणके १०वें लक्षण 'आश्रयका' वर्णन किया गया है।

पहला अध्याय

कलियुगीय राजाओंका वंश-वर्णन

राजा परीक्षित्‌ने शुकदेवजीसे पूछा—हे मुने !

स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ।
कस्य वंशोऽभवत् पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥१॥

यदुकुलके भूषण भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम चले जानेपर पृथ्वीपर किस किसका राज्य हुआ, कृपया आप इसका वर्णन करें। शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! हम नवम स्कन्धमें सोमवंशके वर्णन-प्रसंगमें जरासन्धके पुत्र सहदेवसे लेकर रिपुञ्जयपर्यन्त २० राजाओंका वर्णन कर चुके हैं। रिपुञ्जय का ही दूसरा नाम पुरञ्जय भी था। उसका मंत्री शुनक राजाको मारकर अपने पुत्र प्रद्योतको राजगद्दीपर बैठायेगा। उसका पुत्र पालक होगा। पालकका पुत्र विशाखयूप, उसका पुत्र रजक और रजकका पुत्र नन्दिवर्धन होगा। ये प्रद्योतवंशीय ५ राजा १३८ वर्षतक पृथ्वीका शासन करेंगे। फिर प्रद्योतसंज्ञक राजाओं के बाद शिशुनाग नामका राजा होगा और अन्तमें महानन्दि होगा। ये १० राजा ३६० वर्षतक पृथ्वी का पालन करेंगे। महानन्दिका पुत्र अपनी माता शूद्रीके गर्भसे उत्पन्न हो नन्द नामसे विख्यात होगा। इसीका दूसरा नाम महापद्म भी होगा। यह चक्रवर्ती राजा क्षत्रियोंका नाश करनेमें दूसरा परशुराम ही होगा। इसीके समयसे प्रायः अधार्मिक शूद्र राजा होंगे। नन्दके सुमाल्य आदि ८ पुत्र होंगे। ये १०० वर्षतक पृथ्वीका शासन करेंगे। चाणक्य अपनेपर विश्वास रखनेवाले नन्दको पुत्रों सहित

नष्ट कर मौर्यवंशके प्रथम राजा चन्द्रगुप्त को राजगद्दी देगा। फिर वारिसार अशोकवर्धन, आदि मौर्यवंशके १० राजा १३७ वर्ष तक राज्य करेंगे।

मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ।१५।

[मुरके वंशज मौर्य[1] कहे जाते हैं। मुर हीनजाति कैवर्त (मल्लाह) का वाचक है।] फिर, वृहद्रथ राजा होगा। उसका सेनापति पुष्यमित्र उसको मारकर स्वयं राजा बन बैठेगा। यह शुङ्गोंमें प्रथम होगा। अन्तमें देवहूति होगा। ये शुङ्गवंशीय १० राजा ११२ वर्षतक राज्य करेंगे।

शुङ्गा दशैते भोक्ष्यन्ति भूमिं[2] वर्षशताधिकम् ॥ १८ ॥

बादमें परस्त्रीगामी देवहूतिको मारकर मन्त्री कण्व स्वयं राजा बन बैठेगा। कण्वोंमें चौथे राजा सुशर्मा होंगे ये कण्ववंशीय चार राजा ३४५ वर्ष तक राज्य करेंगे।

सुशर्माको मारकर उसका भृत्य वली नामक शूद्र राजा कुछ कालतक राज्य करेगा। बाद, इसका भाई कृष्ण नामका राजा होगा। इस वंशके अन्तमें लोमधि राजा होंगे। ये ३० राजा ४५६ वर्षतक राज्य करेंगे। फिर ७ आभीरसंज्ञक, १० गर्दभी-संज्ञक, १६ कंक-संज्ञक, ८ यवन-संज्ञक, १४ तुरुष्क-संज्ञक, १० गुरुण्ड-संज्ञक ये राजा १०९९ वर्षोंतक राज्य करेंगे। अनन्तर, मौनजातीय ११ राजा ३०० वर्षतक राज्य करेंगे। मौन राजाओंका अन्त होनेपर किलकिला नगरीमें भूतनन्द आदि ५ राजा होंगे। ये १२६ वर्षतक राज्य करेंगे। भूतनन्द आदि राजाओंके बाह्लीक-संज्ञक १३ पुत्र होंगे। फिर, ७ आन्ध्र और ७ कोशल नामक राजा होंगे। बाद, मागधवंशीय विश्वस्फूर्जि नामक राजा होगा। यह दुष्ट सब वर्णोंको म्लेच्छ बना डालेगा। इन राजाओंके अत्याचार तथा नाना प्रकारके करोंसे पीडित होकर प्रजा परस्पर नाशको प्राप्त हो जायगी।

अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः ।४२।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादशस्कन्धका पहला अध्याय समाप्त।



---

१. 'मुरो दैत्यविशेषे च कैवर्ते चौषधे स्त्रियाम्' इतिकोशात्।

२. केचित्तु एते शुङ्गा दशवर्षशतानि विष्णुपुराणानुसारेण द्वादशाधिकानि १०१२ वर्षपर्यन्तं भोक्ष्यन्ति इत्यमपि व्याख्यान्ति।

दूसरा अध्याय

कलिके दोषोंका वर्णन, कल्कि अवतार तथा सत्ययुगका आगमन

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! इसके बाद बलवान् कालके प्रभावसे दिन प्रति-दिन धर्म, सत्य, दया, दान, आयु, बल, स्मृति आदि सभी क्रमशः नष्ट होते जायँगे। 'यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः' इसके अनुसार कलियुगमें धन होनेसे ही मनुष्य कुलीन, आचारवान् और गुणी समझे जायेंगे। धर्म और न्यायकी व्यवस्थामें मूल कारण बलको ही माना जायेगा। यथार्थताको नहीं। विवाह अपनी-अपनी रुचिके अनुसार होंगे। उसमें कुल-गोत्रादि नहीं देखा जायगा। क्रय-विक्रयादिरूप व्यवहारमें कपटता की प्रधानता रहेगी, निष्कपटता की नहीं। स्त्री-पुरुषकी श्रेष्ठता 'रति-कौशल' से होगी, 'कुल-आचार' से नहीं। ब्राह्मणत्वका चिह्न केवल प्रदर्शनार्थ 'जनेऊ' रह जायगा—'विप्रत्वे सूत्रमेव हि'। शौच सन्तोष आदि लक्षण नहीं। 'दृश्यतां मत्कण्ठे सूत्रं ब्राह्मणोऽह-मिति नतु वेदोच्चारणादि'।

आश्रमोंमें केवल दिखानेके हेतु दण्ड आदि चिह्न रह जायेंगे आचारविशेष नहीं। बिना घूस दिये मुकदमोंमें जीत न होगी। जो व्यर्थ बकवाद करेगा वही 'पण्डित' कहलायेगा। परस्पर स्वीकार करना ही विवाह होगा, शास्त्रीय-विधिसे नहीं। धनहीन गरीब 'असाधु' और पाखण्डी 'साधु' समझा जायगा। गन्दे साबुन आदिसे स्नान करना ही 'अलङ्कार' होगा, सुवर्णादि नहीं। दूरका जलाशय 'तीर्थ'[1] माना जायगा, गुरु गङ्गा आदि नहीं। भूषणोंके अभावसे केशोंका झोंटा रखना ही 'सुन्दरताका मुख्य साधन' होगा। पेट भर लेना ही 'परम पुरुषार्थ' माना जायगा, धर्म आदि नहीं। जो धृष्टता करेगा वही सत्यवादी समझा जायगा, यथार्थ भाषण नहीं। कुटुम्ब-पोषण ही 'चतुरता' मानी जायगी एवं धार्मिक कार्य लोकप्रतिष्ठाके लिये होंगे परलोकके लिये नहीं।

दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम्।

इस प्रकार सारा भूमण्डल धर्मविरोधी उच्छृङ्खल नीच पुरुषोंसे भर जायगा। चारों वर्णोंमें जो बलवान् होगा वही बलात् 'राजा' बन बैठेगा।

---

१. तीर्थं मुख्यं पिता माता गुरुः शास्त्रं तथा हरिः।
गौणं तीर्थं त्वम्मयं स्यादित्युक्तं तीर्थवेदिभिः॥

क्रूर प्रकृतिके राजा लोग नाना प्रकारके कर लगाकर डाकुओंके समान घरोंमें घुसकर प्रजाका धन अपहरण करेंगे। उससे दुःखित हो प्रजा पर्वतकी कन्दराओंमें चली जायगी। फल पुष्प शाक मूल पत्ते गुठली आदि खाकर किसी तरह अपना निर्वाह करेगी। कुछ प्रजा अनावृष्टिसे, कुछ भुखमरीसे कुछ रोग से कुछ शीत वात आतपसे और कुछ चिन्तासे नष्ट हो जायगी। ३०,२० या ५० वर्षोंकी ही मनुष्योंकी आयु 'परमायु' कही जायगी। अहो यह बड़ा पुण्यवान् है ५० वर्ष जी गया।

[1]त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम्॥ १२॥

प्रायः सभी वर्ण शूद्र हो जायँगे। वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जायगा। गौएं आकार तथा दुग्धसे बकरियोंके समान छोटी हो जायेंगी। संन्यास आदि आश्रम परिग्रह आदि लेनेके कारण गृहस्थतुल्य हो जायँगे अर्थात् संन्यासी ठाट-बाटमें गृहस्थोंसे कम न रहेंगे। यौन-सम्बन्धी ससुर-साले आदि ही सलाह देनेवाले मुख्य 'बन्धु' होंगे। जौ, गेहूँ, धान तथा हरीतकी आदि औषधियोंका गुण घट जायगा। मेघोंमें केवल बिजलियाँ चमकेंगी, वृष्टि न होगी। मनुष्योंके घर धर्म-कर्मसे हीन हो जायँगे। चोरी, डकैती, झूठ और दगेबाजीका बाजार गरम रहेगा। सर्वत्र उसका ही साम्राज्य छा जायगा। इस प्रकार मनुष्य जब गदहेके समान निर्लज्ज होकर दिन-रात मैथुनमें रत तथा भक्ष्याभक्ष्यके विचारसे शून्य हो जायँगे तब भगवान् कल्कि, धर्म-रक्षार्थ शम्भल ग्राममें विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके घरमें अवतीर्ण होंगे।

शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः।
भवने विष्णुयशसः कल्किः[2] प्रादुर्भविष्यति॥ १८॥

वे इन्द्रके द्वारा आनीत देवदत्त नामक आशुगामी घोड़े पर चढ़कर पृथ्वीमें घूम-घूम कर राजवेषमें छिपे डाकू बने करोड़ों राजाओंका संहार करेंगे। उस समय भगवान्के शरीरस्पर्शी वायुके स्पर्शमात्रसे ही मनुष्योंके अन्तःकरण शुद्ध हो जायँगे और तभीसे प्रजाकी सृष्टि भी सात्त्विक होने लगेगी।

---

१. त्रिंशता सहिता विंशतिः त्रिंशद्विंशतिः पञ्चाशदित्यर्थः।
२. कलिं कृषति विलिखति भिनत्तीति कल्किः। पृषोदरादिः कृषतेर्डिप्रत्यये टिलोपे कलेरिकारलोपे च रूपसिद्धेः। यद्वा कं सुखं लाति ददातीति कलो धर्मः तं कायति उपदिशतीति कल्किः।

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती।
एकराशौ समेष्यन्ति तदा भवति तत्कृतम् ।। २५ ।।

जब चन्द्र, सूर्य, पुष्य और बृहस्पति इन चारोंका एक साथ कर्कराशिमें योग होगा तभी सत्ययुगका आरम्भ हो जायगा। जिस दिनसे भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीका त्याग कर अपने धाममें चले गये, उसी दिनसे कलियुगका संसारमें प्रवेश हो गया था। इसी कारण मनुष्योंकी पाप कर्ममें प्रवृत्ति होने लगी। कलियुगकी आयु देवताओंके मानसे बारह सौ वर्ष, और मनुष्योंके मानसे चार लाख बत्तीस हजार वर्ष की है। सत्ययुग आने पर शन्तनुके भाई देवापि और इक्ष्वाकुवंशके राजा मरु ये दोनों पुनः वर्णाश्रमधर्मकी पूर्ववत् स्थापना करेंगे। इस समय ये दोनों बदरिकाश्रमस्थ कलापग्राममें निवास करते हैं। हे राजन् ! हमने कलियुगीय राजाओंका संक्षेप में कुछ वर्णन किया। ये सभी राजा शरीर और पृथ्वीके प्रति अहन्ता-ममता करके अन्ततः इन दोनोंको छोड़ कालके ग्रास बन गये। केवल कथामें ही प्रसंग-वश थोड़ी देरके लिये इनके नाम सुने जाते हैं। इसलिये, बुद्धिमान् पुरुषका कर्तव्य है कि वह स्त्री-पुत्रादिमें आसक्तिका त्यागकर अपनी ममताका प्रधान विषय भगवान्को ही बना ले तभी उसका वास्तविक कल्याण है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादश स्कन्धका दूसरा अध्याय समाप्त।

—: ❀ :—

तीसरा अध्याय

राजाओंको भूमिकी चेतावनी, युगधर्म तथा कलिदोषोंके निवारणोपाय

शुकदेवजी बोले—हे राजन् !

दृष्ट्वाऽऽत्मनि जये व्यग्रान् नृपान् हसति भूरियम्।
अहो मां विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ।।१।।

भूमि अपनेको जीतनेके लिये व्यग्र अविवेकी राजाओंको देखकर हँसा करती है और कहती है—आश्चर्य है कि मृत्युके हाथके खिलौने ये मूर्ख राजा

मुझे जीतनेकी इच्छा करते हैं। फेन तथा पानीके बुद्बुदेके समान क्षणभंगुर अपनी देहको स्थायी समझते हैं। दुराशाओंसे बद्ध ये प्रमादी बैठे-बैठे नाना प्रकारके मनोरथ करते रहते हैं कि हम पहले षड्वर्गको जीतेंगे पुनः धीरे-धीरे मन्त्री, अमात्य ,सेना, कोष तथा और भी जो हमारे कण्टकतुल्य प्रतिपक्षी हैं उन सबपर विजय प्राप्त करेंगे। बादमें समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको भी जीतेंगे। इस प्रकार इन राजाओंकी ऐसी सारी इच्छाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। इन मूर्खोंको सिर पर खड़ी अपनी मृत्यु नहीं दीखती। कितने तो समुद्रमें घुसकर द्वीपों तकका विजय करते हैं। दुर्जय शत्रु मनका विजय नहीं करते जिससे मोक्षकी प्राप्ति हो सके। मृत्युग्रस्त प्राणीको इस पृथ्वीके विजयसे अन्तमें क्या मिलेगा? बड़े-बड़े मनु आदि राजा और उनके पुत्र तक मुझे छोड़कर कालके ग्रास बन गये, तब ये क्षुद्र राजा मुझे क्या जीतेंगे? मेरे ही कारण पिता-पुत्रमें और भाई-भाईमें विरोध होता है। 'यह भूमि मेरी है, तेरी नहीं' ऐसी मिथ्या स्पर्धा कर एक दूसरेका गला घोटते हैं और अन्तमें स्वयं भी मर जाते हैं। पुरूरवा, नहुष, मान्धाता, सगर, राम'[1] रघु रावण आदि बड़े-बड़े शूर-वीर राजा भी मृत्युके मुखमें चले गये। केवल कथामें ही उनके नाम शेष रह गये। तब इन नाममात्रके साधारण राजाओंकी क्या गिनती? हमने यहाँ पर इन सब विषयों का वर्णन इसी दृष्टिसे किया है कि आगेके कुछ विचारवान् राजा एवं विचारशील प्रजा इनके चरित्रोंसे कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकेगी और मिथ्या इन मायिक प्रपंचों-से विरक्त हो, भगवान्की ओर झुकेगी। कारण, यह दुर्लभ मानव शरीर केवल आत्माके उद्धारके लिये ही भगवत्कृपासे मिला है और यह जीव गर्भावस्थामें इसकी प्रतिज्ञा करके आया भी है किन्तु यहाँ आकर वह सब भूल गया। इसलिये—

यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममङ्गलघ्नः।
तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः॥१५॥

अमङ्गलोंका समूल नाश करने वाला जो भगवान्का गुणानुवाद सत्पुरुषोंके द्वारा गान किया गया है। भक्ति चाहने वाले पुरुषको प्रतिदिन पुनः पुनः उसीका श्रवण मनन और कीर्तन करना चाहिये, इससे आत्माका उद्धार एवं भगवान्की प्राप्ति बड़ी सरलतासे हो जाती है।

राजा परीक्षित्ने पूछा—हे मुने! आप ऐसा कोई उपाय बतायें जिससे मनुष्य कलिके इन समृद्ध दोषोंका सरलतासे नाश कर सकें। साथ ही युग,

---

१. रामो नाम कश्चिदन्यो राजा न तु दाशरथिः।

युगधर्म, प्रलय, कल्पका मान और कालकी गतिपर भी कुछ प्रकाश डालें। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! सत्ययुगमें धर्मके सत्य, दया, तप और दान[1] (शौच) ये चार पाद थे। उस समय मनुष्य सन्तुष्ट, दयालु, शान्त, जितेन्द्रिय सहनशील एवं आत्माभ्यासी होते थे। त्रेतामें धर्मके पादोंका चतुर्थांश क्षीण हो जाता है। उस समय मनुष्य यज्ञ आदि क्रियाओंके अनुष्ठानमें निरत रहते थे। द्वापरमें धर्मके पाद आधे-आधे क्षीण हो जाते हैं। तब मनुष्य स्वाध्याय और अध्ययनमें निरत रहते थे। कलिमें धर्मके चारों चरण क्षीण होने लगते हैं। उनका चतुर्थांश ही कुछ बचता है। अन्तमें वह भी नष्ट हो जायगा। अधर्मके भी चार पाद, अनृत, हिंसा, असन्तोष और विग्रह कहे गये हैं। इन्हींसे धर्मके पाद नष्ट होते हैं। अनृतसे सत्य, हिंसासे दया, असन्तोषसे तप एवं विग्रहसे दानका नाश होता है। कलियुगमें मनुष्य लोभी, दुराचारी, निर्दय नास्तिक और निरर्थक वैर करनेवाले होंगे। जैसे एक ही सूर्यादि ग्रहकी महादशामें अन्तर्दशा आती है, वैसे ही एक ही कलिमें चारों युग भी यथासमय आते रहते हैं। तप और ज्ञानमें प्रवृत्ति होनेके कारण सत्त्वप्रधान सत्ययुग। काम्यकर्ममें प्रवृत्ति होनेके कारण रजोवृत्ति प्रधान त्रेता। लोभ, असन्तोष और काम्य कर्ममें रुचि होनेके कारण रजस्तमोमय द्वापर और माया आदिको लेकर अनृत तन्द्रा शोक, मोह भय दैन्य आदिमें प्रवृत्ति होनेके कारण केवल तमः प्रधान कलिकी स्थिति कही गयी है।

यदा मायाऽनृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम्[2]।
शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥

इसकी स्थितिमें मनुष्य भाग्यहीन, मंदमति, क्रोधी, पापी, धनहीन और बहुत खानेवाले होंगे। इसमें गृहस्थ-भिखमंगे और संन्यासी धनसम्पन्न होंगे। ठाट-बाटमें गृहस्थोंको भी मात कर देंगे। साली और सालेका महत्त्व होगा। प्रत्येक कार्यमें उनकी सलाह अवश्य ली जायगी। शूद्र तपस्वी-वेष धारण कर प्रतिग्रह लेंगे और उच्चासनपर बैठ कर धर्मोपदेश करेंगे।

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥३८॥

---

१. दानं शौचम्। 'दैप' शोधने इत्यस्मात्। अरागद्वेषतयाऽभयदानमित्यर्थः।
२. विषादनं विषादः आन्तरं दुःखम्। शोको बाह्यं दुःखं रोदनरूपम्।

कलिमें प्रायः शुद्र ही अधिकतर संन्यासी होंगे। पुत्र अपने वृद्ध माता-पिता का त्यागकर उनसे अलग रहेंगे। सेवा नहीं करेंगे। बीस कौड़ियों तक के लिये मनुष्य अपने पुत्र और भाइयोंको मार डालेंगे, दूसरोंको भी निरपराध मारेंगे और क्रोधावेशमें आकर स्वयं भी अपने प्राण त्याग देंगे। हीनवर्णका होकर भी जो उच्चवर्णों से पैर पुजाता है वह निश्चित नरकमें जाता है। शूद्रसे शास्त्रश्रवण करना महापाप है। जो शूद्र दान लेता है और जो उसे देता है, ये दोनों ही नरकगामी होते हैं। यदि राजा इसकी उचित व्यवस्था नहीं करता तो वह भी नरकगामी होता है।

हीनो भूत्वोत्तमाद्वर्णात् कृत्वा वेषं तपस्विनाम्।
आत्मानं पूजयेद्यस्तु स पतेन्नरके ध्रुवम्॥
ये शूद्रमुखतः शास्त्रं शृण्वन्तीह नराधमाः।
तेषां कर्णे त्रपुं सिक्त्वा वक्त्रजिह्वां प्रकर्तयेत्॥
अन्यथा क्ष्मापतिर्याति नरकान् भृशदारुणान्।(संहिता)

कलिके दोषोंको दूर करनेवाले एकमात्र भगवान् श्रीहरि ही हैं। विद्या, तप, प्राणायाम, सत्सङ्ग, तीर्थस्नान, व्रत-दान और मन्त्रजपसे भी अन्तरात्मा की वैसी शुद्धि नहीं होती, जैसी हृदयमें भगवान्का ध्यान करनेसे होती है।

विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते॥ ४८॥

हे राजन्! इसलिये तुम सब ओरसे मनको हटाकर भगवान्को हृदयमें धारण करो। म्रियमाण पुरुषका तो यही मुख्य कर्त्तव्य बताया गया है। यद्यपि कलि दोषोंका खजाना है, फिर भी इसमें एक महान् गुण है कि भगवान्के मङ्गलमय नामोंके कीर्त्तनमात्रसे मनुष्य सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त हो परम गति को प्राप्त कर लेता है।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥५१॥

एक गुण होनेपर भी कलियुग में अवगुण अनेक हैं जैसे—

निर्बीजा पृथिवी निरौषधिरसा नीचा महत्त्वं गता
भूपाला निजधर्मकर्मरहिता विप्राः कुमार्गे रताः।

भार्या भर्तृविरोधिनी पररता पुत्राः पितुर्द्वेषिणो
हा कष्टं खलु वर्तते कलियुगे धन्या मृता ये नराः ॥

पृथ्वी बीजरहित अर्थात् उसमें उपज अच्छी न होगी। ओषधियां रसहीन हो जायेंगी। नीच जाति उन्नत होना चाहेगी। राजा धर्म-कर्म से हीन हो जायेंगे। ब्राह्मण कुमार्गमें प्रवृत्त होंगे। पत्नी अपने स्वामीका विरोधकर पर पुरुषोंसे प्रेम करेगी। हा, क्या कहें? कलियुगमें कष्ट ही कष्ट है जो मनुष्य मर गये वे धन्य हैं।

अन्तमें राजा प्रजा आस्तिक-नास्तिक साधारण-असाधारण सभी प्राणी कान खोलकर सुन लें। महर्षि व्यासजीका यह वचन मिथ्या नहीं हो सकता।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि यत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥

जहाँ अपूज्य अनधिकारियोंका सम्मान होता है और पूज्य अधिकारी योग्य व्यक्तियोंका अनादर होता है वहाँ तीन प्रकारके अनर्थ निश्चित हुआ करते हैं—१—दुर्भिक्ष भीषण अकाल—सभी वस्तुएँ महँगी हो जाती है। २—मरण, वस-दुर्घटना, रेल-दुर्घटना, विमान-दुर्घटना, भूकम्प आदिके द्वारा प्राणियोंका कल्पनातीत संहार होता है। ३—भय-प्रतिक्षण प्रजाके हृदयमें भय बना रहता है, न जाने किस समय क्या हो जाय? अतः शासन इस पर विशेष ध्यान दे जिससे जनता सुरक्षित रहे।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादश स्कन्धका तीसरा अध्याय समाप्त।

—:❀:❀:—

चौथा अध्याय

कल्प और नैमित्तिक आदि चार प्रकारके प्रलयोंका वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! पूर्व अध्यायमें हमने युगधर्म एवं कलिदोषों के निवर्तक उपाय बताये हैं तथा तृतीयस्कन्धमें काल और युगका मान भी बता चुके हैं। अब कल्प और प्रलयका स्वरूप सुनो।

चतुर्युगसहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते।
स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥२॥

सहस्र चतुर्युगीका ब्रह्माका एक दिन होता है। इसे ही एक कल्प कहते हैं। इसमें १४ मनु बीत जाते हैं। एक मनुका काल युगोंकी कुछ अधिक ७१ चौकड़ी होता है। दिनके अन्तमें उतने ही कालतक प्रलय रहता है और यही ब्रह्माकी रात्रि कही जाती है। इसीमें त्रिलोकीका लय हो जाता है। निद्रालु ब्रह्मा शेषशायी भगवान् में लीन होकर शयन करते हैं। यह प्रलय निद्राके निमित्तसे होता है, इसीलिये इसे 'नैमित्तिक-प्रलय' कहते हैं। इसी प्रकार प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्य ये तीन प्रकार के प्रलय और माने गये मैं। जब ब्रह्माकी द्विपरार्द्ध-पर्यन्त आयु समाप्त हो जाती है तब महत्तत्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्राएँ ये सातों प्रकृतियां एवं इनके कार्यरूप इस ब्रह्माण्ड का लय हो जाता है। इसीसे यह प्राकृतिक प्रलय कहलाता है। इसमें सौ वर्ष तक वर्षा नहीं होती और १२ सूर्य तपा करते हैं। देह, भूमि और समुद्रका भी जल सूख जाता है। अनन्तर पातालस्थ शेषजीके मुख से प्रलय-कालीन भीषण अग्निज्वालाएँ निकलती हैं; जिनसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भस्म होकर जले हुए गोबरके पिण्डके समान दीख पड़ता है।

दह्यमानं विभात्यण्डं दग्धगोमयपिण्डवत् ॥ १० ॥

बादमें सौ वर्षोंतक मूसलाधार वर्षा होती है, जिसमें तीनों लोक जलमग्न हो जाते हैं और एक भीषण महासागर का दृश्य उपस्थित हो जाता है। उस समय गन्ध सहित पृथ्वी जलमें, रससहित जल तेजमें, रूपसहित तेज वायुमें, स्पर्शसहित वायु आकाशमें, शब्दसहित आकाश तामस अहङ्कारमें, अपने-अपने कार्योंसहित त्रिविध अहङ्कार महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्व गुणोंमें, गुण प्रकृतिमें और प्रकृति ब्रह्ममें लीन हो जाती है। आदि-अन्तशून्य सब कारणों का भी कारण जो ब्रह्म है, उसका लय कहीं नहीं होता। हे राजन्! यही प्राकृतिक प्रलय कहलाता है। इसमें कालसे प्रेरित होकर प्रकृति और पुरुषकी सत्त्व आदि सभी शक्तियाँ विवश होकर लीन हो जाती हैं।

लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा।
शक्तयः सम्प्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः ॥ २१ ॥

हे राजन्! जब साधक ज्ञानरूपी खड्गसे आत्माका आवरक बन्धनकारी इस मिथ्याभूत मायिक अहंकारको काटकर अपने स्वरूपमें स्थित हो भगवत्तत्वका अनुभव करता है, इसीको आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं।

यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहङ्करणात्मबन्धनम् ।
छित्त्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यन्तिकमङ्ग सम्प्लवम्।३३।

कतिपय सूक्ष्मदर्शी विद्वानोंका कथन है कि ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सभी प्राणियोंकी नित्य सृष्टि और नित्य प्रलय हुआ करता है। इसका ज्ञान नदीके प्रवाह तथा प्रदीपकी ज्वालादिसे किया जा सकता है। देहकी बाल युवादि अवस्थाओंके नित्य परिवर्तनसे भी 'नित्यप्रलय' का ज्ञान होता है। हे राजन्! तुम इसीको सामान्यरूपसे कालकी गति समझो। जगद्विधाता भगवान् श्रीनारायणकी इन मनोरम लीलाओं और कथाओंका हमने संक्षेपमें वर्णन किया है। विस्तारसे तो ब्रह्मा भी इनका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं।

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य ।३६।

अत्यन्त दुस्तर अगाध संसारसमुद्रको पार करनेकी इच्छावाले त्रिविधतापोंसे सन्तप्त प्राणियोंके लिये भगवान्की सुमधुर लीला-कथाओंके श्रवणसे अतिरिक्त दूसरा कोई भी तरणका उत्तम साधन नहीं है इसलिये प्राणीमात्रको थोड़ा सा समय निकालकर प्रतिदिन भगवान्के मङ्गलमय चरित्रोंका श्रवण, मनन और कीर्तन करना चाहिये।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादश स्कन्धका चौथा अध्याय समाप्त।



पाँचवाँ अध्याय

स्वरूपज्ञानद्वारा राजा परीक्षित्का तक्षकजन्य-मृत्युभयका निवारण

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! मैंने तुम्हें यह जो श्रीमद्भागवतमहापुराणका श्रवण कराया है इसमें पद-पदपर भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय चरित्रोंका वर्णन है। इसके श्रवणद्वारा ही वे तुम्हारे हृदयमें प्रकट हो गये हैं। उनके ही प्रसाद (हर्ष)-से सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा एवं क्रोधसे संहारकर्ता रुद्र उत्पन्न हुए, ये

दोनों उनके ही अधीन हैं स्वतन्त्र नहीं। फिर, तुम्हें मृत्युभयकी शंका क्यों ? तुम भगवत्कृपासे कृतार्थ हो चुके हो, अतः ज्ञान-दृष्टिसे तुम अपने हृदयमें तथा बाहर स्थित चराचर प्राणियोंमें उनके स्वरूपको देखो।

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥ २ ॥

हे राजन् 'मैं मर जाऊँगा', यह अज्ञानियोंकी पशुबुद्धि है, इसे छोड़ दो। तुम्हारा जन्म न पहले हुआ था और न अब हुआ है। षड् विकारवाले शरीरका ही जन्म और मरण होता है। शरीरकी तरह आत्माका नाश नहीं होता। बीजसे अंकुर और अंकुरसे बीजके समान, पुत्र-पौत्रादिके रूपमें एक शरीरसे दूसरा शरीर उत्पन्न होता है आत्मा नहीं। काष्ठमें व्याप्त अग्नि जैसे काष्ठसे पृथक् है वैसे ही शरीरमें व्याप्त आत्मा भी शरीरसे पृथक् है। स्वप्नमें अपना सिर कटा देख मनुष्य घबराकर चिल्ला उठता है किन्तु जागनेपर उसका यह भ्रम मिट जाता है। इससे सिद्ध है कि द्रष्टा आत्मा शरीर नहीं, वह शरीरसे पृथक् है, वह शरीरकी तत्तत् अवस्थाएँ देखता है। उस आत्माका जन्म या मरण नहीं होता।

यस्मात् पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥

महाकाश घटोत्पत्तिके पहले भी था और बादमें भी रहेगा, किन्तु मध्यमें ही वह 'घटाकाश' कहा जाता है। घट नष्ट होनेपर घटगत आकाश जैसे महाकाशमें मिल जाता है, उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता। ठीक उसी प्रकार, शरीर नष्ट होनेपर जीव ब्रह्ममें मिल जाता है। यह मन ही संकल्प-विकल्प द्वारा नाना प्रकारके शरीरोंकी रचना करता है और इस मनकी रचना 'माया' करती है। इसलिये, मायाके कारण ही जीवको 'संसार' है, 'वास्तविक' नहीं। तेल और बत्तीका जबतक संयोग है तभीतक 'दीपक'का प्रकाश है। उसी प्रकार, जबतक त्रिगुणजन्य देह है तभीतक संसार है। 'दीपक' के समान संसारका नाश होता है। 'ज्योति' के समान 'आत्मा'का नाश नहीं होता। यहाँ तैलस्थानीय कर्म, तैलाधिष्ठान शरावस्थानीय मन, वर्तिस्थानीय देह, अग्निसंयोगस्थानीय चैतन्याध्यास तथा दीपस्थानीय संसार समझना चाहिये। हे राजन्! तुम महत्त योगिकक्रिया द्वारा भगवान्का ध्यान कर अन्तर्दृष्टिसे शरीरमें स्थित अपने आत्मस्वरूपको देखो। शरीरका चिन्तन न करो। फिर, तक्षक या साक्षात् मृत्यु भी तुम्हारा कुछ अनिष्ट न कर सकेगी।

कारण, तब तुम स्वयं देहसे पृथक् अपनेको देखोगे जैसे माला का मणिया सूत्रसे पृथक् रहता है। तुम पहले 'अहं ब्रह्मास्मि' की भावना करो। इससे तुम्हारे शोकादिकी निवृत्ति होगी। अनन्तर, 'ब्रह्माहं' की भावनासे 'ब्रह्म' का साक्षात्कार होगा। तब तुम्हें आत्मासे पृथक् शरीर या विश्वकी सत्ता ही भासित न होगी और न काटते हुए तक्षकको ही तुम देख सकोगे।

एतत्ते कथितं तात यथाऽऽत्मा पृष्टवान् नृप।
हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १३॥

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! तुमने जो काल-पुरुष विश्वात्मा भगवान्की चेष्टा पूछी थी अर्थात् लीलासम्बन्धी जो प्रश्न किया था उसका हमने विस्तारपूर्वक श्रीमद्भागवत के द्वारा वर्णन कर दिया। अब तुम्हें देहाभिमाननिवृत्ति-पूर्वक आत्माका ज्ञान भलीभाँति हो चुका है जिससे अब कुछ कहना और सुनना शेष नहीं रहा। फिर भी कहो और क्या सुनना चाहते हो? यहाँ उपक्रम और उपसंहारके द्वारा भगवान् की लीलाओंकी ही प्रधानता बतायी गयी है। अथ ते भगवल्लीला वर्णयाम्य-नुपूर्वशः इससे उपक्रमकर 'लीलाकथास्ते कथिताः' इसके द्वारा उपसंहार किया गया है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादश स्कन्धका पाँचवाँ अध्याय समाप्त।

—: ❀ : —

छठा अध्याय

शुकदेवजीका प्रस्थान, राजा परीक्षित्‌का मोक्ष, सर्पयज्ञ तथा वेदशाखाओंका-विभाजन

नैमिषारण्यमें सूतजीने कहा—हे शौनक! परमज्ञानी शुकदेवजीने जब इस प्रकार राजा परीक्षित्से कहा तब वे गद्गद हो उनके चरणोंमें गिर पड़े और हाथ जोड़ कर बोले—

सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना।
श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः॥ २॥

हे मुनिवर ! मैं कृतार्थ हो गया । आपने मुझपर बड़ा ही अनुग्रह किया, जो ऐसे विलक्षण ढंगसे भगवान् श्रीकृष्णका अद्‌भुत रहस्य सुनाया तथा उनकी प्राप्तिका साधन भी बताया । सांसारिक तापोंसे तप्त प्राणियोंपर कृपा करना महात्माओंका सहज स्वभाव ही है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं । मैंने आपके श्रीमुखसे श्रीमद्भागवतके सप्ताहकी कथा श्रवण की । इसमें पद-पदपर भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय चरित्रोंका ही वर्णन है । मृत्युके कारणभूत तक्षक आदि के डसने का मुझे अब किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं है । आपकी कृपासे मेरा निर्भय ब्रह्मपदमें प्रवेश हो चुका है । अब मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहता । केवल आपकी आज्ञा माँगता हूँ जिसे प्राप्त कर मैं भगवान्‌में चित्त स्थिर कर अपने प्राणका त्याग करूं । ज्ञान-विज्ञानकी निष्ठासे मेरा अज्ञान और तज्जन्य संस्कार नष्ट हो गया है । आपने कृपाकर भगवान्‌का निर्भय पद मुझे दिखा दिया । सूतजीने कहा—हे शौनक ! इतना कहते-कहते राजा परीक्षित्‌के नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी, वे गदगद भावमें बड़ी देर तक आशाभरी दृष्टिसे मुनिकी ओर निहारते रहे । शुकदेवजीने बड़े प्रेमसे राजाके सिरपर अपना वरद हस्त रखकर आश्वासन देते हुए कहा—राजन् ! घबराओ नहीं । जाओ सानन्द जाओ, भगवान्‌के लोकमें, चिन्ता न करो । मैं पुनः तुमसे वहीं भेंट करूंगा । ऐसा कहने पर राजा परीक्षित्‌ने विधिपूर्वक शुकदेवजीका षोडशोपचार से पूजन किया । वे प्रसन्नमुद्रामें राजाको भूरि-भूरि आशीर्वाद देते हुए दुर्वासा आदि कुछ महात्माओंके साथ वहाँसे चल दिये ।

इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान् बादरायणिः ।
जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥

इधर ! राजा परीक्षित् परमपावनी भगवती श्रीगङ्गाजीके तटपर उत्तर-मुख किये कुशासन पर बैठ गये । उन्होंने द्वितीयस्कन्धोक्त शुकदेवजीके उपदेशानुसार प्राणापानको समकर मूलाधारसे प्राणवायुकी ऊर्ध्वगति कर क्रमसे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत और विशुद्धाख्य इन पाँच चक्रोंका भेदन करते हुए उसे आज्ञाचक्रमें ले गये । यह सम्प्रज्ञात समाधिका स्थान है, इसे सविकल्प समाधि भी कहते हैं । गीताके अनुसार ब्राह्मी स्थिति भी यही है । प्राणवायुके वहाँ पहुँचते ही वे अपने स्वरूपमें स्थित हो गये । शरीरका उन्हें बिलकुल भी भान न रहा । उधर क्रुद्ध ब्राह्मण बालक द्वारा प्रेरित तक्षक ब्राह्मणका वेष धारण कर राजाको डसने जा रहा था । विषहारी कश्यप नामक ब्राह्मण राजाको जीवित करने जा रहे थे । मार्गमें तक्षककी उनसे भेंट हो

गयी । तक्षकने उस ब्राह्मणकी परीक्षाके रूपमें एक महान् हरे-भरे वट वृक्षको डसा जो तत्काल जल कर भस्मकी ढेरी बन गया। कश्यपने विषहारी दिव्य मन्त्र पढ़कर कमण्डलुके जलसे जैसे ही उस वृक्षको सींचा वह तत्क्षण हरा-भरा हो पुनः ज्यों का त्यों वृक्षरूपमें परिणत हो गया। यह देख, तक्षकके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वह किंकर्तव्यशून्य हो स्तब्ध सा रह गया। उसने भूरि-भूरि प्रशंसाके साथ ब्राह्मणको बहुत-सा अपेक्षित धन देकर मार्गसे ही लौटा दिया। अनन्तर स्वेच्छारूपधारी तक्षकने ब्राह्मणके रूपमें छिपकर राजा परीक्षित्को डस लिया।

द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥

ब्रह्ममें लीन राजर्षि परीक्षित्का शरीर डसते ही तत्क्षण विषाग्निसे भस्म हो गया। यह देख चारों ओर हाहाकार मच गया। देव, असुर मनुष्य सभी इससे विस्मित हो गये किन्तु स्वर्गमें नगाड़े बजने लगे, अप्सराओं सहित गन्धर्व गान करने लगे। देवगण आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे। जनमेजयने तक्षक द्वारा अपने पिताके डसे जानेपर सर्पोंपर बड़ा कोप किया। उसने महर्षियोंको बुलाकर सर्प-सत्र आरम्भ करा दिया जिसमें हजारों सर्प जलकर भस्म हो गये। यह देख तक्षक घबराया और वह इन्द्रके सिंहासनमें जा छिपा। जनमेजयने तक्षकको आया न देख ऋषियोंसे कहा—हे ऋषिवरो! सर्पोंमें नीच वह तक्षक अभीतक आकर क्यों नहीं जला? ऋषियोंने कहा—राजन्! उसकी रक्षा इन्द्र कर रहे हैं। इसपर जनमेजयने कहा—यदि ऐसा है तो इन्द्र-सहित ही तक्षकको अग्निमें क्यों नहीं गिरा देते? अमोघ वाक् ऋषियोंने मन्त्रोंद्वारा इन्द्रसहित तक्षकका आवाहन किया।

तच्छ्रुत्वाऽऽजुहुवुर्विप्राः सहेन्द्रं तक्षकं मखे ॥ २१ ॥

बस, फिर क्या था, सिंहासन सहित इन्द्र और तक्षकका आकर्षण हुआ जिससे वे दोनों ही अग्निकुण्डमें गिरना ही चाहते थे कि तुरंत बृहस्पतिने आकर उन्हें रोक दिया और जनमेजयसे कहा—राजन्! बस-बस शान्त हो जाओ। जीवन-मरण, और सुख-दुःख ये सब कर्मसे होते हैं। इनका देनेवाला कोई दूसरा नहीं है। जो दूसरेको समझता है, वह कुबुद्धि है। मैं करता हूँ यह व्यर्थका अभिमान है सारा संसार अपने-अपने कर्मसूत्रसे बँधा हुआ है।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥
(पुराणान्तर)

सर्प, चोर, अग्नि, विद्युत्, भूख, प्यास तथा रोग आदिसे जो मनुष्य मरते हैं, वे सब अपना प्रारब्ध-कर्म ही भोगते हैं।

सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप।
पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुङ्क्त आरब्धकर्म तत्॥ २६॥

इसलिये यह हिंसामय यज्ञ बन्द कर दो। तुम तक्षकको मार न सकोगे क्योंकि वह अमृत पी चुका है। ये वेचारे निरपराध सर्प व्यर्थ ही मारे गये।

सूतजीने कहा—हे शौनक! बृहस्पतिके इस प्रकार कहने पर जनमेजयने उनके वचन मानकर वह सर्प यज्ञ बन्द कर दिया और उनका सादर पूजन किया। प्राचीन महर्षियोंका कथन है कि सर्पको किसी भी दशामें मारना उचित नहीं, अन्यथा उसका बड़ा ही अनिष्टकारी फल होता है। सर्प बिना बदला लिये छोड़ता नहीं। परिवारमें किसी न किसीको अवश्य डसता है। अतः जहाँ सर्पका भय हो वहाँ भित्तिमें उसकी प्रतिकृति बनाकर पूजन करे। दूध खीलोंका भोग लगावे और सर्पको हटानेके लिये निम्नलिखित मन्त्रोंका २१ बार जपकर आस्तीक शब्दका उच्चारण करे। ऐसा करनेसे सर्प उस स्थानसे स्वयं चला जाता है।

सर्प हटानेके मन्त्र

असितं चार्तिमन्तं च सुनीथं चापि यः स्मरेत्।
दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्य सर्पभयं भवेत्॥
यो जरत्कारुणा जातो जरत्कारौ महायशाः।
आस्तीकः सर्पसत्रे वः पन्नगान् योऽभ्यरक्षत॥
तं स्मरन्तं महाभागा न मां हिंसितुमर्हथ।
सर्पाऽपसर्प भद्रं ते गच्छ सर्प महाविष।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर॥
आस्तीकस्य वचः श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते।
शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्षफलं यथा॥

(महाभारत)

शौनक आदि ऋषियोंने पूछा—हे सूतजी ! पुराणसंहिताके विभाजनके साथ ही व्यासके शिष्य पैल आदि ऋषियोंने कितने प्रकारसे वेदोंका विभाजन किया कृपया इसे बतलाइये । सूतजीने कहा—हे शौनक ! समाधिस्थ ब्रह्माके हृदयाकाशसे पहले नाद हुआ जिसकी प्रतीति कान बन्द करनेपर होती है । उससे ओङ्कारकी अभिव्यक्ति हुई जो परमात्माका साक्षात् वाचक हैं और वह सम्पूर्ण मन्त्र, उपनिषद तथा वेदोंका मूल बीज कहा गया है जिसमें अकार उकार और मकार ये तीन वर्ण हैं । ये ही तीनों वर्ण ३ गुण, ३ वेद, ३ लोक और ३ अवस्थाओंके द्योतक हैं । इन्हीं तीन वर्णोंसे अक्षरसमाम्नाय सम्पूर्ण वर्णमाला उत्पन्न हुई जो स्वर, स्पर्श, अन्तस्थ, ऊष्म, ह्रस्व, दीर्घ, जिह्वामूलीय, और उपध्मानीय आदिके रूपमें वर्त्तमान है । व्यासजीने अवतीर्ण होकर इसी अक्षरसमुदायसे ऋक्, यजुः, साम और अथर्वके रूपमें वेदके चार विभाग किये । व्यासजीने पैल, वैशम्पायन जैमिनि और सुमन्तु इन अपने चार शिष्योंको क्रमसे वेदकी चारों संहिताएँ पढ़ायीं । इनके और भी बहुतसे शिष्य-प्रशिष्य हुए जिन्होंने शाखाओं द्वारा वेदोंका नाना प्रकारसे विभाजन किया । वैशम्पायनके शिष्योंमें एक याज्ञवल्क्य भी थे । जो बड़े ही धार्मिक एवं गुरुभक्त थे । एक समय गुरुके चरणस्पर्शसे उनका भानजा अकस्मात् मर गया जिससे उनको ब्रह्महत्या लग गयी थी ।

स्वस्रीयं बालकं सोऽथ पदा स्पृष्टमघातयत् ।

उसका कारण यह था, कि एक समय सब ऋषियोंने मिलकर एक नियम बनाया था । जो कोई महामेरु पर स्थित हमारे समाजमें सम्मिलित न होगा, उसे सात रात्रिके अन्दर ब्रह्महत्या लगेगी । इसका अतिक्रमण केवल एक वैशम्पायनने ही किया था । इसी कारण उनका भानजा मरा था । विष्णु-पुराण अंश ३ अध्याय ५ श्लोक ३–५ देखें । वैशम्पायनने इसके प्रायश्चितके लिये अपने शिष्योंसे कहा । याज्ञवल्क्यने अन्य सब शिष्योंका अनादर कर गुरुदेवसे कहा—भगवन् ! ये सब अल्प तेज तथा अल्प बल वाले हैं । यह क्या व्रत कर सकेंगे ? मैं पूर्णरूपसे इसका प्रायश्चित्त करूँगा । यह सुन, गुरुदेव कुपित हो कुछ आवेशमें आकर बोले—तुम ब्राह्मणोंका अपमान करते हो ऐसे धृष्ट शिष्यसे हमें क्या प्रयोजन ? अतः तुमने आजतक जो कुछ मुझसे पढ़ा है उसे तुरन्त उगल दो और यहाँ से चले जाओ ।

विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६२ ॥

याज्ञवल्क्यने अच्छा महाराज ! ऐसा कहकर उन्होंने गुरुके आदेशानुसार वमन द्वारा तत्काल वे यजुर्वेदीय मन्त्र उगल दिये। वैशम्पायनके शिष्योंने बड़ी लोलुपतासे तीतर बन कर उन्हें मुखमें ले लिया। यही कृष्णयजुर्वेदकी अत्यन्त मनोहर 'तैत्तिरीय शाखा कही जाती है। अनन्तर महातेजस्वी याज्ञवल्क्यने गुरुसे भी अज्ञात छन्दोंको जाननेकी इच्छासे 'नमो भगवते आदित्याय' इत्यादि पाँच गद्य मन्त्रों द्वारा भगवान् सूर्यकी तीव्र उपासना आरम्भ की। उससे प्रसन्न हो सूर्यने वाजिरूपसे यजुर्वेदीय मन्त्रोंका उन्हें उपदेश किया जिनका ज्ञान अन्य किसीको न था। इन्हीं मन्त्रोंकी 'वाजसनी'[1] 'संज्ञा हुई। इस प्रकार उक्त शिष्यों द्वारा चारों वेदोंकी शाखाओंका बहुत विस्तार हुआ।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादश स्कन्धका छठा अध्याय समाप्त।



सातवाँ अध्याय

पुराणोंका विभाजन और उनके लक्षण

सूतजी बोले—हे शौनक ! अब आप पौराणिक आचार्योंके नाम सुनें।

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः।
वैशम्पायनहारीतौ षड् वै पौराणिका इमे॥ ५॥

पहले व्यासजीने तीन-तीन पुराणोंकी एक-एक संहिता बना कर हमारे पिता रोमहर्षणको पढ़ायी। उनसे एक-एक संहिता इन छः शिष्योंने पढ़ीं। इन छः आचार्योंके शिष्य उग्रश्रवा नामक सूत मैंने सभी संहिताओंका विधिवत् उनसे अध्ययन किया। 'पुराणों' के दस लक्षण बताये गये हैं उन्हें भी सुनो।

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥

१. वाजिना अश्वरूपेण वाजेभ्यः केसरेभ्यः वाजेन वा संन्यस्ताः त्यक्ताः शाखा वाजसनीसंज्ञाः। यद्वा वाजेभ्यः सम्यक् नयन्तीति।

१. सर्ग, २. विसर्ग, ३. वृत्ति (स्थान), ४. रक्षा (पोषण), ५. मन्वन्तर, ६. वंश, ७. वंश्यानुचरित (ईशानुकथा), ८. संस्था (निरोध और मुक्ति), ९. हेतु ऊति (वासना), १०. अपाश्रय, । १ सर्ग—कारण-सृष्टि तृतीयस्कन्धमें । २. विसर्ग—कार्यसृष्टि (चराचरसर्ग) चतुर्थमें । ३. स्थान—जम्बूद्वीपादिकी स्थिति पञ्चममें । ४. पोषण—अजामिलकी रक्षा षष्ठमें । ५. ऊति—शुभाशुभवासना (प्रह्लाद और हिरण्यकशिपुकी), सप्तममें । ६. मन्वन्तर—अष्टममें । ७. वंश-वंश्यानुचरित सूर्यसोमवंशका वर्णन नवममें । ८. निरोध—दैत्योंका वध दशममें । ९. मुक्ति एकादशमें । १०. आश्रय—ब्रह्म द्वादशस्कन्धमें । इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें १०. लक्षणों का समावेश किया गया है । यहाँ पर इस श्लोकमें ये लक्षण व्युत्क्रमसे परिगणित हैं । इन दस लक्षणोंका जिसमें पृथक्-पृथक् वर्णन हो उसे महापुराण, जिसमें पाँच का प्राधान्य और अन्यों का अन्तर्भाव हो उसे अल्प पुराण कहते हैं ।

महापुराण १८ हैं ।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम् ।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम् ॥
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् ।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्[1] ॥२४–२५॥

हे शौनक ! व्यासजीकी शिष्यपरम्पराने वेद और पुराणसंहिताओंका विभाजन कर जिस प्रकार अध्ययन-अध्यापन किया था उसका मैंने वर्णन किया । इस प्रसंगको सुनने-सुनाने वालोंके हृदयमें ब्रह्मतेजकी अभिवृद्धि होती है ।

ब्रह्मतेजोविवर्धनम्

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादश स्कन्धका सातवाँ अध्याय समाप्त ।

—:※:—

आठवाँ अध्याय

मार्कण्डेयकी तपस्यामें विघ्नकारी कामादिका पराभव, नर-नारायणका प्रादुर्भाव और उनकी स्तुति

शौनकजीने कहा— हे सूतजी ! आप चिरजीवी हों । आप वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं और बड़े ही अद्भुत वक्ता हैं । अपार संसारसमुद्रमें डूबते हुए मनुष्योंको

१. त्रिरावृत्ताः षट् त्रिषट् अष्टादश ।

पार लगानेवाले कर्णधार हैं। आपके श्रीमुखसे आज मार्कण्डेयपुराणका नाम सुनते ही मार्कण्डेय ऋषिका स्मरण हो आया, जो हमारे कुलके पूज्यतम गुरु हैं। मनुष्य उन्हें चिरायु कहते हैं। प्रलयमें भी वे वचे रहे और वटपत्र पर शयन करते हुए उन्हें दुर्लभ बालमुकुन्द भगवान्का दर्शन हुआ। इस कल्पमें कोई प्रलय तो हुआ नहीं, तब उक्त घटना कैसे घटी ? यह हमारे हृदयमें चिरकाल से महान् सन्देह है कृपया आप इसे निवृत्त करें। सूतजीने कहा—

प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः।
नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥६॥

हे महर्षे ! आपके द्वारा किया गया यह प्रश्न लोकके भ्रम को दूर करने वाला है। इस प्रसङ्गमें श्रीनारायणकी कलिमलनाशिनी कथा कही गयी है। आप उसका ध्यानसे श्रवण करें। पिता द्वारा उपनयन संस्कारसे सम्पन्न होकर मार्कण्डेय वेदोंका अध्ययन करते हुए तप और स्वाध्यायमें निरत रहा करते थे। ब्रह्मचारी वेषमें जटा, वल्कल-वस्त्र, दण्ड, कमण्डलु आदि धारण कर वे सूर्य, अग्नि और गुरुदेव का पूजन किया करते थे। प्रातः और सायंकाल गुरुदेवको भिक्षान्न समर्पण कर उनकी आज्ञासे एकवार ही भोजन करते, अन्यथा उपवास करते थे। इस प्रकार मनको रोक कर भगवान्की तीव्र आराधना करते-करते उन्हें छः मन्वन्तर बीत गये। ऐसी कठोर तपस्यासे उन्होंने मृत्युको भी जीत लिया। यह समाचार सुन इन्द्र उनकी तपस्यासे शंकित हो उठे। उन्होंने मार्कण्डेयकी तपस्या भंग करनेके लिये कामदेवको उनके आश्रमपर भेजा। वह वसन्त अप्सरा गन्धर्व आदि अनेक गणोंके साथ हिमालयके उत्तर पुष्पभद्रा नदीके तटपर स्थित मार्कण्डेयके दिव्य आश्रममें पहुँचा। जहाँ नाना प्रकारके रंग-विरंगे पक्षी मधुर गुञ्जार कर रहे थे। मयूरोंका मनमोहक नृत्य भी चारों ओर अनुपम उल्लास विखेर रहा था। कामदेवने वहाँ पहुँचते ही वासन्ती सुषमा प्रकट कर दी। कामको उद्दीपन करने-वाली शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु भीःसर्वत्र बहने लगी। कोकिल प्लुतानुरञ्जित कण्ठ से चित्त को क्षुभित करती कूजने लगीं। मार्कण्डेय मुनि हवनके अनन्तर नेत्र बन्द किये मूर्तिमान् अग्निके समान यज्ञशाला के अन्दर प्रशान्त मुद्रामें विराजमान थे। वहीं दिव्य अप्सराएँ उनके समक्ष हाव-भावपूर्वक कटाक्ष करती ललित-पदविन्यास करती नृत्य-गान और वाद्यके साथ इतस्ततः थिरकने लगीं। झीनी बीनी साड़ी पहने एक अप्सरा गेंद खेलती उनके समीप तक पहुंच गयी। उसी समय वायु के झकोरेने कटितटसे उसकी साड़ी उड़ा दी जिससे

वह निर्वस्त्र हो गयी। कामदेवने भी यह अवसर पाते ही मुनिराजके हृदयमें अपने पाँचों कुसुमशर एक साथ चला दिये । पर मुनिराज मार्कण्डेयका इन शरोंसे क्या होना था। उनके मनमें किसी प्रकारका किञ्चिन्मात्र भी विकार नहीं आया। यह देख कामदेव लज्जासे नीचे मुख किये इन्द्रके पास लौट गया और यहाँका सारा समाचार उनको कह सुनाया। देवराज इन्द्र महा मुनिके इस अद्भुत प्रभावको सुनकर आश्चर्यसे चकित रह गये।

श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात् परम् ।३१।

उनकी ऐसी कठोर तपस्यासे प्रसन्न हो उनके अनुग्रहार्थ एक दिन स्वयं भगवान् श्रीनर-नारायण उनके समक्ष प्रकट हो गये। मार्कण्डेयजी इस मंगलमय अतीव सुन्दर युगलमूर्तिका दर्शनकर उनके चरणोंमें प्रणामकर वहीं लोट गये। भावावेश से उनके शरीरमें रोमांच छा गये, नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगी, वे हाथ जोड़कर गद्गद वाणीसे केवल 'नमो नमः' इतना ही कह सके। पश्चात्, किसी तरह स्वस्थ हो आसन पर बिठाकर उनका विधिवत् पूजन किया और १० श्लोकोंसे उनकी स्तुति की। मार्कण्डेयजीने कहा— भगवन् ! आपकी ही शक्तिसे मेरे मन, प्राण और इन्द्रियाँ क्रियाशील होती हैं। मैं भला क्या आपकी स्तुति कर सकता हूँ? त्रिलोकीका ताप दूर करनेके लिये ही आप नाना रूप धारण करते हैं। जो श्रद्धा-भक्तिसे उनका पूजन और ध्यान करते हैं उनकी कर्मजनित सकल वासनाएँ समूल नष्ट हो जाती हैं। जब ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी महिमा जाननेमें समर्थ नहीं हो पाते तब मेरे सदृश साधारण लोगोंकी बात ही क्या ? आप महापुरुष हैं आपका ज्ञान तो देहादिसंघात से छिपा है और देहाध्यास निवृत्त होना कठिन है अतः मैं एतदर्थ आपके श्रीचरणोंमें बारम्बार सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ।४६।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादश स्कन्धका आठवाँ अध्याय समाप्त।

—:❀:—

नवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीको मायाका और उसके अधिपति

मुकुन्द भगवान्‌का दर्शन

सूतजी बोले—हे शौनक! मार्कण्डेयजीकी ऐसी स्तुतिपर प्रसन्न हो भगवान् नर नारायणने कहा—ब्रह्मर्षे! तुम अनपायिनी भक्ति एवं चित्तकी एकाग्रता द्वारा सिद्ध हो चुके। हम तुम्हारे इस नैष्ठिक ब्रह्मचर्यपर बड़े प्रसन्न हैं जो तुम्हारी इच्छा हो मुझसे वर माँग लो। मार्कण्डेयजीने कहा—हे देव-देवेश मुझे आपका दुर्लभ दर्शन मिल गया, इससे बढ़कर और वर क्या होगा? ब्रह्मा आदि देवता योगद्वारा जिनका हृदयमें ही दर्शन कर कृतार्थ हो जाते हैं वे आप साक्षात् मेरे नेत्रगोचर हो गये अब इससे अधिक और क्या है जो मैं माँगू? फिर भी, यदि आपकी आज्ञा है, तो हे कमललोचन! मैं आपकी वह माया देखना चाहता हूँ जिससे मोहित हुआ यह सारा लोक एक ही अद्वितीय ब्रह्ममें देव तिर्यक्, मनुष्यादिरूप नाना प्रकारका भेद देखता है।

द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥

सूतजी कहते हैं—हे शौनक! मुनिकी इस कामनापर भगवान् कुछ मुस्कराये और 'तथास्तु' कहकर अर्थात् मायादर्शनका वरदान दे बदरिकाश्रम चले गये। मार्कण्डेय मुनि वहीं आश्रममें बैठे सर्वत्र चराचर जगत्‌में भगवान्‌का ध्यान करते उनका मानसिक पूजन करते रहे। कभी-कभी प्रेमावेशमें वे पूजाका क्रम भी भूल जाते। एक दिन सायंकाल पुष्पभद्रा नदीके तटपर बैठे वे सन्ध्या कर रहे थे कि उसी समय अकस्मात् भीषण आँधी चलने लगी। प्रचण्ड शब्द करते काले-काले भीषण मेघोंसे आकाशमण्डल छा गया और बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ मूसलाधार वर्षा होने लगी। चारो ओरसे उमड़ता समुद्र पृथ्वीको डुबाता हुआ दीख पड़ा जिसमें बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी तरंगों एवं भंवरोंके भयङ्कर शब्द होने लगे। मार्कण्डेयजीके देखते-देखते ही तीनों लोक क्षणमात्रमें जलमग्न हो गये। केवल एक मार्कण्डेय मुनि ही बच गये जो जटा बिखराये इस प्रलयकालीन भीषण समुद्रके प्रवाहमें किंकर्त्तव्यमूढ ही इधर-उधर बहते पागल और अन्धेके समान प्राण बचाते भटक रहे थे।

स एक एवोर्वरितो महामुनिर्बभ्राम विधूय जटा जडान्धवत् ॥

भूख-प्याससे व्याकुल एवं भीषण तरङ्गोंसे प्रताड़ित वे कभी भँवरोंमें पड़े चक्कर खाते, कभी बड़े-बड़े मगर, तिमिङ्गल, उन्हें निगल जाते। कभी आधि-व्याधियोंसे पीडित हो मृत्युका अनुभव करते। हे शौनक! इस प्रकार उन्हें प्रलयकालीन अगाध और अपार जलराशिमें घूमते-घूमते सैंकड़ों, हजारों, लाखों, करोड़ों वर्ष बीत गये, ऐसा उन्हें अनुभव हुआ। एक दिन मुनिराजको ईशानकोणमें अतीव कोमल एक छोटा-सा वटवृक्ष दिखलायी पड़ा जो फल-पुष्पोंसे लदा हरा-भरा बड़ा ही सुहावना मालूम पड़ता था। उसकी एक शाखामें अभिनव वट-पल्लवके खटोलेपर शयन करता एक दिव्य बालक दीख पड़ा, जिसके तेजसे सर्वत्र चारों ओर अलौकिक प्रकाश फैल रहा था। वह बालक नीलमणिके समान श्याम वर्णका था और उसके अङ्गोंका सौन्दर्य बड़ा ही आकर्षक था। वह मुनिराजकी यह दशा देख मन्द-मन्द मुस्कराता अपने नन्हें-नन्हें सुकोमल करकमलोंसे अपना ही चरणकमल मुखमें रखकर उसका अंगूठा चूस रहा था। हो सकता है, वह उस स्वादको परखनेकी लीला कर रहा हो, जिसके लोभमें बड़े-बड़े योगी ज्ञानी ऋषि-मुनि उन चरणकमलोंके मकरन्दका आस्वाद पानेका यत्न किया करते हैं। मार्कण्डेयजी इस अद्भुत बालकको देखकर चकित रह गये उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

तद्दर्शनाद् वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनाम्बुजः।
प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशङ्कितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥

उस बालकके दर्शनसे मुनिका सारा श्रम जाता रहा, हर्षसे उनका हृदय और नेत्र-कमल खिल उठे तथा शरीरमें रोमाञ्च छा गये। बालकके उस अद्भुत मोहकरूपपर मोहित तथा शंकित हो मुनिराज उससे कुछ पूछनेके लिये ज्यों ही आगे बढ़े कि बालक के श्वाससे खिचकर मशकके समान झट उसके मुखमें चले गये। वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको उस बालकके अन्दर देखा। वे अत्यन्त विस्मित हो कुछ सोच ही रहे थे कि बालकके निःश्वास द्वारा पुनः बाहर निकलकर जलमें आ गिरे, और फिर भी उन्होंने उसी अवस्थामें पल्लवपर शयन करते उस अद्भुत बालकको देखा। अब भी वह बालक इनकी ओर निहारकर मन्द-मन्द मुस्करा रहा था। मुनिराजने उस बालककी छवि नेत्रों द्वारा हृदयमें रख उसका आलिङ्गन करनेके लिये ज्यों ही हाथ बढ़ाया कि वह कौतुकी बालक तुरन्त अन्तर्धान हो गया। साथ ही साथ वह प्रलयका सारा दृश्य भी समाप्त हो गया और मुनिराजने अपनेको पूर्ववत् आश्रममें ही बैठा हुआ पाया।

स्वाश्रमे पूर्ववत् स्थितः ॥ ३४ ॥

इस घटनासे उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। बालककी वह मनमोहिनी मूर्ति उनके हृदयसे हटती न थी। उसका स्मरणकर उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगी। वे उसीके ध्यानमें तल्लीन हो गये। कहने-सुननेकी कुछ भी सामर्थ्य उनमें न रही। आपलोग भी हाथ जोड़कर बालमुकुन्द भगवान्के स्वरूपका मनसे ध्यान करें।

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥

प्रलयकालीन अपार जलराशिमें ईशानकोणस्थ वटवृक्ष के पत्रपुट पर भगवान् शयन कर रहे हैं। वे अपने नन्हें करकमलसे पदकमलको मुखमें रख कर उसका अंगूठा चूसते हुए दिव्यातिदिव्य माधुर्यरसका आस्वादन कर रहे हैं; ऐसे बालमुकुन्द भगवान्को हम सभी श्रोता और वक्ता मिलकर प्रणाम करते हैं। बोलो बालमुकुन्द भगवान्की जय—३

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादशस्कन्धका नवाँ अध्याय समाप्त।

दसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय मुनिको पार्वती सहित भगवान् शिवका अमोघ दर्शन और उनसे वर-प्राप्ति

सूतजी बोले—हे शौनक! मार्कण्डेय मुनिने भगवत्कृपासे इच्छानुसार इस प्रकार मायाका अद्भुत दर्शन तो पाया, पर वे बहुत ही श्रान्त हो गये थे, अतः वे भगवान्की शरण लेकर आँसू बहाते उन्हींके ध्यानमें तल्लीन हो बैठे थे कि नारायणकी प्रेरणासे पार्वतीसहित भगवान् शिव उधरसे आ निकले। पार्वतीजीने मुनिको इस प्रकार भावमुद्रामें समाधिस्थ देख शिवजीसे कहा—नाथ! देखिये तो सही, यह मुनि किस प्रकार ध्यानमें तल्लीन हो रहे हैं? आप इन्हें वर प्रदान कर इनकी तपस्या सफल करें। शिवजीने कहा—देवि! ये ब्रह्मर्षि भगवान्की परा (प्रेमलक्षणा) भक्तिको प्राप्त हैं। इन्हें अणिमादि

सिद्धियाँ या मोक्षकी भी इच्छा नहीं है फिर भी चलो इनसे वार्त्तालाप करें। संसारमें भक्तोंका समागम बड़ा ही लाभकारी होता है। हे शौनक! यह कहकर भगवान् शिव पार्वतीसहित मुनिके समीप गये। समाधिस्थ मुनिको उनके आगमनका कुछ भी ज्ञान न हुआ। यह जान भगवान् शिव योगद्वारा उनके हृदयाकाशमें वायुकी तरह सहसा प्रविष्ट हो गये।

आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥

उदयकालीन सूर्यके समान देदीप्यमान पीतवर्णकी जटा धारण किये हाथोंमें त्रिशूल, डमरू, कपाल आदि लिये दशभुजी सौम्यमूर्ति भगवान् शिवको अकस्मात् हृदयमें प्राप्त हुए देख मुनि चकित रह गये। यह कैसे और कहाँसे आ गये यह विचार करते ही मुनिकी समाधि तत्क्षण टूट गयी और उन्होंने जब नेत्र खोले तब सामने उमासहित भगवान् शिवको आया देख झट आसनसे उठ खड़े हुए और गद्गद हो प्रेमाश्रु बहाते उन दोनोंके चरणोंमें गिरकर प्रणाम किया। अनन्तर, आसनपर बैठाकर दोनोंकी षोडशोपचारसे विधिपूर्वक पूजा की और भावविभोर हो हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च।
रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ॥१७॥

भगवन्! आपके निर्गुण और सगुण दोनों रूप हैं। निर्गुण रूपसे आप शान्तमूर्ति 'शिव' हैं तथा सत्त्वके अधिष्ठाता होनेसे जीवोंको निरतिशय सुख देने वाले है। रजोगुण और तमोगुणके भी अधिष्ठान होनेसे जीवोंकी कर्मानुसार घोर और मूढ़वृत्तियाँ आपके द्वारा उत्पन्न होती हैं, पर आप दोनोंसे रहित निर्विकार 'सदाशिव' हैं। आपको मेरा नमस्कार है। इस प्रकार मार्कण्डेय मुनिने नारायण और शिवमें एकता व्यक्त करने के लिये एकही श्लोक से स्तुति की। दूसरी बात—मायादर्शनसे मुनि अत्यधिक श्रान्त हो गये थे, पुनः भगवान् शिवके दर्शनसे इतने आनन्दविभोर हो उठे कि उनमें बोलनेकी शक्ति भी न रही। इसीलिये नारायणने शिवरूपमें प्रकट होकर उन्हें सान्त्वना प्रदान की थी ऐसा यहाँ समझना चाहिये। मुनिकी स्तुतिपर प्रसन्न हो भगवान् शिवने मुस्कराते हुए कहा—हे मुने! हम तीनों ही देवता वरदाताओं में श्रेष्ठ हैं। हमारा दर्शन अमोघ है, तुम्हें जो इच्छा हो हमसे वर माँग लो। जो हम त्रिदेवोंमे अणुमात्र भी भेददृष्टि नहीं करते, निर्वैर, समदर्शी तथा शान्तस्वभाववाले हैं ऐसे ब्राह्मणोंपर हम तीनों देवता एवं लोकपाल कृपा करते हैं। ब्राह्मणोंसे बढ़

कर इस लोकका कोई दूसरा देवता नहीं जिनके दर्शनमात्रसे महापापी भी शुद्ध हो जाते हैं। यदि उनके साथ सम्भाषण तथा कुछ सत्संग हो जाय तब तो कहना ही क्या ? हे शौनक ! भगवान् शिवकी ऐसी अमृतमयी वाणी सुन मार्कण्डेयजीके कर्ण तृप्त नहीं हो रहे थे। उनका सारा श्रम एवं क्लेश उनके अमृतस्रावी वचनोंसे दूर हो गया। वे हाथ जोड़ कर कहने लगे—भगवन् ! आप जगत्के नियन्ता ईश्वर हैं। फिर भी आप हम लोगोंका जो इस प्रकार आदर कर रहे हैं यह केवल दूसरोंके शिक्षार्थ ही है। इससे आपका महत्त्व कुछ घटता नहीं, प्रत्युत बढ़ता ही है। आपकी लीला बड़ी अद्भुत है, जिसे जानना बड़ा ही कठिन है। हम तो केवल सिर झुका कर साक्षात् जगद्गुरु आपको प्रणाम ही कर सकते हैं। यद्यपि मैं आपके दर्शन से ही कृतार्थ हो चुका फिर भी भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले पूर्णब्रह्म आपसे मैं केवल यही वर चाहता हूँ कि नारायणमें, उनके रूप आपमें एवं आप दोनोंके भक्तोंमें मेरी सदा निश्चल भक्ति बनी रहे —

वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात् कामाभिवर्षणात्।
भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३४ ॥

यह सुन कर भगवान् शिव बड़े प्रसन्न हुए और बोले—मुनिराज ! तथाऽस्तु, ऐसा ही होगा। कल्पपर्यन्त तुम इसी-प्रकार अजर और अमर बने रहोगे। तुम्हें त्रैकालिक ज्ञान होगा एवं पुराणोंका आचार्यत्व भी प्राप्त होगा.। इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। सूतजी कहते हैं—हे शौनक !

अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्य धीमतः।
अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥ ४० ॥

मार्कण्डेयमुनिने भगवान्की मायाका जो प्रत्यक्ष अद्भुत वैभव देखा था और अनुभव किया था उसका रहस्य मैंने यथावत् वर्णन किया। मायादर्शनेच्छु मुनिकी प्रार्थनापर ही भगवान्ने उनके समक्ष प्रलयका अद्भुत दृश्य उपस्थित किया था। वह आकस्मिक प्रलय था वास्तविक नहीं। यद्यपि कुछ वृद्ध विद्वान् मार्कण्डेयका आयुष्य सात कल्पका बताते हैं उसका तात्पर्य यह है कि मायाशिशुके श्वासोच्छ्वाससे सातबार उदरमें प्रवेश और निर्गमनके द्वारा मुनिको क्षणमात्रमें सात कल्पका अनुभव हुआ था, अतः उपर्युक्त कथनका भी किसी अंशमें विरोध नहीं है। जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे इस मार्कण्डेय

चरित्रका श्रवण करता है या उसका वर्णन करता है वे दोनों समान फलके भागी होते हैं और उन दोनोंकी अशुभ कर्मवासनाएं एवं तज्जनित संसार सदाके लिये निवृत्त हो जाता है।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादश स्कन्धका दसवाँ अध्याय समाप्त।

ग्यारहवाँ अध्याय

मार्कण्डेय मुनिका क्रियायोग और सूर्यके व्यूहका वर्णन

शौनकजीने पूछा—हे सूतजी! पञ्चरात्रादि आगमशास्त्रके विशिष्ट विद्वान्, भगवान्के अङ्ग, पादादि उपाङ्ग, गरुड़ादि आयुध सुदर्शनादि और आकल्प कौस्तुभादि भूषणोंकी कल्पना जिन तत्त्वोंसे करते हैं और जिनकी उपासना कर मार्कण्डेय मुनि अमर हो चिरजीवी हो गये, उस 'क्रियायोग' का कृपया हमसे वर्णन करें।

येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ॥ ३ ॥

जिस क्रियाकी निपुणतासे साधारण मनुष्य भी अमरत्व देवत्व और मोक्षतक को भी प्राप्त कर सकता है।

सूतजी बोले—हे शौनक! प्रकृति, सूत्र, महत्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्राएँ, ११ इन्द्रियाँ और ५ महाभूत, इन्हीं २५ तत्त्वोंसे विराट् पुरुषका विग्रह बना है, जिसमें तीनों लोक कल्पित हैं। यह भगवान्का मायिक पौरुषरूप कहा जाता है। पृथ्वी भगवान्के चरण हैं तथा स्वर्ग सिर, आकाश नाभि, सूर्य नेत्र, वायु नासिका, दिशाएं कर्ण, प्रजापति जननेन्द्रिय, मृत्यु पायु, लोकपाल भुजाएँ, चन्द्रमा मन, यम भृकुटि, लज्जा उत्तरोष्ठ, चाँदनी दन्त-पंक्ति, माया हास्य, वृक्ष रोमावली और मेघ केशराशि हैं। इस प्रकार तत्तत् पदार्थोंमें भगवान्के अङ्गोंकी कल्पना कर व्यापक रूपसे उनका ध्यान करना चाहिये। भगवान्के आभूषणोंमें आत्मज्योति कौस्तुभमणि, उसकी प्रभा

श्रीवत्स, गुणमयी माया वनमाला, वेद पीताम्बर, ओंकार यज्ञोपवीत, ज्ञान और कर्मयोग मकराकृति कुण्डल, ब्रह्मलोक मुकुट, शेषनाग आसन और सत्त्व नाभिकमल बिछौना कहा गया है। प्राणतत्त्व कौमोदकी गदा, जलतत्त्व पांचजन्य शंख, तेजतत्त्व सुदर्शनचक्र, आकाशतत्त्व खड्ग, अज्ञान रूप ढाल, काल शार्ङ्गधनुष कर्म तरकस, इन्द्रियाँ बाण, मन रथ, तन्मात्राएं रथका अभिव्यक्त रूप, वरदहस्त मुद्राएँ, पूजास्थान सूर्यमण्डल, संस्कार (अन्तःकरण शुद्धि) मन्त्रदीक्षा और पापक्षय भगवान्‌का पूजन है अर्थात् पूजनसे समस्त पापोंका क्षय होता है।

परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥ १७ ॥

षड्विध ऐश्वर्य[1] हाथका लीलाकमल है, धर्म और यश चामर और व्यजन हैं। वैकुण्ठ छत्र तथा वेदत्रय ही गरुड़ हैं। अनपायिनी शक्ति लक्ष्मी हैं, विष्वक्सेन पञ्चरात्राद्यागमरूप प्रधान पार्षद हैं। अणिमा-महिमादि अष्टसिद्धियाँ नन्द, सुनन्द आदि आठ द्वारपाल हैं। इस विराट् पुरुषकी उपासना चतुर्व्यूह या अन्तःकरणमें भी की जाती है। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चतुर्व्यूह हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये अन्तःकरणचतुष्टय हैं। जाग्रत्साक्षी 'विश्व', स्वप्नसाक्षी 'तैजस' और सुषुप्तिसाक्षी 'प्राज्ञ' है। इन वृत्तियों द्वारा तुरीयावस्थापन्न 'आत्मा'का चिन्तन किया जाता है। यही विराट्पुरुष त्रिविधरूपसे, सृष्टि पालन और संहार करते हैं। मार्कण्डेयजी इसी भावनासे प्रतिदिन भगवान्‌की मानसिक पूजा करते समस्त जगत्‌को ब्रह्मरूपमें देखते थे अत एव वे अमर हो गये। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस चरित्रमें वर्णित विषयों का धारणा ध्यान द्वारा निदिध्यासन करता है, मनन करता है। उसे साधनानुसार शनैः-शनैः हृदयस्थ ब्रह्मका साक्षात्कार होने लगता है यह ध्रुव है।

शौनकने पूछा—हे सूतजी! आपने भगवान्‌का पूजास्थान सूर्यमण्डल बताया है। इसका व्यूह किस प्रकारका है कृपया इसे भी बतलाइये।

तब सूतजीने कहा—हे शौनक! भगवान् सूर्य बारह मासोंमें बारह रूपोंसे प्रकट होकर छः गणोंके साथ लोकव्यवहारकी रक्षाके लिये सर्वत्र विचरते हैं।

---

१. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

धाता कृतस्थली हेतिर्वासुकी रथकृन्मुने ।
पुलस्त्यस्तुम्बुरुरिति मधुमासं नयन्त्यमी ॥३३॥

धाता नामक सूर्य अप्सरा, राक्षस, नाग, यक्ष, ऋषि, गन्धर्व, इन छः गणोंके साथ चैत्र मासको बिताते हैं। इसी प्रकार, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा और विष्णु नामक ग्यारह मासों के सूर्य भी पृथक् पृथक् अपने छः-छः गणोंके साथ वैशाख आदि मासों को बिताया करते हैं। ऋषि सूर्यदेव की स्तुति करते हैं, गन्धर्व उनका गान करते है, अप्सराएँ नृत्य करती चलती हैं, नाग रथको बाँधे रहते हैं, यक्ष देख-भाल करते हैं, राक्षस पीछेसे रथको ढकेलते हैं, एवं अंगुष्ठ परिमाणवाले साठ हजार वालखिल्य नामक ऋषि सूर्यके सामने मुखकर उनकी स्तुति करते चलते हैं। इस प्रकार, भगवान् हरि सूर्यरूपसे द्वादश मूर्ति धारण कर कल्प-कल्पमें सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा किया करते हैं।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादशस्कन्धका ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

बारहवाँ अध्याय

श्रीमद्भागवतकी विषयानुक्रमणिका

सूतजी बोले—हे शौनक !

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान् वक्ष्ये सनातनान् ॥१॥

महत्त्वपूर्ण भक्तिलक्षण भागवतधर्मको उससे सुलभ भक्तानुकूल विधान बनानेवाले भगवान् श्रीकृष्णको तथा उस धर्मके उपदेष्टा आचारसम्पन्न विद्वान् ब्राह्मण, व्यासादि महर्षियोंको नमस्कारकर सप्ताहके अन्तमें हम पुनः श्रीमद्भागवतमें प्रोक्त सनातन धर्मसम्बन्धी भगवान्के मङ्गलमय चरित्रों का संक्षेपरूपमें वर्णन करते हैं। जो सूचना मिलनेपर भी अनवधानतावश इस सप्ताहयज्ञमें सम्मिलित न हो सके और न जिन्होंने सप्ताहकी कथा ही सुनी है, वे प्राणी

अपराधी हैं उनके कल्याणार्थं व्यासजीने ज्ञानपूर्वक अन्तमें भागवतीय विषयानुक्रमणिका का सन्निवेश किया है जिसका श्रवण तथा नियमों का पालन कर श्रोता लोग सप्ताह का चतुर्थांश फल प्राप्त कर सकेंगे।

इस श्रीमद्भागवतमें आदिसे अन्ततक पद-पद पर प्रधानरूप से भगवान् श्रीकृष्णका ही प्रतिपादन किया गया है। कर्म उपासना भक्ति और ज्ञान इन सबका पर्यवसान उन्हीं में बताया है। अब आप लोग सावधान होकर श्रीमद्भागवतका स्वरूप सुनें—

श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्ताराङ्कुरः सज्जनिः
स्कन्धैर्द्वादशभिस्ततः प्रविलसद्भक्त्यालवालोदयः।
[1]द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः सहस्राण्यलं
पर्णान्यष्ट दशेष्टदोऽतिसुलभो वर्वर्ति सर्वोपरि॥

(श्रीधरी)

यह श्रीमद्भागवत नामका महापुराण कल्पवृक्ष है। प्रणव इसका अंकुर हैं, नारायणसे इसका प्रादुर्भाव हुआ है। द्वादशस्कन्ध रूपी इसके मोटे-मोटे प्रकाण्ड चारों ओर फैले हुए हैं। हृदयमें प्रकाश करने वाली भक्तिरूपी आलवाल (क्यारी) में यह जमा है। तीन सौ पैंतीस अध्यायरूपी इसकी मनोरम शाखाएँ अत्यन्त शोभा पा रही है। अठारह हजार श्लोकरूपी इसके पत्ते हैं। यह समस्त कामनाओंको देनेवाला अत्यन्त सुलभ हो गया है। यह समस्त शास्त्रोंके उपर शिरोमणिरूप से वर्तमान है। इसका सर्वदा श्रवण करते रहो।

इस श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें उन्नीस अध्याय हैं जिनके आरम्भ में मङ्गलाचरणद्वारा सूत-शौनकसंवादमें छः प्रश्नोंका उपक्रमकर भगवान्के चौबीस अवतारों का वर्णन किया। पुनः व्यास-नारद संवादमें नारदजी ने व्यासजी को आत्माके असन्तोष का कारण बताकर अपने जन्म कर्म का रहस्य बताया। राजा परीक्षित्के जन्मप्रसंगमें पाण्डवोंका संक्षिप्त चरित्र, भीष्मका निर्याण, राजा परीक्षित्का जन्मोत्सव, उनके द्वारा दिग्विजय, कलिका निग्रह, शमीक मुनिके आश्रम में जाकर उनके गलेमें सर्प को डालना, इससे क्षुब्ध शृङ्गी ऋषि

---

1. शतं च शतं च शतं च शतानि इति शतपदेन शतत्रयं गृह्यते 'कपिञ्जलालम्भवाक्ये' इति न्यायात्। द्वात्रिंशच्च त्रयश्च शतानि चेति त्रिपदद्वन्द्वः पञ्चत्रिंशदधिक-शतत्रया अध्याया इत्यर्थः।

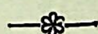
का राजा परीक्षित् को शाप, अन्नजल का त्यागकर उनका गंगातट पर निवास, ऋषियों का आगमन, तथा म्रियमाण पुरुष के कर्तव्याकर्तव्य प्रश्नके विवाद पर शुकदेवजीके आगमनकी कथा वर्णित है। द्वितीय स्कन्धमें दस अध्याय हैं, जिनके आदिमें हृदयस्थ चतुर्भुज भगवान्के ध्यानका वर्णन। भगवान्के विराट् रूपका वर्णन, योगियोंकी पद्धति के अनुसार सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति इन दो मार्गों का वर्णन। ब्रह्मनारद-संवादमें नारायणद्वारा ब्रह्माको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश एवं पुराणके दस लक्षण बताये गये हैं। तृतीय स्कन्धमें तेंतीस अध्याय हैं' जिनमें विदुर-उद्धव संवाद, विदुर-मैत्रेय संवाद, पुराणसंहिता सम्बन्धी प्रश्नोत्तर, प्रलयकालमें भगवान्की स्थिति, प्राकृतिक-वैकृतिक सृष्टि, ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, कालकी गति, भगवान्के नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति, वराह भगवान् द्वारा पृथ्वीका उद्धार, हिरण्याक्ष-वध, पुनः नानाविध सृष्टि, ब्रह्मासे मनु और शतरूपाका जन्म, मनु-कर्दमसंवाद, कर्दम-देवहूतिविवाह, भगवान् कपिलका अवतार, कपिल-देवहूति संवादमें भक्तियोग-संवलित सांख्ययोगका विस्तृत वर्णन, जीवकी गर्भावस्थाका वर्णन, अपने आत्मोद्धारकी प्रतिज्ञाका वर्णन तथा अन्तमें देवहूतिकी मुक्ति वर्णित है। चौथे स्कन्धमें इकतीस अध्याय हैं। इनमें सतीचरित्र, वीरभद्रद्वारा दक्ष-यज्ञ-विध्वंस, ध्रुव-चरित्र, वेन-चरित्र, धर्मविरोधी राजा वेनको प्राणदण्ड, पृथु-चरित्र, पृथुको सनत्कुमारका ज्ञानोपदेश, नारद और प्राचीनबर्हिका संवाद उसके यज्ञमें भी पश्वालम्भनका निषेध तथा पुरञ्जनोपाख्यानका वर्णन है। पाँचवें स्कन्धमें छब्बीस अध्याय हैं, जिनमें प्रियव्रतका उपाख्यान उसमें गृहस्थधर्म की श्रेष्ठताका वर्णन। नाभि और उनके पुत्र ऋषभदेवकी कथा, भरत-रहूगण संवादमें महत्त्वपूर्ण ज्ञानोपदेशका वर्णन, भवाटवीका वर्णन, भूगोल, खगोल, नीचेके सात लोक एवं पापियों के यातनार्थ भीषण नरकोंका वर्णन है। छठे स्कन्धमें उन्नीस अध्याय हैं। जिनमें पापी अजामिलका उपाख्यान, उसका उद्धार, दक्षद्वारा सृष्टि, नारदका कूटोपदेश, वृत्रासुरका वध, चित्रकेतुका उपाख्यान, उनचास मरुतोंका जन्म तथा पुंसवन-व्रतका वर्णन है। सातवें स्कन्धमें पन्द्रह अध्याय हैं, जिनमें नारद-युधिष्ठिरसंवाद द्वारा प्रह्लादका मधुमय चरित्र, नृसिंहका प्रादुर्भाव, वर्णाश्रम धर्म और नारदके पूर्वजन्मकी कथा वर्णित है। आठवें स्कन्धमें चौबीस अध्याय हैं जिनमें चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन, गजेन्द्रमोक्ष, समुद्रमन्थन, वामन और बलिका चरित्र तथा मत्स्यावतारकी सुन्दर कथा वर्णित है। नवम-स्कन्धमें चौबीस अध्याय हैं जिनमें सूर्य और सोमवंशका वर्णन, इक्ष्वाकुका जन्म, सुद्युम्नका चरित्र, शशाद आदि राजाओंके चरित्र, सुकन्याका

चरित्र, अम्बरीषोपाख्यान, भक्तापराधमें दुर्वासाको दण्ड, इक्ष्वाकुवंशवर्णन, ककुत्स्थ, खट्वाङ्ग, मान्धाता, सौभरि, त्रिशंकु, हरिश्चन्द्र, सगर तथा भगवान् श्रीरामका मंगलमय चरित्र, राजा निमिका वंश, चन्द्रवंश वर्णन, परशुरामका चरित्र, दुष्यन्त रन्तिदेव भरत आदि राजाओंके विलक्षण चरित्र, नहुष, ययाति और यदुके वंशका वर्णन है। दशम स्कन्धमें नव्वे अध्याय हैं, जिनमें सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णका जन्म, पूतनाका वध, शकटासुरका वध, तृणावर्तका वध, वत्सासुर और बकासुरका वध, कालियदमन, धेनुकासुरका वध. प्रलम्बासुरका वध, दावानलसे गोपोंकी रक्षा, वेणुगीत, गोपीचीरहरण, गोवर्धनधारण, इन्द्रका दमन, गोपीगीत, महारासलीला, युगलगीत, शंखचूड आदि दैत्योंका वध, अक्रूरद्वारा भगवान्का मथुरागमन, कुवलयापीड हाथीका वध, मुष्टिक, चाणूर, आदि मल्लोंका वध, कंसका वध, कालयवनका वध, द्वारका-निर्माण, रुक्मिणी-हरण, प्रद्युम्नका जन्म, शम्बरासुरका वध, स्यमन्तकमणिका उपाख्यान, श्रीकृष्णका बाणासुरसे युद्ध, राजा नृगका उद्धार, पौण्ड्रकवध, भौमासुरका वध, शिशुपाल आदि राजाओंका वध, सुदामाका चरित्र और वेदस्तुति आदि वर्णित हैं। ग्यारहवें स्कन्धमें इकतीस अध्याय हैं। जिनमें ऋषियोंका यदुकुलको शाप, मूसलोत्पत्ति, निमि-सिद्धेश्वरसंवाद द्वारा नारदका वसुदेवको भागवतधर्मका उपदेश। मायाका स्वरूप, और उसकी निवृत्तिके उपाय। भगवान्के कतिपय-अवतारोंका वर्णन। कृष्ण-उद्धव संवादमें दत्तात्रेयके चौबीस गुरुओंका महत्त्वपूर्ण उपाख्यान तथा देहाध्याससे जीवको संसार होता है वस्तुतः नहीं, इसका विवेचन। संसारका मिथ्यात्व-वर्णन। बद्ध-मुक्त पुरुषके लक्षणोंका वर्णन। सत्सङ्गकी महिमा। हंसरूप से सनकादिके जटिल प्रश्नका खण्डनपूर्वक उत्तर। अठारह सिद्धियाँ तथा धारणाओंका वर्णन। भगवान्की मङ्गलमय विभूतियोंका वर्णन। वर्ण और आश्रमके धर्मोंका निरूपण। भिक्षुगीता द्वारा दुःखसहनके उपायोंका वर्णन। सांख्ययोगका वर्णन। कर्मयोगका विस्तृत विवेचन, अन्तमें सम्पूर्ण ब्रह्ममीमांसा का सार निरूपण, उद्धवका बदरिकाश्रमगमन, तथा यदुकुलका संहार कर भगवान् श्रीकृष्णका सशरीर परमधाममें गमन बताया गया है। बारहवें स्कन्धमें तेरह अध्याय हैं, जिनमें कलियुगीय राजाओंका इतिहास, युगधर्म, कल्कि अवतार, नामकीर्तनका माहात्म्य, चार प्रकारके प्रलय, राजा परीक्षित्का मृत्युभयनिवारण तथा मोक्ष, वेदोंकी शाखाओंका विभाजन, मार्कंण्डेयकी कथा, सूर्यका व्यूह एवं पुराणोंकी संख्या वर्णित है। हे शौनक! हमने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय चरित्रोंसे ओत-प्रोत

इस श्रीमद्भागवत-महापुराणका वर्णन किया। यह पुराण चतुर्वर्ग अर्थ, धर्म, काम और मोक्षको देनेवाला है। जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे आचारवान् होकर इसका श्रवण करते हैं या सुनाते हैं उन दोनोंके अन्तःकरण शीघ्र पवित्र हो जाते हैं और वे मोक्ष के अधिकारी होते हैं। इसके पाठसे ब्राह्मण निर्मल बुद्धि, क्षत्रिय भूमिपति और वैश्य धनपति हो जाता है। शूद्र भी यदि ब्राह्मण द्वारा इसका श्रवण करे तो वह भी समस्त पातकोंसे मुक्त हो जाता है। इसके पाठमात्रसे चारों वेदोंके पाठका फल प्राप्त होता है। मधु, घृत और दुग्धकी नदियां बहाकर जो पर्याप्त दान किया जाय उसका संम्पूर्ण फल केवल इसके पाठमात्रसे प्राप्त हो जाता है। इसमें आदिसे अन्ततक भगवान् श्रीकृष्णका ही प्रधान रूपसे वर्णन किया गया है। इसलिये मुमुक्षु पुरुषको इसका पाठ स्वयं अपने मुखसे श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन करना चाहिये।

पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि भवक्षयम्।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादश स्कन्धका बारहवाँ अध्याय समाप्त।



तेरहवाँ अध्याय

अठारह पुराणोंकी श्लोक-संख्या एवं भागवत-दानका माहात्म्य

सूतजी बोले—हे शौनक! अब हम पुराणोंकी संख्याका वर्णन करते हैं। पहला ब्रह्मपुराण है इसकी श्लोक संख्या दस हजार है। दूसरा पद्मपुराण है, इसकी श्लोकसंख्या पचपन हजार है। इसी प्रकार तीसरा विष्णुपुराण उसमें तेईस हजार, चौथा शिवपुराण उसमें चौबीस हजार, पांचवां श्रीमद्भागवत-महापुराण उसमें अठारह हजार, छठा नारदपुराण उसमें पचीस हजार, सातवाँ मार्कण्डेय-पुराण उसमें नौ हजार, आठवाँ अग्निपुराण उसमें पन्द्रह हजार चार सौ, नवाँ भविष्य-पुराण उसमें चौदह हजार पाँच सौ, दसवां ब्रह्मवैवर्त-पुराण उसमें अठारह हजार, ग्यारहवाँ लिंगपुराण उसमें ग्यारह हजार, बारहवां वाराहपुराण उसमें चौबीस हजार, तेरहवां स्कन्दपुराण उसमें इक्यासी हजार एक सौ, चौदहवां वामनपुराण उसमें दस हजार पन्द्रहवां कूर्म-पुराण उसमें सत्रह हजार, सोलहवाँ मत्स्यपुराण उसमें चौदह हजार, सत्रहवां गरुड-पुराण उसमें उन्नीस हजार और अठारहवां ब्रह्माण्डपुराण

उसमें बारह हजार श्लोक हैं। कहीं शिवपुराणके स्थान पर वायुपुराणका भी उल्लेख पाया जाता है। कल्पभेदसे दोनों ही ठीक हैं। इस प्रकार सब मिलाकर श्लोकोंकी संख्या चार लाख होती हैं। इन सभी पुराणोंमें श्रीमद्भागवत सर्वशिरोमणि कहा गया है, कारण यह साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण का शब्दात्मक विग्रह है।

पादादिजानुपर्यन्तं प्रथमस्कन्ध ईरितः।
तदूर्ध्वं कटिपर्यन्तं द्वितीयस्कन्ध उच्यते॥
तृतीयो नाभिरित्युक्तश्चतुर्थ उदरं मतम्।
पञ्चमो हृदयं प्रोक्तं षष्ठः कण्ठं सबाहुकम्॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सप्तमो मुखमुच्यते।
अष्टमश्चक्षुषी विष्णोः कपोलौ भृकुटिः परः॥
दशमो ब्रह्मरन्ध्रं च मन एकादशः स्मृतः।
आत्मा तु द्वादशस्कन्धः श्रीकृष्णस्य प्रकीर्तितः।
(कौशिकीसंहिता)

निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा॥ १६॥

जैसे नदियोंमें गंगा, देवताओंमें श्रीकृष्ण, वैष्णवोंमें भगवान् शिव, क्षेत्रोंमें काशी सर्वोत्तम है, वैसे ही अठारह पुराणोंमें श्रीमद्भागवत सर्वश्रेष्ठ है। यह ज्ञान, वैराग्य एवं भक्तिरससे ओत-प्रोत है। इसका रसास्वादन कर लेनेपर फिर अन्यत्र कहीं भी रुचि नहीं होती और न कुछ ज्ञातव्य विषय ही शेष रह जाता है। यहाँ तक कि विद्वानोंकी शास्त्रान्तर जिज्ञासा भी समाप्त हो जाती है, यही इसकी विशेषता है।

समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम्।

भाद्रपदकी पूर्णिमाके दिन जो स्वर्णसिंहासनपर श्रीमद्भागवतपुराणको रखकर श्रद्धा-भक्तिसे अधिकारी विद्वान् ब्राह्मणको दान करता है वह परमगति मोक्षको प्राप्त करता है। वैसे तो दान करनेमें और भी तिथियाँ महत्त्व की बतायी गयी हैं किन्तु शुकदेवजीने नवमीसे आरम्भ कर इसी पूर्णिमा तिथिको भागवतकी समाप्ति की थी। इसीसे यहाँ उस तिथिका विशेष रूपसे उल्लेख किया गया है।

नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत् ।

श्रीमद्भागवतमें आदिसे अन्ततक सम्पूर्ण वेद-वेदान्त तथा उपनिषदोंका सार भरा है। कथाके व्याजसे ज्ञान-वैराग्य और भक्तिका इसमें पद-पदपर वर्णन किया गया है। जो श्रद्धाभक्ति पूर्वक इसे सुनता है सुनाता है या विचारता है, वह निश्चित ही मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। यह भागवतरूपी ज्ञानदीपक पहले श्रीनारायणने ब्रह्माजीको दिया था। ब्रह्माने नारदजीको, नारदने वेदव्यासजीको वेदव्यासजीने शुकदेवजीको और शुकदेवजीने राजा परीक्षित्को इसे सुलभ कराया। मैंने भी उनसे वहींपर इसे प्राप्त किया और यथाबुद्धि आप लोगोंके समक्ष इसका प्रकाशन किया। अब इस श्रीमद्भागवत-महापुराणकी समाप्ति हो रही है। आप लोग इसके प्रतिपाद्य देवता भगवान् श्रीकृष्णको प्रणामकर उनके स्वरूपका ध्यान करें।

यं ब्रह्मा[1] वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

सर्वप्रथम सृष्टिके आदिकर्ता ब्रह्माजी जिनकी स्तुति करते हैं पुनः वरुण आदि देवता दिव्यस्तोत्रों से जिनका स्तवन करते हैं, सामसङ्गीतके मर्मज्ञ-वैदिक विद्वान् अङ्गपाठ, पदपाठ, क्रमपाठ तथा उपनिषद् पाठके सहित वेदों द्वारा जिनका सुमधुर गान करते हैं, योगीजन ध्यानसे निश्चल अत एव भगवन्निष्ठ मनसे हृदयमें जिनका साक्षात्कार करते हैं फिर भी सुर-असुर समुदायमें जिनका अन्त आजतक न कोई जान सका, न पा सका उन भागवतके प्रतिपाद्य देवता भगवान् श्रीकृष्णको हम सब नमस्कार करते हैं।

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ २३ ॥

तं नमामि हरिं परम् ।

जिन भगवान्के मङ्गलमय नामोंका कीर्तन मानवके समस्त पापोंका नाश करता है और उनके चरणोंमें किया गया प्रणाम सम्पूर्ण दुःखोंका शमन करता

---

१. ब्रह्मा यं स्तौति वरुणादयश्च यं स्तुन्वन्ति स्तुवन्तीत्यन्वयः। अङ्गानि पदानि क्रमाश्च उपनिषदश्च तेषां द्वन्द्वैक्यं 'द्वन्द्वाच्चुदष'—इति टच् प्रत्ययः ततः सहशब्देन समासः।

है उन अज्ञानहर्ता भगवान् श्रीकृष्णके चरण कमलोंमें हम सभी श्रोता-वक्ता सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं। बारम्बार प्रणाम करते हैं।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिकके द्वादश स्कन्धका तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

द्वादश स्कन्ध समाप्त

[मासिकपारायणका तीसवां विश्राम समाप्त]

सप्ताहके सप्तम दिनकी कथा समाप्त

वदायूँमण्डलवास्तव्य सनाढ्यवंशावतंस पण्डितप्रवर आचार्य-श्रीराममूर्तिशास्त्री 'पौराणिकजी द्वारा लिखित श्रीमद्भागवतकथा साप्ताहिकका द्वितीय भाग समाप्त।

श्रीमद्भागवत-कथा (साप्ताहिक) समाप्त

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्ति !!!

—:*:—

यमराजकी दूतीका सन्देश

कृतान्तस्य दूती जरा कर्णमूले समागत्य वक्तीति लोकाः शृणुध्वम्।
परस्त्रीपरद्रव्यवांछां त्यजध्वं भजध्वं रमानाथपादारविन्दम्॥

हे संसारीमनुष्यों! यमराजकी दूती जरा (वृद्धावस्था) मनुष्योंके कर्णों के समीप आकर कहती है उसे ध्यानसे सुनो! परायी स्त्री तथा पराये धनको हड़पने की इच्छा छोड़ दो और लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके चरण-कमलका भजन करो बस संसारमें तुम्हारा यही मुख्य कर्तव्य है।

वदायूँमण्डले जातः सनाढ्यकुलभूषणः।
पिता श्रीबलदेवोऽस्ति माता रामप्रिया तथा॥
पौराणिक इति ख्यातो राममूर्तिस्तदात्मजः।
व्याकरणादिपुराणान्तान् ग्रन्थान् काश्यामधीतवान्॥
ततो लोकहितार्थाय कृता साप्ताहिकी कथा।
गुरोरनुग्रहात्सेयं निर्विघ्नं पूर्णतामगात्॥

गुरुकृपादरणिं समुपाश्रितस्तरति भीमभवाब्धिमयत्नतः।
इह परत्र सुखी च भवेद्गिरा परमया रमयाऽपि समादृतः॥



शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१९	१३	ठठी	उठी
४८	२४	मरण	गण
७१	६	जाप	जायं
७१	८	जाप	जायं
८५	५	तमने	तुमने
९६	३२	गोलाक	गोलोक
११३	६	प्रण	प्राण
१४९	२५	किये	दिये
१५०	२	अक्रूरक	अक्रूरको
१७३	१७	भगदान	भगवान्
१७४	११	१८०	१६०
१७६	२४	अतीत	अतीव
१८७	३१	घबराग	घबरा गये
२००	११	पष्टिवर्ष	षष्टिवर्ष
२०३	२	भवित शारणं	भविता शरणं
२१६	१९	दिग्वजय	दिग्विजय
२४३	१	१४३	२४३
२८७	१२	सममाषत	समभाषत
३०८	९	दुए	हुए
३३५	११	मर्मधेदी	मर्मभेदी
३३५	२८	दिय	दिया
३३७	१६	वर्मध्वजी	धर्मध्वजी
३४०	२	मनोभ्रमका	मनोभ्रमका
३८३	१	एंकादश	द्वादश
३८४	३	सुकुन्द	मुकुन्द

पुस्तक-प्राप्तिस्थान

पं० राजेश कुमार शास्त्री

पौराणिक-कार्यालय

डी० १/६५, ललिताघाट, वाराणसी-१